वर्ष : १— अङ्क : २

विश्वविद्यालय वार्ता

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

संरक्षक :	प्रकाशक :	सम्पादक :
श्री बदरीनाथ शुक्ल	श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी	श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी
कुलपति	कुलसचिव	,, व्रजवल्लभ द्विवेदी
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	,, शंभुनाथ मिश्र
वाराणसी	वाराणसी	डा० श्रीप्रसाद

वर्ष : १ अङ्क : २ **मार्गशीर्ष, सं० २०३५** **नवम्बर, १९७८**

विषय-सूची

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी ।

सरस्वती भवन के लिये विश्वविद्यालय द्वारा ज्ञानपिपासुओं का आवाहन

अये चिरपरिश्रान्ता विद्याकान्तारचारिणः ।
समागच्छत वस्तृप्तिं करोमि ज्ञानधारया ।।

शुभकामनाएँ

भारत के उपराष्ट्रपति के निजी सचिव
नई दिल्ली
PRIVATE SECRETARY
TO THE VICE-PRESIDENT OF INDIA
NEW DELHI
अक्टूबर 17, 1978

आपका पत्र दिनांक 15 सितम्बर, 1978 का 'वार्ता' नामक पत्रिका सहित प्राप्त हुआ, इसके लिए हार्दिक धन्यवाद।

आपका,
वाई० के० हेब्बल्ली

मुख्य मन्त्र्यांचे सचिवालय
मन्त्रालय, मुंबई ४०० ०३२
१७ अक्टूबर, १९७८

आपका पत्र तथा 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अंक मा० मुख्यमन्त्री महोदय को प्राप्त हुआ।

सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय की इस त्रैमासिक पत्रिका की सफलता के लिये मा० मुख्यमन्त्री महोदय ने अपनी शुभकामनाएँ दी हैं।

आपका
बसंत खेर
जनसम्पर्क अधिकारी

रक्षा मन्त्री, भारत
MINISTER OF DEFENCE, INDIA
नई दिल्ली
१९ अक्टूबर, १९७८

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अंक देखने का अवसर मिला।

अंक उपयोगी है और पत्र के संरक्षक, प्रकाशक और सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

मेरी शुभकामना है कि पत्रिका और अधिक उन्नति करे।

जगजीवन राम

GOVERNOR OF

GUJARAT

RAJ BHAVAN,
AHMEDABAD
29 Oct. 1978

I am happy to receive that first issue of 'Vishvavidyalaya Varta', the quarterly being published by Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya, Varanasi. I wish the publication all success.

Sharda Mukerjee

GOVERNOR
JAMMU & KASHMIR

राजभवन
श्रीनगर
२५-१०-७८

आपकी त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अंक मिला, धन्यवाद। उसको पढ़ कर विश्वविद्यालय की गतिविधियों का पता चला। मैं पत्रिका की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेज रहा हूँ।

लक्ष्मीकान्त झा
राज्यपाल, जम्मू व कश्मीर

पर्यटन और नागर विमानन मन्त्री
भारत
नई दिल्ली–११०००१
MINISTER OF
TOURISM & CIVIL AVIATION
INDIA
२८ अक्टूबर, १९७८

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का पहला अंक देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

वाराणसी परम्परागत संस्कृत शिक्षा का केन्द्र रहा है। इसे अक्षुण्ण और जीवन्त रखने का काफी श्रेय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय को है।

मुझे आशा है कि 'वार्ता' के माध्यम से पाठकों को न केवल विश्वविद्यालयीय शैक्षिक एवं सांस्कृतिक जानकारी मिलेगी, बल्कि चिन्तन के लिए भी ठोस सामग्री मिलेगी।

'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रवेशांक निःसंदेह बहुत सुन्दर निकला है और इसके लिये आप सभी बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका की निरन्तर सफलता के लिये मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

पुरुषोत्तम कौशिक

लक्ष्मीसहाय सक्सेना
राज्यमन्त्री, वन

लखनऊ
८ नवम्बर, १९७८

'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अंक देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन का प्रारम्भ एक सराहनीय प्रयास है।

इससे प्रशासकों, शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों सहित समाज के लगभग समस्त बौद्धिक वर्ग लाभान्वित होंगे, तथा जन-साधारण को विश्वविद्यालयों की कार्यपद्धति का ज्ञान होगा।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी भूमिका निभाने में अग्रणी रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से विश्वविद्यालय के बारे में ज्ञान का प्रसार होगा।

मैं पत्रिका की सफलता की कामना करता हूँ।

लक्ष्मीसहाय सक्सेना

कुंवर सत्यवीर,
राज्य मन्त्री
प्राविधिक शिक्षा।

विधान भवन,
लखनऊ।
९ नवम्बर, १९७८

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की पत्रिका (वर्ष १ अंक १) प्राप्त हुई। धन्यवाद।

यह अंक विश्वविद्यालय की सांगोपांग जानकारी एवं उपयोगी सामग्री के कारण काफी उपयोगी हो गया है।

सन्तों का आशीर्वाद भी इस संस्थान को प्राप्त है।

विश्वविद्यालय की उन्नति एवं उपादेयता में वृद्धि असंदिग्ध है। इसके लिए आप सब बधाई के पात्र हैं।

कुंवर सत्यवीर

उपराज्यपाल

राज निवास,
दिल्ली-२२००५४
नवम्बर १०, १९७८

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी में 'विश्वविद्यालय वार्ता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। विश्वविद्यालय के प्रस्तुत अंक का अवलोकन करने से विदित होता है कि इसमें विश्वविद्यालयीय संगोष्ठियों, उत्सवों और जयन्तियों आदि के चिन्तनमूलक विवरणों के साथ ही संस्कृत प्रेमियों के लिए विशेष सूचना सामग्री भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुझे आशा है 'वार्ता' को संस्कृत प्रेमियों के लिये चिन्तन की पृष्ठभूमि बनाने का प्रयत्न किया जायगा। सफलता के लिये मेरी शुभकामनाएँ।

दलीप राय कोहली

'हिन्दस्का'
३८, मेजर बैंक्स रोड,
लखनऊ
२२-११-१९७८

विश्वविद्यालय का स्वर्णिम भविष्य

मैंने 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रथम वर्ष का प्रथम अङ्क देखा। उसमें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के संबन्ध में अनेक सरस बातें पढ़ी। जैसे विश्वविद्यालय में तदा-तदा होने वाली संगोष्ठियों, जयन्तियों और अन्य समारोहों का विवरण, विभागीय वार्ता, नवीन भवनों का शिलान्यास, छात्रों के शैक्षिक और आनुशासनिक स्तर के समुन्नयन की योजना। १९७८-१९७९ के शिक्षणसत्र से छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास के लिये कई नई योजनाएँ दी गई है। जैसे निश्चय किया गया है कि एक बार पढ़े हुए पाठ्यक्रम में तत्तद्विभागों में छात्रों का प्रश्नोत्तरात्मक संवाद होगा। इससे विद्यार्थियों को अपना पाठ्यक्रम तैयार करते रहने की प्रेरणा मिलेगी और पाठ्यक्रम का स्वाभाविक रीति से अभ्यास होता रहेगा। ऐसे छः पक्षों तक पढ़े हुए पाठ्यक्रम में विभागीय प्रश्नोत्तरात्मक संवादों में जो छात्र सम्मिलित होंगे, उन्हें कक्षा का उत्तम छात्र घोषित किया जायगा और उनके प्रोत्साहनार्थ प्रथम, द्वितीय और तृतीय छात्र को पुरस्कृत किया जायगा। प्रत्येक मास के अन्त में छात्रों की शास्त्रार्थचर्चा, वादविवाद और निबन्ध लेखन की प्रतियोगिता कराई

जायगी। इन प्रतियोगिताओं में योग्य सिद्ध होने वाले छात्रों को देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि छात्र के रूप में प्रेषित किया जायगा।

विश्वविद्यालय के पाँच प्रधान अंगों—अधिकारी, अध्यापक, छात्र, लिपिक तथा चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों का स्थान आर्थिक दृष्टि से अवर होते हुए भी उनका महत्त्व सर्वाधिक है। विश्वविद्यालय अथवा किसी भी संस्था की वे मुख्य आधारशिला हैं। सम्पूर्ण शारीरिक श्रम का दायित्व उन्हीं पर होता है। विश्वविद्यालय के सफल संचालन के लिये उनका सहयोग अपना अलग महत्त्व रखता है। उनका सहयोग तभी मिल सकता है जब उनकी समस्याओं को अधिकारी धैर्य से सुनें तथा उनकी उचित माँगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए कुलपति ने गत दिनांक १ मई, १९७८ को समस्त चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि विश्वविद्यालय प्रशासन उनकी समस्याओं तथा आवश्यकताओं के प्रति जागरूक एवं सचेष्ट है। उन्होंने कहा कि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को बड़े मनोयोग से अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए विश्वविद्यालय के विकास में सक्रिय सहयोग करना चाहिए। आप ने कर्मचारियों में यह स्पष्ट किया कि वे अपनी समस्यायें अथवा उचित माँगों के संबन्ध में अपने आवेदन पत्र की एक प्रति अपने विश्वविद्यालय की सेवा में देकर दूसरी प्रति के साथ सीधे उनसे मिलकर निवेदन कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुलपति के इस आश्वासन से चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों में नवजीवन का संचार हुआ है और उन्हें अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि उनकी कठिनाईयों एवं समस्याओं को अधिकारी धैर्यपूर्वक सुन कर उनका उचित समाधान करेंगे।

'विश्वविद्यालय वार्ता' के संबन्ध में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इन कतिपय वर्णित बातों से स्पष्ट हो गया है कि अब विश्वविद्यालय में एक नया वातावरण हो गया है, जो न्याय और सहानुभूति का वातावरण है। इस संस्था के आगामी विकास के लिये यह वातावरण अनुकूल सिद्ध होगा। मैं काशी विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि भगवान् इस वातावरण को बनाए रखें ताकि इस संस्था की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो, और देववाणी तथा विद्या का सर्वतोमुखी विकास हो।

को० श्र० सुब्रह्मण्य अय्यर
(भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
एवं लखनऊ विश्वविद्यालय)

कुल-गीतम्

समुद्यत्सहस्रांशुमाणिक्यपुञ्ज-
प्रभाभासुरं ज्योतिरन्तः श्रुतीनाम् ।
दधानो जगन्मण्डले जागरूकः
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ १ ॥

क्वणत्कच्छपीमञ्जुनादैरमुष्मिन्
मुहुर्व्यञ्जयन्ती रहस्यानि वाचाम् ।
चिराद् भारती भारतीयान् पुनीते
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ २ ॥

कृपापाङ्गपूतः शशाङ्कार्धमौलेः
प्रसिद्धिं गतः प्राक्तनैः पण्डितेन्द्रैः ।
यशोमौक्तिकैर्मण्डयन् दिग्वधूटीः
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ३ ॥

अशेषासु विद्यासु लब्धाधिकारा
धियं यत्र शिष्याः समुद्योतयन्ति ।
कवीन्द्रैरुपास्यः कलामञ्जुलास्यः
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ४ ॥

नवज्ञानविज्ञानविद्याप्रयोगैः
समुद्योतयन्नूतनोन्मेषदेशान् ।
विशेषानशेषासु भाषासु चिन्वन्
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ५ ॥

समुज्जीवयन् बोधिसत्त्वाऽवदान-
प्रदानैर्दिगन्तान् महावीरवाग्भिः ।
किरन् शाङ्करीं वाग्झरीं चित्तभूमौ
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ६ ॥

जगद्वन्द्यविद्वत्प्रणीताननन्तान्
प्रबन्धान् सरस्वत्यलङ्कारहारान् ।
हृदब्जे वहन् भारतज्ञानदीपः
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ७ ॥

इहोदारशास्त्रार्थसम्पूर्णताश्री-
रिह स्यन्दते सूक्तिधारा कवीनाम् ।
इहैव स्थिता भावना भारतीया ।
सदा विश्वविद्यालयोऽयं विभाति ॥ ८ ॥

—:०:—

सम्पादकीय

'विश्वविद्यालय वार्ता' का यह दूसरा अंक है। प्रवेशांक का संस्कृत जगत् में जैसा सम्मान हुआ, उससे स्पष्ट हो गया कि विश्वविद्यालयीय गतिविधियों का परिचय कराने की दिशा में 'विश्वविद्यालय वार्ता' बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। प्रवेशांक एक प्रयोग था, पर उससे प्रोत्साहित होकर अब 'वार्ता' को नियत-कालिक किया जा रहा है। भविष्य में इसका त्रैमासिक प्रकाशन होता रहे, इसके लिये हम प्रयत्नशील रहेंगे।

'वार्ता' का उद्देश्य विश्वविद्यालयीय संगोष्ठियों, समारोहों, आयोजनों और संस्कृत से संबद्ध अन्य क्रियाकलापों के विषय में सूचनाएं देकर संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में सहयोग प्रदान करना है। संस्कृत भाषा और साहित्य भारत के विकास की आधारशिला है। संस्कृत वाङ्मय के चिन्तन की क्रमिक परम्परा ही आगे विकसित होती गई है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय साहित्य ही नहीं, आधुनिक भारतीय साहित्य और चिन्तन भी संस्कृत वाङ्मय से अनुप्राणित है। पिछली कई शताब्दियों से भारत में राजनीतिक उथल-पुथल होती आई है। भारत में जिस जाति का भी पदार्पण हुआ, उसने अपने सांस्कृतिक प्रभाव भी डालने की चेष्टा की। पर भारत का सांस्कृतिक चिन्तन अपनी सत्ता के साथ अप्रभावित रहा। प्राचीन सभ्यता के देश मिश्र, यूनान, रोम आदि अपना अस्तित्व खो बैठे, पर भारत का स्वरूप अक्षुण्ण रहा। इसी की ओर संकेत करते हुए प्रसिद्ध कवि डॉ० इकबाल ने कहा था—

यूनानो, मिश्र, रोमा, सब मिट गए जहाँ से
बाकी मगर है अब तक, नामोनिशां हमारा।

भारत के अस्तित्व की रक्षा संस्कृत ने दृढ़तापूर्वक की है। संस्कृत साहित्य का लक्ष्य सदा मानवतावादी रहा है। संस्कृत वाङ्मय का संदेश है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

इसी मानवतावादी संदेश ने भारत को विश्व में गरिमा प्रदान की और भारत के अस्तित्व को दृढ़ कर दिया। भारत को सांस्कृतिक दृढ़ता, व्यापकता और मानव हित की उच्चतम कल्पना के ही कारण विश्व इस देश के सामने नतमस्तक हुआ। भारत की महत्ता आज भी अक्षुण्ण है और आज भी वह अपने विश्वहित तथा शान्तिवादी मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। अब हम स्वतंत्र हैं और अपने गरिमापूर्ण संदेश का विश्व में भी प्रचार-प्रसार कर सकते हैं। निस्सन्देह 'वार्ता' भी भारत की उसी महत्ता को गतिशील करने का एक सूत्र है। संसार में यह भारत की ही विशेषता है कि उसने सदा सबको 'आत्मवत्' माना—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

संस्कृत के प्रचार-प्रसार की ओर अब देश और सरकारी तंत्र—दोनों का ध्यान समान रूप से जा रहा है। अपने स्वरूप को पहचानने के लिए संस्कृत का प्रचार-प्रसार आवश्यक है। ऐसी स्थिति में उन सभी साधनों की उपयोगिता है, जिनसे संस्कृत को व्यापक क्षितिज मिले।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का स्वरूप अखिल भारतीय ही नहीं, पारम्परिक संस्कृत के पाण्डित्य की रक्षा की दृष्टि से विश्व में अप्रतिम है। ऐसे विद्या केन्द्र से 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रकाशन की संगति स्वयंसिद्ध है। यह प्रसन्नता का विषय है कि 'वार्ता' को कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। सम्पादक मण्डल उनके प्रोत्साहन के लिए आभारी है।

अनेक संस्कृत प्रेमियों, विद्वानों और सहृदय महानुभावों ने 'वार्ता' की प्रशंसा की है और बधाई संदेश भेजे हैं। वे भी आभार भाजन हैं। आशा है, सहृदय महानुभावों, संस्कृतानुरागियों और मनीषियों का सहयोग एवं अभिमत 'विश्वविद्यालय वार्ता' को सदा प्राप्त होता रहेगा। हमारे श्रम और सफलता का मूल्यांकन उन्हीं की सदाशयता पर निर्भर है।

विश्वविद्यालयीय समारोह तथा संगोष्ठियाँ

१६ से १९ अगस्त १९७८

(१) परिसंवाद-गोष्ठी (भारतीय शास्त्रों में समता का स्वर)

पूरे विश्व में आज समता, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र आदि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। भारतीय संविधान में भी इन मूल्यों को आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु भारतीय जन-मानस में तब तक इनकी प्रतिष्ठा असम्भव है, जब तक प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रों के साथ इनका सामंजस्य स्थापित न किया जा सके। इसी लक्ष्य को केन्द्र में रखकर विश्वविद्यालय ने एक चतुर्दिवसीय (१६-१९ अगस्त १९७८) विचारगोष्ठी का आयोजन किया, जिसका विषय था— 'भारतीय शास्त्रों में समता के स्वर'। इसकी कुल चार बैठकें हुईं। प्रथम गोष्ठी में उद्घाटन एवं विषयस्थापन आदि कार्य सम्पन्न हुए। द्वितीय गोष्ठी में विभिन्न भारतीय दर्शनों की दृष्टि से, तृतीय गोष्ठी में पुराण, धर्मशास्त्र तथा प्राचीन राजशास्त्र-अर्थशास्त्र की दृष्टि से तथा चतुर्थ गोष्ठी में योग, तन्त्र एवं विभिन्न साधना-मूलक शास्त्रों की दृष्टि से विचार-विमर्श सम्पन्न हुआ। चारों गोष्ठियों में लगभग १५ विद्वानों ने अपने वैदुष्यपूर्ण निबन्धों का पाठ किया और उन पर अन्य विद्वानों ने पक्ष-विपक्ष में पर्याप्त प्रकाश डाला।

गोष्ठी में डा० हर्षनारायण (का० हि० वि० वि०) का 'भारतीय धर्म-दर्शनों में सामाजिक समता या विषमता' विषय पर निबन्ध पूरे गोष्ठी के दिनों में विद्वानों में पर्याप्त चर्चा का विषय रहा। यह एक तरह से आधारभूत निबन्ध था, जिसमें विद्वान् लेखक ने सामाजिक समता के विषय में ऐतिहासिक क्रम से भारतीय धर्म एवं दर्शनों की आलोचना प्रस्तुत की। वैदिक दर्शनों में समता की दृष्टि से डा० सुब्रह्मण्य शास्त्री एवं प० श्री रघुनाथ शर्मा के निबन्ध महत्त्वपूर्ण थे। प्राच्य-पाश्चात्य दर्शनों की तुलनात्मक दृष्टि से समीक्षा करते हुए डा० संगम लाल पाण्डेय (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी), डा० रघुनाथ गिरि (काशी विद्यापीठ) तथा श्री राधेश्यामधर द्विवेदी (स० सं० वि० वि०) के समताविषयक निबन्ध पर्याप्त प्रभावशाली रहे। डा० गोकुलचन्द्र जैन (का० हि० वि० वि०) तथा श्री अमृतलाल जैन (स० सं० वि० वि०) ने जैन दर्शन की दृष्टि से तथा श्री रामशङ्कर त्रिपाठी (स० सं० वि० वि०) ने बौद्धों की नैरात्म्य दृष्टि पर आधारित समतामूलक दृष्टि पर अपने-अपने निबन्ध प्रस्तुत किये। न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार प० श्री केदारनाथ त्रिपाठी ने समता पर अपने विचार प्रस्तुत किये। समस्त पुराणों का सिंहावलोकन करते हुए डा० रामशङ्कर त्रिपाठी (का०हि०वि०वि०) ने समतामूलक धाराओं का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया। श्री देवीप्रसाद मिश्र ने जैन पुराणों में समता विषय पर अपना शोध-पूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया। 'काश्मीर के अद्वैत शैव तन्त्रों में सामाजिक समता' पर अपना निबन्ध प्रस्तुत करते हुए अभिनव-गुप्त संस्थान, लखनऊ के विद्वान् डा० नवजीवन रस्तोगी ने तान्त्रिक संस्कृति का कालक्रम के आधार पर विश्लेषण करते हुए वर्ण, वर्ग, जाति, लिङ्ग एवं आडम्बरविहीन तान्त्रिक संस्कृति को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समता की स्थापना में पूर्ण सक्षम निरूपित किया। डा० अशोक कुमार कालिया (लखनऊ वि० वि०) ने वैष्णव तन्त्रों की दृष्टि से सामाजिक समता पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया तथा श्री रमागोविन्द पाण्डेय ने प्राचीन राजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की दृष्टि से समता के मूल्य पर विचार प्रस्तुत किये।

विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक डा० टी० आर० वी० मूर्ति ने विशिष्ट अतिथि के रूप में गोष्ठी में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि आमतौर से यह जनप्रसिद्धि है कि सामाजिक समता, स्वतन्त्रता आदि आधुनिक मानवीय मूल्य पाश्चात्य विचारकों की देन हैं। डा० मूर्ति ने कहा कि यह सही है कि भारतीय दर्शनों ने इन विषयों पर सीधे विचार नहीं किया है, उनका प्रधान स्वर आध्यात्मिक समता पर विचार करना रहा है, किन्तु उन आध्यात्मिक मूल्यों को जब जीवन में और आचरणों में अवतरित किया जाता है, तो उससे उपर्युक्त मूल्य समाज में निश्चित रूप से प्रतिफलित होते हैं। डा० मूर्ति ने कहा कि भारतीय दर्शनों ने अध्यात्म के द्वारा जीवन को विकसित करने की विधि का सांगोपांग प्रतिपादन किया है। फलतः सामाजिक समता के विकास में भारतीय दर्शनों का योगदान निःसन्दिग्ध प्रमाणित है।

गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए प्रसिद्ध मनीषी डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विराट् भारतीय संस्कृति के दर्शन, कला,

साहित्य, तन्त्र आदि विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करते हुए आधुनिक अशान्त एवं संत्रस्त विश्व में शान्ति, समता, मानवता आदि मूल्यों की स्थापना में उसके योगदान की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की। उनके विचार से भारतीय संस्कृति में वह सार्वभौम मानवीय क्षमता आज भी विद्यमान है जो आधुनिक विश्व को नवीन प्रकाश प्रदान कर सकती है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि सामाजिक समता पर विचार करते समय हमें सामाजिक विषमता के स्वरूप पर भी विचार करना चाहिये। विषमता भी दो प्रकार की है—(१) प्राकृतिक तथा (२) कृत्रिम। प्राकृतिक विषमता जैसे लिङ्ग की विषमता, रंग की विषमता आदि में हम ज्यादा कुछ नहीं कर सकते, किन्तु छूआछूत, ऊँच-नीच आदि भावना से उत्पन्न विषमता अवश्य कृत्रिम एवं व्यवस्थाजन्य है; इसके निराकरण का अवश्य प्रयास होना चाहिए। श्री शुक्ल जी ने कहा कि भारतीय दर्शन उनके विचार में इस प्रयास में कहीं बाधक नहीं, अपितु साधक हैं।

परिसंवाद-गोष्ठी की विभिन्न बैठकों की कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल, भूतपूर्व कुलपति न्यायमूर्ति श्री बलराम उपाध्याय, डा० विद्यानिवास मिश्र, निदेशक हिन्दी संस्थान, आगरा ने अध्यक्षता की।

प्रारम्भ में विषयस्थापना करते हुए गोष्ठी के संयोजक प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने उसके महत्त्व, उद्देश्य एवं दिशा पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि भारतीय मनीषी विचारों में कभी असहिष्णु नहीं रहे। जीवन के विविध पक्षों का उन्होंने गम्भीर एवं महनीय विश्लेषण किया है। आधुनिक जीवन मूल्यों का भारतीय संस्कृति के सूत्रों के साथ सम्बन्ध जोड़ना आज की ज्वलन्त आवश्यकता है। भारतीय शास्त्रों के विद्वानों को इस दिशा में सम्मिलित प्रयास करना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि शास्त्रों में सारी बातें ज्यों की त्यों मिल जांय। यह भी सही नहीं है कि दीर्घकाल व्यापी भारतीय सांस्कृतिक धारा में सब कुछ अमृतमय ही है, विष कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति मे शास्त्र-चिन्तकों का आज परम कर्तव्य है कि वे अमृतकणों का संचय करें और उसे मानवता के हित में विश्व के समक्ष प्रस्तुत करें। श्री उपाध्याय ने सारी गोष्ठियों का संचालन एवं अन्त में धन्यवाद प्रदान किया।

जयन्तियाँ तथा दिवस

९ अगस्त, १९७८

पतञ्जलि जयन्ती

बुधवार, ९ अगस्त ७८ नागपंचमी के दिन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याख्यान कक्ष में पतञ्जलि जयन्ती समारोह का आयोजन विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस दिवस को इस रूप में आयोजित किये जाने के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि पतञ्जलि महर्षि को आज हम उनकी रचनाओं के कारण याद करते हैं। योग, व्याकरण एवं आयुर्वेद पर उनके कार्य महत्त्वपूर्ण हैं। इस गोष्ठी में चर्चा का विषय 'अथ कः शब्दः' तथा 'सर्वभूत-रुतज्ञानोपायः' रहा।

व्याकरण विभागाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने शब्द के स्वरूप पर अपने विचार प्रकट करते हुए उसकी अर्थ-बोधकता शक्ति का निरूपण किया। यह शक्ति शुद्ध शब्दों में ही होती है तथा स्फोट ही इसके द्वारा अभिव्यक्त होता है। नव्यन्याय विभागाध्यक्ष श्री श्रीराम पाण्डेय ने ध्वनि को ही शब्द मानते हुए स्फोट मानने में गौरव होने का दोष बताया। वेदान्त विभागाध्यक्ष श्री देवस्वरूप मिश्र ने प्रकृतिप्रत्यय निर्मित शब्द में ही अर्थ-बोधकता का निरूपण करते हुए नित्य स्फोटरूपी शब्द मानने में आपत्ति की। डा० त्रिपाठी ने इन आक्षेपों का विद्वत्तापूर्ण ढंग से निराकरण किया। शास्त्रों में उल्लिखित सर्वभूतरुत ज्ञान की सम्भावना पर चर्चा करते हुए श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी ने तांत्रिक दृष्टि से, अनुसंधान संचालक डा० भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी ने योग-शास्त्र की दृष्टि से तथा बौद्धदर्शन विभागाध्यक्ष श्री रामशंकर त्रिपाठी ने बौद्ध दृष्टि से इस विद्या के स्वरूप पर प्रकाश डाला।

सभा के कार्यक्रम के आरम्भ में हस्तलिखित व्याकरण भाष्य एवं चरकसंहिता ग्रन्थों की अति प्राचीन प्रतियों की पूजा कुलपति द्वारा वैदिक रीति से सम्पन्न की गयी। तदुपरान्त सांगीतिक मंगलाचरण तथा प्रज्ञाचक्षु छात्र श्री गिरिधर मिश्र द्वारा महर्षि पतञ्जलि पर स्वरचित संस्कृत कविता का पाठ हुआ।

अन्त में अध्यक्ष महोदय ने उपस्थित विद्वानों, छात्रों, कर्मचारियों एवं शहर के कतिपय: संस्कृतज्ञ अतिथियों को धन्यवाद प्रदान करते हुए सभा के विसर्जन की घोषणा की। इस कार्यक्रम के अनन्तर विश्वविद्यालय प्रांगण में नागपंचमी के अवसर पर छात्रों एवं कर्मचारियों द्वारा आयोजित दंगल समारोह में भी सभी लोगों ने भाग लिया तथा कुलपति ने विजेताओं को पुरस्कार वितरित किया।

१५ अगस्त, १९७८

स्वतंत्रता दिवस

स्वतंत्रता दिवस भारत के लिये बीसवीं शती के मध्यकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आज से तीस वर्ष पहले भारत स्वतंत्र हुआ था और अब यह स्वतंत्रता का महान् दिवस अपने इकतीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। स्वतंत्रता की इकतीसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर विश्वविद्यालय में उल्लास और समारोह के साथ कार्य-क्रम आयोजित हुए। आरम्भ में प्रातः ९ बजे बड़े उत्साहपूर्ण वातावरण में कुलपति श्री० बदरीनाथ शुक्ल ने मुख्यभवन के प्रांगण में ध्वजोत्तोलन किया। राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज पुष्प वर्षा के साथ आकाश में लहरा उठा। इस अवसर पर विश्व-विद्यालय के अध्यापक, छात्र और कर्मचारियों के रूप में समस्त विश्वविद्यालय परिवार उपस्थित था।

छात्रों ने सस्वर सामूहिक ध्वज वन्दना की। संस्कृत की यह ध्वज वन्दना ध्वज की गरिमा का ज्ञान कराने के साथ ही हृदय में राष्ट्रीय चेतना का और अधिक विकास कर रही थी। अनन्तर कुलपति ने प्रदेश के राज्यपाल और विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री गणपतिराव देवजी तपासे तथा मुख्यमन्त्री श्री रामनरेश यादव के उद्बोधनमूलक संदेश पढ़े। कुलपति ने अपने वक्तव्य में संदेश में बताई गई बातों को स्वीकार करने और उसके लक्ष्य को पूरा करने का निर्देश दिया। स्वतंत्रता की महत्ता बताते हुए आपने विद्या के संदर्भ में कहा कि वास्तविक विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे— 'सा विद्या या विमुक्तये।' आपने धार्मिक, साम्प्रदायिक, जातीय आदि भेदों की ओर संकेत करते हुए इनसे मुक्त होने की सलाह दी और प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं और परम्पराओं को आधुनिक जीवन से जोड़कर नये जीवन की रचना पर भी बल दिया।

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर उपस्थित समस्त विश्वविद्यालय परिवार का आपने स्वागत किया।

ध्वजोत्तोलन के बाद शेष विस्तृत कार्यक्रम गाँथिक स्थापत्य से निर्मित विशाल मुख्य भवन के सभागार में हुए, जहाँ कुलपति ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और देश के प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की प्रतिमाओं पर माल्यार्पण किया। तब सस्वर वैदिक मंगलाचरण हुआ। ऋग्वेद के स्वाराज्य सूक्त का मंगलाचरण पाठ श्री श्रीकृष्णदेव ने, यजुर्वेद की राष्ट्रीय प्रार्थना का पाठ श्री युगलकिशोर मिश्र ने, सामवेदीय शान्तिसाम का पाठ श्री सूर्यनारायण मिश्र ने और अथर्ववेद की राष्ट्रीय प्रार्थना 'भूमिस्तुति' का पाठ डा० मनोहरलाल ने किया। अनन्तर संगीत विभाग द्वारा संस्कृत में निबद्ध भारत माता वन्दना 'जयति भारतवर्षवसुन्धरा' का मधुर गायन हुआ।

विश्वविद्यालय में अब तक कुलगीत नहीं था। कुलपति ने कार्यपरिषद् में इस अभाव की ओर संकेत किया था। फलस्वरूप कार्यपरिषद् ने उन्हें ही इस अभाव की पूर्ति के लिये अधिकृत कर दिया। आपने कुलगीत की रचना के लिये विभिन्न विद्वानों का आह्वान किया। विश्वविद्यालय के लिये कुलगीत की रचना तीन विद्वानों ने की—श्री बटुकनाथ शास्त्री, श्री आनन्द झा और श्री अमीरचन्द्र शास्त्री। तीनों कुलगीतों में श्री खिस्ते जी के कुलगीत का सर्वसम्मति से चयन हुआ। कुलपति ने कुलगीत रचना के उपर्युक्त प्रकरण पर प्रकाश डालते हुए प्रोफेसर खिस्ते द्वारा रचित कुलगीत की विशेषताएँ स्पष्ट की और रचनाकार के प्रति उनकी सर्जना के लिये आभार प्रगट किया। फिर संगीत विभाग द्वारा कुलगीत का गायन हुआ।

कुलपति ने राष्ट्रीय चेतना प्रधान स्वतंत्रता दिवस के संदर्भ में अपने वक्तव्य में कहा—'पन्द्रह अगस्त राष्ट्र का महान् पर्व दिन है। स्वतंत्रता के पहले देश में ऐसा कोई दिवस नहीं था। यह दिन राष्ट्र भक्तों के त्याग और बलिदान का फल है। स्वतंत्रता दिवस ने पूरे देश में एकता की भावना पैदा की। आज एकता के सूत्र में बंधे देश पर कोई शत्रु आँख नहीं उठा सकता। स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्रभक्तों का स्मरण करना उचित है, जिनके प्रयास से हम इस महान् उपलब्धि के अधिकारी बने। वक्तव्य में आपने इस अमूल्य स्वतंत्रता को और अधिक सार्थक बनाने के लिए चिन्तन करने पर बल दिया। आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों की नये संदर्भ में व्याख्या करते हुए बताया कि आज के वातावरण में चारों पुरुषार्थ राष्ट्र की चार आकांक्षाओं के रूप में हैं। ये आकांक्षाएँ हैं—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक। राजनीतिक 'स्वतंत्रता' शेष तीनों की प्राप्ति में सहयोगी है। स्वतन्त्रता का तात्पर्य सब के लिये सुख और सुविधाओं की प्राप्ति है। आपने आगे कहा कि वर्तमान में देश अनेक प्रकार के भेदों और स्वार्थपरता से पीड़ित हो रहा है। इसका निराकरण सांस्कृतिक उत्थान अर्थात् धार्मिक, नैतिक और हृदय की आन्तरिक वृत्तियों के विकास से ही सम्भव है। ममता के मम और अहं का इतना विस्तार होना चाहिये कि पूरा विश्व उसकी सीमा में समाविष्ट हो जाय। ममत्व के विस्तार से ही जीवनदृष्टि में परिवर्तन होगा और धर्म, भाषा या विचारों की विषमता मिटेगी। इसी रूप में सांस्कृतिक उत्थान होगा। कुलपति ने आगे कहा कि यह महान् कार्य देश की सांस्कृतिक नगरी वाराणसी में और विशेष रूप से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में ही सम्भव है। आपने जीवन के प्रति शास्त्रीय दृष्टि उद्बुद्ध करने की सम्मति प्रकट की, जिससे राष्ट्र का नया निर्माण हो सके।

कुलपति ने अपने वक्तव्य के अन्त में बताया कि परिचयपत्र केवल छात्रों के लिए ही उपयोगी नहीं है, अध्यापक वर्ग और कर्मचारियों के लिए भी उपयोगी है। नगर के बाहर किसी विशेष परिस्थिति या कठिनाई में परिचयपत्र सहयोगी बन सकता है। आपने कहा कि अब विश्वविद्यालय परिवार के सभी सदस्यों के लिये परिचयपत्र की व्यवस्था की जायगी। आगे आपने गांधी शहीद दिवस को प्रतिवर्ष श्राद्ध दिवस के रूप में मनाने की ओर संकेत करते हुए कहा कि गाँधी जी हमारी श्रद्धा के भाजन हैं। श्राद्ध दिवस के रूप में हम उन्हें सदा स्मरण करते रहेंगे और उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते रहेंगे। अध्यापक, छात्र और कर्मचारी—सभी को एक जुट होकर विश्वविद्यालय के लिए कार्य करने के आग्रह के साथ आपने प्रातःकालीन समारोह का समापन किया।

इस अवसर पर छात्र श्री रामजी शुक्ल ने देशभक्ति पर कव्वाली भी प्रस्तुत की।

काव्य पाठ और अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता

सायंकाल पाँच बजे से संस्कृत काव्य पाठ और अन्त्याक्षरी का ललित कार्यक्रम आयोजित हुआ। इसके संयोजक साहित्य विभाग के अध्यक्ष श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते थे। विश्वविद्यालय के शास्त्री और आचार्य के छात्रों ने सरस काव्यपाठ के द्वारा मधुर और काव्यपूर्ण वातावरण उपस्थित कर दिया। अनन्तर श्री श्रीराम पाण्डेय और पं० कालिका प्रसाद शुक्ल के आरंभ और उत्तर के रूप में संस्कृत अन्त्याक्षरी का आयोजन हुआ। अंत्याक्षरी में शास्त्री और आचार्य के छात्रों ने बड़े उत्साह से भाग लिया और अपने काव्यप्रेम, प्रतिभा और स्मरणशक्ति

संस्कृत-दिवस पर भाषण करते हुए अध्यक्ष आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
एवं कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल

'भारतीय शास्त्रों में समता का स्वर' संगोष्ठी में अध्यक्ष डा० टी० आर० वी० मूर्ति,
कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल एवं श्री रामशंकर त्रिपाठी

संस्कृत-दिवस समारोहं के अवसर पर शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति
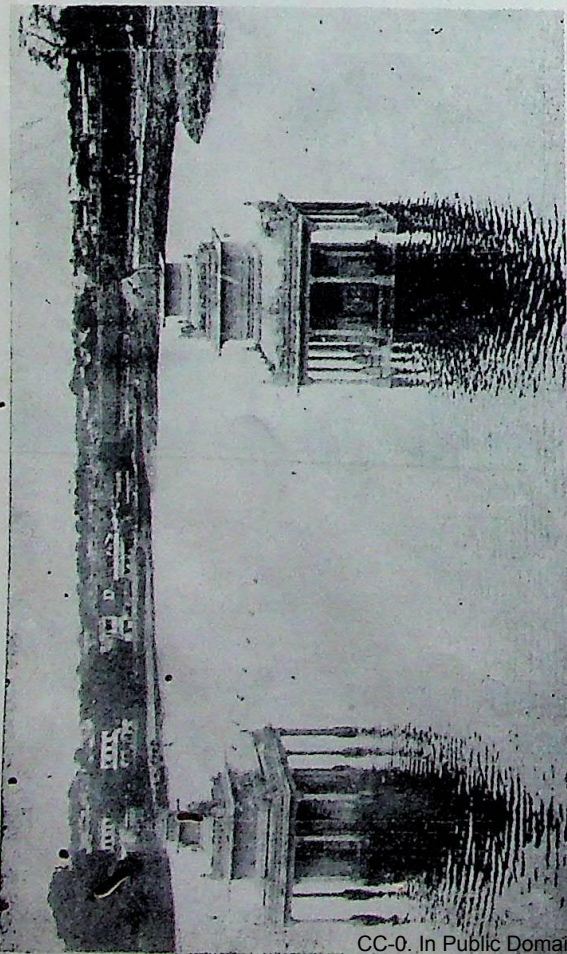
अभूतपूर्व बाढ़ में डूबे हुए विश्व विद्यालय परिसर के दो मन्दिर
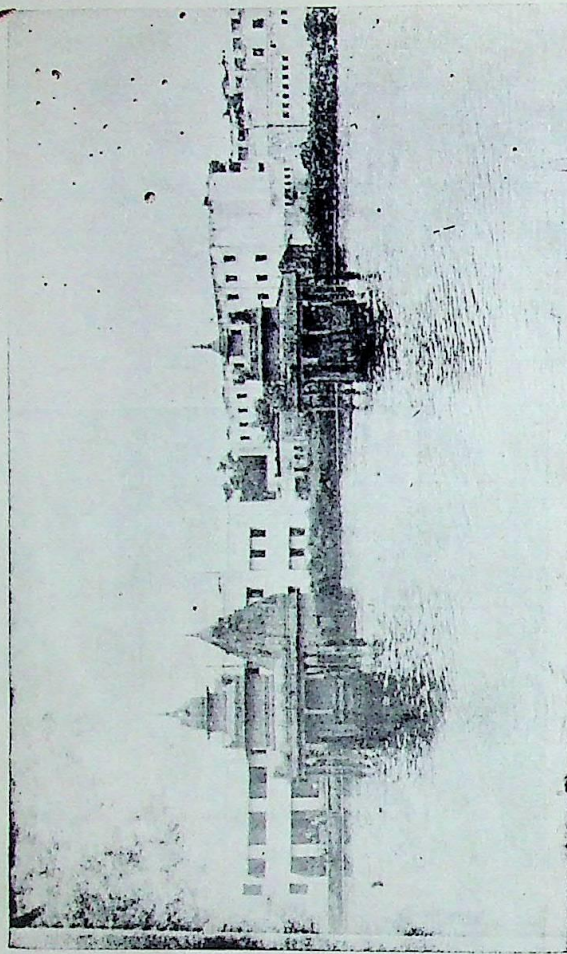
बाढ़-पीड़ितों के शरणस्थल गंगानाथ झा छात्रावास के निकट भयावह बाढ़ का एक दृश्य
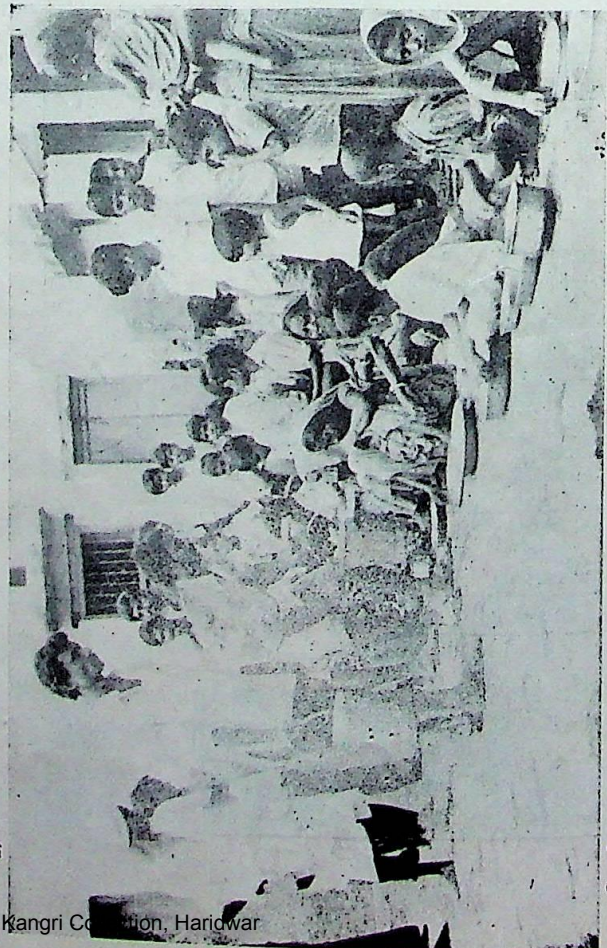
बाढ़-पीड़ित लोगों को भोजन कराते हुए छात्र एवं स्वयं-सेवी-संस्थाओं के कार्यकर्ता
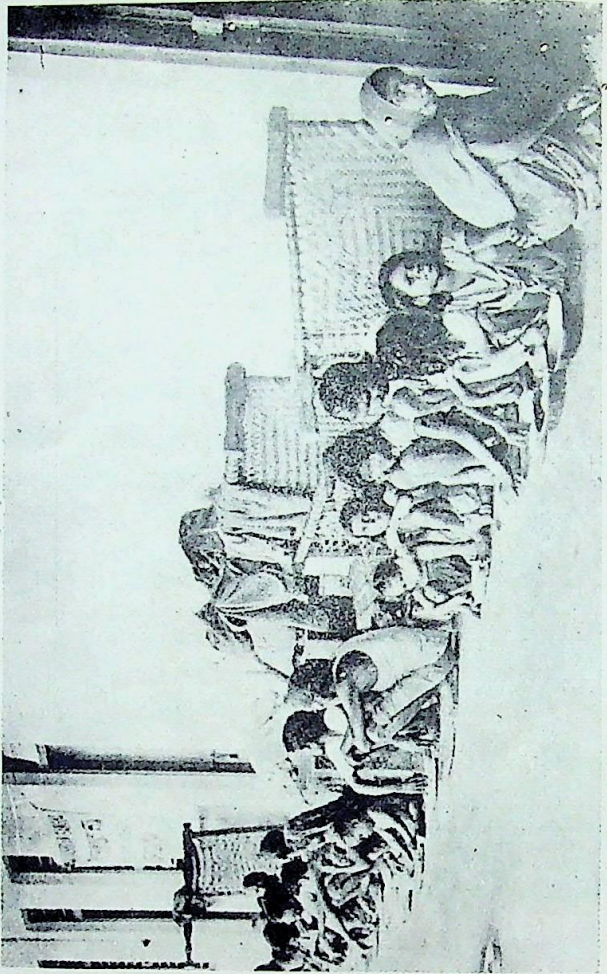
विश्वविद्यालय परिसर में भोजन करते हुए बाढ़-पीड़ित लोग

का परिचय दिया । अन्त्याक्षरी पाठ अत्यंत सरस था । अन्त्याक्षरी के दोनों पक्ष बड़े सबल थे ।

अन्त्याक्षरी और काव्यपाठ के रूप में संस्कृत के अमर काव्यों की महत्त्वपूर्ण आवृत्ति और आश्रवण हुआ । आयोजन के निर्णायक प० कालिकाप्रसाद शुक्ल, श्री श्रीराम पांडेय और श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी थे । काव्यपाठ और अन्त्याक्षरी में निम्नलिखित छात्र पुरस्कृत किये गये—

काव्यपाठ

श्री शिवनारायण मिश्र, शा० द्वि०—प्रथम
श्री ज्ञानचन्द्र अवस्थी, शा० द्वि०—द्वितीय

अन्त्याक्षरी

श्री विष्णुप्रसाद शर्मा, शा० द्वि०—प्रथम
श्री ज्ञानचंद्र अवस्थी, शा० द्वि०—द्वितीय

कुलपति ने काव्यपाठ और अन्त्याक्षरी के आयोजन के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की । उन्होंने ऐसे आयोजन को उपयोगी बताते हुए विजेता छात्रों को बधाई दी । श्री कैलाशपति त्रिपाठी के धन्यवाद के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ ।

१६ से १९ अगस्त १९७८

चतुर्दिवसीय संस्कृत-दिवस समारोह

श्रावणी-उपाकर्म का दिन भारत-सरकार की घोषणा के अनुसार पूरे देश में संस्कृत-दिवस के रूप में मनाया जाता है । इस दिन देश के विभिन्न संस्कृत-शिक्षा-संस्थानों में विद्वान् संस्कृत शिक्षा की स्थिति, उसकी समस्याएँ और समाधानों पर तथा उसकी उपयोगिता एवं प्रचार-प्रसार के उपायों पर विचार-विमर्श करते हैं । काशी प्राचीन काल से ही संस्कृत शिक्षा, संस्कृत-शास्त्रों एवं भारतीय संस्कृति के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र रही है । यहाँ स्थित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है । इस वर्ष १८ अगस्त को संस्कृत-दिवस था । यद्यपि प्रतिवर्ष संस्कृत विश्वविद्यालय में यह दिवस सोत्साह मनाया जाता है, किन्तु इस वर्ष विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल की प्रेरणा और दिशानिर्देशन तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत-अकादमी के आर्थिक सहयोग से इस दिवस के उपलक्ष्य में एक चतुर्दिवसीय कार्यक्रम निश्चित किया गया । श्री जगन्नाथ उपाध्याय, अध्यक्ष पालिविभाग इसके प्रमुख संयोजक थे । विश्वविद्यालय के समस्त विभागों, काशी की समस्त शिक्षा संस्थाओं तथा बाहर के बहुसंख्यक संस्कृत-विद्वानों और संस्कृतानुरागियों का इसकी सफलता में पूर्ण सहयोग रहा । १६ अगस्त से १९ अगस्त तक चार प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किये गये, यथा—(१) 'भारतीय शास्त्रों में समता के स्वर' विषय पर अखिल भारतीय विद्वानों की एक चतुर्दिवसीय परिसंवाद गोष्ठी, (२) शास्त्रीय संस्कृत संगीत एवं संस्कृत कवि सम्मेलन, (३) वेद शाखा-स्वाध्याय एवं (४) संस्कृत-दिवस सभा ।

चतुर्दिवसीय गोष्ठी का विवरण पहले ही अलग से प्रस्तुत किया गया है ।

संस्कृत शास्त्रीय संगीत

१६-८-७८ को सन्ध्या सात बजे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के रीडर श्री बलवन्त राय तथा उनके सहयोगियों ने संस्कृत शास्त्रीय सगीत प्रस्तुत किया । कु० कृष्णा बनर्जी ने 'जयति सुरभारती' तथा श्री विद्युत् सान्याल ने 'देवीं वाचम्' को बहुत ही रमणीय रीति से प्रस्तुत किया ।

इस कार्यक्रम की यह विशेषता थी कि वह विशुद्ध शास्त्रीय होता हुआ भी संगीत की शास्त्रीय पारिभाषिकताओं से अपरिचित लोगों के लिये भी आह्लादक था । श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते के धन्यवाद-ज्ञापन के बाद यह कार्यक्रम समाप्त हुआ ।

संस्कृत कवि सम्मेलन

१६-८-७८ को सायं संगीत कार्यक्रम के अनन्तर ८ बजे से रात्रि १ बजे तक संस्कृत कवि सम्मेलन का कार्यक्रम चला । इसमें वाराणसी के अतिरिक्त उज्जैन, लखनऊ, प्रयाग, आरा, दरभंगा आदि के भी कवियों ने भाग लिया ।

कवि सम्मेलन की अध्यक्षता श्री कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० आनन्द झा ने की और संचालन का कार्य श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने किया ।

इस कवि सम्मेलन की विशेषता थी कि एक ही मञ्च पर संस्कृत की प्राचीनतम परम्परा से लेकर आधुनिकतम प्रवृत्ति तक के लोगों की कविताएं सुनने को मिलीं । पं० आनन्द झा ने दण्डक से मंगलाचरण किया । अधिकांश कवियों की रचनाएं पूर्व निर्धारित 'चन्द्रः प्रवालप्रभः' तथा 'भासां विलासः' इन दो समस्याओं से सम्बद्ध थीं ।

प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, प० आनन्द झा एवं प० रामचन्द्र मिश्र की कविताएँ पदशय्या, कल्पना और स्वर की दृष्टि से प्राचीन परिपाटी की एक सप्राण झलक दे रही थीं । प० नवरङ्ग चतुर्वेदी जी की कविता वैष्णव परम्परा का प्रतिनिधित्व करती थी । प० रतिनाथ झा, डा० जगन्नाथ पाठक, डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, प० गोविन्द पाण्डेय, डा० कपिलदेव पाण्डेय, डा० परमहंस मिश्र,

डा० जनार्दन गंगाधर रटाटे एवं प० इन्द्रदेव द्विवेदी की सुमधुर कविताएँ प्राकृत परिवेष में आधुनिकता का ईषदुन्मीलन प्रस्तुत करती थीं। प० श्री मनुदेव भट्टाचार्य की पदसंघटना ने एक अतिरिक्त रमणीयता प्रस्तुत की। डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी की कविता ने विश्वविद्यालयं परिषदों तथा कवि सम्मेलनों की गतिविधियों पर बहुत अच्छी टिप्पणी की। डा० कैलासपति त्रिपाठी की कविता की पदशय्या प्राचीन थी, किन्तु कल्पना आधुनिकता से पूर्णतः संसिक्त थी।

श्री श्रीनिवास रथ (उज्जैन), डा० राजेन्द्र मिश्र (प्रयाग) डा० रामनाथ पाठक प्रणयी (आरा) तथा श्री रमेश मिश्र की कविताएं शिल्प और प्रयोग दोनों दृष्टियों से नवीन थीं। इन कवियों के मोहक कण्ठ ने समस्त विशाल कक्ष को मुग्ध कर दिया।

एक ही मञ्च पर प्राचीन और नवीन विचारों का सामरिक दृश्य तब दिखायी पड़ा, जब डा० वीरभद्र मिश्र (लखनऊ) ने प्राचीन भारतीय व्यवस्था पर रोष प्रकट करते हुए अपनी कविता पढ़ी—'इयं व्यवस्था नैव चलिष्यति, नैव चलिष्यति, नैव चलिष्यति' और इसके विपरीत प्राचीन व्यवस्था के समर्थन में प० श्रीशिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी कविता पढ़ी—'नवा व्यवस्था नैव चलिष्यति, नैव चलिष्यति, नैव चलिष्यति'।

कुछ कवियों की रचनाओं से ऐसा लगा कि अब संस्कृत कविता भी दूसरी भाषाओं की तरह शास्त्रीय सीमाओं को लांघ कर उन्मुक्त विहरण करना चाहती है। उसके इस विहार में स्वैरिता के अप्रिय आचार के साथ कुछ सशक्त जीवन की झलक भी मिली।

अन्त में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने पाँच घंटों तक चलनेवाले संस्कृत कवि सम्मेलन के श्रोताओं के धैर्य और तल्लीनता पर विस्मय भरा सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा कि इस कवि सम्मेलन ने संस्कृत के समस्त शुभचिन्तकों को यह विश्वास दिला दिया है कि ऐसे आयोजन संस्कृत की प्रगति के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। अन्त में श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने आगत अतिथियों और श्रोताओं के प्रति सविनय कृतज्ञता व्यक्त की।

वेद शाखा-स्वाध्याय

१८-८-७८ को संस्कृत दिवस के उपलक्ष में वेद शाखा-स्वाध्याय का आयोजन किया गया। इसकी उपयोगिता की चर्चा करते हुए वेदविभागाध्यक्ष श्री गोपालचन्द्र मिश्र ने कहा—चारों वेदों की ११३१ शाखाओं में से १३ शाखाओं के संहिता ग्रन्थ लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध हैं। इनमें भी अध्ययन-अध्यापन में छः शाखाएं हीं सुरक्षित हैं। परम्परागत अध्येताओं के अभाव में इनके अध्ययन-अध्यापन के भी लोप होने का भय उपस्थित हो गया है, अतः इनकी सुरक्षा होनी चाहिये, जिससे वेदों का विभिन्न विकृतियों सहित पाठ सुरक्षित रह सके।

तत्पश्चात् परम्परागत उच्चारण की शैली में छः शाखाओं का पाठ प्रारम्भ हुआ, जिनमें ऋग्वेद मन्त्रों का शाकल एवं शाङ्खायन कुल के वेदपाठी आचार्यों ने प्रकृति पाठ के साथ विकृति पाठों का भी उच्चारण किया। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनीय शाखा के विद्वानों ने पञ्चसन्धियुक्त घन-माला का विकृति पाठ किया। इसी प्रकार कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय एवं शुक्ल-यजुर्वेद की काण्व शाखा का भी पाठ सम्पन्न हुआ। अन्त में सामवेद का गायन तथा अथर्ववेद की शौनक शाखा के संहिता और ब्राह्मणभाग के अंशों का पाठ हुआ। पाठ करने वाले २० परम्परागत वेदपाठी थे।

अन्त में वेदों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए श्री कुलपति ने कहा—आज के युग में वेदों की सुरक्षा की बहुत बड़ी समस्या है। यन्त्र तथा टेप से परम्परा की सुरक्षा नहीं हो सकती। इससे लोगों में जिज्ञासा उत्पन्न करायी जा सकती है। इसके लिये विश्वविद्यालय परिसर में प्रातःकाल वेदों के टेप से प्रातः प्रसारण की व्यवस्था की जायेगी, ताकि विद्यार्थी इनके अध्ययन की ओर उन्मुख हो सके। उन्होंने सरकार से भी वेदों के अध्ययन-अध्यापन की सुरक्षा के लिये अपील की।

संस्कृत-दिवस सभा

१८-८-७८ को ही सायंकाल संस्कृत-दिवस सभा का भी आयोजन किया गया, जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये हुए विद्वानों ने भाग लिया। वक्ताओं में प्रमुख थे श्री वासुदेव द्विवेदी, श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी, डा० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी, श्री लक्ष्मण त्रिवेदी तथा श्री रघुनाथ मिश्र। संस्कृत अकादमी के निदेशक श्री विश्वनाथ शर्मा ने कहा—संस्कृत के प्रसार के लिये सरकार सहयोग दे रही है, परंतु सरकारी सहयोग मात्र से किसी भाषा का प्रसार सम्भव नहीं है, जब तक कि उस भाषा के पढ़ने-लिखने वाले लोग खुद उसके प्रचार-प्रसार के लिए न जुट जांय। काशी के लोग इस काम में अग्रणी होकर संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार करें, इसी दृष्टि से अकादमी ने संस्कृत विश्वविद्यालय को संस्कृत दिवस मनाने के लिये चुना। उन्होंने बृहत् स्तर पर आयोजन सम्पन्न करने के लिये विश्वविद्यालय के अधिकारियों को धन्यवाद दिया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने कहा—संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की दो परम्पराएँ विकसित हैं—एक परम्परागत पद्धति से चलने वाली पाठशालाओं की

अध्यापन-व्यवस्था, दूसरी सामान्य शिक्षा में निहित संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था। इनका आपस में समन्वय होना चाहिये। इनका आपसी समन्वय किस प्रकार से हो इसके लिये एक वृहद् गोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। जिसके लिये संस्कृत अकादमी ने अनुदान भी दिया है। पर संस्कृत का विकास तथा इसके प्रौढ़ पाण्डित्य की रक्षा बिना परम्परागत पद्धति को कायम रखे नहीं की जा सकती। अतः संस्कृत के प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व परम्परागत शिक्षा पद्धति पर अधिक है। अतः हम लोगों को इसके प्रचार-प्रसार के लिये कटिबद्ध होना चाहिये।

उन्होंने कहा—विदेशों में भारतीय संस्कृति से लोगों को परिचित कराने के लिये भारतीय राजदूतों को भी संस्कृत से परिचित होना चाहिये। संस्कृत विश्वविद्यालय इस सन्दर्भ में सरकार से पत्र व्यवहार चला रहा है। हम चाहते हैं कि यहाँ एक इस प्रकार का पाठ्यक्रम तैयार किया जाय, जिसमें भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी जाय और उसे ग्रहण करके भारतीय राजदूत विदेशी मामलों की देख-रेख का काम सम्पन्न करें।

अन्त में इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये संस्कृत अकादमी के आर्थिक अनुदान के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए गोष्ठी के संयोजक प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने कहा—यह अच्छा मौका था, जब कि यहाँ संस्कृत दिवस के बहाने भारतीय समाज में समता के विचार, संस्कृत के कवित्व एवं गायन के कार्यक्रम के साथ-साथ वैदिक शाखाओं के पाठ का भी आयोजन किया गया। इससे संस्कृत विश्वविद्यालय के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट होगा तथा हम शास्त्रीय आधार पर सामाजिक विषमताओं को दूर करने में सहयोग प्रदान कर सकेंगे। साथ ही प्राचीन शास्त्रीय गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।

संस्कृत दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित इन विभिन्न कार्यक्रमों में शास्त्रीय संस्कृत संगीत एवं संस्कृत कवि-सम्मेलन का आयोजन विश्वविद्यालय के साहित्यविभागाध्यक्ष प० श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते एवं डा० कैलाशपति त्रिपाठी के संयोजकत्व में सम्पन्न हुआ। वेद शाखा-स्वाध्याय का संयोजन वेदविभागाध्यक्ष डा० गोपालचन्द्र मिश्र ने किया। शेष परिसंवाद गोष्ठी और संस्कृत-दिवस सभा का संयोजन धर्मदर्शन-संस्कृति समिति के संयोजक प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय एवं सह-संयोजक श्री रामशंकर त्रिपाठी एवं श्री राधेश्यामधर द्विवेदी ने किया।

पाठशालाओं में संस्कृत-दिवस समारोह

[कुलपति महोदय के १ अगस्त १९७८, के प्रेरणाप्रद पत्र को पाकर पूरे उत्तर प्रदेश के विभिन्न संस्कृत महाविद्यालयों में संस्कृत दिवस मनाया गया। जिन विद्यालयों ने अपने यहाँ इस दिवस को समारोह-पूर्वक मनाने की सूचना भेजी, उनकी नामावली यहाँ दी जा रही है।]

१. श्री दैवी सम्पद् आदर्श ब्रह्मचर्य महाविद्यालय, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर।
२. ,, व्याकरणतत्त्वप्रकाशिका संस्कृत पाठशाला, सांडी, हरदोई।
३. ,, मद्दयानन्दार्ष गुरुकुल, नगला, फटीला, एटा।
४. ,, १००८ स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती संस्कृत महाविद्यालय, पत्रालय वैरागना, चमोली, उ० प्र०।
५. ,, द्वारिकेश संस्कृत महाविद्यालय, मथुरा।
६. श्रीमती गंगादेवी त्रिपाठी संस्कृत महाविद्यालय, ग्रा० व पो० इन्द्रौली, सीतापुर।
७. श्री वैकुण्ठनाथ पवहारि संस्कृत महाविद्यालय, वैकुण्ठपुर, देवरिया।
८. श्रीमती भागीरथी ट्रस्ट आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर।
९. श्रीराधाकृष्ण आदर्श संस्कृतविद्यालय, सुखपुरा, बलिया।
१०. शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रींवा।
११. आर्य महाविद्यालय, किरठल (मेरठ)
१२. श्री त्रिदण्डिदेव संस्कृत महाविद्यालय, कोशलेन्द्र सदन, कटरा, अयोध्या, फैजाबाद।
१३. ,, सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय, रूपईडीहा, बहराइच।
१४. ,, त्रिल्बेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ।

१५. श्री बी० एन० मेहता संस्कृत महाविद्यालय, प्रतापगढ़ ।
१६. ,, साङ्गवेद विद्यालय, गुरुकुल, नौनेर, मैनपुरी ।
१७. ,, भारती भवन संस्कृत पाठशाला, सरैया राजे, सुल्तानपुर, फैजाबाद ।
१८. ,, शारदा संस्कृत विद्यालय, लखनऊ ।
१९. ,, आदर्श श्रीकण्ठ संस्कृत महाविद्यालय, फतेहपुर ।
२०. ,, महेश्वराश्रम संस्कृत विद्यालय, हरियावाँ, हरदोई ।
२१. ,, सांगवेद महाविद्यालय, हनुमानगढ़ी, आजमगढ़ ।
२२. ,, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, भितरी, सीधी, म० प्र० ।
२३. ,, धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय, अलीगढ़ ।
२४. ,, श्री रूपकला संस्कृत विद्यापीठ, अयोध्या, फैजाबाद ।
२५. ,, भगवान्दास सं० म० वि० प्राचीन अवधूत मण्डलाश्रम, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।
२६. ,, आदर्श श्रीसद् विद्यालय, बाजीगंज, मल्लावां, हरदोई ।
२७. ,, रामकृपालु संस्कृत महाविद्यालय, पूरेमुरली, अमावां, प्रतापगढ़ ।
२८. ,, बलवन्त आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, दुगवा, पूरा, फैजाबाद ।
२९. ,; भारतीय शिक्षा सुधार समिति, जनपद, आगरा ।
३०. ,, हयग्रीव रामानुज सं० म० वि०, बड़ा खटला, वृन्दावन, मथुरा ।
३१. ,, सीताराम जयराम ऐंग्लो सं० आ० सं० म० वि०, सुमेरपुर, उन्नाव ।
३२. ,, रघुवर संस्कृत विद्यालय, लखनउवा मन्दिर, स्वर्गद्वार, अयोध्या ।
३३. ,, छन्नपाल संस्कृत विद्यालय, राजातारा, अमावां, प्रतापगढ़ ।
३४. ,, मथुरादास रामकुमार सं० पा०, ५८।२२, नाचघर, कानपुर ।
३५. ,, दुर्गाजी संस्कृत महाविद्यालय, चण्डेश्वर, आजमगढ़ ।
३६. ,, ब्रह्मकर्मवर्द्धिनी संस्कृत पाठशाला, इतवारी, नागपुर ।
३७. ,, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी ।
३८. ,, लक्ष्मण संस्कृत महाविद्यालय, ९८ झण्डा मोहल्ला, देहरादून ।
३९. ,, शिवप्रसाद पाण्डेय संस्कृत पाठशाला, कलेक्टरगंज, उन्नाव ।
४०. ,, एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी ।
४१. ,, रामेश्वर झारखण्ड संस्कृत महाविद्यालय, पूरेचौहान, रायबरेली ।
४२. ,, संस्कृत पाठशाला, संडवा चण्डिका, प्रतापगढ़ ।
४३. ,, सद्धर्म विवर्धिनी संस्कृत पाठशाला, अयोध्या, फैजाबा ।
४४. ,, भक्तिसंस्कृत विद्यालय, वृन्दावन, मथुरा ।
४५. ,, ओंकारेश्वर संस्कृत विद्यालय, मैनपुरी ।
४६. ,, विद्याधर्मवर्द्धिनी संस्कृत पाठशाला, सुल्तानपुर ।
४७. ,, ब्रह्मदेव जाह्नवी संस्कृतादर्श महाविद्यालय, एटा ।
४८. ,, फूल संस्कृत विद्यालय, अलीगढ़ ।
४९. ,, कामेश्वर संस्कृत पाठशाला हाथरस ।
५०. ,, वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, कचौरा, अलीगढ़ ।
५१. ,, सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय, एटा ।
५२. ,. धर्म गुरुकुल महाविद्यालय, सिरफागंज, मैनपुरी ।
५३. ,, माथुर चतुर्वेद संस्कृत महाविद्यालय, मथुरा ।
५४. ,, श्री संस्कृत महाविद्यालय, सुल्तानपुर ।
५५. ,, श्री आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, जालौन ।

२० अगस्त, १९७८

साहित्य अकादमी के सम्मान में आयोजित संस्कृत काव्य-गोष्ठी

दिनांक २०-८-७८ को सायं ४ बजे साहित्य अकादमी नयी दिल्ली की संस्कृत परामर्शदात्री समिति के सदस्यों के सम्मान में विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में एक संस्कृत काव्य-गोष्ठी आयोजित हुई, जिसमें कुल १३ कवियों ने भाग लिया।

काशी विद्यापीठ में अंग्रेजी विभाग के प्राध्यापक प० उमाशंकर त्रिपाठी की संस्कृत कविता पर्याप्त आकर्षक रही। श्री वासुदेव द्विवेदी, प० रतिनाथ झा, आचार्य वटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, डा० गोपालचन्द्र मिश्र, डा० कैलासपति त्रिपाठी, प० वायुनन्दन पाण्डेय, प० शिवजी उपाध्याय, प० गोविन्द पाण्डेय, डा० परमहंस मिश्र, डा० कपिलदेव पाण्डेय आदि के काव्यपाठ के अनन्तर साहित्य अकादमी के सम्मान्य सदस्य एवं नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० वर्णेकर ने वाराणसेय संस्कृत कवियों की प्रशंसा की तथा सम्प्रति सस्कृत कविता की स्थिति पर प्रकाश डाला और स्वनिर्मित कतिपय रचनाओं का सुस्वर पाठ किया। आचार्य खिस्ते के धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

२६ अगस्त, १९७८

श्रीकृष्णजन्माष्टमी महोत्सव

विश्वविद्यालय में इस महोत्सव का आयोजन अत्यन्त उत्साह-पूर्ण वातावरण में दिनाङ्क २६-८-७८ को हुआ। यतिचक्रचूड़ामणि समस्तशास्त्रवेत्ता अनन्तश्रीविभूषित श्री हरिहरानन्द सरस्वती (स्वामी श्री करपात्री जी महाराज) ने अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की इस जयन्ती के शुभ अवसर पर प्रवचन देने की अनुकम्पा की थी। महोत्सव का आयोजन मुख्यभवन के सभाकक्ष में हुआ था, जहाँ भगवान् की दिव्य झाँकी सजायी गयी थी। इसका संयोजन छात्रसंघ के अध्यक्ष श्री भुवनेश कुमार उपाध्याय ने किया था।

परमपूज्य स्वामी जी के सभाकक्ष में पदार्पण करते ही समस्त वातावरण 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो.....' आदि घोषों से गूँज उठा। प्रारम्भ में छात्रसंकायाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र, प्राचीनव्याकरणागम एवं दर्शन विभागाध्यक्ष आचार्य डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी तथा छात्रनेता श्री विजयशङ्कर पाण्डेय ने पूज्य स्वामी जी को माल्यार्पण किया और स्वागत करते हुए डा० देवस्वरूप मिश्र ने कहा कि पूज्य-चरणों की कृपा इस विश्वविद्यालय पर सदा ही रही है और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के इस पावन जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर पधार कर अपनी वाणी से आप्यापित करने का उनका अनुग्रह सदा ही प्राप्त होता है।

कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने भगवान् श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित का व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस विश्वविद्यालय का परम सौभाग्य है कि पूज्य स्वामी जी की पीयूषवर्षिणी वाणी द्वारा भगवान् के दिव्य चरित के श्रवण का शुभ अवसर इसे प्राप्त होता है और उन्होंने उनसे प्रवचन करने की प्रार्थना की।

पूज्य स्वामी जी ने कहा कि अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की जयन्ती मनाना इस विश्वविद्यालय की परम्परा है। अध्यात्म की दृष्टि से श्रीकृष्ण सर्वान्तिरात्मा भगवान् हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट ग्रन्थ 'गीता' का अखिल विश्व में सम्मान है। महाभारत द्वारा उनका उच्चतम स्थान प्रतिपादित है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्', कलाओं के पूर्णावतार श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। उनके दिव्य मङ्गलमय विग्रह का गाम्भीर्य अपार है। किसी में इसे ग्रहण करने का सामर्थ्य नहीं है। श्यामघन से विलक्षण इन घनश्याम में अनन्तकोटि विद्युतों की सम्मिलित द्युति को तिरस्कृत करने वाली कौशेयाम्बरदीप्ति है। श्यामघन के समान जीवनदाता होते हुए मनमोहन प्रेमामृत, आनन्दामृत की वर्षा करते हैं। हृच्छयाग्नि से दह्यमान होने के कारण व्रजाङ्गनाओं को श्यामघन की आवश्यकता थी। वेणुनिनाद से प्रेमबीज का वपन हुआ, पुलकावलि-रूप से वह अङ्कुरित हुआ, पर हृच्छयाग्नि से वह जलने लगा; अश्रुधाराएँ बहकर जब उसे सिञ्चित करने लगीं, तो उस उष्ण जलधारा से हृदय को वह शान्ति कहाँ से मिलती? इसलिए उन्होंने जीवन-प्राप्ति के लिए इस नूतन नील जलधर श्याम की शरण ली। यही अचिन्त्य सौन्दर्य सुधानिधि है, जिसका केवल एक कण अनन्तकोटिब्रह्माण्ड में विस्तीर्ण है और अखिल ब्रह्माण्ड के सारातिसार सौन्दर्य का परमोद्गम-स्थान यही है। ऐसा इसलिए है कि वे ब्रह्मस्वरूप हैं।

वेदान्त के अनुसार ब्रह्म स्वयंप्रकाश है। सूर्य की भाँति यहाँ किसी दूसरे प्रकाश की अपेक्षा नहीं है; किन्तु जीव को विजातीय प्रकाश की अपेक्षा होती है, आँख तथा मन इत्यादि न हो तो पता न लगे। ब्रह्मज्ञान सजातीय तथा विजातीय सर्वप्रकाश निरपेक्ष होता है। श्रुति कहती है—'यत् साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म' अर्थात् जो साक्षाद् अपरोक्ष हो, वृत्ति के द्वारा नहीं। स्वयं प्रमाता अपनी प्रमिति के लिए प्रमाण नहीं ढूँढ़ता। दूसरे आत्माओं का ज्ञान हमें अनुमानादि के द्वारा प्राप्त होता है, किन्तु परब्रह्म का नहीं। इस प्रकार परब्रह्म-आत्मा का इन्द्रियों से साक्षात्कार नहीं हो सकता, इसीलिए इसे स्वयंप्रकाश कहा गया है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म के अवतार हैं। अवतार के सम्बन्ध में ऐसी भी शङ्का उठायी जाती है कि यदि किसी एक विशिष्ट आकार को भगवान् का नित्य स्वरूप माना जाय तो उस आकार को निर्विकार मानना होगा; किसी साकार को नित्य कहना ठीक नहीं है, अतः व्यावहारिक जगत् में विभिन्न दैहिक आकारों में भगवान् के अवतार को मानने में कठिनाई है। कैसे यह माना जाय कि भगवान् अपने नित्य तथा अच्युत स्वरूप का कभी-कभी परित्याग करते हैं और जन्म एवं मृत्यु के अधीन नये-नये आकारों को ग्रहण किया करते हैं। इसे भी मानने में कठिनाई है कि अपने नित्य रूप के साथ ही भगवान् का जगत् में अवतरण होता है। परन्तु विचार करने पर ये शङ्काएँ निर्मूल सिद्ध होती हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं और वे एक रूप अथवा अनेक रूप से एक काल अथवा भिन्न-भिन्न कालों में प्रवृत्त हो सकते हैं। वास्तव में उनका जो आविर्भाव और तिरोभाव है, उसे ही अज्ञ लोग उत्पत्ति और नाश मान लेते हैं। यद्यपि भगवान् के शरीर में किसी प्रकार का विकार नहीं माना जा सकता, किन्तु मायावी के अङ्गों में माया के अनेक विकारों के स्फुरण की भाँति भगवान् में भी ऐसी कल्पना करने में कोई बाधा नहीं है। उनका स्वाभाविक पारमार्थिक स्वरूप निराकार एवं निर्विकार है, परन्तु अनन्तब्रह्माण्डोत्पादिनी अनिर्वचनीय महाशक्ति के योग से वे सगुण, साकार, एकरूप अथवा अनेकरूप प्रतीत होते हैं। यह '**अजायमानो बहुधा व्यजायत**', '**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते**' (अर्थात् 'परमात्मा अज होकर भी अनेक रूप से जायमान होता है, 'इन्द्र—परमात्मा—माया से अनेक रूप होकर प्रतीत होता है') आदि श्रुतियों से भी सिद्ध है। परमेश्वर का पारमार्थिक रूप अज, अव्यक्त, अनन्त, अनाकार एवं पूर्ण होने पर भी अनिर्वचनीय माया से उसमें साकारता तथा अपूर्णता की प्रतीति होती है। वास्तविकता यह है कि वे अपने पारमार्थिक रूप में सदा ही प्रतिष्ठित रहते हैं। पारमार्थिक एवं व्यावहारिक सत्ता के भेद से साकारता, निराकारता, अनन्तता और एकदेशिता का सामञ्जस्य हो सकता है।

श्रीमद्भागवत आदि में अधिष्ठानप्रधान ब्रह्मरूप को ही कृष्ण, राम माना गया है। 'एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः' इत्यादि वचन भगवान् को पुराणपुरुषोत्तम, सत्य एवं स्वयंज्योति प्रतिपादित करते हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान् के स्वरूप मायातीत, अनन्त एवं सच्चिदानन्दमय कहे गये हैं। श्री शङ्कराचार्य जी की स्पष्टोक्ति है :—

> **'ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्**
> **गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः।**
> **शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्त्तित्रयात्**
> **कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा' ।।**

अर्थात् जिसने ब्रह्मा को अद्भुत, अनन्त ब्रह्माण्ड दिखलाया और वत्सों सहित गोपों को अनेक विष्णु रूप में दिखलाया, शिव ने जिसके चरणोदक को अपने सिर पर रखा, वह कृष्ण मूर्त्तित्रयातीत कोई अविकृत चिदानन्दघन ब्रह्म ही है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार अघासुर के मुख में कृष्ण का प्रवेश शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का ही प्रवेश है। बछड़ों तथा ग्वाल-बालों के उसके मुख में प्रवेश करने पर कृपामय भगवान् आनन्दकन्द कृष्णचन्द्र भी उसके मुख में प्रविष्ट हुए और अपनी महिमा से अघासुर का वध करके अमृतवर्षिणी कृपादृष्टि से ग्वाल-बालों को जीवित किया। उसी समय अघासुर के शरीर से एक ज्योति निकली और कृष्ण के स्वरूप में विलीन हो गयी। जब परीक्षित ने यह कथा सुनी तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि पाप-पुञ्ज-प्रतीक अघासुर को ऐसी दुर्लभ गति क्यों प्राप्त हुई। इसका उत्तर भी वहीं भागवत में ही है—

> **'सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता**
> **मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।**
> **स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-**
> **व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः' ।।**

अर्थात् जिनके श्रीअङ्ग की मङ्गलमयी मानसी प्रतिमा को सौभाग्यशाली लोग एक बार भी हृदय में रखकर भागवती गति को पा जाते हैं, तो माया से असंस्पृष्ट, नित्य, चिदानन्दात्मा वे भगवान् ही जिसके अन्दर प्रविष्ट हो गये, फिर उसे भागवती गति प्राप्त कर लेने में क्या आश्चर्य है? अतएव प्रभु के प्रादुर्भाव का प्रयोजन भी धर्मग्लानि-अधर्माभ्युत्थान-निवृत्तिपूर्वक धर्मस्थापन, साधुपरित्राण तथा दुष्कृतिविनाश के अतिरिक्त अमलात्मा परमहंसों को भक्ति-योग-विधान करना है। इस प्रकार प्रकृत-प्राकृत-प्रपञ्चातीत शुद्ध परब्रह्म ने ही दिव्य लीलाशक्ति के योग से सगुण तथा सच्चिदानन्दरूप कृष्ण-स्वरूप में प्रकट होकर योगीन्द्रों एवं मुनीन्द्रों के निर्मल मनों को आकृष्ट किया। निर्गुण ब्रह्मानुभवी योगियों का चित्त भी इस सगुण तथा साकार स्वरूप पर मुग्ध हो जाता है।

इससे यही स्पष्ट होता है शुद्ध परब्रह्म ही निराकार होते हुए भी सगुण और साकार रूप में प्रकट होता है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

> **'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतः प्रभोः।**
> **अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।।**
> **कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।**
> **नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते' ।।**

अर्थात् 'प्राणिमात्र के कल्याणार्थ अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, गुणान्तरात्मा भगवान् का साकार स्वरूप में प्राकट्य होता है। इस स्वरूप में काम, क्रोध, स्नेह, किसी भी प्रकार से चित्त को लगाने से प्राणी का कल्याण हो जाता है'।

पूज्य स्वामी जी ने कहा कि इस सगुण स्वरूप का चिन्तन सरल, सुगम, श्यामीभूत ब्रह्म है। श्यामस्वरूप श्रीकृष्णरूप का वर्णन करते हुए अद्वैतसिद्धिकार श्री मधुसूदन सरस्वती का उन्होंने उल्लेख किया कि 'जो लोग निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म की उपासना ध्यानाभ्यासवशीकृत मन से करते हैं वे करें, पर मेरे लोचन-चमत्कार के लिए तो वही तत्त्व प्रस्फुरित हो, जो कालिन्दी-पुलिन में श्याम तेज के रूप में है'। किन्हीं भावुकों ने व्रजाङ्गनाओं के पुञ्जीभूत प्रेम को ही कृष्ण माना है, तो किन्हीं ने, 'भागधेयं यदूनाम्', यदुओं के मूर्तीभूत भागधेय को ही कृष्ण स्वीकार किया है; श्रोत्रियों ने श्रुतियों के गुप्त वित्त को ही श्यामीभूत ब्रह्म, कृष्ण माना है। किसी का कथन है कि सच्चिदानन्द-रससार-सरोवर से ही इस कृष्णकुवलय का प्राकट्य हुआ है। यह ऐसा कुवलय है कि भक्तमनोमिलिन्दों ने अभी तक इसका आघ्राण ही नहीं किया। इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि यद्यपि वे अनादि काल से ही उस कृष्ण के सौन्दर्य-कुवलयमधु का पान कर रहे हैं, तथापि उन्हें प्रतिदिन, प्रतिक्षण उसमें नवीनता का ही स्फुरण होता है। इसी तरह कवीन्द्ररूप अनिलों ने अभी तक इस कुवलय के यशःसौरभ का अपहरण नहीं किया, अर्थात् उन्हें भी नवीनता की ही है स्फूर्ति होती है। ऊर्मिकणभरों अर्थात् सांसारिक षड् ऊर्मियों से यह कुवलय आहत नहीं हुआ। देवकी ने मुक्त मुनीन्द्रों का अन्वेष्टव्य एक अद्‌भुत फल उत्पन्न किया, व्रजेन्द्रगेहिनी नन्दरानी ने उसे पाला, श्रीव्रजसीमन्तिनियों ने उस फल का अनुभव किया आदि।

भगवान् के अवतार ग्रहण करने के अनेक प्रयोजन बताये गये हैं। उनमें गीता में श्रीमुख से कहे गये प्रयोजन सर्वविदित ही हैं। कुन्ती महारानी ने इस सम्बन्ध में कहा है :—

'तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः' ॥

अर्थात् परमहंसों के प्रत्यक्चैतन्याभिन्न विशुद्ध ब्रह्म के अपरोक्ष साक्षात्कार को भक्तियोग द्वारा सरस एवं सुशोभित बनाकर उन्हें श्रीपरमहंस बनाने के लिए आपका प्रादुर्भाव होता है। वेदान्तवेद्य, अदृश्य, अग्राह्य भगवान् अपनी अचिन्त्य दिव्य-लीला शक्ति से परम मनोहर, सगुण, साकार, सच्चिदानन्दघन रूप में व्यक्त होकर अमलात्मा परमहंसों के भजनीय बनकर उनके भक्तियोग के विधायक बनते हैं। तुलसीदास जी ने प्रभु के अवतार-प्रयोजन के बारे में कहा है—

'इदमित्थं कहि जात न सोई।
हरि अवतार हेतु जेहि होई' ॥

इस सन्दर्भ में श्री शुकदेव जी ने कहा है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतः प्रभो।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥

अर्थात् अव्यय, अप्रमेय, निराकार, निर्विकार, निर्गुण एवं गुणागार भगवान् अनन्तकोटिकन्दर्पमदमोचन श्रीकृष्णचन्द्र की परमानन्दकन्दरूप में अभिव्यक्ति जनसाधारण के कल्याणार्थ होती है। जो विशुद्ध सच्चिदानन्द की अनुभूति कर चुके हैं वे तो स्वयं निःश्रेयसरूप ही हैं; परन्तु जिनकी यह स्थिति नहीं है, उनके निःश्रेयसार्थ भगवान् का प्राकट्य श्रीकृष्णरूप में हुआ है। उनकी भक्ति से ही यह सम्भव हो पाता है। ईश्वर वही है जो सभी प्राणियों के अनुराग का आस्पद हो और ईश्वर में परमानुराग ही भक्ति है ('सा परानुरक्तिरीश्वरे')। भक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि द्रवीभूत मन की सगुण साकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्माकाराकारित मानसी वृत्ति भक्ति है और द्रवानपेक्ष मन की निर्विकार परब्रह्माकार मानसी वृत्ति ज्ञान है। जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह सागर की ओर दौड़ता है उसी प्रकार सर्वगुहाशयी भगवान् में निर्मल मन की वृत्तिसन्तति ही भक्ति है। यह दिव्यमणि कही जाती है, क्योंकि यहाँ मायाकृत उपद्रव व्यर्थ हो जाते हैं। जब भक्त भगवान् की शरण में जाता है तो उनमें आत्मसमर्पण करके वह अत्यन्त निर्भय हो जाता है।

भक्ति 'आनुकूल्येन' अथवा 'प्रातिकूल्येन' इन दोनों प्रकार की होती है। कंस की भक्ति 'प्रातिकूल्येन' थी। 'आनुकूल्येन' में ज्ञानी को दृष्ट फल प्राप्त होता है और 'प्रातिकूल्येन' में अदृष्टफल, क्योंकि रजोगुण तथा तमोगुण के कारण वहाँ अनुभूति नहीं होती। साधारण भक्त को दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार भक्ति में प्राणिमात्र का अधिकार है। भगवत्‌चिन्तन खण्डनीय अथवा मण्डनीय इन दोनों विधियों से हो सकता है। अतः भक्ति की दृष्टि से विचार करने पर 'नास्तिक' भी ईश्वर-चिन्तन करता है। वह या तो यह मानता है कि 'ईश्वर है ही नहीं' अथवा 'ईश्वर दुष्ट है' इस प्रकार की उसकी भावना होती है। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा भगवत्‌चिन्तन खण्डनीय विधि से होता है। सूक्ष्मता से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आस्तिक तथा नास्तिक दोनों ही प्रभु के चिन्तन में दिन रात लगे रहते हैं। आस्तिकों की तो बात ही अलग है, किन्तु नास्तिक को प्रभु के खण्डन की चिन्ता बराबर घेरे रहती है और जिन्होंने भगवान् को शत्रुरूप में स्वीकार किया है वे भी क्रोध, द्वेष तथा भय के वशीभूत होकर उनके चिन्तन में निमग्न रहते हैं। भगवान् का क्रोध भी वरदानतुल्य है—'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः'। जो मुक्ति अरु-

लात्मा महामुनीन्द्रों को पर्याप्त साधना के पश्चात् प्राप्त होती है उसे असुरों ने क्रोध में वरदानस्वरूप आसानी से प्राप्त कर लिया।

भगवान् में अकारण करुणा विद्यमान है; तभी तो श्री उदयनाचार्य कहते हैं :—

'इत्येवं श्रुतिनीतिसम्प्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः ।
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः' ।।

अर्थात् इस प्रकार ईश्वरसिद्धि के विरोधी शब्दप्रमाण एवं अनुमानप्रमाण इन दोनों को निरस्त करनेवाले युक्तिरूपी जल के द्वारा जिन (नास्तिकों के हृदय) के मालिन्य मेरे द्वारा बारम्बार प्रक्षालित किये गये हैं (अर्थात्—बार-बार अनेक युक्तियों से मैंने प्रभु के अस्तित्व को समझाने का प्रयास किया है); फिर भी यदि उनके हृदय में आपका निवास नहीं होता है तो यही मानना पड़ेगा कि उनका हृदय पत्थर अथवा लोहे का बना हुआ है। किन्तु ये भी विरुद्धविधि द्वारा आपके उच्च चिन्तक हैं। अतः मेरी प्रार्थना है कि समय आने पर हे करुणानिधान, आप ही उन्हें अपने विषय की उच्च चिन्ताशीलता प्रदान करें; अर्थात् आप ही उनके चित्त को ऐसा स्वच्छ कर दें कि आपके यथार्थ स्वरूप का उन्हें प्रतिभास हो सके।

इन सभी दृष्टियों से अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक नटवर नटनागर मदनमोहन ही अशरण की शरण हैं और इनका सान्निध्य प्राप्त करना सर्वजीव का कर्त्तव्य है। श्रीकृष्णजन्माष्टमी का यह पवित्र पर्व इसी उद्देश्य की ओर हमें उन्मुख करता है।

इस प्रकार परमपूज्य स्वामी जी ने ब्रह्मतत्त्व, अवतारवाद, भक्ति तथा ज्ञान तत्त्वों पर सम्यक् प्रकाश डालते हुए श्रीकृष्णतत्त्व को स्पष्ट किया।

कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी ने आदरणीय स्वामी जी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हुए सभी के प्रति धन्यवाद प्रकाशन किया।

अन्त में सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत एवं लोकगीतों का प्रस्तुतीकरण हुआ। छात्रसंघ के सांस्कृतिक मन्त्री श्री वीरेन्द्र उपाध्याय तथा श्रीमती राजेश्वरी द्वारा श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव से सम्बन्धित भोजपुरी लोकगीत प्रस्तुत हुए, जिनकी श्रोताओं ने प्रशंसा की।

उपस्थित सभी श्रोताओं को छात्रों ने प्रसाद वितरित किया।

६ सितम्बर, १९७८

शिक्षक दिवस

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः' ।

जीवन निर्माण के लिए अपने बड़ों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण है। चरित्र मानव का सबसे बड़ा गुण है। मानव और पशु में अन्तर चरित्र का ही होता है। मानव और पशु की अनेक वृत्तियाँ समान होती हैं, पर चरित्र मानव में होता है, पशु में नहीं—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।

ये विचार हैं दर्शन विभागाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी के, जो उन्होंनेविश्वविद्यालय में आयोजित शिक्षक दिवस के अवसर पर अध्यक्ष पद से व्यक्त किये। आपने आगे कहा कि धर्मतत्त्व वेदों के अध्ययन से प्राप्त होता है। आज की शिक्षा चरित्र निर्माण में सहायक नहीं है। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि आत्म-निरीक्षण की शक्ति पैदा हो जाय। आपके विचार से शिक्षा को आजीविका में भी सहयोगी होना चाहिए और शिक्षा से प्राचीन आदर्शों का संपोषण भी होना चाहिए।

श्री बदरीनाथ शुक्ल ने शिक्षा को क्रान्ति का वाहक बताया। आपने कहा—मानव विकास के लिये क्रान्ति और शान्ति दोनों की ही अपेक्षा है। क्रान्ति साधन है, शान्ति साध्य है। शैक्षिक क्रान्ति से शान्ति प्राप्त होनी चाहिए। क्रियाहीनता निःसंशय ही मृत्यु है। अतः जीवन के विकास के लिये क्रान्ति आवश्यक है, किन्तु क्रान्ति का अर्थ उच्छृङ्खलता संस्कृतिहीनता और गुरुजनों का असम्मान नहीं है। क्रान्ति आत्मनियन्त्रणमूलक होनी चाहिए और शिक्षा द्वारा क्रान्ति का नियमन होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य अनुशासन है। शुक्लजी ने आगे बताया कि संप्रति प्राचीन आदर्शों पर मनन होना चाहिए तथा विश्वविद्यालयों में छात्रों को राष्ट्रोपयोगी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। संस्कृत वाङ्मय मे इतिहास, भूगोल आदि विषयों का भी पर्याप्त सन्निवेश है, जिसके अनुसंधान की आवश्यकता है। भारत में जैसी संस्कृत-शिक्षा-परम्परा है, वैसी विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है। इस परम्परा की रक्षा पर बल देते हुए आपने व्यक्त किया कि यदि यह परम्परा किसी कारण नष्ट हुई तो उसको पुनरुज्जीवित करना असंभव हो जायगा। आपके विचार से शिक्षा द्वारा चरित्र का निर्माण अवश्य होना चाहिए।

शिक्षा शास्त्र विभाग के आचार्य देवेन्द्रदत्त तिवारी ने वर्तमान समय में शिक्षकों के प्रति सामाजिक निष्ठा के अभाव के

प्रति दुःख प्रकट किया। भारत में शिक्षा जगत् में व्याप्त समस्याओं पर विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि शिक्षा सम्बन्धी समस्याएँ सम्पूर्ण विश्व में हैं और संसार के अनेक शिक्षा शास्त्री वर्तमान शिक्षा को अनुपयोगी मानने लगे हैं। आपके विचार से तकनीकी विकास ने शिक्षकों के महत्त्व को कम कर दिया है। जैसे शिक्षक द्वारा प्रदत्त ज्ञान ध्वन्यांकित (टेप) किया जा सकता है और शिक्षक की आवश्यकता समाप्त की जा सकती है। आज विश्व के सभी देश शिक्षा के व्यय को भी कम करना चाहते हैं। श्री तिवारी ने आगे कहा कि वर्तमान भारतीय शिक्षा विदेश का अनुकरण है और विदेश के आविष्कारों के अनुसार यहाँ के पाठ्यक्रम में परिवर्तन होता रहता है।

शिक्षा शास्त्री तिवारीजी वास्तविक शिक्षा उसे मानते हैं जो व्यापक जीवन की परिचायक होती है। आपने पाठ्यक्रम परिवर्तन का सुझाव दिया और उसे शिक्षा में क्रान्ति या सही परिवर्तन का माध्यम माना। अध्यापक का स्वरूप और जीवन ऐसा हो कि उसे छात्रों से सम्मान प्राप्त हो सके।

वेदान्त विभागाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र ने भी शिक्षकों के प्रति उपेक्षा पर दुःख प्रकट किया और प्रमाण देकर बताया कि प्राचीन काल में ऐसी स्थिति नहीं थी। शिक्षा समाज और शिक्षक के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर है।

व्याकरण विभागाध्यक्ष डा० कालिकाप्रसाद शुक्ल ने कहा—शिक्षा की समस्या आजीविका और आदर्शों के पालन की है। आपने शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण और सामाजिक उपेक्षा के प्रति दुःख व्यक्त किया। शिक्षा को आपने मुक्तिदायक—'सा विद्या या विमुक्तये' माना। शिक्षकों को चाहिए कि वे प्रतिभा के अनुकूल छात्र का पूर्ण विकास करें, जैसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विकास किया था। आपके विचार से शिक्षक राष्ट्र निर्माता भी है और ध्वंसक भी। वास्तविक राष्ट्र सेवी शिक्षक ही होता है और वही वास्तविक शास्त्रीयता का ज्ञान कराता है। आपने शिक्षा के प्राचीन आदर्श को आज के समय के साथ समन्वित करने की आवश्यकता स्पष्ट की और कहा कि शिक्षक ही चरित्र निर्माण करता है।

श्री रामशंकर त्रिपाठी के विचार से शिक्षा मानव को मानव का वास्तविक रूप प्रदान करती है। आपने बताया कि आज 'मानव' का अभाव है—जाति, सम्प्रदाय आदि की संकीर्णताओं के परिणाम-स्वरूप सम्प्रति 'मानव' लुप्त हो गया है। विचारधाराओं के संघर्ष ने मानव की स्थिति और भी जटिल कर दी है। शिक्षा जिज्ञासा पैदा करती है और अज्ञात का ज्ञान कराती है।

आरम्भ में आयोजन के संचालक श्री शम्भुनाथ मिश्र ने शिक्षक दिवस के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बताया कि डा० राधाकृष्णन् के जन्मदिन को ही शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है और सन् १९६१ में पहला शिक्षक-दिवस मनाया गया था। शिक्षकों की सामाजिक उपेक्षा पर आपने भी दुःख प्रकट किया और दार्शनिक डा० राधाकृष्णन् के संदर्भ में प्लेटो का यह मत व्यक्त किया कि शासन कार्य दार्शनिकों को ही चलाना चाहिए। शिक्षकों को समाज और शासन, दोनों ओर से सम्मान प्राप्त होना चाहिए। विदेशों में शिक्षा की अच्छी व्यवस्था की चर्चा करते हुए आपने अध्यापकों के हित के लिए अध्यापक कल्याण कोष के गठन की आवश्यकता स्पष्ट की।

आयोजन का आरम्भ सांगीतिक मंगलाचरण से हुआ। अनन्तर राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और केन्द्रीय शिक्षा मंत्री के संदेश पढ़े गये। कार्यक्रम की समाप्ति पर श्री गोपालजी मिश्र ने धन्यवाद दिया।

२ अक्टूबर, १९७८

गांधी जयन्ती

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की १०९वीं जयन्ती में अध्यक्षपद से भाषण देते हुए विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि इस वर्ष गांधी जयन्ती के पुनीत दिवस पर आरम्भ किये गये अन्त्योदय कार्यक्रम को साकार रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि जीवन-स्तर को पतनोन्मुख करने वाली कुप्रवृत्तियों का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन किया जाय।

श्री शुक्ल ने प्रमुख गांधीवादी आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए यह बताया कि मद्यनिषेध द्वारा देश के सामान्य नागरिकों के जीवन-स्तर को उच्च बनाने में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। हमारे जीवन-स्तर के ह्रास में मद्यपान जैसी कुप्रवृत्तियों का विशेष हाथ रहा है। अन्त्योदय की सफलता के लिए मद्यनिषेध पर बल देना अत्यन्त आवश्यक है।

विद्वान् वक्ता ने आगे कहा कि भारत ने सदैव ही मनीषियों एवं महात्माओं का समादर किया है। महात्मा गांधी के आदर्श भारतीय शास्त्रों के अनुकूल हैं। आज की विषम स्थिति में भी गांधीवाद हमारी समस्त समस्याओं का सुन्दर समाधान प्रस्तुत कर सकता है। बापू के प्रति देशवासियों की अटूट श्रद्धा का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि कतिपय दिग्भ्रान्त व्यक्ति अपने क्षुद्र स्वार्थ से प्रेरित होकर समय-समय पर राष्ट्रपिता द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से विमुख हो जाया करते हैं।

विश्वविद्यालय परिवार को सम्बोधित करते हुए कुलपति ने कहा कि कर्त्तव्य-पालन के महान् प्रयोग से ही हम गांधी जी के उच्च आदर्शों को साकार स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। कर्त्तव्य-

पालन द्वारा एक ऐसा आन्तरिक बल प्राप्त होगा, जिससे हम कठिन से कठिन परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए विजयश्री प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगे।

गांधी जयन्ती के पुनीत अवसर पर कुलपति ने विश्वविद्यालय में प्रौढ़ शिक्षा के शुभारम्भ की घोषणा की और अपनी यह इच्छा भी व्यक्त की कि विश्वविद्यालय का शिक्षाशास्त्र विभाग केवल निरक्षरों को साक्षर बनाकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री न समझ ले, बल्कि उनके नैतिक स्तर को भी उच्च बना कर देश का भविष्य उज्ज्वल बनावे, जिससे हमारा राष्ट्र सुदृढ़ हो और सहकारिता की भावना जागृत हो सके।

पालि विभागाध्यक्ष प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने महात्मा गांधी को राष्ट्र को देन और उनके प्रयोगों की समीक्षा करते हुए यह बताया कि आज देश गांधी विचारधारा की विपरीत दिशा में जा रहा है। उन्होंने कहा कि वह राजनीति राजनीति नहीं है, जो धर्म से सम्बन्धित न हो। धर्म के अनुसार ईश्वर ही सत्य है, जब कि गांधी जी के अनुसार सत्य ही ईश्वर है। श्री उपाध्याय ने अन्त्योदय के विकास पर बल दिया।

विश्वविद्यालय के सम्मानित प्राध्यापक श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री ने कहा कि महात्मा गांधी ने ही हमें परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त किया। वे परम देश भक्त थे। मीमांसकों के अनुसार देश कल्याण के लिए देश सेवा आवश्यक है। श्री शास्त्री ने आगे इस बात पर बल दिया कि यदि शास्त्रों की मर्यादा रखते हुए हम सब वर्गों को साथ लेकर आगे बढ़ें, तो देश का विकास अवश्यम्भावी है।

राजशास्त्र विभागाध्यक्ष श्री शम्भुनाथ मिश्र ने अपने व्याख्यान में इस विडम्बना का उल्लेख किया कि महात्मा गांधी के आदर्शों और सिद्धान्तों का विदेशों में तो अनुकरण किया जा रहा है, परन्तु अपने ही देश में हम उससे बहुत कम लाभ उठा रहे हैं। गांधी के नाम पर विगत ३० वर्षों तक इस देश में शासन करने वाले कर्णधारों ने तो इन आदर्शों की घोर उपेक्षा की। हमारे राष्ट्र के वर्तमान कर्णधारों ने सत्तारूढ़ होते ही गांधी के स्वप्नों को साकार करने का व्रत, उनकी समाधि के पास शपथ ग्रहण कर लिया था, परन्तु उस दिशा में उनकी उपलब्धि अभी नगण्य है। श्री मिश्र ने इस बात पर विशेष बल दिया कि गांधीवाद ही भारतीय भूमि के लिये सर्वथा उपयुक्त दर्शन है।

पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी ने विभिन्न वक्ताओं के वक्तव्यों की समीक्षा प्रस्तुत की और यह कहा कि देश गांधीवादी मार्ग पर नहीं चल रहा है, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि देश में अनेक लोग उनके सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखते हैं। श्री तिवारी ने सभा के समक्ष यह समस्या प्रस्तुत की कि क्या गांधीवादी आदर्शों एवं सिद्धान्तों की उपेक्षा के लिए केवल शासन ही दोषी है? उन्होंने कहा कि गांधी जी के सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले लोगों को आगे आना चाहिये और रचनात्मक कार्यों द्वारा देश को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिये। कर्मचारियों की ओर से श्री सुरेशचन्द्र शर्मा ने राष्ट्रपिता के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

इस समारोह में दो छात्रों सर्वश्री सुभाषचन्द्र तिवारी तथा पारसनाथ मिश्र (मंत्री छात्रसंघ) ने भी अपने विचार व्यक्त किये। श्री तिवारी ने आर्थिक स्तर के साथ नैतिक स्तर के उन्नयन पर भी बल दिया। द्वितीय छात्र वक्ता श्री पारसनाथ मिश्र ने विध्वंसात्मक कार्यों से विरत होकर रचनात्मक कार्यों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देने के लिये छात्र समुदाय का आह्वान किया। श्री मिश्र ने विश्वविद्यालय के अधिकारियों से यह अनुरोध किया कि वे छात्रों को स्वावलम्बी बनाने के लिये यथेष्ट अवसर प्रदान करें। श्री वीरेन्द्र कुमार उपाध्याय ने ग्रामोत्थान-सम्बन्धी अपने काव्य-पाठ द्वारा सभी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् कुलपति द्वारा महात्मा गांधी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया गया। विश्वविद्यालय के संगीत विभाग ने गांधी जी की प्रिय रामधुन प्रस्तुत की। अन्त में राष्ट्रगान के साथ समारोह सम्पन्न हुआ। समारोह का आयोजन मुख्य भवन में विगत २ अक्टूबर १९७८ को हुआ था।

२९ अक्तूबर, १९७८

धन्वन्तरि जयन्ती

दिनाङ्क २९-१०-७८ को प्रातः ८ बजे विश्वविद्यालय स्थित 'स्वास्थ्य केन्द्र' में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह आयोजित किया गया। आरम्भ में वैदिक, पौराणिक एवं सांगीतिक मंगलाचरण एवं वैदिक रीति से भगवान् धन्वन्तरि की आराधना की गई। मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज के भूतपूर्व प्रधानाचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने इस दिवस के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इसे हम आदिकाल से स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाते रहे हैं। किन्तु कालान्तर में उधर से लोगों का ध्यान हट गया और इसे दीपावली के रूप में मनाया जाने लगा। आपने बताया कि इस संसार में जो कुछ भी है, वह रसमय है। आपने कहा कि उपनिषदों में भी "रसो वै सः" का उल्लेख मिलता है। आपने यह भी कहा कि मनुष्य स्वस्थ रहकर अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा कर सकता है। आयुर्वेद के मर्मज्ञ श्री धन्वन्तरि ने जल के महत्त्व को बहुत अधिक बताया है। वर्तमान संक्रामक रोगों की रोकथाम के उपायों पर प्रकाश डालते

हुए आपने कहा कि इसके लिये हमें विदेशों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। केवल तुलसीदल और ब्राह्मी के क्वाथजल का यदि नियमित सेवन किया जाय तो इस रोग से हम बच सकते हैं। संस्कृत विश्वविद्यालय इस आयुर्वेद शास्त्र की उन्नति के लिये उचित स्थान है। आज के दिन इस प्रकार के ज्ञान में वृद्धि होने से हम धन्वन्तरि जयन्ती को सार्थक समझते हैं और आयोजकों को इसके लिए बधाई देते हैं।

स्वास्थ्य केन्द्र के आयुर्वेद चिकित्साधिकारी श्री जोशी ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया। श्री जेतली ने नाड़ी विज्ञान पर प्रकाश डाला और आयुर्वेद कालेज के प्रधानाचार्य श्री वागीश्वर शुक्ल ने इस दिवस के महत्त्व पर प्रकाश डाला। छात्रकल्याण-संकायाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र ने मुख्य अतिथि को एवं अन्य उपस्थित सदस्यों को धन्यवाद प्रदान करते हुए कहा कि स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर से ही अच्छे कार्य सम्पन्न होते हैं। अतः हमारे पूर्वजों ने जो उपाय बताये हैं, उनका अनुकरण करते हुए अपने को निरोग रखकर देश की सेवा करना है। सभा के पश्चात् प्रसाद वितरण किया गया।

१३ नवम्बर, १९७८

संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस

यूनेस्को क्लब तथा विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १३ नवम्बर, १९७८ को मुख्य भवन में प्राचीन व्याकरण विभागाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस सोत्साह मनाया गया। समारोह में विश्वविद्यालय के छात्र, कर्मचारी, अध्यापक तथा अधिकारी सम्मिलित हुए थे।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने विश्व की वर्तमान समस्याओं के समाधान में राष्ट्रसंघ की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विश्व के समस्त राष्ट्रों को संघ के उच्च आदर्शों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में सक्रिय योगदान देना चाहिए। वर्तमान समय में अन्ताराष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा, सहयोग तथा सौहार्द के लिये सशक्त राष्ट्रसंघ की आवश्यकता पर दो मत नहीं हो सकते।

डा० त्रिपाठी ने आगे बताया कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अध्यात्मवाद से ही वास्तविक और स्थायी शान्ति प्राप्त हो सकती है। आज के भौतिकवाद पर अध्यात्मवाद ही अंकुश लगाने में पूर्ण रूपेण सक्षम है।

अर्थशास्त्र विभाग की प्राध्यापिका श्रीमती इला तपादार ने कहा कि प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं तथा व्यापक जनसंहार से त्रस्त होकर 'लीग आफ नेशन्स' (राष्ट्रसंघ) की स्थापना की गयी थी। संघटन जनित कतिपय दुर्बलताओं के फलस्वरूप लीग विफल रही और द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ हो जाने पर विश्व की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अन्त हो गया। श्रीमती तपादार ने आगे बताया कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भयंकर विनाश हुआ। इसमें अणु बम का भी प्रयोग किया गया, जिसके कुप्रभावों से नागासाकी तथा हिरोशिमा के निवासी आज भी पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाए हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध द्वारा की गयी धन-जन-क्षति, संहार तथा विनाश की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक पक्ष की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हुए श्रीमती तपादार ने कहा कि संयुक्त राष्ट्र संघ अविकसित राष्ट्रों के विकास के लिये अद्वितीय कार्य कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की महत्ता का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि विदेशी व्यापार को यह कोष पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान कर रहा है। इस कोष की सहायता से आयात-निर्यात की व्यवस्था के अतिरिक्त अविकसित राष्ट्रों के लिये विदेशी मुद्रा का भी प्रबन्ध किया जाता है। अन्त में उन्होंने शिशु कल्याण की दिशा में राष्ट्रसंघ द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर प्रकाश डाला।

यूनेस्को क्लब के संचालक तथा राजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री शम्भुनाथ मिश्र ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के इतिहास, जन्म, उद्देश्य तथा कार्यों पर प्रकाश डालते हुए इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का परिचय दिया। युद्ध और शान्ति शाश्वत हैं। दार्शनिक हीगल ने तो चारित्रिक उत्थान के लिए युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

श्री मिश्र ने आगे कहा कि राष्ट्रसंघ के मूल सदस्य केवल ५१ थे। आज संघ की सदस्यता १५० तक पहुँच चुकी है। सदस्यों की संख्या में तीन गुनी वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रसंघ में विश्व के दो प्रधान गुटों के बीच शक्ति-सन्तुलन के निमित्त गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के एक तृतीय गुट का शक्तिशाली संघटन हो चुका है। राष्ट्रसंघ की सफलता की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि इस विश्व संस्था को राजनीतिक क्षेत्र की अपेक्षा अराजनीतिक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। राष्ट्रसंघ की कार्य क्षमता को और अधिक विकसित करने के लिए श्री मिश्र ने दो सुझाव प्रस्तुत किए। विश्व-शान्ति तथा सुरक्षा एवं राष्ट्रसंघ की अर्थ व्यवस्था के लिए बड़े राष्ट्रों पर निर्भरता को समाप्त किया जाय। उनका द्वितीय सुझाव यह था कि महासभा में विभिन्न राष्ट्रों के पांचों प्रतिनिधि वहां के शासन द्वारा मनोनीत न किये जांय, बल्कि देश की सम्पूर्ण जनता द्वारा उनका निर्वाचन हो।

प्राचीन राजशास्त्र-अर्थशास्त्र विभाग के प्राध्यापक श्री रमागोविन्द पाण्डेय ने कहा कि विश्व की दोनों अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (लीग तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ) के उद्देश्य थे—शान्ति, सुरक्षा, मैत्री और सहयोग। प्राचीन भारतीय राजशास्त्र में इन उद्देश्यों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारतीय राजनीति में सर्वत्र समभावना का वर्णन है तथा समस्त प्राणियों के सुख एवं कल्याण की कामना की गयी है। श्री पाण्डेय ने बताया कि भारतीय राजनीति के आदर्शों को अपना कर संयुक्त राष्ट्रसंघ और अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

व्याकरण विभागाध्यक्ष डा० कालिकाप्रसाद शुक्ल के मतानुसार राष्ट्रसंघ को अपने जन्म के अनन्तर विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच होने वाले लगभग १०० के ऊपर युद्धों को रोकने में सकलता नहीं मिली। बड़े राष्ट्रों की पारस्परिक स्पर्द्धा के कारण ही इन युद्धों का जन्म होता है। बड़े राष्ट्रों की दो भूमिकाएँ हैं—राष्ट्रसंघ में तो वे शान्ति की बात करते हैं, परन्तु राष्ट्रसंघ के बाहर उनकी महत्त्वाकांक्षाए युद्धों को जन्म देती हैं।

डा० शुक्ल ने उन युद्धों का समर्थन किया, जो अन्याय, अत्याचार या पापों के निर्मूलन के लिये किये जाते हैं और इस सन्दर्भ में उन्होंने राम-रावण युद्ध तथा महाभारत युद्ध का उदाहरण दिया, जिनके नायकों में ईश्वरत्व की भावना कर समस्त हिन्दू जाति ने उन्हें आदर्श ही नहीं, बल्कि पूज्य भी माना है। विद्वान् वक्ता ने आगे कहा कि प्राचीन काल में होने वाले युद्धों के अपने नियम थे और दोनों पक्ष बड़ी ईमानदारी के साथ उन नियमों का पालन करते थे। वर्तमान युग में युद्धों के नियमों का घोर उल्लंघन किया जाता है।

समारोह के प्रारम्भ में वेद विभाग के छात्र श्री देवेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने वैदिक मंगलाचरण, संगीत विभाग ने पौराणिक तथा श्री वीरेन्द्र कुमार उपाध्याय ने सांगीतिक मंगलाचरण प्रस्तुत किया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की ३३वीं वर्षगांठ २४ अक्टूबर, १९७८ को थी। शारदावकाश के कारण उस समय इस समारोह का आयोजन नहीं हो सका। विश्वविद्यालय खुलने पर १३ नवम्बर को इस दिवस का आयोजन किया गया।

अन्त में समारोह के संयोजक श्री शम्भुनाथ मिश्र ने धन्यवाद प्रदान किया और सामूहिक राष्ट्रगान के साथ संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस सभा का समापन हुआ।

विभागीय समारोह

१३, १४ सितम्बर, १९७८

शिक्षाशास्त्र विभाग

प्रौढ़ शिक्षा पर द्विदिवसीय विचारगोष्ठी

राष्ट्रीय स्तर पर २ अक्टूबर से प्रारम्भ होनेवाले प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के सम्बन्ध में आयोजित इस गोष्ठी में निम्नाङ्कित विषय विचार हेतु रखे गये थे :—

१. प्रौढ़ शिक्षा की संकल्पना (आजीवन शिक्षा, निरन्तर शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, अग्रिम शिक्षा, पुनरावर्तक शिक्षा, स्थायी शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, सामाजिक विकास एवं साक्षरता)।

२. प्रौढ़ शिक्षा की राष्ट्रीय नीति एवं राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा उसका कार्यान्वियन (ग्रामीण तथा नगर क्षेत्र, दुर्बल और उपेक्षित वर्ग, महिलाएँ, पर्वतीय क्षेत्र, जनजाति आदि)।

३. प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों का दायित्व (पाठ्यक्रमान्तर्गत तथा पाठ्यक्रमेतर)।

४. प्रौढ़-शिक्षण-विज्ञान (ज्ञानार्जन के सिद्धान्त, सम्प्रेरण, प्रौढ़ शिक्षा के लिये शिक्षकों का प्रशिक्षण, शिक्षकों तथा नवसाक्षरों के लिये साहित्य की समस्या)।

गोष्ठी का उद्घाटन कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने किया।

प्रारम्भ में शिक्षाशास्त्र विभाग के छात्र श्री गोपालप्रसाद भार्गव ने मङ्गलाचरण किया और श्री रमेशचन्द्र पाण्डेय ने कुलपति तथा अध्यक्ष को माल्यार्पण किया।

कुलपति का स्वागत करते हुए शिक्षाशास्त्र विभागाध्यक्ष डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी ने कहा कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि छात्रों को यह ज्ञात कराया जाय कि प्रौढ़ शिक्षा राष्ट्रीय कार्य है। पर इसके साथ ही यह भी विचार करना है कि क्या यह शिक्षा पाठ्यक्रम का अंश हो सकती है? कुलपति के प्रति आभार और अभिनन्दन व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि वे शिक्षाशास्त्र विभाग के उन्नयन हेतु सदा ही प्रयत्नशील रहते हैं।

गोष्ठी की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा की संकल्पना तथा कार्यक्रम को स्पष्ट करते हुए कहा कि पिछले दशक में विश्व में अर्थशास्त्रियों ने ऐसी स्थापना की है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास में शिक्षा को उचित स्थान नहीं प्राप्त है। इस पर होने वाला व्यय अनुत्पादक व्यय माना जाता है। शिक्षा के कारण विकसित और विकासशील देशों में गरीब एवं अमीर का भेद बढ़ता गया है। अतः यह सोचा गया कि देश के आर्थिक विकास के साथ शिक्षा को जोड़ने के लिये न्यूनतम कार्यक्रम बनाया जाय। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि निःशुल्क शिक्षा की बात करना गरीबों का शोषण है, क्योंकि यदि इसके लिये सार्वजनिक रूप से कर लगाया गया तो कर देने वालों में अधिसंख्यक विपन्न होंगे।

विभिन्न देशों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के विभिन्न रूप हैं। विकसित देशों में इसके अन्तर्गत शिक्षित लोगों को उनके कार्य में अधिक कुशलता प्राप्त कराना इसका उद्देश्य है; जब कि विकासशील देशों में इसका उद्देश्य निरक्षरों को साक्षर करना है। संसार में निरक्षरों की संख्या अधिक है। अतः प्रारम्भ में सामाजिक शिक्षा का लक्ष्य साक्षरता मात्र निर्धारित हुआ और यूनेस्को द्वारा ईरान में एतदर्थ प्रयोग भी किये गये। प्रौढ़ शिक्षा के कई नामकरण हुए हैं, जैसे मुक्त शिक्षा, उन्नत शिक्षा आदि। गाँधी जी द्वारा प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में परिवर्तन लाना और एक प्रकार की सांस्कृतिक क्रान्ति प्रस्तुत करना बताया गया था।

कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि बाढ़ के कारण उत्तरी भारत की स्थिति बड़ी भयावह हो गयी है, फिर भी यह गोष्ठी हो रही है, इससे इस विभाग का इस कार्यक्रम के लिए दृढ़ संकल्प व्यक्त होता है। हमारे छात्रों ने भी रात-दिन एक करके बाढ़-पीड़ितों की सहायता की है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। शिक्षा या विद्या का उद्देश्य है—'सा विद्या या विमुक्तये'। इसके लिए वैचारिक रूप से उदार होना आवश्यक है, क्योंकि संकीर्णता से मानव की मुक्ति नहीं हो सकती। कुलपति ने आगे कहा कि इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि शिक्षा का व्ययभार गरीबों पर न आये और इसमें धन का दुरुपयोग न किया जाय। उन्होंने आगे कहा कि अर्थ वह है जो काम्य है, जो स्वयं इष्ट है तथा जिससे अन्य अनिष्ट न हो सकें। स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा प्रणाली में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह मानव तथा समाज को उदात्त बनाये। प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस गोष्ठी में प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर सम्यक् विचार हो सकेगा।

श्री अलखनिरंजन पाण्डेय, भूतपूर्व निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश ने गोष्ठी में 'प्रौढ़ शिक्षा को संस्कृत वाङ्मय की देन' विषय पर अपना निबन्ध पढ़ा। पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी ने प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में बताया कि प्रारम्भ में इसका उद्देश्य मात्र निरक्षरों को साक्षर करना था। पर अब इस कार्यक्रम के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिवर्तित करने पर बल दिया जा रहा है। इससे इस कार्यक्रम का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। श्री तिवारी ने आगे कहा कि वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय में प्रौढ़ शिक्षा का कहीं भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

गोष्ठी के समापन पर श्री देवनारायण मिश्र ने धन्यवाद प्रदान किया।

संस्कृत के अभ्युदय के सम्बन्ध में नये प्रयास

(क) उत्तर प्रदेश में प्राच्य संस्कृत शिक्षा के गतिशील चरण*

प्राच्य संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश का एक महनीय स्थान है। वाराणसी, अयोध्या, प्रयाग, आगरा, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार तथा उत्तरकाशी आदि उत्तर प्रदेश के नगरों में प्राच्य संस्कृत शिक्षा के गौरवमय केन्द्र हैं, जहाँ पर वेद, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण तथा इतिहास आदि आर्ष परम्परा के ग्रन्थों का अहर्निश मनन, चिन्तन एवं स्वाध्याय होता है।

उत्तर प्रदेश में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से मान्यता प्राप्त लगभग १५०० संस्कृत महाविद्यालय हैं, जिनमें सहायता प्राप्त संस्थाओं की संख्या ९५९ है और ९ प्राच्य संस्कृत शिक्षण संस्थाएँ पूर्णतया राजकीय हैं। शेष संस्थाएँ असहायिक हैं, जिनका संचालन-संरक्षण पंजीकृत समितियों के द्वारा अपने निजी आय के स्रोतों से किया जाता है। सहायता प्राप्त संस्कृत पाठशालाओं में १९७२ से पूर्व मात्र प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की संस्कृत पाठशालाओं के शिक्षकों का वेतनमान निश्चित था, शेष पाठशालाओं के शिक्षकों के लिये कोई निश्चित वेतनमान नहीं था। उ० प्र० वेतन आयोग की संस्तुतियों के आधार पर राजाज्ञा संख्या-२/९(७)/७३, शिक्षा (३) शिक्षा अनुभाग-३, दिनांक १४ अक्टूबर, १९७४ के द्वारा प्रदेश की संस्कृत पाठशालाओं को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणियों में विभक्त किया गया। सम्प्रति उ० प्र० की संस्कृत पाठशालाओं की श्रेणीवार स्थिति निम्नवत् है :

१. प्रथम श्रेणी	७१
२. द्वितीय ,,	७३
३. तृतीय ,,	१३
४. चतुर्थ ,,	६०२
योग	७५९

उक्त समस्त श्रेणी की पाठशालाओं के शिक्षकों के निमित्त १९७२ से नवीन वेतनमान लागू किया गया, जिससे प्रदेश के लगभग ५००० शिक्षकों को लाभ हुआ। फलतः अध्यापकों की आर्थिक स्थिति में आशातीत सुधार हुआ। उ० प्र० शासन द्वारा वेतन आयोग (१९७१-७३) की संस्तुतियों के आधार पर चारों श्रेणी की संस्कृत पाठशालाओं में कार्यरत अध्यापकों के लिये निम्नलिखित वेतन लागू किए गए :—

प्रथम श्रेणी

पद	वेतनमान
१. प्रधानाचार्य	५००-११५०
२. विभागाध्यक्ष	४००- ७७५
३. सहायक विभागाध्यक्ष	३००- ५१०
४. शिक्षक	२००- ३८०

द्वितीय श्रेणी

पद	वेतनमान
१. प्रधानाचार्य	४००-७७५
२. अध्यापक	३००-५१०
३. सहायक अध्यापक	२००-३८०

तृतीय श्रेणी

पद	वेतनमान
१. प्रधानाचार्य	३००-५१०
२. अध्यापक (ज्येष्ठ)	२२०-४००
३. अध्यापक (कनिष्ठ)	२००-३८०
४. सहायक अध्यापक	१९५-३१५

चतुर्थ श्रेणी

पद	वेतनमान
१. प्रधानाध्यापक	२२०-४००
२. अध्यापक (ज्येष्ठ)	२००-३८०
३. अध्यापक (कनिष्ठ)	१९५-३१५

* [प्रस्तुत लेख के लेखक श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद हैं। इसमें श्री मिश्र ने प्रदेश में प्राच्य संस्कृत शिक्षा की गतिशीलता तथा विकास का प्रामाणिक आँकड़ों के साथ विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है; साथ ही सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कार्यक्षेत्र पर भी यहाँ कुछ प्रकाश डाला गया है—सम्पादक।]

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृत पाठशालाओं के शिक्षकों के नवीन वेतनमान लागू किये जाने के फलस्वरूप अध्यापकों की आर्थिक स्थिति में जहाँ सुधार हुआ वहीं पर संस्थाओं का शैक्षिक स्तर भी पर्याप्त ऊँचा हुआ। सम्प्रति उत्तर प्रदेश के अन्य विश्वविद्यालयों से संबद्ध पोस्ट ग्रेजुएट कालेजों के समान प्रथम श्रेणी के संस्कृत महाविद्यालयों का शैक्षिक स्तर है और द्वितीय श्रेणी के महाविद्यालयों का स्तर विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध डिग्री कालेजों के समान है। तृतीय श्रेणी तथा चतुर्थ श्रेणी की पाठशालाओं का शैक्षिक स्तर क्रमशः इण्टरमीडिएट कालेजों तथा हाई स्कूलों के समान है। इन प्राच्य संस्कृत संस्थाओं के शिक्षकों के वेतन स्तर को प्रोन्नत करने हेतु उ० प्र० शासन सहानुभूतिपूर्वक विचार कर रहा है।

सहायता प्राप्त चारों श्रेणियों की संस्कृत पाठशालाओं का संचालन पंजीकृत समितियों के द्वारा होता है, परीक्षा सम्बन्धी सम्बद्धता सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रदान की जाती है तथा प्रशासनिक व्यवस्था एवं निरीक्षण, समीक्षण आदि समस्त व्यवस्थाएँ शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उ० प्र० के अधीन है। तदर्थ उपशिक्षा निदेशक (संस्कृत), शिक्षा निदेशालय, उ० प्र० इलाहाबाद, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उ० प्र० इलाहाबाद एवं १० क्षेत्रीय सहायक निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, नियुक्त हैं। प्रदेश की संस्कृत पाठशालाओं के दसों मण्डलों में सहायक निरीक्षकों की स्थिति निम्नवत् है—

१. सहायक निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, मेरठ
२. ,, ,, ,, आगरा
३. ,, ,, ,, बरेली
४. ,, ,, ,, इलाहाबाद
५. ,, ,, ,, वाराणसी
६. ,, ,, ,, लखनऊ
७. ,, ,, ,, गोरखपुर
८. ,, ,, ,, झाँसी
९. ,, ,, ,, फैजाबाद
१०. ,, ,, ,, नैनीताल

उक्त समस्त क्षेत्रीय सहायक निरीक्षक, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उ० प्र० इलाहाबाद के निर्देशन में संस्कृत पाठशालाओं की प्रशासनिक व्यवस्था तथा निरीक्षण आदि का कार्य करते हैं।

सहायता प्राप्त संस्कृत पाठशालाओं के अतिरिक्त प्रदेश में ९ राजकीय संस्कृत पाठशालाएँ हैं, जिनका सम्पूर्ण व्यय भार उ० प्र० शासन द्वारा वहन किया जाता है। जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व महाराजाधिराज काशी नरेश एवं महाराजाधिराज टेहरी नरेश द्वारा जिन संस्कृत पाठशालाओं का व्यय भार वहन किया जाता रहा, जमीन्दारी उन्मूलन के बाद उन पाठशालाओं का राजकीयकरण कर दिया गया; तब से उन पाठशालाओं का समस्त व्यय भार उ० प्र० शासन वहन करता है।

राजकीय संस्कृत कालेज, बनारस के वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में विलीन होने पर उ० प्र० शासन के अधिनियम १९५६ के लागू होते ही उ० प्र० की प्राच्य संस्कृत शिक्षा के युगानुरूप पाठ्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। फलतः वेद, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, पुराण, इतिहास आदि आर्ष विषयों के साथ ही हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, इतिहास, भूगोल, राजनीतिविज्ञान, अर्थशास्त्र, गृहविज्ञान एवं शिक्षाशास्त्र आदि अनेक युगानुकूल एवं लोकोपयोगी विषयों का सन्निवेश हुआ। उत्तर प्रदेश शासन ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षाओं को अन्य परीक्षाओं के समकक्ष घोषित किया। जिनका विवरण निम्नवत् है :—

१. आचार्य—एम० ए० के समकक्ष
२. शास्त्री—बी० ए० ,,
३. उत्तर मध्यमा—इण्टरमीडिएट ,,
४. पूर्व मध्यमा—हाई स्कूल ,,
५. प्रथमा—जूनियर हाई स्कूल ,,

उपर्युक्त समकक्षता प्राप्त होने पर प्राच्य संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण अभ्यर्थियों को लोकसेवा आयोग, उ० प्र० द्वारा आयोजित प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं तथा प्राविधिक परीक्षाओं में सम्मिलित होने की सुविधा प्राप्त हुई। इतना ही नहीं, प्राच्य संस्कृत के अनेक अभ्यर्थी प्रतिवर्ष पी० सी० एस० आदि प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करते चले आ रहे हैं।

इस प्रकार शासन द्वारा प्राच्य संस्कृत शिक्षा के प्रोन्नयन हेतु अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

प्राच्य संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में अनेक हरिजन, पिछड़ी जाति तथा जन जाति के छात्र अध्ययनरत हैं, जिससे अब यह भ्रम भी समाप्त हो गया है कि संस्कृत शिक्षा केवल ब्राह्मण बालकों के लिये ही होती है। शासन द्वारा अनुसूचित जाति/पिछड़ी जाति के छात्रों के लिए रु० ९८६८/- की ६० छात्रवृत्तियाँ प्रति वर्ष स्वीकृत की जाती हैं एवं अन्य वर्गों के मेधावी तथा निर्धन छात्रों के लिए १,४६,०००/- की धनराशि प्रति वर्ष छात्रवृत्ति के रूप में स्वीकृत की जाती है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश शासन की संस्तुति के आधार पर निम्नांकित तीन संस्कृत महा-

विद्यालयों को आदर्श योजना के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है, जिनका ९५% व्यय भार भारत सरकार द्वारा वहन किया जायगा—

१. श्री भगवान्दास संस्कृत महाविद्यालय, ज्वालापुर रोड, हरिद्वार, सहारनपुर।

२. श्री रंगलक्ष्मी संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन, मथुरा।

३. श्री एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी।

उक्त तीनों संस्कृत महाविद्यालयों की भवन, साज-सज्जा, पुस्तकालय, छात्रावास, खेलकूद के मैदान एवं सामग्री आदि की समस्त व्यवस्थाएँ युगानुरूप हैं और अध्ययन-अध्यापन सुयोग्य, अनुभवी एवं विद्वान् अध्यापकों द्वारा होता है। इन विद्यालयों का अनुशासन उत्कृष्ट कोटि का है।

प्रदेश की संस्कृत पाठशालाओं में बालिकाओं के लिये भी अध्ययन की समुचित व्यवस्था है। स्वतन्त्रता के बाद महिलाओं को संस्कृत शिक्षा प्रदान करने के निमित्त अनेक संस्कृत पाठशालाओं का जन्म हुआ, जिनमें प्रमुख पाठशालाएँ ये हैं :—

१. श्री रामदुलारी संस्कृत बालिका महाविद्यालय, मुबारकपुर, टांडा, फैजाबाद।

२. लक्ष्मी महिला विद्यापीठ, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ।

३. अन्नदा गुरुकुल कन्या महाविद्यालय, वाराणसी।

४. श्री आनन्दमयी माँ कन्या संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।

५. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, सासनी, हाथरस, अलीगढ़।

आधुनिक युगप्रवाह को देखते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षा पद्धतियों के संस्कृत स्नातकों के लिये संस्कृत प्रशिक्षण के अनेक केन्द्र खोले गये हैं और उनका पाठ्यक्रम प्राचीन परम्परा के अनुसार ही तैयार किया गया है। उ० प्र० की प्राच्य संस्कृत शिक्षण संस्थाओं में अनेक प्रशिक्षण महाविद्यालय चल रहे हैं, जो निम्नवत् हैं :—

१. प्रशिक्षण महाविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

२. श्री राधाकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय खुर्जा, बुलन्दशहर।

३. श्री सच्चा अध्यात्म संस्कृत महाविद्यालय अरैल, इलाहाबाद।

४. महावीर विद्यापीठ, दिल्ली।

उपर्युक्त महाविद्यालयों के अतिरिक्त लगभग एक दर्जन प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के विचाराधीन है। इस प्रकार यह स्थिति पूर्णतया स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में प्राच्य संस्कृत शिक्षा के पदन्यास प्रतिक्षण गतिशील एवं विकासोन्मुख हैं।

(ख) परम्परागत संस्कृत शिक्षा का भविष्य

(प्रस्तावित परिसंवाद गोष्ठी)

भारतीय इतिहास के पास वह कौन सी अनुपम निधि है, जिसे प्राप्त करने के लिये विश्व को आज भी भारत का मुखापेक्षी होना पड़ेगा ? इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर होगा—विद्या और प्रतिभा के क्षेत्र में हजारों-हजार वर्ष तक हमारे भारतीय पूर्वजों का वह गंभीर एवं व्यापक चिन्तन का प्रयास, जो लगातार विरोधी आक्रमणों के बीच भी आज तक संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं के विशाल वाङ्मय में सुरक्षित है। इसके साथ दो अन्य प्रश्न भी उठते हैं, एक—क्या भविष्य में इसकी सुरक्षा सम्भव है ? दो—आज के आधुनिक समाज और जीवन के लिये यह कहाँ तक उपयोगी है ? इन्हीं दो मूलभूत प्रश्नों के उत्तर का घनिष्ट रूप से सम्बन्ध 'परम्परागत संस्कृत शिक्षा का भविष्य' के साथ जुड़ा है। विद्वन्मण्डली में इस विषय को लेकर बार-बार चिन्ता व्यक्त की जाती है, किन्तु इधर दो-तीन दशकों से इस दिशा में अखिल भारतीय स्तर पर सम्मिलित होकर विचार-विमर्श नहीं किया गया और न इस ओर कोई उल्लेखनीय प्रयास ही हुआ, जब कि शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में आये-दिन आयोग, गोष्ठियां गठित होती रहती हैं तथा अन्य अनेक प्रकार की चर्चाएँ कर-करके बार-बार शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर निर्णय लिये जाते हैं तथा उनके अनुसार विविध प्रकार के प्रयोग करके शिक्षा पद्धति में संशोधन, परिवर्धन एवं नवीनीकरण की प्रक्रिया चालू रखी जाती है। समय आ गया है कि संस्कृत के क्षेत्र में व्याप्त यह प्रगाढ़ मौन टूटे और परम्परागत संस्कृत शिक्षा की समस्याओं पर खुला विचार-विमर्श किया जाय।

परम्परागत संस्कृत-शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि उक्त प्रकार से व्यापक विचार-विमर्श नहीं किया गया, फिर भी परस्थितियों से बाधित होकर इधर के अनेक दशकों में परम्परागत शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन किये गए, जैसे—नवीन भाषाओं तथा आधुनिक विषयों का सन्निवेश, स्कूल कालेजों की सामान्य शिक्षा और परम्परागत शास्त्रीय शिक्षा के बीच मान्यता के आधार पर एक प्रकार की शिक्षावाले का दूसरी में प्रवेश का अधिकार, परीक्षाओं में उत्तीर्णता के लिये पूर्वापेक्षया सरलीकरण आदि। परम्परागत शिक्षा में इस प्रकार के किये गए मौलिक परिवर्तनों का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उक्त परिवर्तनों के आधार पर परम्परागत संस्कृत के छात्रों के लिये जीविका के अन्यान्य

क्षेत्रों में प्रवेश की मान्यता भी मिली। संस्कृत की अभ्युन्नति के लिये पूरे देश में केन्द्र सरकार तथा प्रादेशिक शासनों ने उत्तरोत्तर विविध प्रकार से आर्थिक सहायता बढ़ाई है तथा अन्य नई सुविधाएँ प्रदान की हैं। देश में संस्कृत विश्वविद्यालय बने, अनेकों संस्थान खुले और विद्यालय, महाविद्यालयों की दशा सुधारने की चेष्टा की गयी।

उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रयासों के बावजूद यह तथ्य अब पहले से अधिक उभर कर स्पष्ट हुआ है कि इन सभी प्रयासों के रहते हुये भी परम्परागत पाण्डित्य के ह्रास में किसी प्रकार से रुकावट नहीं आ रही है। इसके विपरीत जिस गति से शास्त्रीय विद्याओं के पाण्डित्य का मानदण्ड गिरता जा रहा है, उसे रोकने के यदि प्रभावशाली उपाय नहीं किये गये, तो अगले कुछ वर्षों में ही परम्परागत संस्कृत शिक्षा अपनी विशेषता खो बैठेगी। इस अवसाद को रोकने के लिये संस्कृत-समाज चिन्तित है। स्पष्ट है कि संस्कृत शिक्षा की इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार करने का उपयुक्त स्थल काशी और वहाँ का सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय है। इस पृष्ठभूमि में वहाँ के वर्तमान कुलपति एवं शिक्षाविद् श्री बदरीनाथ शुक्ल का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। उन्हीं की प्रेरणा से उत्तर प्रदेश संस्कृत-अकादमी ने इस कार्य के लिये आंशिक रूप में कुछ आर्थिक सहायता भी दी है। इसकी सम्भावना है कि निकट भविष्य में 'परम्परागत संस्कृत शिक्षा का भविष्य' विषय पर एक महत्त्वपूर्ण परिसंवाद-गोष्ठी का आयोजन किया जाय। (तिथि की निश्चित सूचना बाद में दी जा सकेगी)।

उक्त प्रस्तावित परिसंवाद-गोष्ठी में विचार-विमर्श करने के लिये विचारकों के समक्ष समस्या का स्वरूप स्पष्ट रखा जा सके, इस उद्देश्य से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों को लेकर एक प्रश्नावली तैयार की गयी है, जो विद्वानों की सेवा में भेजी जा रही है। इस प्रेषित प्रश्नावली का विद्वानों द्वारा उत्तर एवं परामर्श मिल जाने पर समस्या और समाधान पर विचार करने के लिये कुछ निश्चित दिशा मिल सकेगी। उसके आधार पर विषयों का वर्गीकरण करके उसे परिसंवाद-गोष्ठी के विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा। उस स्थिति में उन विशेष विषयों पर जो विचार-विमर्श होगा, उसके फलस्वरूप जो निष्कर्ष निकलेगा, वह अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होगा। प्रश्नावली पर अपना विचार लिखने में इसका ध्यान रखना होगा कि परम्परागत संस्कृत शिक्षा की सम्पूर्ण समस्या पर एक साथ विचार करना एक गोष्ठी में संभव नहीं होगा। इस स्थिति में प्रश्नावली में कुछ ही विषय विचार के लिये ग्रहण किये गये हैं। इस सम्बन्ध में विचार करने के समय इसका भी ध्यान रखना होगा कि समस्याओं का समाधान नितान्त आदर्शवादी न हो, बल्कि आदर्श के साथ-साथ वह व्यावहारिक भी रहे।

विद्वानों की सेवा में संलग्न प्रश्नावली भेजी जा रही है। उस पर उन्हें अपना वक्तव्य यथासंभव शीघ्र भेजना है। किसी भी स्थिति में दिसम्बर के अन्त तक अपना वक्तव्य अवश्य भेज देना है। आशा है, इसका महत्त्व समझकर विद्वान् इसके लिये समय निकालेंगे और अनुरोध के अनुसार अपना वक्तव्य शीघ्र प्रेषित करेंगे। वक्तव्य की भाषा संस्कृत, हिन्दी या अंग्रेजी में से कोई एक हो सकती है।

प्रश्नावली

१. देश के अन्य विश्वविद्यालयों से संस्कृत विश्वविद्यालयों की निम्नलिखित विषयों के सन्दर्भ में क्या-क्या विशेषता होनी चाहिए ?
   (क) शिक्षा
   (ख) परीक्षा
   (ग) संगठन (समितियाँ, अधिनियम, परिनियम, विभाग, संकाय आदि)

२. परम्परागत संस्कृत शिक्षा के दो रूप हैं, एक उसकी अखिल भारतीयता और दूसरी उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता। इन रूपों की रक्षा और उसका विकास प्रादेशिक स्तर के संस्कृत विश्वविद्यालयों से कहाँ तक सम्भव है ? इसके समाधान के लिये प्रादेशिक स्तर के संस्कृत विश्वविद्यालय क्या करें ?

३. अनुसन्धान की आधुनिक प्रणाली से भिन्न प्राचीन शास्त्रों के अनुसन्धान की कोई अपनी भी स्वतन्त्र प्रणाली विकसित हो सकती है ? हाँ, तो उसकी दिशा, क्षेत्र और स्वभाव क्या हो सकता है ?

४. भारतीय दर्शन की प्रायः सभी शाखाओं के तथा वेद, धर्मशास्त्र और मीमांसा आदि के अध्ययनाध्यापन में तीव्र गति से कमी होती जा रही है, अब इन विशेष विषयों के अध्येता दुर्लभ होते जा रहे हैं। इसके ह्रास को रोकने के क्या उपाय किये जा सकते हैं ?

५. कला-कौशल और विज्ञान के क्षेत्र में अपरिचित या विलुप्त प्राचीन शास्त्रों में किन-किन के पुनरुज्जीवन की सम्भावना की जा सकती है, जिनके लिये प्रयास करना सार्थक होगा ?

६. संस्कृत शिक्षा में आधुनिक विषयों के सन्निवेश का उद्देश्य क्या हो ? और उसकी मात्रा कितनी हो ?

७. काशी-मण्डल के बाहर भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्राचीन विद्याओं का विशेष विकास हुआ था, जैसे कश्मीर, केरल, तमिलप्रदेश, उत्कल, मिथिला, वंगदेश आदि। वहाँ उन विद्याओं की परम्पराएँ

उच्छिन्न होती जा रही हैं। उनकी रक्षा और पुनरुज्जीवन के लिये क्या-क्या उपाय किये जा सकते हैं ? इस सम्बन्ध में संस्कृत विश्वविद्यालय को क्या प्रयास करना चाहिए ?

८. नवीन भाषाओं और विषयों के सन्निवेश और प्रौढ़ पाण्डित्य के संरक्षण के बीच संतुलन पैदा करने के लिये क्या-क्या परिवर्तन अपेक्षित हैं ?

९. संस्कृत शिक्षा का आधुनिक भारतीय भाषाओं से कितना और कैसा सम्बन्ध हो, जिससे वह संस्कृत को अपने-अपने प्रादेशिक भाषाओं के घेरे में बाँधकर संस्कृत के व्यापक विस्तार में बाधक न बन सके ?

१०. माध्यमिक शिक्षा तक प्रशिक्षण कला की आवश्यकता मानी जाती है। संस्कृत के क्षेत्र में जो प्रशिक्षण की विधि अपनाई गई है, क्या वह संतोषजनक है ? यदि सन्तोषकर नहीं है तो प्रशिक्षण की वह कौन सी विधि हो, जो परम्परागत शास्त्रों के अध्ययन में सहायक हो ?

११. संस्कृत और संस्कृति का घनिष्ट सम्बन्ध है, इस मान्यता के अनुसार संस्कृत शिक्षा में किन सांस्कृतिक मान्यताओं को विशेष रूप से मुखरित किया जाय, जिससे देश का राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन सक्रिय रूप में प्रभावित हो सके ?

१२. अनेक पिछली शताब्दियों में संस्कृत शिक्षा एक विशेष सामन्ती वर्ग द्वारा पोषित थी और उसका अध्यनाध्यापन भी प्रायः एक विशेष वर्ग में ही प्रचलित था। अब परिवर्तित परिस्थिति में उत्तरोत्तर विशेष की जगह सामान्य या बहुजन का शासन एवं संरक्षण होता जा रहा है, जिसका सामाजिक आदर्श समता और प्रजातन्त्र है। इस नई स्थिति में परम्परागत संस्कृत शिक्षा को बहुजनोन्मुख बनाने के लिये क्या उपाय किए जायँ तथा उसकी स्वस्थ एवं व्यावहारिक दिशा क्या हो ?

१३. आधुनिक प्रकार के विद्यालयों से संस्कृत सहित हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट और बी०ए० उत्तीर्ण को मध्यमा शास्त्री और आचार्य की परीक्षाओं में प्रवेश की मान्यता दी गई है, उसके कारण क्या शास्त्रीय ज्ञान में उल्लेखनीय ह्रास हो रहा है ? हाँ, तो उसके निवारण का उपाय क्या है ?

१४. संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों में प्रचलित परम्परागत संस्कृत शिक्षा तथा आधुनिक विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में प्रचलित संस्कृत शिक्षा के बीच सामञ्जस्य की कितनी सम्भावना है ? किस स्थिति में वे एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं ?

१५. समय-समय पर जीविका की दृष्टि से परम्परागत संस्कृत शिक्षा में बहुत कुछ नवीन परिवर्तन किये गए हैं। क्या उसके फलस्वरूप संस्कृतज्ञों के लिये जीविका के द्वार खुले हैं ? और वे सन्तोषजनक हैं ? यदि नहीं, तो उसके लिये आगे क्या किया जाना चाहिए ?

१६. संस्कृत के पाण्डित्य में प्रौढ़ि लाने के लिये उसे जीविकोन्मुखी बनाना कहाँ तक सम्भव है ? उस दिशा में जीविका का क्षेत्र और जीविका का स्वभाव क्या हो ?

१७. यदि संस्कृत शिक्षा के ह्रास में पाठशालाओं की उपेक्षा भी एक प्रमुख कारण है, तो उनकी क्या क्या मुख्य समस्याएँ हैं ? और उनके समाधान की दिशा में क्या हो ?

१८. सरकारी अनुदान के बढ़ते चरणों के साथ-साथ संस्कृत विद्यालयों की स्थापना और उन्हें चलाने के पीछे व्यावसायिक भावना तीव्र होती जा रही है। उसे रोकने के लिये क्या क्या उपाय किये जा सकते हैं ?

१९. क्या शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये यह उचित होगा कि माध्यमिक स्तर और उच्च शिक्षा के स्तर के आधार पर वर्गीकरण कर लिया जाय और उसी के आधार पर शासकीय अनुदान एवं व्यवस्था का भी निर्धारण हो ?

२०. संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों के पुनर्गठन की क्या आवश्यकता है ? हाँ, तो उसकी दिशा और विधि क्या हो ?

विद्वानों को उपर्युक्त प्रश्नावली का उत्तर निम्नाङ्कित पते पर प्रेषित करना है :—

श्री जगन्नाथ उपाध्याय
संयोजक, धर्म-दर्शन-संस्कृति समिति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(ग) कश्मीर के मुख्यमन्त्री से पत्र-व्यवहार

संस्कृत विद्याओं के विकास में कश्मीर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विशेष कर काव्यशास्त्र, प्रत्यभिज्ञा दर्शन एवं पाञ्चरात्र दर्शन को विकसित करने में कश्मीर का स्थान अद्वितीय है। लोक-व्यवहार में आज भी यह परम्परा इस प्रकार से जीवित है कि उपनयन संस्कार में जब बटुक विद्योपार्जन हेतु प्रस्थान करता है, तो उससे यही प्रश्न किया जाता है कि अध्ययन के लिये वह कश्मीर जायगा या काशी? काल के झंझावात से संस्कृत विद्याओं की कश्मीर में अब वह स्थिति नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि कश्मीर में इन विद्याओं के अध्ययन को पुनरुज्जीवित किया जाय। विशेष कर प्रत्यभिज्ञा दर्शन और शैव, शाक्त तथा वैष्णव आगमों के क्षेत्र में यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा, क्योंकि इन परम्पराओं के लोग अब भी वहां मिल सकेंगे। इस दृष्टि से कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने कश्मीर के मुख्यमन्त्री माननीय श्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को इसी आशय का एक पत्र भेजा, जिसमें इस सन्दर्भ में प्रस्ताव दिये गये थे। माननीय मुख्यमन्त्री ने कुलपति के पत्र में उल्लिखित प्रस्तावों को समीचीन मानते हुए सम्बन्धित विभाग द्वारा उन पर विचार करने का आश्वासन दिया है। दोनों पत्र यथावत् रूप में नीचे दिये जा रहे हैं :—

प्रिय शेख साहब,

प० सं० १८६०/१२००/७८, दि० २१।१०।७८

जम्मू कश्मीर राज्य के भाग्य-सूत्र को अपने शक्तिशाली एवं उदार हाथों में आप द्वारा लेने के बाद प्रथम बार आपको यह पत्र लिखते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। भारत राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में आपकी जो असाधारण निष्ठा एवं उदात्त विचार लोकविदित है एवं संस्कृत के विशाल वाङ्मय में निहित विद्याओं, विशेषकर शैव-शाक्त तन्त्र एवं पाञ्चरात्र में कश्मीर का जो ऐतिहासिक योगदान रहा है, उन्हें दृष्टि में रखते हुए आपसे निवेदन करना है कि उक्त क्षेत्र में कश्मीर की महिमा को पुनरुज्जीवित एवं संवर्धित करने की दिशा में विशेष ध्यान देने की कृपा करें।

आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त क्षेत्र में कश्मीर की जो महत्ता रही है वह पूर्वापेक्षया पर्याप्त क्षीण हो चुकी है, जिसके फलस्वरूप पूरे देश को उक्त विद्याओं से वंचित हो जाने का संकट उपस्थित हो गया है। इस संकट का परिहार आप जैसे अधिकार सम्पन्न महापुरुष द्वारा ही सम्भव है। अतएव मैंने इस ओर आपको दृष्टि आकृष्ट करना आवश्यक समझा।

आपके सौकर्य के लिये संक्षिप्त सुझाव निम्नांकित हैं—

१—जम्मू-कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में एक साधनसम्पन्न संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की जाय।

२—सर्वेक्षण द्वारा वर्तमान समय में जम्मू-कश्मीर में उपलब्ध उक्त विद्याओं के पारंगत विद्वानों की जानकारी प्राप्त की जाय और उनसे उक्त विद्याओं के उद्धार के लिये सहयोग प्राप्त किया जाय।

३—जम्मू-कश्मीर में पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण कराकर उनके संग्रह, संरक्षण और प्रकाशन की व्यवस्था की जाय।

४—आप द्वारा कश्मीर में प्रारम्भ होनेवाले इस कार्य का पूरे देश में प्रचार-प्रसार किया जाय, जिससे सबकी दृष्टि कश्मीर की ओर पुनः आकृष्ट हो।

हार्दिक सम्मान एवं सद्भावनाओं के साथ—

भवदीय,

बदरीनाथ शुक्ल

No. cms (gerl) 96/
(Monogram)

CHIEF MINISTER
JAMMU AND KASHMIR

Srinagar,
November, 1978.

Dear Mr. Shukla,

Many thanks for your letter No. 1860/1200/78 of October 21, 1978, and your good suggestions which I will certainly have examined by the Department concerned.

With good wishes,

Yours sincerely,
S. M. Abdullah

अन्य गतिविधियाँ

२९ जुलाई, १९७८

(क) विश्वविद्यालय का सत्रारम्भ

प्रत्येक शिक्षासंस्था अथवा सर्वोच्च शिक्षासंस्था विश्वविद्यालय का अपना एक स्वरूप और जीवन होता है। विश्वविद्यालय के भवन सजीव ज्ञान केन्द्र होते हैं। अध्ययन-अध्यापन, परीक्षा और अवकाश की कार्यविधियों के साथ विश्वविद्यालयीय जीवन गतिशील रहता है। अवकाश के अनन्तर सत्रारम्भ विश्वविद्यालयीय जीवन का महत्त्वपूर्ण दिवस होता है।

दिनांक २९ अगस्त, ७८ को उल्लासपूर्ण वातावरण में विश्वविद्यालय का सत्रारम्भ हुआ। औपचारिक रूप से कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने सत्रारम्भ की घोषणा की। इस अवसर पर आपने अध्यापकों से पूर्ण मनोयोग से अध्यापन कार्य में संलग्न हो जाने का आग्रह किया और छात्रों को आन्दोलनों से विमुख रहकर अध्ययन में प्रवृत्त होने की सलाह दी। इसके साथ ही नई योजनाओं के सम्बन्ध में आपने बताया कि विश्वविद्यालय को कई लाख का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्राप्त हुआ है, जो ग्रन्थ सूचियों और ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये है। केन्द्रीय पुस्तकालय को पुस्तक-क्रय हेतु स्वीकृत कई लाख रुपयों के अतिरिक्त प्रत्येक विभागों में पुस्तकों के क्रय के लिये वहीं से पच्चीस-पच्चीस हजार रुपये का अनुदान स्वीकृत हुआ है।

छात्रों के शैक्षिक उन्नयन की चर्चा करते हुए आपने कहा कि छात्रों की पाक्षिक वाद-विवाद प्रतियोगिता हुआ करेगी, जिसमें उन्हें पुरस्कृत भी किया जायगा। आपने छात्रों और अध्यापकों के निकट सम्बन्ध पर बल दिया।

१३ अगस्त, १९७८

(ख) पण्डित कालीप्रसाद मिश्र श्रद्धा समारोह

काशी में अनादि काल से संस्कृत विद्वानों की परम्परा अक्षुण्ण रही है। इसी विद्वत् परम्परा में थे प० कालीप्रसाद मिश्र, जिनका सम्पूर्ण जीवन संस्कृतमय था और जिनकी शिष्य परम्परा आज संस्कृत के प्रचार प्रसार में संलग्न है। दि० १३-८-७८ को स्वर्गीय मिश्र जी का श्रद्धा समारोह भारतीय विद्याओं के मूर्धन्य विद्वान् और मिश्र जी के ही शिष्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। इस अवसर पर द्विवेदी जी ने महामनीषी के मानवीय पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कहा—"मिश्र जी आचार-विचार के दृढ़ पण्डित थे, पर आधुनिक विचारों के प्रति भी उनके मन में बड़ी जिज्ञासा थी। अपने अध्ययन काल में मुझे उनका सहज विश्वास और स्नेह प्राप्त था। वे शिष्यों से बहुत स्नेह रखते थे और उनमें जिज्ञासा जगाते रहते थे। ज्ञान के प्रति उनमें बड़ी उत्सुकता थी। प्राचीन संस्कृति में जिज्ञासा वृत्ति असीमित है।" द्विवेदी जी ने आगे कहा कि मतभेद की स्थिति में भी स्नेह प्रदान करने वाले महान् गुरु का मैं शिष्य हूँ। आचार्य जी के अनुसार मिश्र जी का चरित्र आदर्श था और वे आचार्यत्व की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। वे स्वयं दूसरों का आदर करते थे और शिष्यों को भी आदर करने की प्रेरणा देते थे।

द्विवेदी जी ने अध्यक्ष पद से प्रस्ताव किया कि मिश्र जी की मूर्ति स्थापित की जाय और उनकी स्मृति में भाषाशास्त्र विषयक व्याख्यानमाला आरम्भ की जाय। इस व्यवस्था में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भी सहयोग करे। वर्ष के अन्त में भाषाशास्त्र विषयक सभी व्याख्यान प्रकाशित किए जायँ।

कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने मिश्र जी को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कहा कि वे सर्वगुण संपन्न थे। उनमें बड़ा उत्साह था और सबके प्रति सौजन्य तथा लोकोपकारिता की भावना थी। व्याकरणशास्त्र के वे उद्‌भट विद्वान् थे। शुक्ल जी ने कहा कि भाषा और व्याकरण का अन्योन्याश्रय संबन्ध है। आचार्य द्विवेदी जी द्वारा मूर्ति स्थापना के प्रस्ताव का शुक्ल जी ने भी समर्थन किया और आकांक्षा प्रकट की कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संयुक्त प्रयास से व्याख्यानमाला चलायी जाय। मिश्र जी के संदर्भ में दोनों विश्वविद्यालयों का दायित्व है। व्याख्यानों का प्रकाशन विश्वविद्यालयीय पत्रिकाओं में हो और इसके लिये सरकार द्वारा धन का प्राविधान हो। इस व्यवस्था में संस्कृत अकादमी का भी योग होना चाहिए। श्री शुक्ल ने यह भी सुझाव दिया कि महापालिका 'पण्डित कालीप्रसाद मिश्र उद्यान' का निर्माण कराये और उसी उद्यान में उनकी मूर्ति स्थापित हो।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति श्री टी. आर. वी. मूर्ति ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि वे विद्याव्यसनी थे और सतत अध्ययन-अध्यापन में लीन रहते थे।

वे महावैयाकरण थे। वेदान्त तथा अन्य दर्शनों के प्रति भी उनकी बड़ी रुचि थी। अतः इन सभी विषयों में व्याख्यानमाला चलाई जाय।

डा० देवस्वरूप मिश्र ने ब्रह्मसूत्र के अध्यायों का सन्दर्भ स्पष्ट करते हुए तृतीय अध्याय के आधार पर कहा—'ज्ञान को श्रद्धावान् ही प्राप्त करता है। केवल विश्वास से ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। श्राद्ध श्रद्धा का ही रूपान्तर है; यह कहते हुए आपने मिश्र जी के प्रति श्रद्धा प्रकट की।

डा० कालिकाप्रसाद शुक्ल ने कहा कि प० कालीप्रसाद मिश्र का पूरा परिचय देना संभव नहीं है। वे विद्वान् थे और सद्भाव-सौजन्य से ओतप्रोत थे।

श्री निरीक्षणपति मिश्र ने भी इस अवसर पर अपने गुरु प० कालीप्रसाद मिश्र के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनकी विद्वत्ता और गुणों को सराहना की।

श्रद्धा समारोह में सर्वसम्मति से एक समिति गठित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इसके अनुसार प० कालीप्रसाद मिश्र स्मारक व्याख्यानमाला समिति गठित हुई। डा० मूर्ति समिति के अध्यक्ष मनोनीत किये गये और श्री निरीक्षणपति मिश्र को संयोजन का भार सौंपा गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री बदरीनाथ शुक्ल, डा० विद्यानिवास मिश्र, डा० देवस्वरूप मिश्र और श्री रामनरेश मिश्र समिति के सदस्य हुए।

आरम्भ में योगतन्त्र विभाग के अध्यापक श्री श्रीपति राम त्रिपाठी ने सरस मङ्गलाचरण किया।

---

१७ अगस्त, १९७८

(ग) श्री रमाशंकर पाण्डेय का निधन

गत दिनांक १७ अगस्त, १९७८ को हिन्दी के प्राध्यापक तथा भू० पू० प्रस्तोता श्री रमाशंकर पाण्डेय का लम्बी बीमारी के बाद असामयिक निधन का दुःखद समाचार सुनकर विश्वविद्यालय परिवार स्तब्ध रह गया। संस्कृत दिवस के अवसर पर विशेष रूप से आयोजित विचार संगोष्ठी के दूसरे दिन के समस्त कार्यक्रम स्थगित कर दिये गये। कुलपति की अध्यक्षता में आयोजित शोक सभा में निम्नांकित शोक प्रस्ताव पारित किया गया और विश्वविद्यालय परिवार के समस्त सदस्यों ने दो मिनट मौन रहकर दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। श्री पाण्डेय के शोक में उस दिन विश्वविद्यालय बन्द कर दिया गया।

शोक प्रस्ताव

"श्री रमाशंकर पाण्डेय के असामयिक निधन से विश्वविद्यालय के पूरे परिवार को गहरा आघात पहुँचा है। श्री पाण्डेय विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए और पर्याप्त समय तक विश्वविद्यालय के प्रस्तोता भी रहे। उन्होंने प्राध्यापक और प्रस्तोता इन दोनों पदों से विश्वविद्यालय की जो सेवा की है, वह विश्वविद्यालय के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी।

"श्री पाण्डेय हिन्दी और संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् थे तथा प्रशासन में भी उनकी क्षमता और प्रतिभा थी। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत शिक्षा पूरी करने के बाद नालन्दा कालेज में पर्याप्त समय तक अध्यापक थे तथा अन्य अनेक शिक्षा-संस्थाओं में उनके प्राधिकरणों के सदस्य थे। बिहार के शिक्षा विभाग में उनके पाण्डित्य और उनकी शैक्षिक प्रशासन में सूझ बूझ की अच्छी ख्याति थी। अनेक वर्षों तक वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा अन्य प्राधिकरणों के बड़े तेजस्वी और विश्वविद्यालय के हितपक्ष का सदैव समर्थन करने वाले सदस्य थे।

"विद्वत्ता, प्राशासनिक क्षमता और शिक्षाविभागीय विधि-विधानों के सूक्ष्म ज्ञान के साथ वह मानवीय गुणों से अलंकृत थे। तान्त्रिक साधना में उनकी गहरी निष्ठा थी और वे अनवरत साधना-क्षेत्र में मातृपूजा पर सर्वाधिक आस्था एवं विश्वास रखते थे। उन्होंने कई ग्रन्थों का सम्पादन किया है और अनेक ग्रन्थों की व्याख्याएँ लिखी हैं। 'शरभकवच' पर उनकी भूमिका उनकी तान्त्रिक अभिज्ञता का प्रत्यक्ष साक्ष्य है।

"श्री पाण्डेय के असामयिक निधन से उनके कार्यक्षेत्र में बहुमुखी शून्यता आ गयी है, जिससे इस विश्वविद्यालय को, उनसे सम्बद्ध अन्यान्य संस्थाओं और उनके मित्रों को मार्मिक आघात पहुँचा है। विश्वविद्यालय का पूरा परिवार उनके असामयिक निधन से गहरी शून्यता का अनुभव करता है और इस महाविपत्ति में उनके कुटुम्ब का सहभागी है। यह सभा भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वे श्री पाण्डेय के सन्तप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने का धैर्य प्रदान करें और दिवंगत आत्मा को शाश्वत शान्ति दें।"

---

७ से १६ सितम्बर, १९७८

(घ) बाढ़पीड़ितों को सहायता

कुलपति के सहयोग से राष्ट्रीय सेवायोजना द्वारा विशेष शिविर लगाकर बाढ़पीड़ितों का विशेष राहत कार्य ७-९-७८ से १६-९-७८ तक किया गया।

७-९-७८ को मध्याह्न में कुलपति का आदेश पत्र राष्ट्रीय सेवा योजना के कोआर्डिनेटर श्री पुरुषोत्तम प्रसाद पाठक को प्राप्त हुआ कि वे राष्ट्रीय सेवायोजना के छात्रों द्वारा तत्काल बाढ़-पीड़ितों की सहायता करें तथा विश्वविद्यालयीय भवनों में बाढ़-पीड़ितों को ठहरावें। कोआर्डिनेटर श्री पाठक छात्रों को लेकर २ बजे दिन से बाढ़पीड़ितों की सहायता में जुट गए। उस दिन वे लगभग १५० छात्रों तथा अपने सहायक श्री सुरेन्द्रकुमार मिश्र के साथ विश्वविद्यालय के आस-पास के क्षेत्रों में विशेष कर गंगानाथ झा छात्रावास के सामने चौकाघाट में पानी से घिरे लोगों का सामान झा छात्रावास में ले आए। कुछ वृद्धा महिलाओं एवं वृद्ध पुरुषों को श्री लालजी पाण्डेय, श्री पारसनाथ मिश्र जैसे छात्रों ने अपने कन्धे पर उठाकर बाढ़ का सामना करते हुए झा छात्रावास में लाकर उन्हें स्थान दिया। इस प्रकार उस दिन लगभग ५०० बाढ़पीड़ितों का उद्धार करने के बाद विश्वविद्यालय द्वारा रात्रि में लाई एवं गुड़ का वितरण कराया गया तथा कुछ अस्वस्थ बाढ़पीड़ितों को दवा भी दी गई। रात्रि में लगभग १० बजे कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल, कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी एवं पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी तथा छात्र-प्रतिपालक श्री शम्भुनाथ मिश्र ने गंगानाथ झा छात्रावास में जाकर बाढ़-पीड़ितों को देखा।

दिनांक ८-९-७८ को प्रातःकाल ६ बजे से ही विश्वविद्यालय के छात्रों में बाढ़राहत कार्य करने की होड़ लग गई। ८-९-७८ से शहर के निम्नलिखित स्थानों में टिके लोगों के लिये बाढ़राहत कार्य शुरू हुआ। स्थान के सम्मुख बाढ़पीड़ितों की संख्या भी दी जा रही है :—

स्थान	संख्या
१. चौकाघाट, झा छात्रावास के सामने विभिन्न स्थानों में कुल	५००
२. पियरिया पोखरी	२००
३. लखीरी	१८०
४. काटन मिल	४९५
५. जैतपुरा जूनियर हाईस्कूल	२६
६. पटेलनगर	२००
७. आई० टी० आई०	५००
८. नक्खीघाट	१०००
९. तेलियाबाग	२००
१०. नदेसर कोठी	५००
११. कचहरी	५००
१२. चौकाघाट जेल	३००
१३. डी० आई० जी० कालोनी के सामने पी० एम० टी०	७००
१४. कमिश्नरी	३००
१५. मिन्ट हाउस	४५०
१६. कटिंग मेमोरियल	३००
१७. जे० पी० मेहता कालेज	१००
१८. रंगिया महाल	२००
१९. हुकुलगंज	५००

विश्वविद्यालय परिसर के भवनों में टिके लोगों की संख्या

स्थान	संख्या
२०. मुख्य भवन में लखीमपुर खीरी से आए तीर्थयात्री	२००
२१. क्रीड़ा भवन में	५०
२२. एन० सी० सी० भवन में	१००
२३. गगानाथ झा छात्रावास में	७००
२४. नाट्यशाला में	२४
२५. बौद्ध कक्ष के बरामदे में तथा २ कमरों में	७५
२६. पुराण कक्ष में	१००
२७. दलाईलामा कक्ष में	१५०
२८. लालभवन के बरामदे में	१००
२९. सरस्वतीभवन के बरामदे में	६५

विश्वविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालयीय भवनों में टिके लोगों को लाई गुड़ दिया गया। तत्पश्चात् मध्याह्न में पूड़ी-सब्जी दी गई। सायंकाल दियासलाई, मिट्टी का तेल, डबल रोटी आदि का वितरण कराया गया। साथ ही उक्त दिन लगभग १०० छात्रों द्वारा बाढ़ग्रस्त लोगों को नाव द्वारा निकाल कर उपर्युक्त स्थानों में ठहराया भी गया। उसी दिन से विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य केन्द्र (आयुर्वेद एवं एलोपैथ) द्वारा दवा वितरण का कार्य तथा अस्वस्थ लोगों का उपचार भी प्रारम्भ हो गया। झा छात्रावास में स्वास्थ्य केन्द्र के वैद्य एवं अन्य कर्मचारीगण भी सहयोग प्रदान करने लगे। छात्र नेताओं में श्री विजयशंकर पाण्डेय, श्री कुंजबिहारी शर्मा, श्री भुवनेशकुमार उपाध्याय, श्री पारसनाथ मिश्र, श्री रामबालक मिश्र, श्री गिरीशचन्द्र पाण्डेय, श्री जगन्नाथ पाण्डेय, श्री सुभाषचन्द्र मिश्र, श्री दिनेश्वर पाण्डेय, श्री मदनमोहन शर्मा, श्री बनवारी मिश्र, श्री आशुतोष मिश्र, श्री रविशंकर दूबे आदि अपने सहयोगी छात्रों के साथ अहर्निश सेवा कार्य करते रहे।

आज से ही विश्वविद्यालय बाढ़ में सेवा कार्य करने हेतु अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया। कुलपति ने अध्यापक एवं कर्मचारियों से एक दिन का वेतन बाढ़-

पीड़ितों को देने हेतु निवेदन किया। कुलपति ने आज दिन भर कुलसचिव के साथ शहर के धनी लोगों से बाढ़ग्रस्त लोगों को सहायता करने हेतु प्रेरित किया। शहर की अनेक संस्थाओं और धनाढ्य लोगों ने अग्रिम दिन से खाद्य सामग्री देने के लिए अपनी स्वीकृति दी।

दिनांक ९-९-७८ को प्रातः ६ बजे से राष्ट्रीय सेवायोजना के छात्रों को तथा अपने सहायक को लेकर कोआर्डिनेटर श्री पाठक सेवा कार्य में लग गये। सर्वप्रथम प्रातः जलपान में गुड़, चना, लाई का वितरण १५०० लोगों में किया गया। १० बजे तक छात्र संस्कृत विश्वविद्यालय के अध्यापकावास, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज, लहुराबीर, धूण्चण्डी आदि स्थानों से खाद्य सामग्री मांग कर लाए और उसका वितरण छात्रों द्वारा अच्छे ढंग से किया गया। आज से विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा भी बाढ़ राहत कार्य शुरू हुआ।

दिनांक ८-९-७८ से ही लखीमपुर-खीरी के २०० तीर्थयात्री बाढ़ में फँसे थे, जिन्हें राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्रों ने विश्व-विद्यालय भवनों में टिकाया तथा उनकी बसों की सुरक्षा जिला प्रशासन को सौंप दी गई। उन तीर्थ यात्रियों को हर प्रकार की सुविधा छात्रों द्वारा उपलब्ध कराई गई, जैसे लकड़ी, गोहरी, कोयला, मिट्टी का तेल, दियासलाई, नमक, आलू, डबल रोटी आदि। तीर्थयात्रियों में कुछ अस्वस्थ लोगों को सेवायोजना द्वारा तत्काल औषधि का वितरण किया गया।

राष्ट्रीय सेवायोजना के छात्रों ने आनन्द मंदिर, तेलियाबाग से कुछ बाढ़ग्रस्त लोगों को २ नावों द्वारा सामान सहित निकाला और उनके ठहराने का सम्यक् प्रबन्ध करके भोजनादि की व्यवस्था की। आई० टी० आई में भी छात्रों द्वारा सायंकाल भोजन एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों का वितरण कराया गया।

राष्ट्रीय सेवायोजना के कुछ छात्रों ने शहर के बाहर गावों में बाढ़ग्रस्त लोगों की सहायता का कार्य प्रारम्भ किया। जहाँ जहाँ छात्रों ने कार्य किया, उन स्थानों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं :—

वाराणसी जिले में—

(१) ढाब क्षेत्र, (२) जाल्हूपुर, (३) चिरईगाँव, (४) भगवानपुरा, (५) सिरकैया, (६) मलहइया, (७) गड़वनपुर, (८) नरिया, (९) छित्तूपुर, (१०) टिकरी, (११) रामनगर।

मिरजापुर जिले में—

(१२) नरसिंहपुर, (१३) तिलही, (१४) रखवइया, (१५) श्रीपट्टी, (१६) माधोसिंह (औराई क्षेत्र में), (१७) चील्ह क्षेत्र के ५ गाँवों में।

दिनांक ९-९-७८ से ही शहर की विभिन्न संस्थाओं तथा धनाढ्यों द्वारा जो खाद्य सामग्री प्राप्त हुई, उसका बाढ़पीड़ितों में वितरण राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्रों ने बड़े परिश्रम एवं निष्ठा से किया।

जिन संस्थाओं अथवा अन्य लोगों द्वारा खाद्य सामग्री या द्रव्य प्राप्त हुआ, उनके नाम निम्नाङ्कित हैं :—

१—उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।
२—राधेश्याम खेमका, मीरघाट, वाराणसी।
३—सुरक्षासमिति, छोटी पियरी, वाराणसी।
४—रामचन्दर साहू, हीरापुरा, वाराणसी।
५—रोटरी क्लब, वाराणसी।
६—साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय, सकरकन्दगली, वाराणसी।
७—लल्लूजी मुकुन्दीलाल, वाराणसी।
८—लौटू सरदार, जगतगंज, वाराणसी।
९—लक्ष्मणदास अग्रवाल, सी० के० ६२।६० ए०, वाराणसी।
१०—रामनन्दन केशरी, हड़हा, वाराणसी।
११—काशी सर्राफा मण्डल, वाराणसी।
१२—राष्ट्रीय छात्र संगठन, वाराणसी।
१३—मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय, मीरघाट, वाराणसी।
१४—यशवन्तराव झारखण्डी।
१५—स्वामी विविदिषानन्द जी महाराज।
१६—जिला प्रशासन द्वारा पाँच बोरा आटा।
१७—विश्वेश्वर प्रसाद, सेनपुरा, वाराणसी।
१८—विजेन्द्रकुमार ठीकेदार, स० सं० वि० वि०, वाराणसी।
१९—सेठ बृजपालदास, वाराणसी।
२०—साहू आयरन फाउण्ड्री, लहरतारा, वाराणसी।
२१—भारत सेवाश्रम संघ, वाराणसी।
२२—लालता प्रसाद, औसानगंज, वाराणसी।
२३—रतनलाल जी सुरेका, सत्यनारायण तुलसी मानस मंदिर, वाराणसी।
२४—मिठाईलाल हलवाई, के० ६६ नरहरपुरा, वाराणसी।
२५—धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।
२६—रामजानकी संस्कृत महाविद्यालय, ईश्वरगंगी, वाराणसी।
२७—श्रीमती केशर देवी गोयनका, वाराणसी।
२८—सेठ नन्दलाल बाजोरिया चेरिटेबुल ट्रस्ट, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।
२९—मडुवाडीह व्यावसायिक संघ, वाराणसी।
३०—न्यू यू० पी० आलमोनियम फैक्ट्री, लल्लापुरा, वाराणसी।
३१—डा० कमलादत्त त्रिपाठी, बस्ती।

३२—वेदान्तविभागाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र, स० सं० वि० वि०, वाराणसी ।
३३—पालिविभागाध्यक्ष, श्री जगन्नाथ उपाध्याय ,, ,, ।
३४—पुस्तकाध्यक्ष, श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी ,, ,, ।
३५—सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, भू० पू० प्राध्यापक (न्याय) ,, ,, ।
३६—काशी सुमेरुपीठाधीश्वर द्वारा प्रदत्त ५०० रु० ।
३७—बाढ़पीड़ित सहायता समिति, न्यू मार्केट, आसभैरव, वाराणसी ।
३८—मुरलीमनोहर, चन्दुआसट्टी, वाराणसी ।
३९—कुलपति, स० सं० वि० वि०, वाराणसी ।
४०—कुलसचिव, स० सं० वि० वि०, वाराणसी ।
४१—कैप्टन पी० एम० श्रीवास्तव सतसाँई सेवा संगठन दल, वाराणसी ।
४२—केशवदेव जाजोदिया ।
४३—उत्तमचन्द्र गुप्त, लहुरावीर, वाराणसी ।
४४—निर्मल संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी तथा डा० रामपालसिंह प्रज्ञाचक्षु ५०१ रु० ।
४५—श्री नागा बाबा, वाराणसी, ।
४६—श्री वीरभद्र मिश्र, महन्त श्री संकटमोचन मन्दिर, वाराणसी २५० रु० ।

दिनाङ्क १०-९-७८ को राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्र शहर से प्राप्त खाद्य सामग्री को लेकर सर्वप्रथम टोलियों में विभक्त हुए । इनमें से १० टोलियों ने शहर के तत्तत् स्थानों पर और १० टोलियों ने शहर के बाहर रा० से० यो० की तथा विश्वविद्यालय की गाड़ी से खाद्य सामग्री का गाँवों में वितरण किया ।

नगर महापालिका वाराणसी के नगर स्वास्थ्य अधिकारी से कुछ दवाएँ उपलब्ध हुईं, उन्हें भी इन छात्रों ने बाढ़ग्रस्त अस्वस्थ लोगों में वितरित की । दिनांक १०-९-७८ को जिन स्थानों पर सामान बाँटा गया, वे ये हैं :—पुराण कक्ष, मुख्य भवन, बौद्ध कक्ष, एन०सी०सी० क्रीड़ा भवन, गंगानाथ झा छात्रावास, दलाई लामा कक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी आदि । ब्लीचिंग पाउडर मँगवाकर इन स्थानों में छिड़कवाया गया ।

विश्वविद्यालय के बाहर पटेल नगर, आई० टी० आई० लच्छीपुर, नदेसर, कचहरी, मिन्ट हाउस आदि क्षेत्रों में अतिरिक्त जिलाधिकारी वाराणसी के विशेष अनुरोध पर प्रबन्ध करके एक हजार व्यक्तियों को १ हजार पैकेट पूड़ी-सब्जी रात्रि ८-३० बजे बाँटी गई । अतिरिक्त जिलाधिकारी के अनुरोध पर आज से शिविर चलते रहने तक खाद्य सामग्री वितरण का कार्य कचहरी आदि स्थानों में होगा, ऐसा विश्वविद्यालय द्वारा विशेष निर्देश भी प्राप्त हुआ ।

११-९-७८ को प्रातः ७ बजे से ही बाढ़-राहत कार्य प्रारम्भ हुआ । मुख्य भवन के सामने बाढ़पीड़ितों को जब राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्र खाद्य सामग्री बाँट रहे थे, तो उसी समय टेलिविजन वालों ने चित्र खींचे । उस समय वहाँ कुलपति एवं कुलसचिव तथा अन्य अधिकारीगण राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्रों के कार्य का निरीक्षण कर रहे थे ।

तत्पश्चात् उसी दिन १० बजे **मुख्यमन्त्री श्री रामनरेश यादव** विश्वविद्यालय के झा छात्रावास में आए और उन्होंने राष्ट्रीय सेवा योजना के छात्रों द्वारा किये जा रहे बाढ़ राहत कार्य को देखा । कुलपति से इस सम्बन्ध में उनकी बातचीत भी हुई । आज दिन भर छात्रों ने बाढ़-राहत कार्य बड़े मनोयोग एवं परिश्रम से किया ।

१२-९-७८ को कोआर्डिनेटर श्री पाठक सेवा योजना के छात्रों को लेकर ढाब क्षेत्र वाराणसी गए । वहाँ की बाढ़ की भीषण विभीषिका को देखकर तुरन्त एक बस द्वारा खाद्य सामग्री श्री विजयशंकर पाण्डेय के नेतृत्व में भेजी गई तथा वहाँ उसका वितरण कराया गया । स्थान-स्थान पर टिके लोगों को टोलीनायक छात्र श्री रविशंकर दूबे एवं श्री गिरीश पाठक के सहयोगी छात्रों द्वारा पूड़ी के पैकेट बाँटे गये । १२-९-७८ को सेठ श्री बृजपालदास द्वारा प्राप्त खिचड़ी बंटवाई गई ।

दिनाङ्क १३-९-७८ को राष्ट्रीय सेवायोजना के छात्रों ने कचहरी, मिन्ट हाउस, नदेसर, चौकाघाट, जेल, पी० एम० टी० कालोनी, कमिश्नरी आदि स्थानों में ढाई हजार लोगों को पूड़ी के पैकेट, दियासलाई एवं नमक के पैकेट, बिसकुट आदि का वितरण किया । कुछ छात्र खाद्य सामग्री लेकर उस बाढ़ की विभीषिका में नाव पर बैठकर वाराणसी शहर के उस पार गए और वहाँ के लोगों को खाद्य-सामग्री दी । वहाँ के लोग कई दिन से पेड़ों पर बैठे हुए दिखाई दिये । काटन मिल से कुछ लोगों की अस्वस्थता का समाचार मिलते ही कुलपति ने कोआर्डिनेटर राष्ट्रीय सेवा योजना को वहाँ भेजा । टोली नायक छात्र से दवा वितरण व्यवस्था तत्काल कराई गई ।

दिनाङ्क १४-९-७८ को प्रातः ८ बजे रा० से० यो० के छात्र शिविर कार्यालय पर उपस्थित होकर बाढ़पीड़ितों की सहायता सामग्री को एकत्रित करने लगे और १० बजे तक उसको वितरित भी कर दिया गया । उसके पश्चात् श्रीमती केशर देवी गोयनका तथा मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय, मीरघाट द्वारा प्राप्त खाद्य सामग्री काटन मिल, आई० टी० आई० एवं विश्वविद्यालय परिसर में १२ बजे दिन में बाँटी गई । तत्पश्चात् २ कनस्टर मिट्टी का तेल, २ बोरा आटा, २ बोरा लाई, २ क्विन्टल की पूड़ी

औराई-चील्ह क्षेत्र में श्री सुरेन्द्रकुमार मिश्र के निर्देशन में छात्रों द्वारा बंटवाई गई।

दिनाङ्क १५-९-७८ को कुलपति आवास से प्राप्त दियासलाई एवं खाद्य सामग्री तथा जलपान सामग्री (चना, गुड़, लाई) आदि को तथा मीरघाट से १००० लोगों के लिये आयी पूड़ी को चील्ह क्षेत्र में बाँटने हेतु भेजा गया।

दिनाङ्क १६-९-७८ को शिविर का कार्य समाप्त होने की स्थिति में था, परन्तु ८ बजते-बजते शहर से अधिक खाद्य सामग्री प्राप्त हो जाने के कारण उस दिन भी विभिन्न स्थानों में जाकर बाढ़पीड़ितों की सहायता की गई। इसी दिन विश्वविद्यालय परिसर में टिके बाढ़ पीड़ितों द्वारा या गन्दे पानी द्वारा जो गन्दगी हो गई थी, उसे भी राष्ट्रीय सेवायोजना के छात्रों ने बड़े परिश्रम से साफ किया तथा ब्लीचिंग पाउडर, चूना आदि का छिड़काव भी किया।

इस १० दिन के विशेष शिविर में जो बाढ़ राहत कार्य यहाँ के छात्रों द्वारा हुआ, वह अत्यन्त प्रशंसनीय था, जिसे मुख्यमन्त्री, कुलपति एवं जिला प्रशासन ने स्वयं सराहा है।

१४ सितम्बर, १९७८

(ङ) शारदापीठाधीश्वर श्री शङ्कराचार्य महाराज का अभिनन्दन

भारतीय चातुर्धाम वेदभवनन्यास द्वारा आयोजित सर्ववेद शाखा-सम्मेलन के अवसर पर अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी (शारदापीठाधीश्वर) का मुख्य भवन हाल में काशी के नागरिकों द्वारा अभिनन्दन किया गया। आरम्भ में माल्यार्पण काशी के प्रमुख नागरिकों द्वारा तथा भूतपूर्व न्यायाधीश डा० शिवनाथ काटजू द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री काटजू ने आपको मानपत्र समर्पित किया। वेद की विभिन्न शाखाओं का सस्वर पाठ किया गया।

नागरिकों की ओर से काशी के प्रमुख नागरिक सेठ श्री बृजपालदास एवं प० बृजमोहन दीक्षित वैद्य द्वारा अभिनन्दनपत्र पढ़ा और समर्पित किया गया।

अपने आशीर्वचन में स्वामी जी महाराज ने कहा कि वेद शाखा-स्वाध्याय के द्वारा जन-कल्याण सम्भव है और विश्वविद्यालय ही इसके लिए उपयुक्त स्थान है। वेद को आपने अमूल्य निधि बताया और इसे धर्म का मूल कहा। आपने कहा कि केवल सामवेद में एक सहस्र शाखाएं हैं और संयोग से यह स्वयं अपना काशीनरेश का तथा उनके कुमार का वेद है। हम सभी को उनका अनुकरण करना चाहिए और संस्कृत के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील होना चाहिए। आपने इस अवसर पर आदि शङ्कराचार्य की चर्चा की और कहा कि आप लोगों द्वारा प्रदर्शित यह सम्मान मेरे लिए नहीं, बल्कि आदि शङ्कराचार्य के लिए है। इसी उद्देश्य को लेकर हमने एक आचार्य स्तम्भ स्थापित किये जाने की कल्पना की है। उक्त कार्य के लिए आपने ११ हजार रुपये दान दिये जाने की घोषणा की और इसके लिए एक समिति की स्थापना की, जिसके संरक्षक काशीनरेश होंगे। समिति का स्वरूप यह होगा—काशीनरेश संरक्षक, सहसंरक्षक श्री बृजपालदास, श्री गिरिधारी लाल मेहता, कोषाध्यक्ष, श्री आत्माराम, सदस्य—भागीरथी देवी, डा०कमलादत्त त्रिपाठी, श्री बदरीनाथ शुक्ल, मंत्री—श्री चेल्ला लक्ष्मण शास्त्री। डा० काटजू ने गङ्गा की अविरल धारा को अवरुद्ध न करने के सम्बन्ध में प्रस्तुत अपने प्रस्ताव को स्पष्ट करते हुए इस सन्दर्भ में पूज्य मालवीय जी द्वारा किये गये प्रयास की चर्चा की और कहा कि गङ्गा की धारा वास्तव में भारतीय संस्कृति की धारा है और जीवन के अन्तिम क्षणों में इसको अवरुद्ध करने के विरुद्ध आवाज उठाने की महामना की जो धारणा उत्पन्न हुई, वह निःसन्देह सराहनीय है और हम सबको उसका अनुसरण करना चाहिए तथा केन्द्र एवं राज्य सरकार से इसे मनवाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

भू० पू० काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह ने श्रीचरणों में अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए कहा कि काशीवासियों की अपनी एक निराली परम्परा है और हर्ष का विषय है कि इस घोर विपत्ति के समय में भी काशीवासी लोगों की सहायता करते हुए अपनी पूर्व परम्परा को कायम रखे हुए हैं। आपने कहा कि वेद की रक्षा टेप रिकार्ड अथवा पुस्तकालय के द्वारा नहीं, वरन् वेदपाठी ब्राह्मणों के कण्ठ द्वारा ही हो सकती है। आपने यह भी कहा कि वेद के साथ भारतीय विद्याओं की भी रक्षा होनी चाहिए, जैसे—आयुर्वेद, ज्योतिष, भारतीय राजनीति आदि। उत्तर भारत में बाढ़ के विप्लव की चर्चा करते हुए आपने डा० काटजू के प्रस्ताव का अनुमोदन किया और कहा कि यदि योजनाबद्ध रूप से प्रकृति का उपयोग न किया गया तो इसका दुष्परिणाम हम सबको भुगतना होगा।

विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने यहाँ आयोजित किये गये इस समारोह के सन्दर्भ में मुख्य अतिथि भू० पू० काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह तथा डा० काटजू एवं अन्य सम्मानित व्यक्तियों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए कहा कि यह सौभाग्य का विषय है कि इस विश्वविद्यालय में श्रीचरणों का आगमन हुआ है और वेद शाखा-स्वाध्याय में विभिन्न शाखाओं का पाठ हुआ है। आपने विनम्रतापूर्ण

शब्दों में विश्वविद्यालय द्वारा किये जा रहे वेद सम्बन्धी कार्य की चर्चा की और कहा कि विश्वविद्यालय में प्रायः प्रति वर्ष इस प्रकार का आयोजन किया जाता है। विश्वविद्यालय की यह योजना है कि प्रत्येक वेद शाखा के दो विद्वानों द्वारा विश्वविद्यालय में नियमित रूप से वेद पाठ कराया जाय। इस पर होने वाले व्यय के लिए शासन से पत्राचार भी किया जा रहा है। इस पर वार्षिक व्यय लगभग ६५ हजार रुपये होगा। आपने इस अवसर पर श्री गोविन्दाचार्य, श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी, डा० कमलादत्त त्रिपाठी आदि के प्रति भी विशेष आभार प्रकट किया। बाढ़ की चर्चा करते हुए आपने विश्वविद्यालय द्वारा किये गये सहायता कार्यों का उल्लेख किया। इस कार्य में छात्रों द्वारा किये गये सहयोग की उन्होंने प्रशंसा की और स्वामी श्री शङ्कराचार्य जी द्वारा बाढ़पीड़ितों के सहायतार्थ दिये गये १००१) रु० की सहायता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। आपने यह भी बताया कि स्थानीय संस्थाओं और नागरिकों ने भी बाढ़राहत कार्य में विश्वविद्यालय की सहायता की है। विश्वविद्यालय इन सभी का आभारी है।

अन्त में विभिन्न शाखाओं के वेद-पाठकों को सम्मानित किया गया और उन्हें दक्षिणा भी दी गयी। इसके अनन्तर स्वामी श्री शङ्कराचार्य जी महाराज विश्वविद्यालय के कुलपति आवास पर पधारे। कुलपति एवं उनके परिवार ने पूज्यपाद का पूजन अर्चन किया।

२८ सितम्बर १९७८

(च) छात्रसंघ का निर्वाचन

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय छात्रसंघ १९७८-७९ का निर्वाचन दि० २८-९-७८ को सम्पन्न हुआ। निर्वाचनाधिकारी श्री सत्यव्रत शर्मा ने निम्नलिखित प्रत्याशियों को निर्वाचित घोषित किया :—

अध्यक्ष—श्री जगन्नाथ पाण्डेय।
उपाध्यक्ष—श्री गार्गीप्रसाद मिश्र।
महामन्त्री—श्री पारसनाथ मिश्र।
उपमन्त्री—श्री सदानन्द शुक्ल।

कक्षा प्रतिनिधि—

शोध छात्र—(१) श्री गौरीशंकर प्रसाद, (२) सुश्री वीणा कुमारी बुटौलिया।
आचार्य तृतीय वर्ष—(१) श्री त्रिभुवन मिश्र,
(२) श्री सूर्यप्रकाश द्विवेदी।
आचार्य द्वितीय वर्ष—(१) श्री परमात्मा दूबे,
(२) श्री रमेशचन्द्र द्विवेदी।
आचार्य प्रथम वर्ष—(१) श्री प्रभातकुमार शर्मा,
(२) श्री ओमप्रकाश लाल।
शिक्षाचार्य—श्री लालजी पाण्डेय
शिक्षा शास्त्री—श्री सुरेन्द्रकुमार पिपरैया।
ग्रन्थालय विज्ञान शास्त्री—श्री बालमुकुन्द तिवारी।
शास्त्री द्वितीय वर्ष—(१) श्री उदयशंकर पाण्डेय,
(२) श्री राजेन्द्रप्रसाद वर्मा।
शास्त्री प्रथम वर्ष—(१) श्री मुन्नालालचन्द्र पुरौया,
(२) श्री रमेशकुमार पाण्डेय।
संस्कृत प्रमाणपत्रीय—श्री फा कमल (तृतीय वर्ष)
श्री कुण्डल (द्वितीय वर्ष),
श्री अरुणकुमार देवशर्मा (प्रथम वर्ष)।

३० सितम्बर, १९७८

(छ) अखिल भारतीय वाक्पटुता प्रतियोगिता

दि० ३०-९-७८ को अखिल भारतीय वाक्पटुता प्रतियोगिता के निमित्त निर्णायक समिति की बैठक मुख्य भवन में सम्पन्न हुई। डा० देवस्वरूप मिश्र छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष इस समिति के संयोजक थे। श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक संस्कृत पाठशालाएं, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद; श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, आचार्य एवं अध्यक्ष साहित्य विभाग; डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, आचार्य एवं अध्यक्ष प्राचीनव्याकरणागमदर्शन विभाग; डा० श्रीराम पाण्डेय, आचार्य एवं अध्यक्ष न्यायवैशेषिक विभाग; डा० मुरारीलाल शर्मा, आचार्य एवं अध्यक्ष ज्यौतिष विभाग; श्री सूर्यनारायण उपाध्याय, प्राध्यापक एवं अध्यक्ष धर्मशास्त्र विभाग; श्री रामसम्मुख द्विवेदी, प्रधानाचार्य दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी; श्री ज्वालाप्रसाद गौड, प्रधानाचार्य संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी; श्री नवरङ्ग चतुर्वेदी, प्रधानाचार्य रामानुज संस्कृत महाविद्यालय, श्री रामसेवक झा, न्यायविभागाध्यक्ष उदासीन संस्कृत

महाविद्यालय, श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री, मीमांसा प्राध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय निर्णायक मण्डल के सदस्य थे।

निम्न छात्रों का संमुखाङ्कित विषयों में चयन हुआ :—

१.	श्री व्रजविहारी त्रिपाठी (दक्षिणामूर्ति सं० म०)	व्याकरण
२.	श्री राममूर्ति द्विवेदी (साधुबेला सं० म०)	साहित्य
३.	श्री राधेश्याम त्रिपाठी (उदासीन सं० म०)	न्याय
४.	श्री कमलेश झा (सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि०)	वेदान्त
५.	श्री गायत्रीनन्दन ब्रह्मचारी (,,)	मीमांसा
६.	श्री प्रभाकर मिश्र (,,)	ज्यौतिष
७.	श्री अनिलकुमार पाठक (दक्षिणामूर्ति सं०म०)	सांख्य-योग
८.	श्री कैलाशदास (सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि०)	धर्मशास्त्र

डा० श्रीराम पाण्डेय अभिभावक के रूप में इनके साथ जायेंगे।

२७ अक्टूबर, १९७८

(ज) आत्मदर्शन और लोक-व्यवहार

[श्री रणवीर संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू में दिनांक २७-१०-७८ को कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा प्रदत्त भाषण का सारांश।]

श्री रणवीर केन्द्रीय विद्यापीठ, जम्मू में जम्मू विश्वविद्यालय के कुलपति डा० श्यामाचरण दुबे की अध्यक्षता में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल के भाषण का आयोजन दिनांक २७-१०-७८ को उक्त विद्यापीठ के प्राचार्य डा० मण्डन मिश्र द्वारा किया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मशास्त्र विभाग के अध्यक्ष उपाचार्य श्री राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय द्वारा वैदिक मङ्गलाचरण और विद्यापीठ की छात्राओं द्वारा संस्कृत में स्वागत-गान के अनन्तर डा० मिश्र ने उपस्थित सभासदों को कुलपति का परिचय दिया। अध्यक्ष डा० दुबे ने कुलपति के प्रति आभार व्यक्त करते हुए उनसे भाषण देने का अनुरोध किया।

कुलपति श्री शुक्ल ने भाषण के लिए आमन्त्रित किये जाने के लिये कृतज्ञता व्यक्त करते हुए सभासदों की रुचि के अनुसार 'आत्मदर्शन और लोक-व्यवहार' विषय पर भाषण देते हुए कहा कि संस्कृत भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ निधि है; उसका वैदिक वाङ्मय विश्व का सर्वप्राचीन वाङ्मय है; उपनिषद्, जिसे वेदान्त कहा जाता है, उसका सर्वोत्तम भाग है, जिसका मनुष्य को सर्वप्रथम और सुस्पष्ट निर्देश है—'आत्मानं विद्धि', 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'। मनुष्य को सबसे पहले आत्मा को, अपने आपको जानना चाहिए, अपनी पहचान करनी चाहिए। उपनिषद् के इस आदेश का अभिप्राय व्यक्त करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि आत्मदर्शन के लिये उपनिषद् का यह आदेश निरङ्कुश राजाज्ञा नहीं है, किन्तु मानव जाति की प्राथमिक आवश्यकता है, क्योंकि मनुष्य जो कुछ करता है, वह आत्मतुष्टि के लिये करता है; जिस कार्य से आत्मतुष्टि होती है, उसे ही वह करता है; अपना निजी घरेलू कार्य हो, समाज या राष्ट्र की सेवा हो, सांसारिक व्यवसाय, धार्मिक अनुष्ठान या आध्यात्मिक साधना हो, सभी कार्यों में मनुष्य की आत्मतुष्टि की भावना ही काम करती है। जब सब अपनी आत्मा की तुष्टि के लिये ही किया जाता है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि सबसे पहले अपने आपको ही जाना जाय।

स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मदृष्टि यदि अपने शरीर तक ही सीमित होगी तो उसका सारा प्रयत्न अपने शरीर के हित तक ही सीमित होगा और यदि उसकी आत्मदृष्टि राष्ट्र और विश्व तक फैलेगी, तो उसके जीवन का स्तर ऊँचा उठेगा और उसकी सारी प्रवृत्ति राष्ट्र और विश्व की हितभावना से प्रेरित होगी। भारत के संस्कृत वाङ्मय में मनुष्य की आत्मदृष्टि को राष्ट्र और विश्व से भी ऊपर विश्वातीत तत्त्व की ओर आकृष्ट किया गया है। फलतः इस तत्त्व के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क और हृदय इतना प्रोन्नत हो सकता है कि वह जातीयता, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय तथा राष्ट्रवाद की सीमाओं और विश्व की संघर्षमय भावनाओं से ऊपर उठकर मानव के समक्ष एक आदर्श जीवनदृष्टि प्रस्तुत करे। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य का व्यक्तित्व आत्मा की सच्ची पहचान के आधार पर पूर्ण विकसित हो जाय। भारत के पूर्ववर्ती तत्त्वदर्शी मनीषियों, सन्तों और आचार्यों ने वैदिक वाङ्मय की विभिन्न व्याख्याओं तथा अपने जीवन की गतिविधियों द्वारा सम्पूर्ण विश्व को यही सन्देश देने का प्रयत्न किया है। इस सन्देश को पुनर्जीवित करने और उससे पूरे विश्व को लाभ पहुँचाने के लिये ही संस्कृत के प्रचार-प्रसार की तथा उसके विशाल बहुमुखी वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है।

अध्यक्ष पद से जम्मू विश्वविद्यालय के कुलपति डा० दुबे ने श्री शुक्ल के विचारों को अपने अनुसार स्पष्ट करते हुए कहा—"यह ठीक है कि संस्कृत-शास्त्रों में निहित गम्भीर ज्ञान का अध्ययन किया जाय, किन्तु वर्तमान विज्ञान, तकनीक और बुद्धिवाद के युग में यह भी आवश्यक है कि मनुष्य अपनी तार्किक दृष्टि से भी शास्त्रीय ज्ञान को हृदयङ्गम करने का प्रयत्न करे"।

अन्त में प्राचार्य डा० मण्डन मिश्र ने धन्यवाद प्रदान किया।

द्वारिकापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी का
चातुर्धाम वेदन्यास समारोह के अवसर पर विश्वविद्यालय में अभिनन्दन
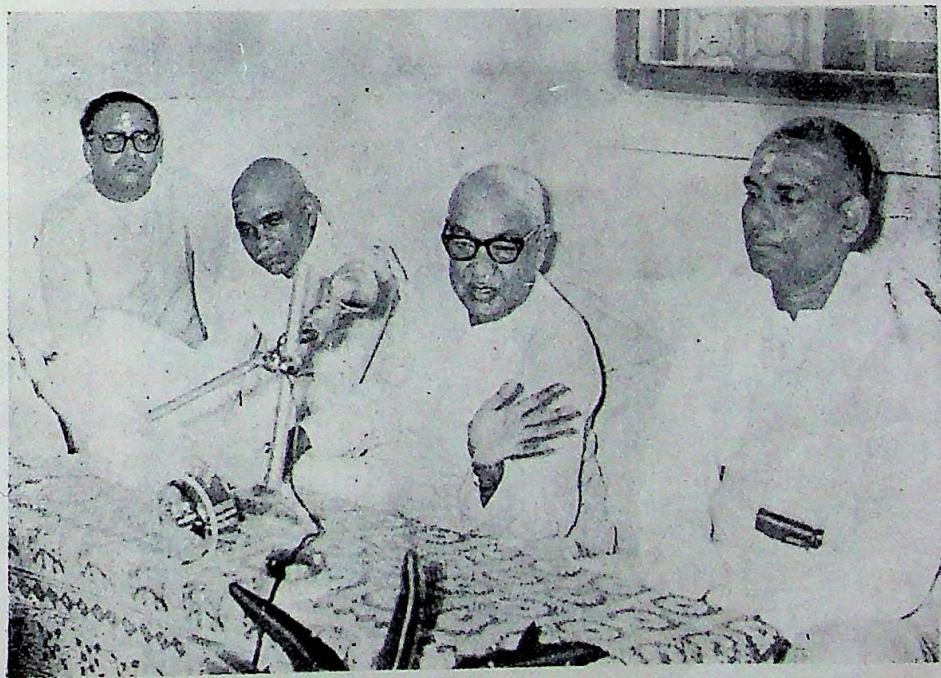
धन्वन्तरि जयन्ती में भाषण करते हुए अध्यक्ष श्री विश्वनाथ द्विवेदी, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी,
डा० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी एवं डा० देवस्वरूप मिश्र
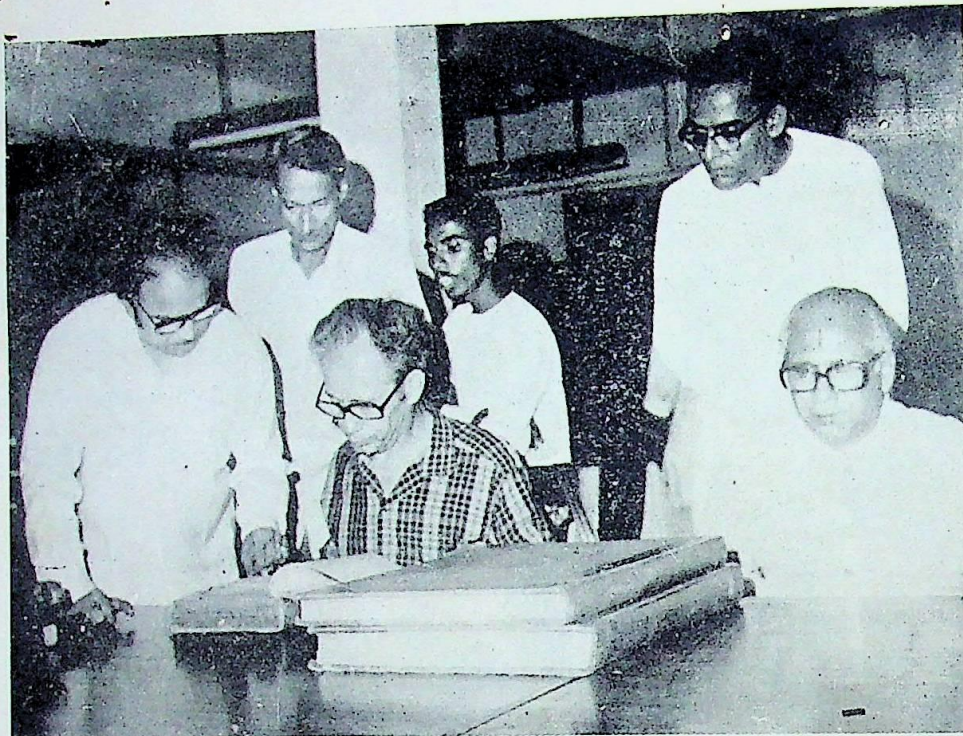
सरस्वती भवन में दुर्लभ ग्रन्थों का अवलोकन करते हुए रूसी विद्वान् प्योत्र बरान्निकोव ;
श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी एवं श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
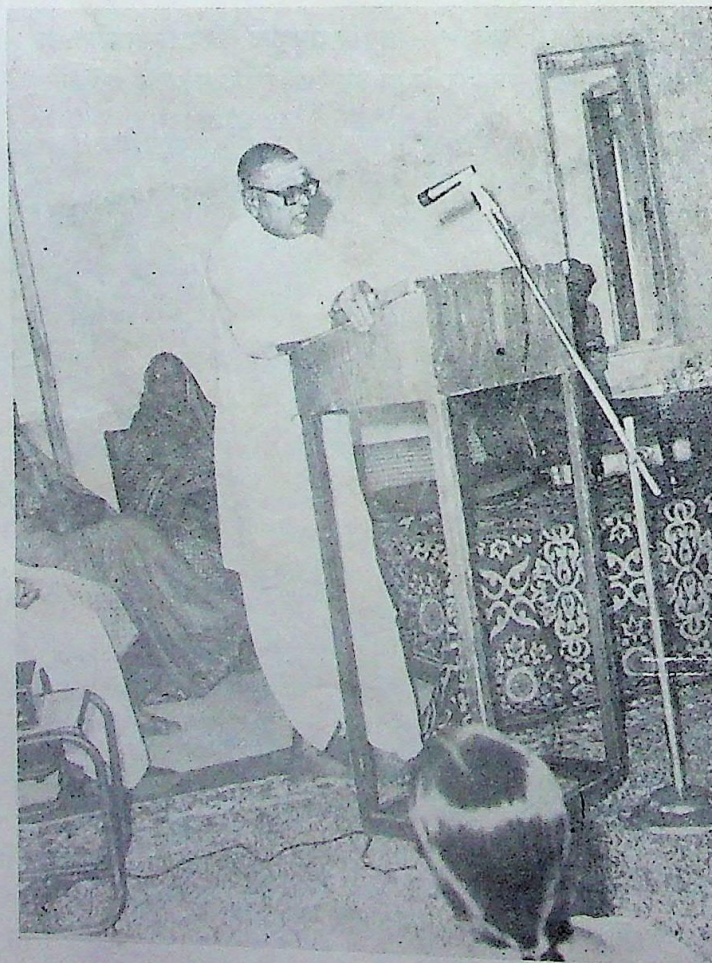
श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू में भाषण करते हुए
कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल

३ नवम्बर, १९७८

(झ) श्री सुन्दर ग्रन्थावली प्रकाशनोद्घाटन समारोह

'सन्तों तथा महात्माओं के विचार संकीर्ण नहीं होते। वे जाति, धर्म और भाषा की संकुचित सीमा में अपने को कभी आबद्ध नहीं करते। उनकी सर्वदा और सर्वत्र समदृष्टि रहती है। इन्हीं महात्माओं ने हमें सभ्यता और संस्कृति का बोध कराया। जैसे भारत की विभिन्न नदियां अपने तटवर्ती क्षेत्रों को उर्वर बनाती हुई वहां के निवासियों का अनादि काल से कल्याण करती आ रही हैं, उसी प्रकार सन्तों तथा महात्माओं के उपदेशों से मानवमात्र का सर्वविध चतुर्दिक् कल्याण तथा सर्वांगीण विकास होता आ रहा है।'

उपर्युक्त उद्गार हैं सन्त शिरोमणि अवधूत भगवान् राम के, जिसे उन्होंने गत ३ नवम्बर, १९७८ को सायंकाल मुख्य भवन में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता तथा श्री दादूदयाल शोध संस्थान ट्रस्ट, वाराणसी के तत्त्वावधान में आयोजित श्री सुन्दर ग्रन्थावली प्रकाशनोद्घाटन समारोह के अवसर पर व्यक्त किये।

सुप्रसिद्ध सन्त भगवान् राम ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि सन्त दादूदयाल ने भी सन्तों की इसी गौरवशाली परम्परा को अपनाकर मनुष्य जाति का चतुर्दिक् कल्याण किया है। सामान्य जनता की भाषा में ही उन्होंने अपने उपदेश दिये हैं।

माननीय अवधूत ने बताया कि महात्माओं द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने से वर्तमान जगत् की असंगतियों का परिहार होगा तथा घृणा, ईर्ष्या और स्वार्थ की स्पर्द्धा का अन्त होगा। सन्त लोग 'मैं' और 'आप' की अहं भावना से दूर रहते हैं। अपने द्वारा किये गये कार्यों को भी वे अपना कार्य नहीं मानते। वे मानते हैं कि उन कार्यों को स्वयं ईश्वर उनसे करा देता है। सन्तों का सर्वदा यह लक्ष्य रहा है कि मनुष्य मनुष्य बन जाय। जब मनुष्य मनुष्य से पशु बन जाता है, तो वह अपने मनुष्योचित कर्मों से भी च्युत हो जाता है।

पूज्य भगवान् राम ने आगे कहा कि आज मनुष्य भयग्रस्त है। इस भय के कारण पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि मनुष्य को जो करना चाहिये, उसे वह नहीं कर रहा है। मनुष्य आज अपने ज्ञान-विज्ञान, माता-पिता, मित्र-बन्धु तथा गुरु सबसे भयभीत है। इस भय से मुक्ति तभी सम्भव है, जब हम महापुरुषों के उपदेशों को अपने जीवन में आत्मसात् करें। इस निर्भयता के माध्यम से ही हम ईश्वर के निकट जाने में सक्षम हो सकते हैं।

अघोर पंथ के अनन्य साधक ने कहा कि जिस प्रकार गंगा जी अपने उद्गम स्थल पर एक पतली जलधारा के रूप में दिखाई पड़ती हैं, किन्तु जैसे जैसे वे आगे बढ़ती हैं, वह तन्वंगी धारा विशाल जलाशय के रूप में परिणत हो जाती है, इसी प्रकार सन्तों का भी जीवन होता है। वे अपने जन्म स्थल को गौण मानते हुए अपनी साधना में जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनका कार्यक्षेत्र भी विशाल और व्यापक होता जाता है। जिस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये व्यक्तियों को कई वर्षों तक पुस्तकालयों और विद्यालयों की खाक छाननी पड़ती है, उस ज्ञान को सन्तों और महात्माओं की कृपा और आशीर्वाद से एक पल में प्राप्त किया जा सकता है। मगर इस प्रकार प्राप्त ज्ञान का अभ्यास आजीवन करना पड़ता है। तभी वह सम्पुष्ट, उपयोगी और जन-कल्याणकारी होता है।

विद्वान् सन्त शिरोमणि ने अपने आशीर्वचन का समापन करते हुए बताया कि सन्त और महात्मा अमर होते हैं। कबीर, नानक, सूर, तुलसी, दादूदयाल, सुन्दरदास, रविदास आज भी हमारे बीच हैं और आगे भी रहेंगे। ये महापुरुष विद्वानों के भीतर प्रवेश कर उनसे नाना प्रकार के सत् कार्य कराते रहते हैं।

समारोह के अध्यक्ष कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने सद्यः-विमोचित 'श्री सुन्दर ग्रन्थावली' के पृ० ४७ की कुण्डली की प्रथम दो पंक्तियों—

> "बानी बहुत प्रकार है ताको नाहि न अन्त।
> जोई अपने काम की सोई सुनिय सियन्त॥"

को उद्धृत करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि इन पंक्तियों में वही भाव व्यक्त किया गया है, जो "अनन्ता वै वेदाः" इस वैदिक वाक्य में, तथा

> "यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
> तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः"॥

श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्त किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सभी सम्प्रदायों और धर्मों की यह मान्यता है कि उनकी बाह्य पद्धतियों में परस्पर भेद होते हुए भी उनके लक्ष्य में भिन्नता नहीं है, अपितु एकरूपता है। सभी साधना मार्गों का चरम लक्ष्य एक ही है। भारत के समग्र वाङ्मय का यह समान मन्तव्य है कि मनुष्य चाहे जिस देश, समाज, जाति अथवा सम्प्रदाय का हो, चाहे जो भाषा बोलता हो, अथवा चाहे जो भी उसका रूप रंग हो, सबमें एक ही अखण्ड ज्योति प्रज्वलित हो रही है। उस ज्योति की ओर मानव समाज को उन्मुख करना ही आचार्यों एवं सन्तों का लक्ष्य है। इस लक्ष्य को सम्मुख रखकर मानवता का उन्नयन करने वाले भारतीय सम्प्रदायों में दादू सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो

६

'श्री सुन्दर ग्रन्थावली' के माध्यम से अच्छे प्रकार से जाना जा सकता है।

ग्रन्थ के सम्पादक स्वामी द्वारिकादास शास्त्री के प्रयासों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि श्री सुन्दरदास की रचनाओं से आज की पीड़ित मानवता का कल्याण अवश्यम्भावी है। आज की विभिन्न संकीर्णताओं पर तीव्र प्रहार करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि इनकी उत्पत्ति का मूल कारण आज की दूषित तथा कलुषित राजनीति है और इन संकीर्णताओं का समूल उन्मूलन 'श्री सुन्दर ग्रन्थावली' जैसे सद्ग्रन्थों से ही सम्भव है।

ग्रन्थ का विमोचन करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति तथा हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध समालोचक श्री करुणापति त्रिपाठी ने कहा कि सुन्दरदास जी दादूदयाल के प्रमुख शिष्य थे। उन्हें ६ वर्षकी अवस्था में ही भगवान् का साक्षात्कार हो गया था। उनका सुन्दर रूपरंग देखकर ही दादू ने उनका नाम सुन्दर रखा। 'सुन्दर विलास' उनका रीति-कालीन उत्कृष्ट काव्यग्रन्थ है।

विद्वान् वक्ता ने सुन्दरदास का परिचय देते हुए कहा कि वे संस्कृत के भी विद्वान् थे। १८ वर्षों तक काशी में रहकर उन्होंने साहित्य, व्याकरण और वेदान्त का अध्ययन किया था। सांख्य तथा योग के भी वे उच्च कोटि के विद्वान् थे। वे निर्गुण ज्ञान-मार्गी उपासक थे। उनकी समस्त रचनाओं में उनके अगाध ज्ञान तथा अनुभूति का मिश्रण है। निर्गुण ज्ञानाश्रयी मार्ग के साधक होते हुए भी सुन्दरदास ने अपने सम्प्रदाय में दोनों मार्गों का समन्वय करने का सुन्दर प्रयास किया है। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। उन्हें ९३ वर्ष की लम्बी आयु मिली थी। प्रायः सभी तीर्थों का उन्होंने भ्रमण किया था। वे हिन्दी, संस्कृत, फारसी तथा गुजराती भी जानते थे। श्री त्रिपाठी ने कहा कि सुन्दरदास के हृदय में लोक कल्याण की प्रबल भावना थी। अपने ग्रन्थों में उन्होंने पाखण्ड, अन्धविश्वास और आडम्बर का विरोध किया।

सन्त-साहित्य-मर्मज्ञ तथा सुप्रसिद्ध समीक्षक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि सुन्दरदास स्वानुभूत ज्ञान के धनी थे और शास्त्रों का भी उन्होंने अध्ययन किया था। उनका छन्द और भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। इस दृष्टि से वे अन्य सन्तों से भिन्न थे।

आचार्य द्विवेदी ने बताया कि सुन्दरदास ग्रन्थावली के प्रथम भाग का प्रकाशन विद्याभूषण पुरोहित श्री हरिनारायण जी ने किया था। अपने नये ग्रन्थ में पुरोहित जी की भूमिका को वैसे ही रखने का स्वामी द्वारिकादास का संकल्प उत्तम है। आचार्य द्विवेदी ने यह रहस्योद्घाटन भी किया कि पुरोहित जी के ग्रन्थ की भूमिका स्वयं कवीन्द्र रवीन्द्र ने शान्ति निकेतन में लिखी, जिसका हिन्दी अनुवाद उन्होंने (आचार्य द्विवेदी) किया था।

आचार्य द्विवेदी ने आगे कहा कि सुन्दरदास जी ने अपनी कृतियों में अपने अनुभूत ज्ञान के साथ शास्त्रों के ज्ञान का अद्भुत सम्मिश्रण किया है। उन्होंने बड़ी गम्भीर बातों को सामान्य भाषा में लिखा है। सन्तों ने लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर जो कुछ दिया, उसमें अपने भीतर से सब कुछ उलीच कर दे देने की प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण है।

विख्यात विचारक तथा मनीषि डा० जयदेव सिंह ने भारतीय संस्कृति की तीन धाराओं का उल्लेख किया। प्रथम अनुभूति-परम्परा, या ऋषियों की धारा, जिसमें केवल अनुभूति का वर्णन मिलता है। इसमें तर्क नहीं है। द्वितीय शास्त्र-परम्परा, जिसमें शास्त्रियों द्वारा तर्क के आधार पर ऋषियों के ज्ञान की विवेचना की गई है। तृतीय सन्त-परम्परा, जिसमें सन्तों ने आत्मा के अमरत्व का गान किया तथा मानवता के पुनीत सन्देश को जन-जन तक पहुँचाया। सन्तों ने हिन्दी के माध्यम से अपना कार्य किया। प्रथम दो परम्पराओं की माध्यम संस्कृत थी। डा० सिंह ने कहा कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में इन सन्तों का विशेष योगदान रहा है। महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान तक हिन्दी को पहुँचाने का श्रेय इन्हीं सन्तों को प्राप्त है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण में सुन्दरदास के दो भजनों को प्रस्तुत किया गया। श्री दादूदयाल शोध संस्थान ट्रस्ट के अध्यक्ष स्वामी क्षमाराम ने आगत अतिथियों का स्वागत चन्दन का टीका लगाकर किया। श्री मुरारीलाल केडिया ने माल्यार्पण किया। संस्कृत विश्वविद्यालय के राजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री शम्भुनाथ मिश्र ने अपने स्वागत भाषण में काशी की प्राचीन परम्परा की ओर संकेत करते हुए समागत अतिथियों एवं विद्वानों का स्वागत किया। ग्रन्थ के सम्पादक स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ने 'श्री सुन्दर ग्रन्थावली के सन्दर्भ में.....'शीर्षक अपना मुद्रित भाषण प्रस्तुत किया। इस भाषण में स्वामी जी ने दादूदयाल तथा सुन्दरदास का विस्तृत परिचय देते हुय ग्रन्थ सम्पादन की अपनी योजना पर विस्तृत प्रकाश डाला।

७ नवम्बर, १९७८

(ज) न्यायशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता

[दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में दि० ७-११-७८ को कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल के द्वारा दिये गये भाषण का सारांश।]

दिल्ली विश्वविद्यालय ने दिनाङ्क ७-११-७८ को व्याख्यान के लिये कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल को आमन्त्रित किया था। दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० रसिकविहारी जोशी की अध्यक्षता में व्याख्यान का आयोजन हुआ। सर्वप्रथम एम० ए० कक्षा की छात्राओं ने संस्कृत में स्वागत-गान प्रस्तुत किया और डा० जोशी ने श्री शुक्ल का स्वागत करते हुए एवं सभा को उनके वैदुष्य का परिचय देते हुए उनसे 'न्यायशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता' पर भाषण देने का अनुरोध किया।

श्री शुक्ल ने भाषण का प्रारम्भ करते हुए कहा कि संस्कृत वाङ्मय की प्रत्येक शाखा का असाधारण महत्त्व है और मानवता के उत्थान के लिए सभी शाखाओं के अध्ययन की आवश्यकता एवं उपयोगिता है। इस सन्दर्भ में न्याय-शास्त्र के विषय में कुछ विशेष न कहकर उसके सम्बन्ध में चाणक्य के इस वचन का स्मरण करा देना ही पर्याप्त है :—

'प्रदीपः सर्वविद्यानां उपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां सैव आन्वीक्षिकी मता'॥

वात्स्यायन ने गौतम के न्यायसूत्र का भाष्य प्रस्तुत करते हुए प्रथम सूत्र के अवतरण भाष्य में उपर्युक्त वचन का उल्लेख किया है और "प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणम् अन्वीक्षा, तया प्रवर्तते या विद्या सा अन्वीक्षिकी, न्यायविद्या, न्यायशास्त्रम्" कहते हुए आन्वीक्षिकी शब्द का अर्थ न्यायशास्त्र किया है। न्यायशास्त्र का अर्थ है अनुमान-शास्त्र। स्पष्ट है कि अनुमान समस्त विद्याओं का प्रकाशक है, क्योंकि पूर्वजों द्वारा अर्जित विद्यायें हमें उनके ग्रन्थों से ही ज्ञात होती हैं; ग्रन्थ भाषात्मक होते हैं और भाषा के शब्दों का संकेत सर्वप्रथम व्यवहार-मूलक अनुमान से ही होता है। यद्यपि यह देखा जाता है कि एक भाषा का ज्ञान अपर भाषा के माध्यम से कराया जाता है; जैसे जो हिन्दी जानता है और अँग्रेजी नहीं जानता, उसे हिन्दी के माध्यम से अँग्रेजी का ज्ञान कराया जाता है। किसी भाषा का ज्ञान उसी भाषा के माध्यम से नहीं कराया जा सकता, यदि उस व्यक्ति को उस भाषा का कुछ भी ज्ञान न हो। प्रत्यक्ष प्रणाली (direct method) से बच्चों को भाषा की शिक्षा दी जाती है, किन्तु उसमें भी व्यवहारक्रम का ही सर्वप्रथम उपयोग किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि जब तक व्यवहारमूलक अनुमान से शब्द का संकेतग्रह न होगा, तब तक भाषा के माध्यम से किसी विद्या का ज्ञान नहीं हो सकता। इसी प्रकार अनुमानशास्त्र सभी कर्मों का भी प्रथम साधन है। अनुमान के बिना मनुष्य की किसी कार्य में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। जैसे कोई मनुष्य प्यास लगने पर पानी पीता है। निश्चित है कि पानी पीने से प्यास बुझती है, इस धारणा से ही वह पानी पीता है; किन्तु जो पानी पीता है, उसके पीने से प्यास बुझेगी, यह निश्चय अनुमान के बिना सम्भव नहीं है। जो मनुष्य पानी पीकर प्यास बुझा चुका होता है, वही पानी में प्यास बुझाने की क्षमता के अनुभव से नये पानी में उस क्षमता का अनुमान करके उसके पीने में प्रवृत्त होता है। यही स्थिति मनुष्य के सारे कार्यों की है। अतः स्पष्ट है कि अनुमान सभी कर्मों का प्रथम उपाय है।

अनुमान सभी धर्मों का भी आश्रय है; जैसे न्यायशास्त्र में वर्णित द्रव्यत्व आदि धर्म कार्य-सामान्य के समवायादिकारणता के नियामक रूप में अनुमान द्वारा ही सिद्ध होते हैं एवं दान, स्नान, यज्ञ आदि से उत्पन्न पुण्यात्मक धर्म की भी सिद्धि उनमें शास्त्रोक्त स्वर्ग आदि की हेतुता की उपपत्ति के लिये उन कर्मों के व्यापार-रूप में अनुमान द्वारा ही सम्पन्न होती है। यदि दान-स्नान को ही धर्म माना जाय तो स्वर्ग आदि की हेतुता के रूप में उनका भी ज्ञान शास्त्र द्वारा होता है और शास्त्र शब्द के संकेतग्राहक अनुमान द्वारा ही दान आदि में स्वर्गादिहेतुता के अवबोधक होते हैं। इस प्रकार जब स्पष्ट है कि अनुमान के बिना यतः किसी विद्या का अवबोध, किसी कर्म का सम्पादन और किसी धर्म का ज्ञान सम्भव नहीं है, तो अनुमान का स्वरूप और उसके योग की प्रणाली की शिक्षा देनेवाले न्याय शास्त्र (अनुमान शास्त्र) की उपेक्षा कैसे की जा सकती है?

डा० रसिकविहारी जोशी ने अत्यन्त सुबोध भाषा में न्याय-शास्त्र के महत्त्व और उपयोगिता पर प्रकाश डालने के लिये श्री शुक्ल को धन्यवाद दिया और भविष्य में भी दार्शनिक विषयों पर उन्हें भाषण देने का आग्रह किया।

११ नवम्बर, १९७८

(ट) रवीन्द्रालय, लखनऊ में संस्कृत कवि-सम्मेलन

दिनाङ्क ११-११-७८ को रवीन्द्रालय, लखनऊ में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी की ओर से अखिल भारतीय संस्कृत कवि-सम्मेलन का आयोजन कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में हुआ। राष्ट्र के सम्माननीय श्री चन्द्रभान गुप्त, राज्य शिक्षा-मन्त्री श्री राजबली तिवारी, मुख्य मन्त्री श्री रामनरेश यादव आदि सभा मंच पर विराजमान थे। कवि-सम्मेलन में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, प्रयाग विश्वविद्यालय तथा श्री नन्दलाल बाजोरिया आदि संस्कृत महाविद्यालयों के एवं उत्तर प्रदेश के लखनऊ, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद आदि प्रमुख नगरों के कविगण उपस्थित थे। उत्तर

प्रदेश के अतिरिक्त बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल के भी अनेक कवियों ने इस कवि-सम्मेलन में भाग लिया था। अपनी कविताएँ प्रस्तुत करने वाले कवियों में श्री शारदाचरण दीक्षित, आगरा; श्री राजेन्द्र मिश्र, प्रयाग विश्वविद्यालय; श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश; श्री श्रीराम पाण्डेय, श्री शिवजी उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय; श्री रतिनाथ झा, श्री शिवदत्त चतुर्वेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आरम्भ में सम्मेलन के संयोजक श्री कमलापति मिश्र, निदेशक, संस्कृत विभाग, आकाशवाणी, लखनऊ ने कवि-सम्मेलन के आयोजन की उपयोगिता बतायी और श्री चन्द्रभानु गुप्त के शक्तिशाली राष्ट्र-नेतृत्व और व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए उनसे सम्मेलन का उद्घाटन करने की प्रार्थना की। श्री गुप्त ने संस्कृत के महत्त्व की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा कि राष्ट्र के स्वतन्त्र होने के समय यदि राष्ट्र-नेताओं तथा देश ने संस्कृत की ओर ध्यान दिया होता और उसके प्रचार-प्रसार को व्यापक बनाकर लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया होता, तो आज अपने देश में सम्पर्क भाषा अथवा राष्ट्रभाषा को लेकर जो भाषा सम्बन्धी विवाद खड़ा है, उसे अवसर न मिलता। अब भी समय है कि इस भाषा के अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाय और इसे लोकप्रिय बनाकर इसके अक्षय भण्डार से भारत की सभी भाषाओं को समृद्ध किया जाय। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी को इस कार्य में नेतृत्व करना चाहिए।

मुख्य मन्त्री श्रीरामनरेश यादव ने जो दिल्ली से विमान यात्रा कर सीधे कवि-सम्मेलन में ही उपस्थित हुए थे, अपने भाषण में संस्कृत के प्रति जो आदर व्यक्त किया और जिस हृदयस्पर्शी भाषा में संस्कृत के व्यापक राष्ट्र-प्रसार के लिये अनुरोध किया और उस कार्य में अपने योगदान का जो आश्वासन दिया, वह उल्लेखनीय रहा। पूरी सभा ने तालियाँ बजाकर उनके संस्कृत प्रेम के लिये उन्हें अभिनन्दित किया।

अध्यक्ष पद से कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने श्री गुप्त, मुख्य मन्त्री, राज्य शिक्षा मन्त्री श्री तिवारी एवं सभा में उपस्थित प्रोफेसर को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर जैसे मनीषियों का स्वागत करते हुए कवि-सम्मेलन में आये हुए सभी कवियों और श्रोता विद्वानों के प्रति आभार प्रकट किया। श्री शुक्ल ने कहा कि संस्कृत ही भारत की वह अपूर्व सम्पत्ति है, जिसकी ओर सारा विश्व लालच और आशाभरी दृष्टि से देखता है। संस्कृत वाङ्मय में जो कुछ कहा गया है, वह सारे विश्व-मानव को दृष्टि में रखकर कहा गया है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्" ॥

भारत के इस संकल्प को संस्कृत वाङ्मय ने, अत्युदार और असंकीर्ण दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसमें जाति, सम्प्रदाय या देश की चर्चा नहीं है, वरन् प्राणिमात्र की सुख-समृद्धि और मङ्गल की कामना की गयी है। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि राष्ट्र ने अपनी स्वातन्त्र्योत्तर तीस वर्षों की लम्बी अवधि में इस देश की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति के संरक्षण और संवर्धन के निमित्त ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिसकी खुले हृदय से भरपूर प्रशंसा की जा सके; किन्तु जो भी कुछ किया गया है, उसके लिये सारा संस्कृत समाज शासन का आभारी है। वाराणसी और दरभङ्गा में संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना, केन्द्र में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की स्थापना और उसके माध्यम से कई केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठों की स्थापना जैसे कई कार्य राज्य एवं केन्द्रीय शासन द्वारा किये गये हैं, जिनसे संस्कृत प्रेमी जनता का उत्साहवर्धन हुआ है। उत्तर प्रदेश शासन ने संस्कृत अकादमी की स्थापना कर संस्कृत के प्रसार का एक नया स्रोत उद्घाटित किया है। अकादमी के सभी सदस्यों का संकल्प है कि कवि-सम्मेलन, संस्कृत नाटकों का अभिनय, संस्कृत के शास्त्रीय तथा लोकगीतों का आयोजन, संस्कृत की विभिन्न गोष्ठियों और सरल पत्र-पत्रिकाओं और लघु पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशनादि के द्वारा संस्कृत को सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश के सभी गाँवों में पहुँचा दें। हमारे मुख्य मन्त्री श्री यादव का भी ऐसा ही शुभ संकल्प है, जिसका संकेत अपने भाषण में उन्होंने किया है। किन्तु यह संकेत कर देना समीचीन है कि अकादमी को शासन द्वारा जो सुविधाएँ प्राप्त हैं वे अपर्याप्त हैं। उसे एक मोटरकार की अविलम्ब आवश्यकता है, क्योंकि उसके बिना हमारे प्रचार में गतिरोध उपस्थित होता है। अकादमी का अपना एक विशाल भवन भी होना चाहिए, जिसमें कार्यालय के अतिरिक्त पुस्तकालय, विद्वानों के भाषण एवं गोष्ठियों का आयोजन हो सके। इसके अतिरिक्त अकादमी के आर्थिक अनुदान में भी पर्याप्त वृद्धि की अपेक्षा है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रदेश की सहस्रों संस्कृत पाठशालाएँ और संस्कृत अकादमी अपने उदार मुख्य मन्त्री और राज्य शासन की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रही हैं। आशा है कि मुख्य मन्त्री महोदय अपने शासन की दृष्टि इन संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर तत्काल आकृष्ट करेंगे।

कवि-सम्मेलन के प्रारम्भ होने के पूर्व अकादमी के निदेशक श्री विश्वनाथ शर्मा ने अकादमी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। कवि-सम्मेलन सायं ७ बजे से ११ बजे तक पूरे चार घंटे पूर्ण सफलता के साथ चला। चिकमंगलूर के चुनाव के सम्बन्ध में श्री शारदाचरण दीक्षित की कविता बड़ी शक्तिशालिनी रही। उनके वीर स्वर और वीररसोचित आङ्गिक स्पन्दनों ने उनकी कविता का आकर्षण और बढ़ा दिया था। श्री राजेन्द्र मिश्र की

संस्कृत में गजल, चैता और सोहर को सुनकर श्रोताओं ने 'शोभनम्, शोभनम्' की ध्वनि से पूरे सभा-भवन को मुखरित कर दिया। डॉ० रसिकविहारी जोशी, प्रो० वर्णेकर आदि की कविताओं ने सभासदों को पर्याप्त प्रभावित किया। आमन्त्रित प्रायः सभी कवियों की कविताएँ अत्यन्त आकर्षक रहीं। फलतः यह कवि-सम्मेलन केवल मनोरंजन मात्र नहीं था, किन्तु मानवता के लिए उपयोगी एवं आवश्यक सन्देशों का उत्प्रेरक भी था।

अन्त में अकादमी के उपाध्यक्ष श्री करुणापति त्रिपाठी द्वारा धन्यवाद प्रदान करने के पश्चात् सभा विसर्जित हुई। इस कवि-सम्मेलन का अङ्कन आकाशवाणी तथा दूरदर्शन द्वारा हुआ और इन सबका श्रेय श्री कमलापति मिश्र को है।

१३ नवम्बर, १९७८

(ठ) निम्बार्क दर्शन की उदात्त दृष्टि

[निम्बार्क जयन्ती के अवसर पर दि० १३-११-७८ को वृन्दावन के श्रीजी कुंज में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा दिये गये भाषण का सारांश]

१३-११-७८ को वृन्दावन के श्रीजी कुंज में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में निम्बार्क जयन्ती मनायी गयी। कुंज का प्राङ्गण मथुरा एवं वृन्दावन के विद्वानों, विद्यार्थियों तथा सम्मान्य नागरिकों से भरा था। श्री लवकुश चतुर्वेदी द्वारा साङ्गीतिक मङ्गलाचरण के पश्चात् कुंज के अधिकारी तथा मथुरा-वृन्दावन की संस्थाओं द्वारा अध्यक्ष श्री शुक्ल को तथा मुख्य अतिथि डा० स्वामीनाथन् (दिल्ली) को माल्यार्पण किया गया। प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री वनमाली चतुर्वेदी ने संस्कृत की आशुकविता द्वारा मुख्य अतिथि तथा अध्यक्ष का स्वागत किया। डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी ने इस सभा का संचालन किया। श्री रमेशचन्द्र शर्मा, निदेशक मथुरा संग्रहालय तथा मथुरा के अन्य कई विद्वानों ने आद्याचार्य निम्बार्क के समय और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों पर अपने विचार व्यक्त किये। मुख्यातिथि डा० स्वामीनाथन् ने वेदों तथा वेदाङ्गों के संरक्षण के लिए उनके अध्ययन-अध्यापनादि की आवश्यकता पर बल दिया।

डा० स्वामीनाथन् ने कहा कि जब हमारा देश विज्ञान, तकनीकी और अर्थ की दृष्टि से अमेरिका के समान समृद्ध हो जायेगा तो हमारे देश के युवक-युवतियों का भी ध्यान हमारे संस्कृत वाङ्मय में निहित उस प्रकाश की ओर आकृष्ट होगा, जिसे पाने के लिए अमेरिका के युवक तथा युवतियां हमारे देश में आ रहे हैं तथा शान्ति पाने के लिए यत्र-तत्र मार्ग ढूंढ़ रहे हैं। यदि हमने इस चाकचिक्य के युग में अपने वाङ्मय की रक्षा न की तो हमारी भावी सन्तान को निराश होना पड़ेगा और उनके नैराश्य के कारण हम सब होंगे। अतः हम सभी लोगों का कर्तव्य है कि हम भारत की इस निधि की रक्षा के लिए पूर्णरूप से प्रयत्नशील हों।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि न केवल हमारे देश के मनीषियों की अपितु विश्व के भी अनेक सत्प्रतिष्ठित मनीषियों की यह धारणा है कि भारतवर्ष का वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय है। इसमें अनेक ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं जो विश्व के अन्य साहित्यों में दुष्प्राप्य हैं। भारत की वेदों के प्रति जो आस्था है, वह अद्वितीय है। यहाँ तक कि भारत ने 'नास्तिको वेदनिन्दकः' कहकर ऐसे लोगों की आलोचना की है जो वेद की आलोचना इस प्रकार करते हैं, जिससे इसकी महिमा और गरिमा पर आघात पहुँचे। अनेक लोग यह कह सकते हैं कि वेदनिन्दक को नास्तिक कहना बौद्धिक संकीर्णता तथा घोर साम्प्रदायिकता का द्योतक है; किन्तु मेरे विचार से यह कथन अनुचित नहीं है! वेदनिन्दक को नास्तिक कहने के पीछे एक बड़ा अभिप्राय है। भारतीय चिन्तकों का विचार यह है कि जो वाङ्मय मनुष्य को ऊँचा उठाने एवं उसे निर्भय बनाने का मार्ग प्रशस्त करता हो, वही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम है। गीता में वर्णित दैवी सम्पत्तियों में अभय को पहला स्थान दिया गया है। मनुष्य तब तक अभय नहीं हो सकता जब तक मृत्यु भय से उसे छुटकारा न मिले और यह भय तभी छूट सकता है जब उसे अपनी आत्मा की एकान्त नित्यता का अवबोध हो। यह अवबोध वेदों और वेदमूलक दर्शनों तथा वैदिक सम्प्रदायों के प्रवर्तक शङ्कर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ, चैतन्य, रामानन्द, स्वामी नारायण आदि आचार्यों के ग्रन्थों से ही सम्पन्न होता है। आत्मा के परिमाण, गुण, संख्या आदि में विभिन्न दर्शनों एवं आचार्यों में मतभेद होते हुए भी इसकी एकान्तनित्यता में किसी का मतभेद नहीं है, जब कि जैन दर्शन में आत्मा को द्रव्य-पर्याय उभयात्मक मानकर पर्याय रूप में नश्वर माना गया है और बौद्ध दर्शन के सभी सम्प्रदायों और निकायों में आत्मा को प्रवाहरूप में अवस्थित मानते हुए भी मूलतः उसे क्षणिक और अन्त में प्रवाह को नश्वर माना है। अतः अवैदिक दर्शनों एवं सम्प्रदायों द्वारा आत्मा की एकान्तनित्यता का प्रतिपादन न होने से मनुष्य का अभय होना सम्भव नहीं है और जब तक मनुष्य अभय नहीं होगा, तब तक किसी महती उपलब्धि के लिये इसका उत्साहित और प्रयत्नशील होना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि भारत ने आत्मा की एकान्तनित्यता के प्रतिपादक वेद की अवमानना करने वाले को सराहना नहीं की।

आचार्य श्री निम्बार्क ने वेदों को पूर्ण मान्यता प्रदान की है और वैदिक उद्धरणों द्वारा जीव और ईश्वर के भेदाभेद का प्रतिपादन किया है; जीव को ईश्वर से अभिन्न बताकर उसे ईश्वरभाव को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी है और ईश्वर से भिन्न बताकर लोकानुभव की वास्तविकता का समर्थन किया है। भेदाभेद के विरोध का परिहार दीप की ज्वाला और उसकी प्रभा के दृष्टान्त द्वारा बहुत ही हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है। स्पष्ट है कि ज्वाला और प्रभा में अन्तर है, क्योंकि ज्वाला में हाथ रखने से जल जाता है, फफोले पड़ जाते हैं और उसकी प्रभा में मनुष्य आनन्द से विचरण करता है। किन्तु इन दोनों में अभेद भी उसी प्रकार तर्कसंगत है, जैसे दोनों का भेद; क्योंकि यदि उन दोनों में अभेद न होकर एकान्ततः भेद ही हो तो ज्वाला के अभाव में भी प्रभा का अस्तित्व और प्रभा के अभाव में प्रभाहीन ज्वाला का अस्तित्व होना चाहिए; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। इस प्रकार आचार्य श्री निम्बार्क ने अपने सिद्धान्त की स्थापना वैदिक उद्धरणों एवं बुद्धिग्राह्य तर्कों से की है।

आचार्य श्री ने मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य भगवत्प्राप्ति के लिए राधाकृष्ण की युगल मूर्ति को साधन माना है और उपासना के लिए वृन्दावन को सर्वोत्तम क्षेत्र प्रतिपादित किया है।

११ से १७ नवम्बर, १९७८

(ड) कालिदास समारोह में योगदान

इस वर्ष ११ नवम्बर से १७ नवम्बर तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के तत्त्वावधान में हुए कालिदास समारोह में सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि० के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। साहित्य-विभाग के उपाचार्य डॉ० कैलाशपति त्रिपाठी, विभागीय छात्र श्री ओङ्कारनाथ पाण्डेय एवं श्री पञ्चानन शर्मा अखिल-भारतीय संस्कृत-वाद-विवाद प्रतियोगिता में उपस्थित थे। दोनों छात्रों ने पक्ष-विपक्ष में धारा-प्रवाह भाषण किया। डा० कैलाशपति त्रिपाठी ने शोधप्रबन्ध-परिचर्चा तथा अन्य कार्यक्रमों में भाग लिया।

आचार्य बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते विक्रम विश्वविद्यालय से आमंत्रित थे। अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन में श्री खिस्ते ने अपनी सुमधुर रचनाएं सुनाई। वाद-विवाद-प्रतियोगिता की अध्यक्षता भी श्री खिस्ते ने की तथा अपने अध्यक्षीय भाषण में कालिदास वाङ्मय की विशेषता तथा लोकोपयोगिता का सम्यक् विश्लेषण किया। समारोह के सचिव डॉ० श्रीनिवास रथ ने प्रतिनिधियों को धन्यवाद प्रदान किया।

(ढ) सरस्वती भवन पुस्तकालय के क्रियाकलाप

हस्तलिखितानुभाग

सन् १९५१ से अद्यावधि संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची (कैटलाग) का निर्माण पूर्ण होकर वेद, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र एवं पुराणेतिहास विषयक सूची का मुद्रण प्रारम्भ हो गया है।

अनेक विद्वानों एवं विशिष्ट व्यक्तियों ने सरस्वती भवन में संगृहीत हस्तलेखों का अवलोकन किया, जिनमें निम्नांकित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं :—

(क) डॉ० कुञ्जुनी राजा, अध्यक्ष एवं प्रोफेसर संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।

(ख) प्रोफेसर आर०बी० पोट्टी, विभागाध्यक्ष वेदान्त, राजकीय संस्कृत कालेज, त्रिवेन्द्रम्, केरल।

(ग) डॉ० पी०ए० वरान्निकोव, हिन्दी के प्रसिद्ध सोवियत विद्वान्।

इस अनुभाग के दुर्लभ एवं महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की जेराक्स प्रति तैयार करने का कार्य प्रारम्भ किया गया है। इसके द्वारा अब तक ९ प्रमुख ग्रन्थों की जेराक्स प्रति तैयार की जा सकी है। हस्तलिखित ग्रन्थों के सर्वेक्षण, क्रय एवं संरक्षण आदि कार्यों के लिये एक विस्तृत योजना बनायी गयी है। एतदर्थ पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा ५० हजार रु० का अनुदान भी प्राप्त हुआ है।

विगत जुलाई से अब तक यहां ८७ हस्तलिखित ग्रन्थों को क्रय करके संगृहीत किया गया।

हस्तलिखित ग्रन्थों का सर्वेक्षण

हमारे देश के अनेक घरों में अनेकों ग्रन्थ वंश परम्परा से संगृहीत हैं, किन्तु वर्तमान में ये सुरक्षा के अभाव में अथवा स्वत्वाधिकारियों के इन ग्रन्थों के महत्त्व से अनभिज्ञ होने के कारण नष्ट हो रहे हैं।

अतः विश्वविद्यालय ने हस्तलिखित ग्रन्थों के सर्वेक्षण की एक योजना बनाई है, जिसका उद्देश्य ऐसे प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों एवं ग्रन्थ-संग्रहों का, जिसकी जानकारी शिक्षा जगत् को नहीं है, पता लगाकर उनका निरीक्षण करना तथा उनके विषय में एक प्रारंभिक रिपोर्ट तैयार करना एवं सम्भव होने पर उनका क्रय करना है।

इस योजना को सफल बनाने में सभी संस्थाओं एवं विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।

मुद्रितानुभाग

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से विभागीय एवं केन्द्रीय ग्रन्थालय के लिये प्राप्त द्रव्यराशि में से निम्नलिखित ६ व्यक्तियों की नियुक्ति पंजीकरण, सूचीकरण आदि कार्यों के लिये की गई :—

	नियुक्ति तिथि
१. श्री राजेन्द्रप्रताप त्रिपाठी	३१-८-७८
२. ,, लालजी त्रिपाठी	,,
३. ,, चन्द्रधरमणि त्रिपाठी	,,
४. ,, गिरिजेशकुमार पाण्डेय	,,
५. ,, दिव्येन्दुविजय मिश्र	,,
६. ,, शिवाशंकर पाण्डेय	२३-१०-७८

जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर मास में कुल २५८० मुद्रित ग्रन्थ ग्रन्थालय में क्रय किये गये।

दिनाङ्क २०-८-७८ को (१) प्रोफेसर कुञ्जुनी राजा, मद्रास विश्वविद्यालय एवं (२) प्रो० आर० वी० पोट्टी वेदान्त विभागाध्यक्ष, राजकीय संस्कृत कालेज, त्रिवेन्द्रम् ने मुद्रित ग्रन्थालय का अवलोकन कर क्रमशः अपनी सम्मति दी :—

(1) "The Sarasvati Bhavana Library is well known for its rare collections. It has been a pleasure to me to visit the library and see at first hand the excellent arrangements made for making use of the library."

(सरस्वती भवन पुस्तकालय अपने दुर्लभ संग्रह हेतु विख्यात है। पुस्तकालय के उपयोगार्थ यहाँ प्रस्तुत अभूतपूर्व समीचीन व्यवस्था को देखकर मुझे अतिशय प्रसन्नता हुई।)

(2) "It is a great pleasure to have a look of the Sarasvati Bhavana Library which has a rare collection of books. The staff was very kind enough to explain the excellent arrangements made for making use of the library."

(दुर्लभ ग्रन्थों के संग्रह से परिपूर्ण सरस्वती भवन पुस्तकालय का निरीक्षण कर मुझे अतिशय प्रसन्नता हुई। ग्रन्थालय के उपयोग हेतु किये गये उत्तम प्रबन्ध की जानकारी देने में ग्रन्थालयीय कार्यकर्ताओं ने पूर्ण सहृदयता दिखाई।)

ग्रन्थालय का मुद्रितानुभाग प्रातः १०-३० से रात्रि ८.०० तक अध्ययन हेतु खोला जा रहा है। २२ दुर्लभ पाण्डुलिपियों की माईक्रोफिल्मिंग भी की गई है।

(ण) परीक्षानुभाग की गतिविधि

परीक्षानुभाग ने विभिन्न परीक्षाफल बड़ी तत्परता से प्रकाशित किए। ये परीक्षाफल आचार्य, आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, मध्यमा और प्रथमा तक तथा शिक्षाशास्त्र, विभिन्न प्रमाणपत्रीय, भोट बौद्ध दर्शन एवं सीमान्तप्रदेशीय परीक्षाओं के थे। समस्त परीक्षाफल दि० २२.६ ७८ से २१.८.७८ तक प्रकाशित कर दिए गए। इसके साथ ही १५०० विचाराधीन परीक्षाफलों की भी जाँच पड़ताल की गई और संबद्ध परीक्षार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं तथा उनकी दैनिक उपस्थिति के परीक्षण के बाद उनका भी परीक्षाफल प्रकाशित किया गया।

इस अवधि में विचाराधीन परीक्षाफलों के अन्तर्गत ही पूरक एवं एकविषयक परीक्षार्थियों की सूची भी प्रस्तुत की गई। १९७८ वर्षीय परीक्षा में जिन परीक्षार्थियों के परीक्षा आवेदन पत्र विलम्ब के कारण निरस्त कर दिए गए थे, पूरक परीक्षा के साथ परीक्षा देने के लिये उनके आवेदन पत्रों की जाँच करके उनका विवरण तैयार किया गया।

परीक्षानुभाग द्वारा परीक्षा विषयक नियमित कार्यों के अतिरिक्त १९७१ के प्रमाण पत्रों का प्रेषण, उत्तर पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन और अंकानुसंधान कार्य भी हुआ तथा प्रकाशित परीक्षाफलों के लब्धांक भेजे गए।

(त) पुरातत्त्व के क्षेत्र में संस्कृत विश्वविद्यालय का योगदान

कई भारतीय विश्वविद्यालयों ने पुरातत्त्व सम्बन्धी अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण कार्य करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है; साथ ही साथ अपना-अपना कार्य क्षेत्र भी सुविधानुसार निर्धारित कर लिया है। संस्कृत विश्वविद्यालय ने भी इस क्षेत्र में योगदान देने का निर्णय लिया और तदनुसार १९५८ में प्रथम कुलपति डा० आदित्यनाथ झा ने एक **पुरातत्त्व संग्रहालय** की स्थापना की। इस संग्रहालय का उद्देश्य पुरातात्त्विक महत्त्व की वस्तुओं का संग्रह और संरक्षण रखा गया। संस्कृत विश्वविद्यालय वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन सम्बन्धी विषयों एवं प्राचीन विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसन्धान का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का एक उत्तम केन्द्र है। यहाँ प्राचीन संस्कृति एवं भारतीय इतिहास से विद्यार्थियों को परिचित कराने के लिए एक पुरातत्त्व संग्रहालय का होना आवश्यक है, जिसमें प्राचीन मुद्राएँ, शिलालेख, मृण्मूर्तियाँ, प्रस्तर मूर्तियाँ और प्राचीन चित्रकला का संग्रह हो। वायुपुराण, विष्णुधर्मोत्तर,

नारदपुराण, अग्निपुराण के एवं प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के समय प्राचीन कला कृतियों के उदाहरण सामने रहने चाहिये, जिससें कि विद्यार्थियों को प्राचीन शिल्पकला के विषय में अध्ययन करने में सहायता मिले।

इन बातों को ध्यान में रखकर इस पुरातत्त्व संग्रहालय में पाषाण मूर्तियाँ, मृण्मय मूर्तियाँ, प्राचीन सिक्के और प्राचीन चित्रकला से सम्बन्धित सामग्रियाँ संगृहीत की गई हैं। अधिकांश वस्तुएँ इसी प्रदेश के दाताओं द्वारा दी गई हैं। दाताओं में पंडित कुबेरनाथ सुकुल, श्री उदयकृष्ण नागर, श्री के० सी० जरिया, श्री एस० पी० दूबे, श्री किशोरदास स्वामी, श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्री श्रीपति राम त्रिपाठी, श्री मुरारिलाल केडिया, वाराणसी विद्यामन्दिर, श्री माताप्रसाद सीताराम, श्री विजय नारायण तिवारी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। **सिक्कों में** पंच मार्क सिक्के, बेन्ट बार सिक्के, कुषाण कालीन, गुप्तकालीन, मध्यकालीन और मुगलकालीन सिक्के इस संग्रहालय में प्रचुर मात्रा में संगृहीत हैं। मृण्मय मूर्तियों में हरप्पा, मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त और मध्यकाल की मूर्तियाँ हैं। पाषाण मूर्तियों में शिव, पार्वती, गणेश, चामुण्डा, सरस्वती, अधिकार नन्दी, धन्वन्तरि की और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ विद्यमान हैं। प्राचीन चित्रों में फारसी, राजपूत, मुगल, दतिया (बुन्देल खंड) और कांगड़ा शैली के चित्र हैं। इनके अतिरिक्त कुछ सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थों का भी संग्रह इस संग्रहालय में है। इनमें श्रीमद्भागवत, गीता, पंचरत्नी गीता और कुरान विशेष रूप से दर्शनीय हैं। प्राचीन सील और सीलींग (मिट्टी की मुहर) का भी संग्रह यहाँ है। ब्राह्मी लिपि में खुदे हुए अक्षर इन मुहरों पर बहुत ही सुन्दर रूप में विद्यमान हैं। बैठा हुआ नन्दी एक मुहर पर बड़े ही सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण है। प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय के प्रयास से तिब्बती सिक्कों का भी संग्रह किया गया है। चालकोलिथिक काल की सामग्रियाँ श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी ने राजस्थान के कालीबंगन नामक स्थान से लाकर इस संग्रहालय को दी है।

पुरातात्त्विक उत्खनन एवं सर्वेक्षण

संग्रहालय की स्थापना के साथ-साथ विश्वविद्यालय ने पुरातात्त्विक उत्खनन एवं सर्वेक्षण कार्य में भी भाग लेने का निर्णय लिया। तदनुसार केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग से उक्त योजना के लिये नियमानुसार लाइसेंस प्राप्त किया गया और सन् १९६५ से उत्खनन की योजना वाराणसी से ३२ किलो मीटर दूर वाराणसी-गोरखपुर रेलमार्ग पर औड़िहार रेलवे स्टेशन के समीप 'मसौन' नामक प्राचीन टीले पर प्रारम्भ की गई। उत्खनन करने का उद्देश्य निम्नलिखित बातों का पता लगाना था :—

(क) क्या हरप्पा कालीन सभ्यता के अवशेषों के मध्य गंगा घाटी में मिलने की संभावना है ?

(ख) क्या आर्यों से सम्बन्धित भूरे बर्तन वाली सभ्यता कौशाम्बी से पूर्व की ओर पायी जा सकती है ?

(ग) काले और लाल बर्तन वाली सभ्यता अहाड़ और गेलूंद (राजस्थान) से चलकर नर्मदा, सोन और महानदी के किनारे किनारे उत्तरी भारत में किस तरह फैली ?

(घ) विदेशियों के आक्रमण का गंगा घाटी पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(ङ) क्या इस प्राचीन स्थल को बौद्धों से सम्बन्धित सभ्यता का केन्द्र माना जाय ?

चार साल के उत्खनन ने इन सभी प्रश्नों का उत्तर समुचित ढंग से प्रस्तुत किया है। यह स्पष्ट हो गया है कि 'मसौन' स्थल पर हरप्पा काल और भूरे बर्तन की सभ्यता का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। काले और लाल बर्तन की सभ्यता, जिनका काल कार्बन १४ विधि के अनुसार १००० ई०पू० से लेकर १७०० ई०पू० माना गया है, मध्य गंगा घाटी में बहुत समय के पश्चात् बंगाल होते हुये चिरांद (बिहार) पहुँची, पर 'मसौन' (मध्य गंगा घाटी) के क्षेत्र में कोई प्रभाव नहीं डाल सकीं। विदेशी आक्रमणों का प्रभाव प्रचुर मात्रा में इस स्थल से प्राप्त हुआ है, जो कुषाण काल का है। कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के सिक्के इस स्थल के स्ट्राटिफायड डिपाजिट से प्रचुर संख्या में प्राप्त हुए हैं। मृण्मय मूर्तियों पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट है। उनकी वेश भूषा एवं बनावट मध्य एशिया की कुषाण जाति से सीधे सम्बन्धित है। उत्खनन से यह भी स्पष्ट हो गया कि चौथी शताब्दी गुप्त काल में उत्तरी भारत भारतीय कला एवं संस्कृति का एक उन्नतिशील केन्द्र रहा है। इस क्षेत्र में बौद्धों के प्रभाव के सम्बन्ध में उत्खनन ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। अधिकांश मृण्मय मूर्तियाँ बौद्ध सन्तों की मिलती हैं। उनमें कई भिक्षुणियों की ज्ञात होती हैं। इस स्थल से प्राप्त टोंटीदार काले बर्तन एवं फैले हुए पात्र बौद्ध सम्प्रदाय के भिक्षुओं के ही जान पड़ते हैं।

उत्खनन के समय देश के प्रख्यात पुरातत्त्व वेत्ताओं ने 'मसौन' (प्राचीन स्थल) को आकर देखा और सैद्धान्तिक रूप से अपनी सहमति व्यक्त की। इन विद्वानों एवं पुराविदों में डा० सांकलिया, पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन महानिर्देशक श्री अमलानन्द घोष, वर्तमान महानिर्देशक श्री एम०एन० देशपाण्डे, राष्ट्रीय संग्रहालय के निर्देशक डा० एन०आर० बनर्जी, शिमला एडवांस्ड स्टडी के निर्देशक श्री बी० बी० लाल, केन्द्रीय विभाग के भूतपूर्व संयुक्त महानिर्देशक श्री बी० सी० छाबरा, केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के

कुषाणकालीन अवशेष (प्रथम शताब्दी) मसौन, गाजीपुर

मृण्मय मूर्ति, कुषाण काल (प्रथम शताब्दी) मसौन, गाजीपुर
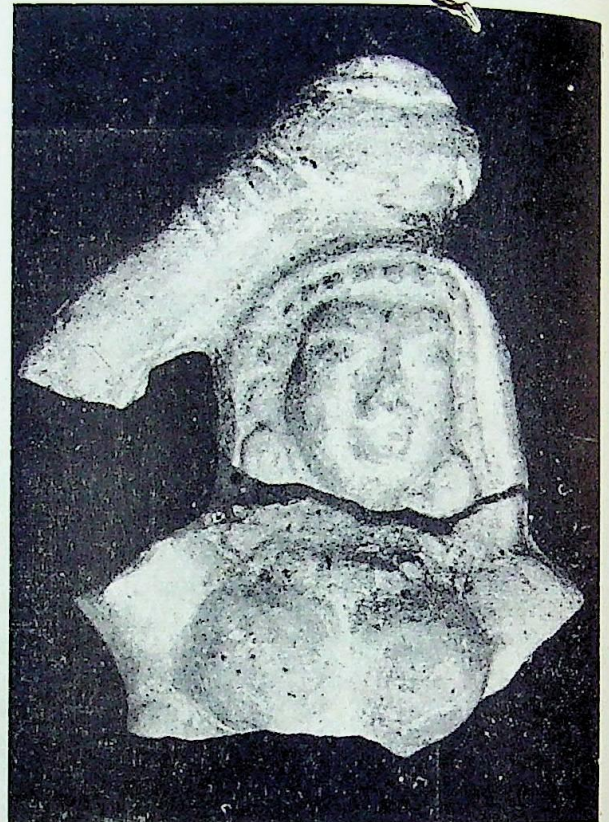
मृण्मय मूर्ति, गुप्तकाल (चतुर्थ शताब्दी) मसौन, गाजीपुर

मृण्मय मूर्ति, गुप्तकाल (चतुर्थ शताब्दी) मसौन, गाजीपुर

काला टोंटीदार बर्तन (बौद्ध भिक्षुओं से सम्बन्धित)
छठी शताब्दी ई० पू०, मसौन, गाजीपुर

संयुक्त महानिदेशक श्री बी०के० थापर, डा० आर०बी० जोशी, पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष डा० बी० पी० सिन्हा, विस कान्सीन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डा० ए० के० नारायण, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष डा० के० के० सिन्हा, राजस्थान सरकार के पुरातत्त्व निर्देशक डा० रत्नचन्द्र अग्रवाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्कृत विश्वविद्यालय इन विद्वानों के मत से लाभान्वित हुआ, साथ ही साथ पुरातत्त्व के क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय ने अन्य विश्वविद्यालयों के साथ यथासम्भव योग दान भी किया।

पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के क्षेत्र में संग्रहालय ने कई प्राचीन स्थलों का निरीक्षण किया और उन स्थानों के पुरातात्त्विक महत्त्वों पर प्रकाश डाला। शाहपुर लठिया (जिला गाजीपुर) के पास एक पाषाण स्तम्भ प्राचीन काल से अवस्थित है। उस स्तम्भ के ऊपर एक गरुड़ पक्षी का सुन्दर आकार बना था, जो वर्तमान अवस्था में स्तम्भ के समीप ही जमीन पर पड़ा है। यह स्तम्भ संभवतः गुप्त काल में स्थापित किया गया था। अन्य प्राचीन स्थल, जो संग्रहालय द्वारा प्रकाश में लाये गये, रंगमहल, जौहरगंज, भीमापार और चन्द्रावती हैं। ये सभी प्राचीन स्थल मौर्य काल से लेकर गुप्त काल तक के हैं। सर्वेक्षण से एक बहुत ही उल्लेखनीय बात सामने आयी है। इस क्षेत्र (थाना सैदपुर, जिला गाजीपुर) के अधिकांश प्राचीन स्थल गुप्त काल के पश्चात् वीरान हो गये थे और उनके ऊपर मानव सभ्यता का कोई अवशेष प्राप्त नहीं होता। 'भीतरी' (गाँव) के पास स्कन्दगुप्त के शिलालेख एवं कौशाम्बी से प्राप्त एक मिट्टी की मुहर से हूणों के आक्रमण के विषय में निश्चित उल्लेख मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि इसी आक्रमण के कारण इस क्षेत्र के लोग आतंकित होकर अपने-अपने गाँव छोड़कर अन्यत्र कहीं चले गये।

सेमिनार और विशेष व्याख्यान का आयोजन

समय-समय पर इस पुरातत्त्व संग्रहालय ने धर्म-संस्कृति व्याख्यान-माला के तत्त्वावधान में सेमिनार और विद्वानों के व्याख्यान का आयोजन किया है। 'महाभारत घटना की ऐतिहासिकता' पर ऐतिहासिक, पौराणिक, ज्योतिष एवं पुरातात्त्विक दृष्टिकोण से विशेषज्ञों ने अपने-अपने विचार रखे और अन्त में सर्वसम्मत से यह निर्णय लिया गया कि महाभारत घटना एक ऐतिहासिक घटना है, परन्तु इसके काल निर्णय पर पुनः विचार हो।

पुरातत्त्व संग्रहालय के तत्त्वावधान में डा० उपासक (निदेशक, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा) का व्याख्यान भारत-अफगानिस्तान—दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध पर आयोजित किया गया। कुछ ही समय के पश्चात् आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व महानिर्देशक श्री कृष्णदेव का व्याख्यान 'उत्तर भारत के मन्दिर' विषय पर कराया गया। समय-समय पर संग्रहालय में रंगीन स्लाइडों की सहायता लेते हुए विद्यार्थियों एवं दर्शकों को भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान दिये गये। अभी हाल ही में सोवियत रूस के एक विख्यात विद्वान् श्री वरान्निकोव अपनी भारत यात्रा के दौरान इस विश्वविद्यालय में भी पधारे थे और उन्होंने काफी समय देकर इस पुरातत्त्व संग्रहालय में संगृहीत वस्तुओं को देखा। उन्हें संग्रहालय की ओर से रंगीन स्लाइडों द्वारा उत्खनन पद्धति एवं प्राचीन मृण्मय मूर्तियों को दिखलाया गया।

अध्यापन कार्य

विगत तीन वर्षों में इस पुरातत्त्व संग्रहालय में संस्कृत प्रमाण-पत्रीय कक्षा के विद्यार्थियों को प्राचीन भारतीय इतिहास विषय पर व्याख्यान दिये गये। विदेशी विद्यार्थियों को इस विशेष कार्यक्रम से अधिकाधिक लाभ पहुँचाया गया। रंगीन स्लाइडों की सहायता से विद्यार्थियों में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन के प्रति विशेष रुचि जगायी गई।

पोस्ट-ग्रेजुएट डिप्लोमा का पाठ्यक्रम :—इस सत्र से ही कुलाधिपति एवं उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की स्वीकृति के आधार पर संग्रहालय विज्ञान का अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया गया है। विद्यार्थियों को संग्रहालय विज्ञान, पुरातत्त्व के सिद्धान्त, उत्खनन, सर्वेक्षण, प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन तथा फोटोग्राफी, ड्राइंग और सर्वे का व्यावहारिक ज्ञान इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हो सकेगा। इस विश्वविद्यालय में अधिक संख्या में मेधावी छात्र आचार्य की डिग्री प्राप्त करते हैं। परन्तु पुरातत्त्व में अध्ययन के लिये उन्हें कहीं प्रवेश नहीं मिल पाता। पुरातत्त्व संग्रहालय की ओर से इस पाठ्यक्रम को इसी उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया है, जिससे कि आचार्य के विद्यार्थी भी पुरातत्त्व के क्षेत्र में विशेषज्ञ बन कर निकलें और इस क्षेत्र में समुचित योग-दान करें।

भावी योजनाएँ

(क) प्रत्येक संग्रहालय की अपनी विशेषता होती है। विशेषता का आधार सदा उस संस्था का संग्रह ही होता है। यही दृष्टिकोण इस संग्रहालय के प्रति भी रखा गया है। समीप में भारत कला भवन प्राचीन चित्रकला में, प्रयाग म्युनिसिपल संग्रहालय हरप्पा कालीन सामग्रियों और पाषाण मूर्तियों में तथा सारनाथ संग्रहालय सारनाथ की खुदाई से प्राप्त सामग्रियों में विशेषता रखता है। इस संग्रहालय को उत्तरी भारत की मृण्मय मूर्तियों के संग्रह में विशेष स्थान

दिलाने की योजना है, जिससे विद्वानों और विद्यार्थियों को मृण्मय मूर्तियों से सम्बन्धित अध्ययन में सुविधा हो सके ।

(ख) संग्रहालय की ओर से प्राचीन स्थलों पर पुरातात्त्विक उत्खनन करने की योजना है, जिससे उत्तरी भारत की पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं के सुलझाने में यह विश्वविद्यालय योगदान कर सके । पुरातत्त्व संग्रहालय की ओर से हरप्पा एवं आर्यों से सम्बन्धित प्रश्नों को सुलझाने के लिये मध्य गंगा घाटी के प्राचीन स्थलों का उत्खनन एवं सर्वेक्षण करने की योजना विचाराधीन है । साथ-साथ बौद्धों के प्रभाव की सामग्री का अध्ययन करने की भी योजना सम्मिलित है ।

(ग) संस्कृत के मेधावी छात्रों को पुरातत्त्व एवं प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में आधिकारिक रूप से पुरातत्त्व विज्ञान के अध्यापन के माध्यम से और विशेष व्याख्यानों के आयोजन से आकर्षित करना इस संग्रहालय का मुख्य उद्देश्य है । हमें पूरा विश्वास है कि पुरातत्त्व संग्रहालय अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति में अवश्य सफल रहेगा ।

परिशिष्ट

विभिन्न विवरण एवं सूचियाँ

(क) विश्वविद्यालय में नयी नियुक्तियाँ

विश्वविद्यालय में अध्यापकों के कई पद वर्षों से रिक्त थे। सत्रारम्भ के पूर्व तथा प्रारम्भ में इन पदों पर योग्य विद्वानों की नियुक्तियाँ की गयी। नव नियुक्त अध्यापकों की योग्यता तथा अनुभवों के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

आचार्य (प्रोफेसर)

(१) **डा० देवेन्द्र दत्त तिवारी** (शिक्षाशास्त्र) एम० ए० (राजनीतिशास्त्र), एम० एड०, पी-एच० डी० (शिक्षाशास्त्र)। प्रवक्ता, ट्रेनिंग कालेज, उपविद्यालय निरीक्षक तथा शिक्षा विभाग में विद्यालय निरीक्षक के पद पर १९५५ तक कार्य करने के बाद उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग में विशेषाधिकारी (शैक्षिक सर्वे) के रूप में १९५५ से १९६२ तक कार्य किया। १९६२ से १९७२ तक सी० पी० आई० इलाहाबाद में प्राचार्य/निदेशक तथा १९६९ से १९७२ तक उ० प्र० शिक्षा विभाग में उपशिक्षा निदेशक (प्रशिक्षण) पद पर कार्य करने के बाद गोरखपुर मण्डल, गोरखपुर में १९७३ से १९७८ तक उपशिक्षा निदेशक पद पर कार्यरत थे। डा० तिवारी १७ पुस्तकों तथा अनेक लेखों के लेखक हैं। उन्होंने २३ जुलाई १९७८ को अपना कार्यभार ग्रहण किया।

(२) **श्री श्रीराम पाण्डेय** (न्याय-वैशेषिक), आचार्य (नव्य-न्याय, नव्य व्याकरण एवं साहित्य) शिक्षण शास्त्र परीक्षा। श्री पाण्डेय ने वर्तमान पद का कार्यभार गत २४ जुलाई १९७८ को ग्रहण किया। इसके पूर्व ये रामानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी तथा श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी में प्राचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में शिक्षक एवं प्राध्यापक तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याख्याता पद पर वर्षों से कार्यरत थे। श्री पाण्डेय संस्कृत के एक अच्छे कवि भी हैं।

(३) **डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी** (दर्शन), आचार्य (व्याकरण, नव्यन्याय, वेदान्त, साहित्य), मीमांसा शास्त्री, एम०ए० (संस्कृत, वेदान्त ग्रुप), पी-एच० डी०, डी० लिट्। व्याख्याता, मुरारका संस्कृत महाविद्यालय, पटना, १९४७ से १९५५ तक; व्याख्याता, एस० आर० के० गोयनका कालेज, मुजफ्फरपुर, १९५५ से १९५९ तक; व्याख्याता, मिथिला संस्कृत रिसर्च इन्स्टीच्यूट, दरभंगा १९५९ से १९७८ तक; प्रभारी निदेशक, मिथिला संस्कृत रिसर्च इन्स्टीच्यूट, दरभंगा, १९७५ से १९७६ तक। डा० गोस्वामी ने कई अनुसन्धानात्मक लेख लिखे हैं तथा अनेक पुस्तकों का प्रणयन एवं सम्पादन आपके द्वारा हुआ है। आपने २३ अगस्त, १९७८ को अपने नये पद का कार्यभार ग्रहण किया। इनके निर्देशन में अनेक विद्यार्थियों ने शोध उपाधियाँ प्राप्त की हैं।

(४) **श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी** (योगतन्त्र), आचार्य (दर्शन), एम० ए० (संस्कृत)। सूचीकार, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९४७ से १९५१ तक; सहसम्पादक, सारस्वती सुषमा रा० सं० म०, वाराणसी, १९५१ से १९५८ तक; प्रकाशन सहायक (अधिकारी), वा० सं० वि० वि० वाराणसी, १९५९ से १९६७ तक; व्याख्याता (योगतन्त्र), वा०सं०वि०वि० वाराणसी, १९६७ से १९७० तक; प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (योगतन्त्र) वा० सं० वि० वि०, बाराणसी, १९७० से १९७१ तक; व्याख्याता, (योग-तन्त्र) वा० सं० वि० वि० वाराणसी, १९७१ से १९७३ तक; प्राध्यापक (योगतन्त्र), स० सं० वि० वि० वाराणसी १९७५ से १९७८ तक। श्री द्विवेदी ने विविध पुस्तकों की रचना की है, तथा अनेक लेख लिखे हैं। एक पुस्तक पर इन्हें कालिदास पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। अपने वर्तमान पद पर ४ सितम्बर, १९७८ से कार्य कर रहे हैं।

(५) **डा० पारसनाथ द्विवेदी** (पुराणेतिहास), आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०। प्रधानाचार्य, वि० ध० व० संस्कृत महाविद्यालय, आगरा, १९५६ से १९६४ तक; प्राध्यापक, आगरा कालेज, आगरा, १९६४ से १९७८ तक। ये लगभग २५ पुस्तकों एवं अनेक शोध लेखों के लेखक हैं। इन्होंने अपना कार्यभार १६ नवम्बर, १९७८ को ग्रहण किया है।

उपाचार्य (रीडर)

(१) डा० रामयत्नशुक्ल (प्रा० व्याकरण), आचार्य, (नव्य व्याकरण एवं शाङ्कर वेदान्त), विद्यावारिधि (पी-एच० डी०)। विभागाध्यक्ष, श्री संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९६१ से १९७२ तक; प्रधानाचार्य श्री गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी १९७२ से १९७३ तक; व्याख्याता, वा० सं० वि० वि०, वाराणसी, १९७३ से १९७५ तक; व्याख्याता, का० हि० वि० वि०, वाराणसी, १९७५ से १९७७ तक। विश्वविद्यालय में गत ४ सितम्बर, १९७८ को डा० शुक्ल ने अपना कार्यभार ग्रहण किया।

(२) डा० आद्याप्रसाद मिश्र (व्याकरण), आचार्य (व्याकरण एवं साहित्य), एम० ए० (संस्कृत), विद्यावारिधि (पी-एच० डी०)। व्याख्याता, विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९६४ से १९७१ तक; व्याख्याता, तिलकधारी डिग्री कालेज, जौनपुर, अगस्त १९७२ से अक्टूबर १९७२ तक; व्याख्याता गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, अक्टूबर १९७२ से १९७८ तक। अपने वर्तमान पद पर डा० मिश्र ने ४ सितम्बर १९७८ से कार्य करना प्रारम्भ किया।

(३) श्री सत्यव्रत शर्मा (स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स) एम० एससी० (गणित), फ्रेंच प्रमाणपत्रीय परीक्षा (वा० सं० वि० वि०), पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा (फ्रेंच) (का० हि० वि० वि०), स्नातकोत्तर फ्रेंच शिक्षण प्रमाणपत्रीय (केन्द्रीय अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद), फ्रेंच भाषा में प्रमाणपत्र (पेरिस विश्वविद्यालय पेरिस), आचार्य (साहित्य), स्नातकोत्तर भाषाविज्ञान प्रमाणपत्रीय परीक्षा (स० सं० वि० वि०); शोध प्रबन्ध प्रस्तुत है। प्रवक्ता, सहकारी इण्टर कालेज, जौनपुर, १९६१ से १९६६ तक; प्रवक्ता, गणित, कटिंग मेमोरियल इण्टर कालेज, वाराणसी, १९६६ से १९७२ तक; प्राध्यापक (फ्रेंच भाषा) स० सं० वि० वि० वाराणसी, ३१ दिसम्बर, १९७४ से १९७८ तक। श्री शर्मा अपने नये पद पर ४ सितम्बर, १९७८ से कार्य कर रहे हैं।

(४) डा० पारसनाथ द्विवेदी (शाङ्कर वेदान्त), आचार्य (व्याकरण एवं शाङ्कर वेदान्त), विद्यावारिधि (पी-एच० डी०)। प्रधानाचार्य, श्री गोपाल आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, रसिन, बाँदा, १९६७ से १९७१ तक; विभागाध्यक्ष श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९७१ से १९७८ तक। इन्होंने नये पद का कार्यभार ४ सितम्बर, १९७८ को ग्रहण किया है।

प्राध्यापक (लेक्चरर)

(१) श्री कृष्णशास्त्री मोकाटे (व्याकरण), आचार्य (व्याकरण)। अध्यापक, मारवाड़ी संस्कृत कालेज, मीरघाट, वाराणसी १९५१ से १९६१ तक; शिक्षक, स० सं० वि० वि०, वाराणसी, १९६३ से १९७८ तक। श्री मोकाटे ने ४ सितम्बर, १९७८ को अपना कार्यभार ग्रहण किया।

(२) श्री श्रीकान्त पाण्डेय (व्याकरण), आचार्य (व्याकरण)। विभागाध्यक्ष व्याकरण, सर्वार्य संस्कृत महाविद्यालय, इलाहाबाद १९६९ से १९७० तक; शिक्षक, स० सं० वि० वि० वाराणसी, १९७० से १९७८ तक। श्री पाण्डेय की कार्यभार ग्रहण की तिथि ४ सितम्बर, १९७८ है।

(३) श्री उमाशंकर शुक्ल (सिद्धान्त ज्यौतिष), आचार्य (सिद्धान्त ज्यौतिष एवं फलित ज्यौतिष), एम० ए० (गणित)। सहायक अध्यापक, चिदानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९७७ से १९७८ तक। श्री शुक्ल ने १२ नवम्बर, १९७८ से अपना कार्य आरम्भ किया।

(४) श्री श्यामनारायण दीक्षित (मध्व वेदान्त), आचार्य (व्याकरण एवं शाङ्कर वेदान्त)। वेदान्त विभागाध्यक्ष, श्री दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, १९५९ से १९७८ तक। श्री दीक्षित के कार्यभार ग्रहण करने की तिथि है १३ नवम्बर, १९७८।

(५) श्री देवनारायण मिश्र (शिक्षाशास्त्र), एम० ए० (संस्कृत, ड्राइंग एण्ड पेंटिंग), आचार्य (पुराणेतिहास), शिक्षाचार्य (एम० एड०)। सहायक अध्यापक श्री दैवी सम्पद् आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, शाहजहाँपुर, १९५५ से १९६१ तक; सहायक अध्यापक, सरदार पटेल इण्टर कालेज, शाहजहाँपुर, १९६२ से १९६४ तक; शिक्षक शिक्षाशास्त्र विभाग, स० सं० वि० वि० वाराणसी, १९६४ से १९७८ तक। ४ सितम्बर, १९७८ को श्री मिश्र ने अपने नये पद का कार्यारम्भ किया।

(६) श्री श्रीकान्त पाण्डेय (प्रा० व्याकरण), आचार्य (प्रा० व्या०)। सहायक अध्यापक (व्याकरण) श्री हरदेवदास नथमल वैरोलिया आदर्शसंस्कृत महाविद्यालय, टेढ़ी नीम, वाराणसी, १९७२ से १९७८ तक। श्री पाण्डेय ने ४ सितम्बर, १९६८ को अपना कार्यभार ग्रहण किया।

(७) श्री सुधाकर दीक्षित (न्याय-वैशेषिक), आचार्य (नव्य-न्याय)। सीनियर फेलो, प्राचीन राजशास्त्र अर्थशास्त्र विभाग, स०सं०वि०वि० वाराणसी १९६८ से १९७६ तक; प्राध्यापक दर्शन विभाग, पूना विश्व विद्यालय, पूना १९७६ से अद्यावधि। श्री दीक्षित ने कई लेख लिखे हैं तथा 'न्यायमञ्जरी' का सम्पादन किया है। आपने अभी तक अपने नये पद का कार्यभार ग्रहण नहीं किया है।

सम्मानित प्राध्यापक

विश्वविद्यालय में निम्नांकित पांच विशिष्ट विद्वानों को सम्मानित प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया है। पांचों प्राध्यापक अपने अपने शास्त्रों के उद्‌भट विद्वान् हैं तथा संस्कृत वाङ्‌मय के उत्थान में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

क्र० सं०	नाम	कार्यभार ग्रहण करने की तिथि
१.	श्री महादेव उपाध्याय	३० मार्च, १९७८
२.	श्री अवधबिहारी त्रिपाठी	३१ मार्च, १९७८
३.	श्री निरीक्षणपति मिश्र	३१ मार्च, १९७८
३.	श्री भूपेन्द्रपति त्रिपाठी	३१ मार्च, १९७८
५.	श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	४ अप्रैल, १९७८

शिक्षक

व्याकरण विभाग में श्री श्रीपतिराम त्रिपाठी तथा श्री गिरिजेशकुमार दीक्षित शिक्षक नियुक्त किये गये हैं। इन दोनों व्यक्तियों ने ४ सितम्बर, १९७८ से अपना कार्य आरम्भ किया।

तदर्थ नियुक्तियाँ

श्री एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री की मीमांसा विभाग में तथा श्री रामजी मालवीय की योगतन्त्र विभाग में प्राध्यापक पद पर तदर्थ नियुक्ति की गयी है।

(ख) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अभिनव प्रकाशन

शीघ्र प्रकाश्य

१. शुक्लयजुर्वेद काण्वसंहिता—(सायणभाष्ययुता—उत्तरविंशतिः), सम्पादक—श्री चिन्तामणि मिश्र शास्त्री। — २०-००

२. उकरा—(अरबिक ज्यौतिष शास्त्र का ग्रन्थ) ले० श्रोसावजूसयूस, सम्पादक—श्री विभूतिभूषण भट्टाचार्य। — २९-००
अरबिक ज्यौतिष शास्त्र का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अरबिक भाषा से संस्कृत में अनूदित इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन हो रहा है।

३. सिद्धान्तसार्वभौमः (ज्यौतिष शास्त्र) आचार्य मुनीश्वर विरचित, सम्पादक—स्व० मीठालाल ओझा। — ३२-००

४. भारतीयविचारदर्शनम् (भाग—२), लेखक एवं सम्पादक—डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी। — १०५-६०

५. बौधायनशुल्वसूत्रम्—(बोधायनाचार्य विरचित), सम्पादक—श्री विभूतिभूषण भट्टाचार्य। — ....
इस ग्रन्थ का प्रकाशन दो टीकाओं—श्री व्यङ्कटेश्वर दीक्षित विरचित 'बौधायनशुल्वमीमांसा' तथा श्री द्वारकानाथ यज्व विरचित 'बौधायनशुल्वसूत्रव्याख्यान' के साथ किया जा रहा है। परिशिष्ट में तत्तत् संवादी रेखाचित्रों का भी समावेश किया गया है।

६. पालितिपिटकसद्दानुक्कमणिका; त्रिपिटक के आधार पर संकलित यह अनुक्रमणिका ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। — ....

७. योगिनीहृदयम् (तृतीय संस्करण), सम्पादक म० म० पद्मविभूषण श्री गोपीनाथ कविराज। तन्त्रशास्त्र के जिज्ञासुओं की अनेकशः माँग को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ का संशोधित तथा उपबृंहित तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। — ....

८. तन्त्ररत्नम् (पञ्चम भाग) पार्थसारथि मिश्र विरचित, सम्पादक—श्री टी० वी० रामचन्द्र दीक्षित एवं प० श्री पट्टाभिराम शास्त्री। 'तन्त्ररत्नम्' के इस पंचम भाग के प्रकाशन से यह ग्रन्थ पूर्ण हो गया है। — ....

९. यन्त्रराजविंशाध्यायी (ज्यौतिष शास्त्र), सम्पादक—श्री विभूतिभूषण भट्टाचार्य। — ....

१०. वाक्यपदीयम् (तृतीय काण्ड, द्वितीय भाग), सम्पादक—श्री रघुनाथ शर्मा। हेलाराज विरचित 'प्रकाश' तथा श्री रघुनाथ शर्मा प्रणीत 'अम्बाकर्त्री' टीकाओं सहित 'वाक्यपदीय' के इस प्रकीर्ण काण्ड के द्वितीय भाग में 'साधनसमुद्देश' से लेकर 'लिङ्गसमुद्देश' तक प्रकरण समाविष्ट हैं। — ....

११. महाभाष्यनिगूढाकूतयः, लेखक तथा सम्पादक—डॉ० देवस्वरूप मिश्र। इसमें महाभाष्य के निगूढ़ मार्मिक स्थलों का आधिकारिक विवेचन है। ....

१२. तन्त्रसंग्रहः (तृतीय भाग), सम्पादक—योगतन्त्र विभाग। ....

यन्त्रस्थ

१. रुद्रयामलम् (प्रथम भाग), सम्पादक—योगतन्त्र विभाग; तन्त्रशास्त्र के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का मुद्रण प्रायः पूर्ण होने जा रहा है।

२. रसगङ्गाधरः (द्वितीय भाग), सम्पादक—पं० श्री केदारनाथ ओझा। श्री ओझा की 'रसचन्द्रिका' टीका के साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

३. प्रक्रियाकौमुदी, रामचन्द्राचार्य कृत, सम्पादक—श्री मुरलीधरमिश्र, शेषकृष्ण पण्डित प्रणीत 'प्रकाश' व्याख्या सहित।

४. किरणावली, सम्पादक एवं हिन्दी व्याख्याकार—डॉ० गौरीनाथ शास्त्री, 'प्रशस्तपादभाष्य' तथा 'किरणावली' का हिन्दी अनुवाद।

५. पुराणेतिहासयोः साङ्ख्ययोगदर्शनविमर्शः, लेखक एवं सम्पादक—डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी।

६. व्याकरणदर्शनप्रतिमा, श्री रामाज्ञा पाण्डेय प्रणीत, सम्पादक—श्री रामगोविन्द शुक्ल।

७. धात्वर्थविज्ञानम्, लेखक एवं सम्पादक—डॉ० भगीरथप्रसाद त्रिपाठी, निदेशक, अनुसन्धान संस्थान, वाराणसी।

८. निपातार्थनिर्णयः, लेखक एवं सम्पादक—डॉ० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी।

वर्ष : १—अङ्क : ३

विश्वविद्यालय वार्ता

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

संरक्षक :
श्री बदरीनाथ शुक्ल
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक :
श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी
कुलसचिव
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

सम्पादक :
श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी
,, व्रजवल्लभ द्विवेदी
,, शम्भुनाथ मिश्र
डा० श्रीप्रसाद

वर्ष : १ अङ्क : ३ **चैत्र, सं० २०३५** **मार्च, १९७९**

विषय-सूची

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

शुभकामनाएँ

विधान भवन, लखनऊ
जनवरी १, १९७९

मुझे 'विश्वविद्यालय वार्ता' का वर्ष १, अङ्क २ देखने को मिला। पत्रिका में जिस प्रकार दर्शन के साथ-साथ अन्य बातों की विवेचना की गयी है तथा साहित्य-अकादमी की कार्य-प्रणाली और कार्यक्रमों का भी समावेश किया गया है, वह प्रयास बहुत ही सराहनीय है। इस प्रकार की पत्रिका से जहाँ विश्वविद्यालय की गतिविधियों का पता चलता है, वहीं पर इस बात का भी संकेत मिलता है कि किस प्रकार समस्याओं के प्रति विश्वविद्यालय सजग है।

मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका जहाँ बुद्धिजीवियों को खुराक देने का काम करेगी, वहीं पर शिक्षार्थियों के लिए भी नैतिकता एवं अनुशासन का सन्देश देने में सफल होगी।

शुभ कामनाओं सहित।

रामनरेश यादव

डा० रामकरण शर्मा,
कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा
संस्कृत विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

आपके विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अङ्क देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। आपके कुशल नेतृत्व में विश्वविद्यालय के सर्वांगीण विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर हृदय आह्लादित हो उठा है। इस देश में दो ही संस्कृत विश्वविद्यालय हैं और इन दोनों संस्कृत विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत सारे विषयों पर विचार करने की आवश्यकता है।

रामकरण शर्मा

ANDHRA UNIVERSITY
COLLEGE OF ARTS, COMMERCE & LAW
DEPARTMENT OF SANSKRIT

Prof P. Sriramamurti,
Professor of Sanskrit

WALTAIR
VISAKHAPATNAM
Date 4/12/78

I am very much pleased to go through the pages of your bulletin "Vishvavidyalaya Varta". For people in Andhra who have their own dreams of Sanskrit University, it gives glimpses into what happened to the First and Foremost Sanskrit University and what is happening there now. I hope, you will give us opportunity to visit you to participate in your programmes now and then and learn from your pioneering experiences.

P. Sriramamurti

नारायण सिंह
कुलपति

क्रमांक।कु०।निसा।७८।१२७३
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रींवा
दिनांक १।१।७९

आपके द्वारा प्रेषित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (वाराणसी) की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अङ्क सधन्यवाद प्राप्त हुआ। अपने विश्वविद्यालय के रीडिंग रूम में यह पत्रिका पढ़ने के लिये रखवा दी गई है। पाठकों को निश्चित लाभ होगा।

'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रकाशन एक बहुत अच्छा शुभारम्भ है। इसके माध्यम से विश्वविद्यालय के क्रिया-कलाप एवं शैक्षणिक गतिविधियाँ सुगमता से जन-जन तक पहुँच सकेंगी।

इसके उज्जवल भविष्य और अधिकाधिक लोकप्रियता हेतु मेरी बहुत-बहुत हार्दिक शुभ कामनाएँ।

नारायण सिंह

राम प्रकाश
उद्योग मन्त्री

विधान भवन, लखनऊ
दिनांक २४ नवम्बर, ७८

प्रसन्नता का विषय है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने अपनी सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने हेतु 'विश्वविद्यालय वार्ता' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया है। पत्रिका का प्रथम अङ्क मुझे देखने को मिला। मुझे इसका स्वरूप उद्देश्य के अनुरूप लगा।

मुझे आशा है कि संस्कृत विश्वविद्यालय की यह पत्रिका अपने अच्छे से अच्छे रूप में इसी प्रकार आगे भी निकलती रहेगी। मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

रामप्रकाश

अब्दुल रऊफ लारी
राज्य मन्त्री, उद्योग (हैण्डलूम)
उत्तर प्रदेश

विधान भवन
लखनऊ
नवम्बर १७, १९७८

मैंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अङ्क पढ़ा। इससे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के परिक्षेत्र की पूरी जानकारी होती है। वास्तव में ऐसे अङ्कों के प्रकाशन से सम्बन्धित विश्वविद्यालयों की परिधि में आने वाले सम्पूर्ण विषयों की जानकारी तो होती ही है, साथ ही यदि कोई मूल विषय जो आज के समाज के लिये लाभप्रद सिद्ध हो सकते हों, उनका समावेश सहज ही किया जाना सम्भव हो जाता है।

मैं शुभकामना करता हूँ कि भविष्य में भी यह विश्वविद्यालय अपने विषय क्षेत्र की परिधि को उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए अपने लाखों बुद्धि-जीवियों के लिये एवं उनकी महत्त्वपूर्ण समस्याओं को हल करने में अपने ऐसे प्रकाशनों द्वारा सहायक सिद्ध होगा।

अब्दुल रऊफ लारी

BIDESH KULKARNI
Lieutenant-Governor

RAJ NIVAS
PONDICHERRY
November 17, 1978

I am thankful to you for sending me an issue on Sampurnanand University News. I will see that this is read by many students and professors in this State.

B. Kulkarni

डा० श्याम नारायण मेहरोत्रा
कुलपति

आगरा विश्वविद्यालय
आगरा
संख्या : बीसी । १-३ (९) । ४८४ । १९७८
नवम्बर १७, १९७८

आपके विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' मिली। यह अत्यन्त उपयोगी प्रकाशन है। इसके द्वारा संस्कृत विश्वविद्यालय की शैक्षिक गतिविधि का सर्वांगीण परिचय मिलता है। इस प्रयास के लिए आपको बधाई। क०मु० विद्यापीठ अपने पुस्तकालय के लिए इसका चन्दा भेजना चाहेगा। कृपया अपने कार्यालय को आदेश दें कि वह निदेशक, क०मु० विद्यापीठ को इसकी सूचना दे दें।

श्याम नारायण मेहरोत्रा

डा० मुकुन्दीलाल द्विवेदी
कुलपति
गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय

धन्वन्तरि मन्दिर
जामनगर, तिथि २१-१२-१९७८

आपके द्वारा प्रेषित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रथम अङ्क का अवलोकन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। भारत में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का एक विशिष्ट स्थान है और संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न विषयों में पारम्परिक शिक्षा एवं परीक्षा के द्वारा संस्कृत के प्रचार और प्रसार में इसने श्लाघनीय कार्य किया है। संस्कृत परीक्षाओं के लिए यह एक प्रामाणिक संस्था मानी जाती है और इसे उच्च कोटि के अनेक विद्वानों को उत्पन्न करने का श्रेय प्राप्त है। 'विश्वविद्यालय वार्ता' से संस्कृत विश्वविद्यालय की अनेक गतिविधियों की जानकारी तो सम्बन्धित जनों को प्राप्त होगी ही, किन्तु प्रथम अङ्क से यह स्पष्ट है कि यह पत्रिका चिन्तन के लिए भी उपादेय सामग्री प्रस्तुत करेगी। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिए सम्पादक मण्डल धन्यवाद का पात्र है। पत्रिका की सफलता के लिए शुभ कामनाओं के साथ।

मुकुन्दीलाल द्विवेदी

राजबली तिवारी
राज्य मंत्री, शिक्षा
उत्तर प्रदेश

विधान भवन
लखनऊ
दिनाङ्क १ दिसम्बर, १९७८

आप द्वारा प्रेषित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रथम अङ्क प्राप्त हुआ। मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि उक्त त्रैमासिक पत्रिका में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्राच्य संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में किये जा रहे महनीय प्रयासों का उत्तम उपस्थापन है। इससे जनमानस की संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रति जो भ्रान्त धारणायें हैं, उनका समुचित निराकरण हो सकेगा।

आशा है, यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होती रहेगी और इसमें उत्तरोत्तर उत्तम सामग्री का सन्निवेश होता रहेगा। पत्रिका की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभाशंसा स्वीकार करें।

राजबली तिवारी

सी० ४।२७, सफदरगंज एन्क्लैव
हौज़ ख़ास, नयी दिल्ली—१६
२४।११।७८

मुझे 'विश्वविद्यालय-वार्ता' पढ़ने का अवसर मिला। आपका सम्पादन स्तुत्य है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय का इतिहास जानकर प्रसन्नता हुई।

इस युग के प्रभाव से संस्कृत के प्रति रुचि जनता में ह्रास पर है, किन्तु आपके विश्व-विद्यालय के पदाधिकारियों के सत्प्रयास से यह ह्रास रुक जायगा, ऐसी आशा है।

'वार्ता' के द्वारा विश्वविद्यालय की बहुमुखी कार्य-धारा विदित होने से सन्तोष हुआ।

कृष्णदत्त भारद्वाज

डा० अरुण कुमार सेन
उप-कुलपति

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़ (म० प्र०)
दिनाङ्क १३ दिसम्बर, १९७८

'विश्वविद्यालय वार्ता' के अवलोकन से प्रसन्नता हुई। अनेक दृष्टियों से इस रूप में किया प्रयास श्लाघ्य है। मैं पत्रिका के अनवरत विकास के लिए अपनी मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

अरुणकुमार सेन

Dr. RAM MURTI SHARMA
M.A., Ph. D., D. Litt., Shastri
Professor & Head, Department of Sanskrit
Punjab University, Chandigarh.
Director
Dictionary of Vedanta
(U. G. C. Project)

'विश्वविद्यालय वार्ता' की प्राप्ति के लिए कृतज्ञ हूँ। इस पत्रिका के द्वारा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रमुख गतिविधियों एवं विश्वविद्यालय द्वारा संस्कृत के सम्यक् अभ्युदय के लिए किए गये जिन प्रयासों का परिचय दिया गया है, वे प्रशंसनीय हैं। इस दिशा में संस्कृत महाविद्यालयों को अन्य विश्वविद्यालयों के डिग्री कालेजों के समकक्ष लाने का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।

कृपाकर, इस पत्रिका के प्रकाशन के महान् कार्य के लिए मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभ कामनाएँ स्वीकार करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भवादृश मनीषी एवं कुशल प्रशासक-कुलपति के नेतृत्व में विश्व में अपने ढंग का यह एक विश्वविद्यालय दिन-प्रति दिन अभ्युन्नति को प्राप्त होता रहेगा।

राममूर्ति शर्मा

प्राचार्य दरबार शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)
दिनांक २०-१२-७८

आपके पत्र दिनांक ८-११-७८ के साथ पत्रिका का प्रथम अंक प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद। मैंने पत्रिका को पढ़ा है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि पत्रिका न केवल विश्वविद्यालय की ही गतिविधियों की जानकारी जनसाधारण और बुद्धिजीवी वर्ग को देगी, अपितु वह संस्कृत के पक्ष में जनरुचि बढ़ायेगी।

आपका विश्वविद्यालय समग्र राष्ट्र की संस्कृत शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से पत्रिका में यदि दो स्थायी स्तम्भ–संस्कृत देश में, विदेश में—समाचार तथा मान्यता के आधार पर स्थापित किये जाते हैं तो यह रचनात्मक प्रोत्साहन प्रयास होगा।

पत्रिका में जो सामग्री प्रकाशित की गई है, वह प्रेरणादायक है।

सधन्यवाद।

बो० एल० शर्मा

डा. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'
एम. ए., पी-एच. डी.
अध्यक्ष-संस्कृत-प्राकृत विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दमोह, म. प्र.

आवास : सिविल लाइन्स-३
दमोह, (म. प्र.)
४७०-६६१

दिनांक १-१२-७८

'विश्वविद्यालय वार्ता' पत्रिका प्रकाशन के लिए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तथा सम्पादक एवं प्रकाशकगण अभिनन्दनीय हैं। यह एक अभिनव सुन्दरतम प्रयास है। एतदर्थ हमारी ओर से, हमारे विभाग की ओर से तथा हमारे महाविद्यालय परिवार की ओर से कोटिशः बधाइयाँ एवं शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए। प्रभु से प्रार्थना है कि 'विश्वविद्यालय वार्ता' चिरस्थायी होकर संस्कृत, संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के विकास तथा समुन्नयन में सक्षम हो। 'वार्ता' का प्रथम अंक आगामी अंकों के भव्यतापूर्वक प्रकाशन का ज्ञापक है। यह अंक हम सबको अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान कर सका।

आप इसका प्रकाशन नियमित त्रैमासिक अवश्य करें। देश की संस्कृत शिक्षा संस्थाओं और विशिष्ट विद्वानों के परिचय के साथ संस्कृत की गतिविधियों का समावेश भी इस पत्रिका में करें, ऐसा मेरा अभिमत है।

भवदीय,

भागचन्द्र जैन

मदन लाल डोलिया
प्राचार्य

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,
सीकर

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रथमांक को देखकर प्रसन्नता हुई। पत्रिका प्रकाशन से विश्वविद्यालयीय गतिविधियों का व्यापक स्तर पर प्रकाशन एवं प्रचार तो होगा ही, साथ ही विशिष्ट विषयों के उपयोगी लेखों के माध्यम से संस्कृत साहित्य की जो अमूल्य सेवा होगी, उसके लिए प्रकाशक विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। संस्कृत के गम्भीर विषयों को सरल रूप में प्रकाशित करने के लिए विशिष्ट प्रयास किये जाने चाहिए, जिससे जनता में संस्कृत के प्रति श्रद्धा के साथ अनुराग की भी वृद्धि हो। आपका यह उत्तम प्रयास सफल हो, यही भगवान आशुतोष से अभ्यर्थना है।

मदनलाल डोलिया

भारतीय विद्या भवन
फाउंडेड बाइ कुलपति के० एम० मुंशी

दिनांक ५।१२।१९७८

आपकी ओर से भेजे गये 'विश्वविद्यालय वार्ता' नामक पत्र का प्रथम अंक मिला। उसके लिए धन्यवाद।

मैंने उसके विविध विभागों को देखा और आनन्द के साथ सन्तोष का अनुभव किया। विश्वविद्यालय के विकास कार्यक्रमों का लेखा-जोखा सर्वत्र विदित होना आवश्यक है। यह हेतु इस पत्र से परिपूर्ण होगा। आचार्य पदवी प्राप्त छात्रों के द्वारा किये जा रहे नवीन अनुसन्धानों का भी विवरण इसमें देना लाभकारी बनेगा। मैं इस पत्र की सफलता के लिये शुभकामना प्रकट करता हूँ, और विश्वविद्यालय की निरन्तर प्रगति में यह अपना उचित योगदान देता रहे, ऐसी आशा करता हूँ।

भवदीय
रामकृष्ण व्यास

'विश्वविद्यालय वार्ता' पर विद्या परिषद् का अभिमत

'विश्वविद्यालय वार्ता' के द्वितीय अङ्क को विद्या परिषद् की २२-१२-७८ की बैठक में सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। परिषद् ने इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में यह अभिमत व्यक्त किया कि इस पत्रिका का प्रकाशन अत्यन्त श्लाघनीय है। परिषद् इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है।

सम्पादकीय

'विश्वविद्यालय वार्ता' का तीसरा अङ्क प्रस्तुत है। किसी तथ्य की प्रामाणिकता के लिये त्रिवाचा—त्रिवार्ता को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। तीसरे अङ्क ने प्रस्तुत त्रैमासिकी की उपयोगिता और अपरिहार्यता सिद्ध कर दी है। वास्तव में 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रथम और द्वितीय, दोनों अङ्कों का संस्कृत जगत् और संस्कृत प्रेमियों द्वारा हार्दिक स्वागत हुआ। कारण स्पष्ट है। 'वार्ता' द्वारा विश्वविद्यालय विशेष रूप से मुखरित होने लगा है। उसकी गतिविधियों और चिन्तनधाराओं के अब जन-जन तक पहुँचने का अवसर सुलभ हो गया है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय को इस अर्थ में बड़ा गौरव प्राप्त है कि प्रादेशिक स्तर का होते हुए भी इस शिक्षा केन्द्र का स्वरूप अखिल भारतीय है—विश्वविद्यालय से संबद्ध संस्कृत विद्यालय और महाविद्यालय पूरे देश में फैले हुए हैं। प्रति वर्ष लगभग पैंतीस-चालीस सहस्र छात्र इस विश्वविद्यालय के माध्यम से संस्कृत वाङ्मय की विभिन्न शाखाओं में दीक्षित होते हैं। संस्कृत के महत्त्व को आज बताने की आवश्यकता नहीं है। समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य के स्रोत संस्कृत में सुरक्षित हैं। भारतीय भाषाओं का विकास जैसे संस्कृत की एक कड़ी के रूप में हुआ, उसी प्रकार साहित्यों का विकास भी संस्कृत साहित्य की एक कड़ी के रूप में ही हुआ है। अतः स्पष्ट है कि उनके सम्यक् अध्ययन के लिये संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि संस्कृत वाङ्मय का पूर्ण विकास उसी समय हो गया था, जब अन्य देश सभ्यता की शायद पहली किरण का भी स्पर्श नहीं कर पाये थे। इसी की ओर संकेत करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा था—

> हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
> उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार॥
>
> जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
> व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संस्कृति हो उठी अशोक॥

सहस्रों वर्षों का वैदेशिक सम्पर्क, भौगोलिक विज्ञान की उपलब्धियों और राजनीतिक चढ़ाव-उतार ने संस्कृत शिक्षा को पर्याप्त मात्रा में अन्यथा प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप संस्कृत वाङ्मय की कई शाखाओं का अध्ययन-अध्यापन बाधित हो गया था। किन्तु देश के स्वतन्त्र होने के साथ राष्ट्र की दृष्टि उस ओर आकृष्ट हुई और इसके पुनरुत्थान का प्रयत्न आरम्भ हुआ, जिसके साक्षिओं में इस विश्वविद्यालय की और इससे सम्बद्ध सहस्रों महाविद्यालयों का अग्र स्थान है।

विश्वविद्यालय ने विगत २३ दिसम्बर को अपना इक्कीसवां दीक्षान्त समारोह सम्पन्न किया है। इस अङ्क में समारोह का विवरण भी दिया जा रहा है। दीक्षान्त समारोह में विद्वज्जनों और स्नातकों को सम्बोधित करते हुए समारोह के विशिष्ट अतिथि प्रोफेसर रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर महोदय ने विश्व-विद्यालय के कर्तव्यों और वर्तमान शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपने शिक्षा को जीवनव्यापी साधना के रूप में माना है। इस सन्दर्भ में आपने अमेरिका के एक शिक्षाकेन्द्र पर अङ्कित इस ध्येयसूत्र का उल्लेख किया है—

"उस कायरता से जो सत्य से पृथक करे
उस उदासीनता से जो अर्ध सत्य से परितृप्त हो
उस अहंकार से जो स्वयं को पूर्ण माने
हे प्रभु सत्य के !
मुक्त करो इनसे ।"

ज्ञानसातत्य का यह ध्येय गुरु और शिष्य दोनों पर समान रूप से लागू होता है। प्रोफेसर दाण्डेकर की शिक्षाविषयक दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। वे 'ज्ञानं विज्ञानसहितम्' कह कर नई वैज्ञानिक उपलब्धियों का भी पूरा स्वागत करते हैं। विश्वविद्यालय अपने में ज्ञान-विज्ञान का मूर्त्त रूप है। ऐसे ही विद्याकेन्द्र से ज्ञान के प्रकाश की रंग-विरंगी किरणें सभी दिशाओं में फैल सकती हैं।

'विश्व विद्यालय वार्ता' के तीसरे अंक में शिक्षा के प्रकरण पर काफी चिन्तन हुआ है। शिक्षा संस्थाओं में राष्ट्र का निर्माण होता है। विश्वविद्यालयीय शिक्षा तो पूर्णतया राष्ट्र रचना के लिए समर्पित है। आज शिक्षा पर अधिकाधिक चिन्तन की अपेक्षा है।

'विश्वविद्यालय वार्ता' विश्वविद्यालयीय गतिविधियों का परिचय देने के लिए ही नहीं है, वरन् चिन्तन का आधार प्रस्तुत करने के लिये भी है। तीसरे अङ्क में सम्मिलित प्रोफेसर दाण्डेकर के अविकल दीक्षान्त भाषण और कुलपति के विश्वविद्यालयीय परिचय से यह चिन्तन व्यक्त हुआ है।

सांस्कृतिक संकट

गत अङ्क के सम्पादकीय में हमने लिखा था कि प्राचीन सभ्यता के देश मिश्र, यूनान, रोम आदि अपना स्वरूप खो बैठे, पर भारत का स्वरूप अक्षुण्ण रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि हमने अपनी प्राचीनतम भाषा संस्कृत, उसमें निबद्ध सम्पूर्ण वाङ्मय और उससे प्राप्त होने वाले संस्कारों की विषमतम परिस्थितियों में भी सदा प्राणपण से रक्षा की है। इतिहास के पृष्ठों में ऐसे अनेक क्षणों का उल्लेख है, जब भारतीय संस्कृति के भी मिट जाने का खतरा उपस्थित हो गया था। उनसे तो हम बचकर निकल आये, किन्तु आज उसी तरह का संकट फिर हमारे ऊपर मँडराने लगा है। यह संकट बाहरी भी है और आन्तरिक भी। समय रहते इस संकट को हमें पहचानना है और इसे दूर करने के लिए सचेष्ट हो जाना है।

भारतीय संस्कृति त्याग, तपस्या, सहिष्णुता और समन्वय—इन चार सुदृढ़ पायों पर खड़ी है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने इन्हीं गुणों को आधार बनाकर देश स्वतन्त्र किया था। किन्तु आज परिस्थिति बदलती जा रही है। भारत बहुभाषी और बहुधर्मी राष्ट्र है। किसी के साथ भेदभाव न बरता जाय, इसलिये संविधान के द्वारा भारत को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया। इसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि राज्य किसी भी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगा। वह न तो किसी धर्म को प्रोत्साहित करेगा और न किसी धर्म को दबाने का प्रयत्न ही। धर्म शब्द का प्रयोग यहां संकुचित अर्थ में हुआ है। प्रायः इसी अर्थ में यह आजकल प्रचलित भी हो गया है। संस्कृत वाङ्मय में धर्म और सम्प्रदाय ये दो पवित्र शब्द हैं। महाभारत, मनुस्मृति प्रभृति ग्रन्थों में धर्म का लक्षण यह बताया गया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, न्याय से धन प्राप्त करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में करना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध इन दस गुणों की समष्टि ही 'धर्म' है। इसी प्रकार ज्ञान के आदानप्रदान की गुरुशिष्यपरम्परा को सम्प्रदाय कहा जाता है। आज इन शब्दों के वास्तविक अर्थों को

हम भूलते जा रहे हैं और जाने-अनजाने धर्मनिरपेक्षता की बाढ़ में इन मानवीय गुणों से दूर होते जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति करना है, किन्तु आज का युग केवल अर्थ और कामप्रवण होता जा रहा है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या करने वाले साम्यवादी विचारक एक लुभावने भविष्य की कल्पना प्रस्तुत करते हैं। उनका यह सारा प्रयत्न अर्थ और काम की प्राप्ति तक ही सीमित है। इनकी प्राप्ति के लिये भी ये संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं। हमारा देश भी आज इसी ओर आगे बढ़ रहा है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि हमारी संस्कृति धर्म और मोक्ष के उत्कृष्ट आध्यात्मिक लक्ष्य से च्युत होकर शुद्ध भौतिकवाद की ओर उन्मुख होने जा रही है। आज के राजनीतिज्ञ उन गुणों से दूर होते दिख रहे हैं, जिनके आधार पर यह भारतीय संस्कृति का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ है।

प्रसिद्ध विचारक प्रोफेसर रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर अपने दीक्षान्त भाषण में कहते हैं—"आज हम युवक और युवतियों को नीतिमत्ता, अनुशासन तथा सदाचार की शिक्षा देते हैं। किन्तु हमारे आज के समाज में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हो गये हैं, जिनके गुणों को आत्मसात् करने के लिये वे उनका अनुसरण करें।" कठिन परिश्रम और स्वार्थ त्याग की भावना आज देश में कम होती जा रही है। दूसरों के विचारों को भी आदर देना और उसमें, जो भी शिव और सुन्दर हो, उसे स्वीकार करना, भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। ऐसा करते समय पहले से चले आ रहे अपने सद्विचारों के परित्याग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु आज इस चक्र की गति विपरीत हो गयी है। हम अपने सद्‌गुणों को छोड़ते चले जा रहे हैं और दूसरों के दोषों का अनुकरण करने पर उतारू हो उठे हैं।

राजनीति के क्षेत्र में हमने पाश्चात्य जनतन्त्र के स्वरूप को स्वीकार किया है, किन्तु देश में जनतन्त्र की अपेक्षा दलतन्त्र और व्यक्तितन्त्र अधिक प्रबल होता जा रहा है। यह दलतन्त्र और व्यक्तितन्त्र शिक्षा के पवित्र तीर्थों को भी कलुषित और विकृत करने की ओर अग्रसर है। महाभारत, पालि त्रिपिटक जैसे ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय गणतन्त्रों की आदर्श व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। उसमें वृद्ध, अनुभवी और तपस्वी मनीषियों की प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी। आज उसकी उपेक्षा परिलक्षित हो रही है तथा अस्वस्थ ढंग से पदलोलुपता और अर्थलिप्सा जैसे प्रलोभनों द्वारा युवकों को दूसरी दिशा में मोड़ा जा रहा है। आज का नवयुवक, चाहे वह संस्कृत का विद्यार्थी ही क्यों न हो, अपनी भाषा, साहित्य, वेश-भूषा, रहन-सहन से विमुख होता जा रहा है। आधुनिक विश्वविद्यालयों में यह प्रवृत्ति तीव्रता से पनप रही है। ऐसे भी विचारक हैं, जो पुराने विचारों से अपना पिण्ड छुड़ा लेने में ही देश का कल्याण मानते हैं।

यही है वह सांस्कृतिक संकट, जिसकी ओर से समय रहते हमें सचेत हो जाना चाहिये। 'विश्व-विद्यालय वार्ता' को अन्य उद्देश्यों के साथ ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति में भी अग्रसर करना विश्वविद्यालय का लक्ष्य है। सांस्कृतिक संकट की इस वेला में 'वार्ता' को प्रबुद्ध भारतीय चिन्तकों का ध्यान इस प्रमुख समस्या की ओर आकृष्ट करते हुए इसके निवारण हेतु उनके सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है, जिससे भारतीय संस्कृति पर आया यह संकट दूर हो सके और पुरातन के अक्षुण्ण सांस्कृतिक प्रवाह को नवयुग की अभिरामता के साथ प्रतिष्ठित किया जा सके।

सरस्वती भवन के लिये विश्वविद्यालय द्वारा ज्ञानपिपासुओं का आवाहन

अये चिरपरिश्रान्ता विद्याकान्तारचारिणः ।
समागच्छत वस्तृप्तिं करोमि ज्ञानधारया ।।
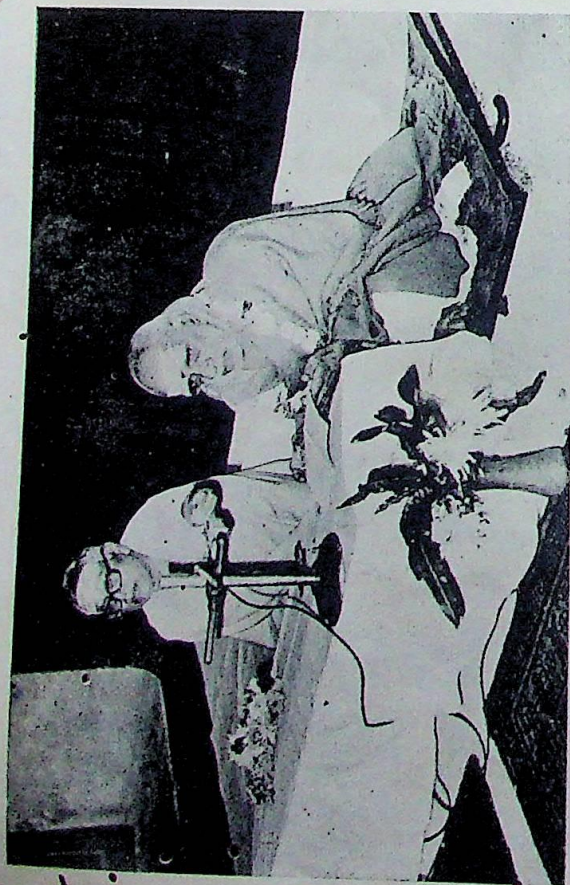
पं० श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री, दीक्षान्त समारोह के अवसर पर विशिष्ट व्याख्यान देते हुए ।

वार्षिक क्रीड़ा प्रतियोगिता में सर्वोत्तम खिलाड़ी को पुरस्कार प्रदान करते हुए कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ।
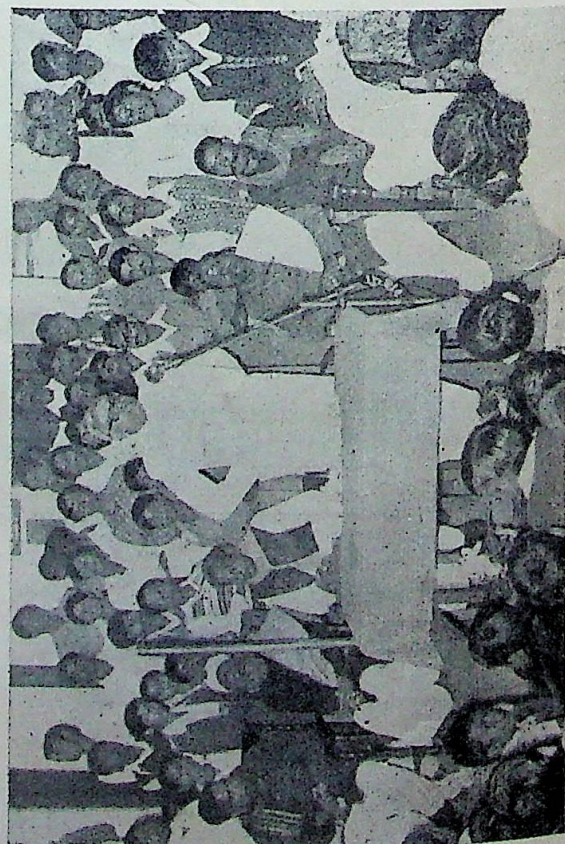
कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल, क्रीड़ा प्रतियोगिता के पुरस्कार-वितरण समारोह में छात्रों को सम्बोधित करते हुए ।
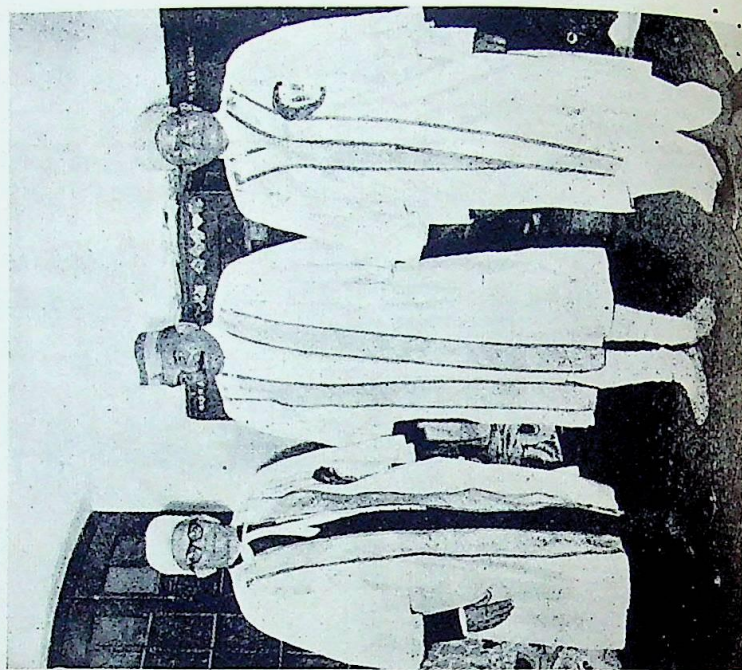
दीक्षान्त समारोह के मुख्य अतिथि प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर (बायें),
[illegible]

कुलपति की पत्रकार वार्ता

[प्रोफेसर श्री बदरीनाथ शुक्ल ने मार्च, सन् १९७८ में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद का कार्य भार ग्रहण करने के उपरान्त दि० ४-४-७८ को **प्रथम** पत्रकार वार्ता का आयोजन किया था। इसका विवरण 'विश्वविद्यालय वार्ता' के प्रथम अङ्क में प्रकाशित हो चुका है। दि० १५-१२-७८ को उन्होंने पुनः प्रबुद्ध पत्रकारों के समक्ष विश्वविद्यालय की प्रगति की झांकी प्रस्तुत करने के लिये पत्रकार वार्ता आयोजित की। उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।]

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल ने दि० १५-१२-७८ को कुलपति आवास में आयोजित पत्रकार वार्ता में विश्वविद्यालय की सर्वविध शैक्षणिक उन्नति के लिये किये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला:—

शैक्षणिक गतिविधियां

(क) प्रौढ़ संस्कृत शिक्षा—विश्वविद्यालय द्वारा बालकों और प्रौढ़ों को संस्कृत शिक्षा देने के लिये शीघ्र ही पूरे नगर में केन्द्र स्थापित किये जायेगें और इसके लिये नागरिकों की बैठक होगी। प्रारम्भ में कमच्छा स्थित अभिमन्यु पुस्तकालय तथा लंका क्षेत्र में इस कार्य का शुभारम्भ किया जायगा।

(ख) समर स्कूल—प्रौढ शिक्षा के लिये तथा समर स्कूल रिफ्रेसर कोर्स के लिये १४ लाख की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास भेजी गई है।

(ग) संस्कृत महाविद्यालयों का विकास—संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध संस्कृत महाविद्यालयों के विकास हेतु विकास परिषद् के गठन एवं अन्य कार्यों को सम्पन्न करने के उद्देश्य से ३५ लाख रुपयों की योजना भेजी गई है।

(घ) विदेशी भाषाओं का अध्ययन—आगामी सत्र से विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के साथ फ्रेंच, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं को भी शास्त्री कक्षा तक वैकल्पिक विषय के रूप में मान्यता दी जायगी। अभी तक अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं की केवल प्रमाणपत्रीय कक्षाएं ही चलती थीं। अब इन भाषाओं की भी शास्त्री कक्षा तक ऐच्छिक रूप से अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की जा रही है।

(ङ) दक्षिण भारतीय भाषाओं का अध्ययन—आगामी सत्र से शास्त्री कक्षा तक खवर्गीय विषयों में दक्षिण भारतीय भाषाओं के पढ़ाने की व्यवस्था की जा रही है। दक्षिण भारत के तमिलनाडु, आन्ध्र, कर्नाटक और केरल राज्यों की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा की शिक्षा के लिये राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के पास इस आशय का पत्र भेजा गया है कि वे अपनी-अपनी भाषाओं के योग्य शिक्षकों को इस विश्वविद्यालय में नियुक्त करने की व्यवस्था करें। इसके उत्तर में केरल और कर्नाटक से स्वीकृति सूचक उत्तर भी आगया है।

(च) जम्मू-कश्मीर में शास्त्रों का उद्धार—जम्मू-कश्मीर के मुख्य मन्त्री श्री शेख अब्दुल्ला को लिखा गया था कि वे अपने राज्य में स्थित शैवागम, पाञ्चरात्र, शाक्त एवं तन्त्र प्रभृति विषयों के विद्वानों को संरक्षण देकर दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों एवं पाण्डुलिपियों को सुरक्षित करने के लिये एक विद्यापीठ की स्थापना करके आगम शास्त्र को लुप्त होने से बचायें। इसके उत्तर में शेख साहब ने लिखा है कि कि वे इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही कर रहे हैं।

(छ) शास्त्रीय संगीत की शिक्षा—इसके लिये विश्वविद्यालय के वर्तमान संगीत विभाग को समृद्ध बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

(ज) विधि-विभाग की स्थापना—भारतीय विधिशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की योजना कुछ वर्ष पहले प्रस्तावित हुई थी। उसे अब कार्यान्वित करने की कार्यवाही की जा रही है।

(झ) प्रतियोगिता परीक्षाओं में शास्त्रों का समावेश—संघ लोकसेवा आयोग तथा उत्तरप्रदेश लोकसेवा आयोग की प्रतियोगिता परीक्षाओं में संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों का अलग-अलग विषयों के रूप में समावेश कराने के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री तथा मुख्य मन्त्री ने उचित कार्यवाही करने का आश्वासन दिया है।

विकास योजनाओं का कार्यान्वयन

कुलपति ने बताया कि वर्ष १९७४-७९ की अवधि में पांचवीं पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और उत्तरप्रदेश शासन की स्वीकृति से विकास योजनाओं का

कार्यान्वयन हो रहा है। वर्ष १९७८-७९ में इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रगति हुई है। जैसे कि—

(क) विभागीय पुस्तकालयों की स्थापना—विभागीय पुस्तकालय पहले यहां नहीं थे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत ९ लाख रुपयों के प्राप्त अंश से अब यहां विभागीय पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है।

(ख) केन्द्रीय सरस्वती भवन पुस्तकालय—केन्द्रीय पुस्तकालय के हस्तलिखित और मुद्रित दोनों विभागों को अधिक समृद्ध बनाने के लिए भी ढाई लाख रुपया व्यय किया जा रहा है। आधुनिक पुस्तकालय के लिए आवश्यक सभी उपकरणों से इसे सुसज्जित किया जा रहा है। पाण्डुलिपियों के संरक्षण के लिए अलग से ६० हजार रुपया व्यय किया जा रहा है तथा ढाई लाख रुपये की लैमिनीशन मशीन मँगाई जा रही है। निकट भविष्य में पुस्तकालय से संबद्ध एक विशाल प्रदर्शनी करने का भी आयोजन किया जा रहा है, जिससे यहां संचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के इस भण्डार की सही जानकारी जनता को प्राप्त हो सके।

(ग) ग्रन्थों और ग्रन्थसूचियों का प्रकाशन—सरस्वती भवन पुस्तकाकय में संगृहीत पाण्डुलिपियों की संख्या १ लाख से ऊपर पहुँच चुकी है। इनमें से अब तक लगभग ५० हजार ग्रन्थों की ही विषयानुसार सूचियां प्रकाशित हो पाई हैं। अब शेष समग्र ग्रन्थों की सूची के प्रकाशन का कार्य आरम्भ हो गया है। सवा दो लाख रुपये के व्यय से इन प्राचीन पाण्डुलिपियों की अनेक भागों में विवरणात्मक सूची प्रकाशित कराई जा रही हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियों और दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन पर भी ३ लाख रुपया व्यय किया जा रहा है।

(घ) विभागों की साज-सज्जा—ज्योतिष विभाग के लिए उपकरणों पर ४० हजार, भाषा विज्ञान के लिए लेंगुएज लेबोरेटरी की स्थापना पर ८० हजार, वेद विभाग के लिए उपकरणों पर २५ हजार, शिक्षाशास्त्र, गृहविज्ञान और विज्ञान विभाग के उपकरणों के लिए १० हजार रुपया व्यय किया जा रहा है।

अध्यापकों और छात्रों की समस्याएं

अध्यापकों और छात्रों की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया—

(क) आचार्य (प्रोफेसर) का एक, उपाचार्य (रीडर) के पांच और प्राध्यापक (लेक्चरर) के तेरह पद स्वीकृत हुए थे। इनमें से एक आचार्य, तीन उपाचार्य और सात प्राध्यापकों की नियुक्ति हो गई है। शेष पदों पर नियुक्तियाँ आगामी फरवरी मास के अन्त तक कर लेने का प्रयास किया जा रहा है।

(ख) अध्यापकों की कमी आंशिक रूप से पूरी होने के साथ ही उनके लिए अध्यापन कक्षों और निवास की व्यवस्था का समाधान करने का प्रयास हो रहा है। अध्यापन कक्षों के लिए पाणिनि भवन साढ़े आठ लाख रुपये की लागत से बन रहा है, जिसका लगभग ६० प्रतिशत कार्य पूरा हो चुका है।

(ग) अध्यापकों के आवास के लिए साढ़े सात लाख रु० की लागत से ४ आचार्य आवास और १४ प्राध्यापक आवासों का निर्माण हो रहा है। इसका भी ६० प्रतिशत कार्य पूरा हो चुका है।

(घ) छात्रों की आवास समस्या के समाधान के लिए ८.७ लाख रु० की लागत से एक नया छात्रावास बन रहा है।

(ङ) चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए भी ३० आवास बन कर प्रायः तैयार हैं। तीस और आवास बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

(च) विजिटिंग फैकल्टी पर ५० हजार रुपया व्यय किया गया है और इस योजना को चालू रखने के लिए प्रस्ताव भेजा गया है।

(छ) छात्रों और अध्यापकों के शैक्षिक पर्यटन के लिए आयोग से ३० हजार रुपये वार्षिक अनुदान की मांग की गई है।

(ज) विश्वविद्यालयीय छात्रवृत्तियों की दर बढ़ाने के लिए राज्य सरकार से अनुरोध किया जा रहा हैं।

अन्त में कुलपति ने बताया कि हाल में आयी बाढ़ में विश्वविद्यालय कर्मचारियों ने अपना एक दिन का वेतन (५८२२.२० रु०) बाढ़ सहायता कोष में दिया तथा छात्रों ने भी बाढ़ पीड़ितों की तन, मन, धन से सेवा की। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

समागत पत्रकारों का स्वागत करते हुए आपने उनसे संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में सर्वविध सहयोग देने और विश्वविद्यालय की गतिविधियों को अच्छे ढंग से प्रकाश में लाने का अनुरोध किया।

विश्वविद्यालयीय समारोह

दीक्षान्त समारोह

वर्तमान समय में राजनीतिक गतिविधियों तथा विद्यार्थियों की अपने धूमिल भविष्य की कल्पना के कारण वातावरण के अशान्त होने से विश्वविद्यालयों में परीक्षाएँ समय से सम्पन्न नहीं हो पा रही हैं तथा दीक्षान्त समारोह ऐसे पवित्र समारोह आयोजित नहीं हो पा रहे हैं। किन्तु कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने संकल्प लिया कि विश्वविद्यालय के समस्त कार्य तथा दीक्षान्त समारोह छात्रों तथा विश्वविद्यालय के हित में यथासमय सम्पन्न करने हैं फलतः अध्यापकों, छात्रों तथा कर्मचारियों के सर्वविध सहयोग से दीक्षान्त समारोह का आयोजन उल्लास एवं उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।

दिनाङ्क १६-११-७८ को आहूत विभागाध्यक्षों की बैठक में दीक्षान्त समारोह की तिथि २३-१२-७८ की सविधि घोषणा की गई और यह सूचित किया गया कि संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर दीक्षान्त भाषण करेंगे। साथ ही देश के ६ विशिष्ट तपस्वी मनीषियों को मानद वाचस्पति उपाधि देने का भी निश्चय किया गया। विभिन्न कार्यों के सञ्चालन के लिये समितियाँ बना दी गयीं और १५ दिसम्बर से प्रादेशिक स्तर पर समस्त संस्कृत महाविद्यालयों के छात्रों की क्रीडा-प्रतियोगिता होने लगी।

दिनाङ्क २०-१२-७८ को प्रातःकाल वेद शाखा-स्वाध्याय से दीक्षान्त समारोह के अङ्गभूत अन्य कार्यक्रमों का आरम्भ हुआ। इसमें विभिन्न वेद शाखाओं के पारम्परिक वैदिक विद्वानों ने भाग लिया। इसी दिन सायंकाल ७ बजे विशिष्ट व्याख्यानमाला के अन्तर्गत प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् श्री पट्टाभिराम शास्त्री का प्रथम व्याख्यान हुआ। इनके द्वितीय तथा तृतीय व्याख्यान क्रमशः २१ और २२ दिसम्बर को सम्पन्न हुए।

दिनाङ्क २१-१२-७८ को मध्याह्न में १ बजे 'संस्कृतज्ञानमेव समाजोत्कर्षाय प्रभवेत्' विषय पर सस्कृत-वादविवाद प्रतियोगिता और अपराह्न में ३ बजे 'भारत के लिये प्राचीन शिक्षा पूर्ण है'; विषय पर हिन्दी-वादविवाद प्रतियोगिता सम्पन्न हुई। इसी दिन सायंकाल ७ बजे विभिन्न विषयों पर काशी की प्राचीन परम्परा को उजागर करने वाले विभिन्न विषयों में शास्त्रार्थ आयोजित किये गये, जिसमें काशी के मूर्धन्य शास्त्रार्थी विद्वानों ने भाग लिया। रात्रि में ८ बजे से संस्कृत कवि सम्मेलन का सरस आयोजन सम्पन्न हुआ।

दिनाङ्क २२-१२-७८ को मध्याह्न १ बजे से विद्या परिषद् और अपराह्न में ३.३० पर कार्य परिषद् का अधिवेशन सम्पन्न हुआ, जिनमें संस्कृत वाङ्मय और संस्कृत शिक्षा की समृद्धि के लिये महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। रात्रि में ७.३० पर हिन्दी कवि सम्मेलन आयोजित हुआ।

दिनाङ्क २३-१२-७८ को १२-४५ पर आयोजित विद्या परिषद् की बैठक में दीक्षान्त समारोह सम्बन्धी औपचारिकता पूरी की गयी और २ बजे से पुष्पों एवं प्रकाश की अनोखी सजावट से मुखरित विश्वविद्यालय के मुख्य भवन में दीक्षान्त समारोह का प्रमुख कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। समारोह की सफलता के लिये देश के गण्यमान्य महानुभावों के शुभ कामना सन्देश प्राप्त हुए थे। स्नातकीय वेषग्रहण के बाद शिष्ट यात्रा आरम्भ हुई। शिष्ट यात्रा के दीक्षान्त मण्डप में प्रवेश के साथ ही कुलगीत के मधुर संगीत से वातावरण मुखरित हो उठा। वैदिक और पौराणिक मङ्गलाचरण के उपरान्त कुलपति ने उत्सव के उद्घाटन के लिये प्रतिकुलाधिपति भूतपूर्व काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह से प्रार्थना की। अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण कुलाधिपति महामान्य राज्यपाल श्री गणपतिराव देवजी तपासे इस उत्सव में सम्मिलित न हो सके।

प्रतिकुलाधिपति की उत्सवारम्भ की घोषणा के बाद सर्वप्रथम देश के प्रतिष्ठित छः मनीषियों को वाचस्पति की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया। तदुपरान्त कुलपति द्वारा अनुशासित स्नातकों को उपाधिपत्र और विशिष्ट योग्यता के छात्रों को पदक प्रदान द्वारा भी सत्कृत किया गया।

कुलपति ने मुख्य अतिथि प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर से दीक्षान्त भाषण के लिए अनुरोध करते हुए उनका परिचय दिया और दीक्षान्त भाषण के उपरान्त अपने सारगर्भ समापन भाषण

में दीक्षान्त भाषण की विशेषताओं की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करते हुए विश्वविद्यालयीय समस्याओं पर भी प्रकाश डाला। कुलपति के अनुरोध पर प्रतिकुलाधिपति ने उत्सव समाप्ति की घोषणा की और एक बार फिर पूरा भवन राष्ट्रगीत के मधुर संगीत से झङ्कृत हो उठा। शिष्ट यात्रा के प्रत्यावर्तन के साथ यह उत्सव समाप्त हुआ।

अपराह्ण में ४-३० पर कुलपति आवास में मुख्य अतिथि के सम्मान में उद्यान गोष्ठी आयोजित की गई। अपरिहार्य कारणों से यातायात में बाधा पड़ जाने से निर्धारित सांस्कृतिक कार्यक्रम को स्थगित कर देना पड़ा।

यह है दीक्षान्त समारोह के अवसर पर सम्पन्न हुए कार्यक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा। विभिन्न कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण अब दिया जा रहा है—

२० दिसम्बर, १९७८

वेद शाखा स्वाध्याय

विश्वविद्यालय के इक्कीसवें दीक्षान्त समारोह का शुभारम्भ करते हुए दि० २० दिसम्बर १९७८ को कुलपति ने वेद भवन के यज्ञमण्डप में समारोह का शिव संकल्प करते हुए निर्विघ्न कार्य होने के लिए श्रीगणेश, भगवती अम्बिका एवं भगवान् वेद का वेदमन्त्रों द्वारा विधिवत् पूजन किया। अनन्तर आपने काशी के वैदिक विद्वानों की भी चन्दन माला आदि से अर्चना की। वैदिक विद्वानों ने क्रमशः ऋग्वेद, कृष्ण यजुर्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का शाखा स्वाध्याय किया, जिसमें ऋग्वेद में सरस्वती सूक्त का संहिता, क्रम और पद पाठ किया गया। इन मन्त्रों में सरस्वती से सर्वाङ्गीण समुन्नति एवं मानव मात्र को सुशिक्षित करने की प्रार्थना की गयी। कृष्ण यजुर्वेद के सरस्वती सूक्त द्वारा भी गूढ़ तत्त्व एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विविध उपलब्धियों की प्रार्थना की गयी। शुक्ल यजुर्वेद के ब्रह्मसूक्त के माध्यम से वेद से ब्रह्म साक्षात्कार की और सामवेद के आग्नेय एवं ऐन्द्र साम गान द्वारा बल वृद्धि की कामना की गई; अथर्ववेद के मधुसूक्त से राष्ट्र रक्षा, विश्व शान्ति एवं मानव समृद्धि की अभ्यर्थना की गई।

अन्त में श्री कुलपति ने वैदिक विद्वानों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्हें धन्यवाद दिया। परम्परागत वेदों के संरक्षण के निमित्त इस वैदिक शाखा स्वाध्याय कार्यक्रम में निम्न वैदिकों ने वेद क्रम से पूर्वोल्लिखित वैदिक सूक्तों का पाठ किया—

ऋग्वेद

१. डा० श्री विश्वनाथ देव, घनपाठी, वेदाचार्य, विद्यावारिधि, गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, काशी।
२. श्री अनन्तराम पन्त पुणताम्बेकर, घनपाठी, प्राध्यापक उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।
३. श्री रघुदत्त पण्ड्या।
४. डा० श्री श्रीकृष्णदेव, स० सं० वि० वि०, वाराणसी।

कृष्ण यजुर्वेद

५. श्री गणेश भट्ट बापट, श्रौताचार्य, घनपाठी, भू० पू० प्राध्यापक गो० सं० म० वि०, वाराणसी।
६. श्री नारायण रामचन्द्र दातार, घनपाठी, वाराणसी।

शुक्ल यजुर्वेद (काण्वशाखा)

७. श्री लक्ष्मीकान्त पुराणिक, घनपाठी, वाराणसी।
८. श्री बालाजी पेठकर, घनपाठी, वाराणसी।

शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिनी शाखा)

९. श्री गजानन गोडशे, वेदाचार्य, घनपाठी, प्राध्यापक रामानुज सं० म० विद्यालय, वाराणसी।
१०. श्री वंशीधर मिश्र, वेदाचार्य, भू० पू० प्रा० गोयनका सं०म० विद्यालय, वाराणसी।
११. श्री लक्ष्मीकान्त दीक्षित, घनपाठी, प्रा० साङ्गवेद विद्यालय, रामघाट, वाराणसी।
१२. श्री मणिराम औंढेकर, घनपाठी, वाराणसी।
१३. श्रीनारायण मिश्र, घनपाठी, वाराणसी।
१४. श्री बालकृष्ण जेतली, वाराणसी।
१५. श्री मङ्गलदत्त त्रिपाठी, वाराणसी।

सामवेद

१६. श्री शिवराम त्रिपाठी, सामगायनाचार्य, व्यवस्थापक, दैनिक सन्मार्ग, वाराणसी।
१७. श्री गोपालराम त्रिपाठी, सामगायनाचार्य, कार्यालय पण्डित, का० हि० वि० वि०, वाराणसी।
१८. श्री नन्दकृष्ण त्रिपाठी, वाराणसी।

अथर्ववेद

१९. श्री नारायण शास्त्री रटाटे, अथर्ववेद प्राध्यापक, दरभङ्गा सं० म० विद्यालय, वाराणसी।
२०. श्री राजाराम धुले, वेदाचार्य।
२१. श्री डा० मनोहरलाल द्विवेदी, प्रा०, स० स० वि० वि०, व्यवस्थापक शा० स्वा०।

२०-२२ दिसम्बर, १६७८

श्री पट्टाभिराम शास्त्री के विशिष्ट व्याख्यान

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के इक्कीसवें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रसिद्ध संस्कृतविद् और भारतीय संस्कृति के विद्वान् श्री पट्टाभिराम शास्त्री ने मीमांसा, वेद तथा साहित्य के विभिन्न विषयों पर आधारित त्रिदिवसीय विशिष्ट व्याख्यानमाला प्रस्तुत की । व्याख्यानों का सारांश निम्नाङ्कित है—

वेदाङ्गों में शिक्षा

प्रथम दिवस, दिनाङ्क २० दिसम्बर, ७८ को आपने वेदवेदाङ्गों की शिक्षा पर सारगर्भित विचार प्रकट किये । आपने शिक्षा ग्रन्थों के निर्माण और संरक्षण की आवश्यकता आदि की चर्चा करते हुए कहा—"तैत्तिरीय शाखा के उपनिषद् में शिक्षाध्याय का प्रारम्भ 'शीक्षां व्याख्यास्यामः' तथा 'वर्णः स्वरः मात्रा बलम्' से और 'सामसन्तान इत्युक्तः शीक्षाध्यायः' के उल्लेख के साथ उपसंहार होता है । इस श्रुति के आधार पर ही महर्षियों ने शिक्षा ग्रन्थों का निर्माण किया ।"

आपने आगे बताया कि निरूपण करने योग्य छः पर्याय हैं—अकारादि वर्ण, उदात्तानुदात्तादि स्वर, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतादि मात्राएं, स्पृष्टेषत्स्पृष्टादि प्रयत्न बल, अतिशीघ्रता एवं अतिविलम्ब का परित्याग अर्थात् साम तथा संहिता । महर्षियों ने दो प्रकार के ग्रन्थों का सृजन किया—प्रथम प्रातिशाख्य व द्वितीय शिक्षा-ग्रन्थ । प्रातिशाख्य ग्रन्थों का प्रणयन प्रत्येक शाखा के प्रकृति पाठ अर्थात् मूलसंहिता के पद-क्रम पाठ के संरक्षण के लिए हुआ तथा शिक्षा-ग्रन्थों का निर्माण विकृति पाठ जटा-घनादि को व्यवस्थित करने के लिए हुआ। प्रकृति पाठ में पदों का अनुलोम व्यवहार ही होता है, किन्तु विकृति पाठ में अनुलोम व प्रतिलोम दोनों का व्यवहार होता है । प्रकृति पाठ तक शिक्षार्थी गुरुमुखोच्चारणानूच्चारण की परम्परा से विधिवत् विद्या का अधिगम करता है, किन्तु विकृति पाठ में शिष्य गुरु के साथ सम्मिलित होकर पदों की आवृत्ति करता है । सन्धिस्थान, णत्व-यत्वादि के स्खलन पर गुरु के द्वारा पाठ शुद्ध किया जाता है । इस प्रकार हमारे प्राचीन वेदों के प्रत्येक वर्ण, पद, स्वर और मात्रा के संरक्षण हेतु जिन शिक्षा-ग्रन्थों का निर्माण किया गया, उनको भी सुरक्षित रखने हेतु वे तत्पर थे । इसी प्रकार शिक्षा-नियमों का पालन भी उसी क्रम से किया जाता था । कहा भी गया है—

पदक्रमविशेषज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः ।
स्वरमात्राविभागज्ञो गच्छेदाचार्यसंसदम् ॥

ध्वनिः स्थानं च करणं प्रयत्नः कालता स्वरः ।
देवता जातिरेतैश्च वर्णा ज्ञेया विचक्षणैः ॥

व्यास-शिक्षा में ६६ वर्णों को सम्यक् विभक्त कर उनमें भी प्लुत वर्ण, विसर्ग-ओङ्कार-अनुस्वार-गकार संयुक्त अनुस्वार और चार स्वरभक्ति आदि को छोड़कर अवशिष्ट अड़तालीस वर्णों को पाँच राशियों में विभक्त कर प्रत्येक वर्ण के देवताओं को भी बताया गया है—

'अनिलाग्निमहीन्द्वर्काः पञ्चानां त्वधिदेवताः' इति ।

अर्थात् वायुदेवताक वर्ण—अ आ ए क च ट त प य और ष; अग्निदेवताक—इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र और स; चन्द्रदेवताक—ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व ळ, भूमिदेवताक—उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल तथा सूर्यदेवताक—ऌ ङ अं ण न म क्ष श हैं ।

शिक्षा-ग्रन्थों में स्वरों की जातियों पर भी विचार किया गया है । यथा—

'ब्रह्मजातिर्भवेदुच्चः क्षत्रजातिस्तु नीचकः ।
वैश्यजातिर्भवेत् स्वारः शूद्रस्तु प्रचयः स्मृतः' ॥इति ।

आपने अन्त में कहा कि वेद विद्या और वैदिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार से ही राष्ट्र का विकास होगा ।

पाश्चात्यमतसमीक्षा

दूसरे दिन, २१ दिसम्बर, ७८ के व्याख्यान में आचार्य पट्टाभिराम शास्त्री ने गत दिन की विषय-वस्तु को ही आगे बढ़ाते हुए भारतीय दृष्टि के साथ-साथ पाश्चात्त्य विद्वानों की भी दृष्टि की विवेचना की और 'वेदविषये पाश्चात्यकृतविमर्शसमीक्षा' पर बोलते हुए विद्वान् वक्ता ने कहा—"भारत में प्रचलित कर्मानुष्ठान की परम्परा के उत्स की गवेषणा में हम भारतीय अक्षम हैं । अनुमान का भी यह विषय नहीं है । किन्तु प्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वान् 'मैक्समूलर' के कथनानुसार ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में वैदिक साहित्य—संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद, आरण्यक—आदि विद्यमान था । वैदिक मन्त्रों व ऋचाओं का सृजन काल ईसा पूर्व दो हजार से एक हजार के बीच वे स्वीकार करते हैं ।

विंटरनित्ज महोदय मैक्समूलर की सम्भावना को कुछ परिवर्तित करके वेदों की उपस्थिति पाँच शताब्दी ई० पू० मानते हैं । 'मूर' महोदय अपने 'ओरियण्टल संस्कृत टेक्स्ट' नामक ग्रन्थ में कुछ मन्त्रों को उद्धृत करते हुए 'कृत्' तथा 'तक्ष्' आदि धातुओं के प्रयोग के द्वारा विश्वामित्र, जमदग्नि प्रभृति ऋषियों के नित्यत्व पर आक्षेप करते हैं । मैकडोनल महाशय संस्कृत-भाषा के वैदिक एवं लौकिक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए ऋग्वेद के दशम मण्डल को अत्यन्त नवीन मण्डल के रूप में अपने ग्रन्थों में उपबृंहित करते हैं" ।

इन विद्वानों के इस प्रकार के विचारों के हेतु का अनुमान करते हुए शास्त्री जी ने कहा—ये विद्वान् वेद के श्रुतिरूपत्व को न मान कर पुस्तक रूप में मान्यता देते हुए, आधुनिक शोधपद्धति का अवलम्बन कर प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि की कल्पना करते हैं। किन्तु यह अनुमान का विषय नहीं है। महर्षियों ने अपने श्रुति-पथ से वेदनिहित शब्दों का श्रवण कर आनुपूर्वी पद्धति से शिष्यों को शिक्षा दी थी। कालान्तर में वेद लिपिबद्ध हुए और आज मुद्रित होकर सर्वत्र उपलब्ध हैं। महर्षि व्यास ने इनका विभाजन किया। तत्पश्चात् कुछ महर्षियों ने इन्हें काण्डों के रूप में विभक्त किया। हम भारतीय प्राचीन महर्षियों के इस अभिप्राय को न केवल यथावत् स्वीकार करते हैं, अपितु, सन्तानों को भी इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। वस्तुतः यह महान् खेद का विषय है कि कतिपय मन्त्रों में अश्लील वर्णन और ऋषि, पर्वत, नदी, नगर आदि के उपादान से वेदों की आदिमत्ता एवं पौरुषेयता का साधन विमर्शकों ने किया है। इन विचारों का शास्त्री जी ने तर्कपूर्ण निराकरण किया।

मीमांसकसम्मत रसास्वाद

तीसरे दिन, दिनाङ्क २२ दिसम्बर, ७८ को अपने विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य में शास्त्री जी ने स्पष्ट किया कि हर मानव शरीर पोषण के निमित्त जिस प्रकार भोज्य वस्तुओं का उपयोग करता है, उसी प्रकार मन और बुद्धि तत्त्व के पोषण के लिए सामग्री चाहता है। कुछ लोग आहार के लिए जीवन मान कर चलते हैं तो कुछ लोग जीवन के निमित्त आहार को मान कर चलते हैं। इन दोनों में महान् फलभेद परिलक्षित है। प्रथम कोटि के लोग शरीर को प्रधान मानकर भौतिक उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं, तो दूसरी कोटि के लोग आध्यात्मिक शक्ति की ओर अग्रसर होते हैं। हमारे ऋषियों ने विश्व की निधि वेदों का मन्थन कर विविध दर्शन शास्त्रों का प्रणयन किया और मन तथा बुद्धि विषयक सामग्री एकत्रित की। यह सामग्री प्रभुसंमित और सुहृत्संमित शब्दों द्वारा ज्ञात है। इसका अध्ययन करके मनीषी कविवर्ग ने कान्तासंमित उपदेश द्वारा अनेक काव्यों और नाटकों का प्रणयन कर द्वितीय कोटि के लोगों का महान् उपकार किया है। महा-मीमांसक भट्ट तौत के निम्नाङ्कित वचन के अनुसार कवि और ऋषि समान कोटि के सिद्ध होते हैं—

'नानृषिः कविरित्युक्तं ऋषिश्च किल दर्शनात्।
विचित्रभावधर्मांशतत्त्वप्रख्या हि दर्शनम्॥
स तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठितः कविः।
दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः'॥

कवियों और दार्शनिकों ने अपनी-अपनी चिन्तन शक्ति से समाज के लिए जिस साहित्य का सृजन किया है, उससे मन और बुद्धि के विकास में जो सहायता मिलती है, वह दर्शन हो या काव्य-नाटक—दोनों बराबर हैं। सुषुप्ति अवस्था में जो सुख मिलता है, वह जाग्रदवस्था में प्राप्त हो, इसी उद्देश्य से चिन्तकों और मनीषियों ने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

शास्त्री जी ने आगे बताया कि दर्शनों में जिस प्रकार प्रस्थान-भेद हैं, उसी प्रकार अलंकार शास्त्र में भी हैं। "विभावानुभाव-सञ्चारिभावाद् रसनिष्पत्तिः" इस भरतसूत्र की व्याख्या करते हुए जिन चार व्यक्तियों—भट्टलोल्लट, शङ्कुक, भट्टनायक और अभिनव गुप्ताचार्य—ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनमें भट्टलोल्लट का मत मीमांसक का कहा जाता है। इनके मत में रस को अनुकार्य दुष्यन्त आदि में माना जाता है और उसको नटों में आरोपित कर सामाजिक अनुभव करता है।

मीमांसकों के कर्मकाण्ड के अनुसार यह मत उचित प्रतीत होता है। जिस प्रकार काव्य-नाटकों के श्रवण और अभिनय के द्वारा सामाजिक अपनी चित्तवृत्ति को रोक कर (कुछ ही क्षण के लिए क्यों न हो) स्थिरता प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार ज्योतिष्टोम आदि महा क्रतुओं के अनुष्ठान में १६ ऋत्विजों द्वारा यथाशास्त्र मन्त्रों से विभिन्न देवताओं का आवाहन, हवि का देना आदि क्रियाएँ की जाती हैं और यजमान प्रत्येक ऋत्विक् के क्रियाकलाप में ध्यान रख कर 'अपाम सोमममृता अभूम' मन्त्र को कहते हुए अपना अमृतत्व प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार आनन्दानुभव करते हुए यजमान को देख कर श्रद्धालु सामाजिक भी 'स एष स्वर्गं लोकं याति' कह कर आनन्द का अनुभव करते हैं। सिद्धान्त में 'अहं' शब्द का प्रयोग करते हुए सामाजिक कतिपय क्षण तक ही आनन्द करते हैं, क्योंकि विभाव आदि के हट जाने पर सामाजिक का अनुभव चला जाता है। भट्टलोल्लट प्रभृति मीमांसक 'एष' कह कर उसी आनन्द का अनुभव करते हैं। आचार्य जी ने यज्ञ के दृष्टान्त द्वारा सुचार रूप से इस विषय का प्रतिपादन किया।

क्रीड़ा प्रतियोगिता

विश्वविद्यालय में दि० १५ दिसम्बर से २० दिसम्बर ७८ तक सौमनस्य के साथ क्रीड़ा प्रतियोगिता हुई। इस प्रतियोगिता में विश्वविद्यालय और सम्बद्ध संस्कृत शिक्षा संस्थाओं के प्रतियोगी भाग ले रहे थे। कुलपति ने स्वयं प्रतियोगिता में उपस्थित हो कर छात्रों को प्रोत्साहित किया और प्रथम आनेवाले दलों को व्यक्तिगत रूप से पुरस्कृत किया।

विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत छात्रों की नामावली नीचे दी जा रही है :—

क्रीड़ा निर्णय

क्रमाङ्क	विद्यार्थी नाम	विद्यालय	स्थान	विषय
१.	श्री रामदेव यादव	सरस्वती गुरुकुल सं० वि०, मुनारी	प्रथम	१०० मी० धावन
२.	,, अवधेश मिश्र	आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी	द्वितीय	,, ,, ,,
३.	,, कल्पनाथ पाण्डेय	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,, ,,
४.	,, रामदेव यादव	सरस्वती गुरुकुल सं० वि०, मुनारी	प्रथम	२०० मी० धावन
५.	,, जितेन्द्रप्रसाद द्विवेदी	भागीरथी ट्रस्ट आदर्श सं० वि०, चुनार	द्वितीय	,, ,, ,,
६.	,, जयप्रकाश अवस्थी	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,, ,,
७.	,, अवधेश मिश्र	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	प्रथम	४०० मी० धावन
८.	,, सुमन्तकुमार सिंह	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,, ,,
९.	,, राममूरत यादव	सरस्वती गुरुकुल सं० वि०, मुनारी	प्रथम	८०० मी० धावन
१०.	,, रवीन्द्रनाथ दूबे	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,, ,,
११.	,, भरतराम	सं० सं० वि०, प्रभुपुर	तृतीय	,, ,, ,,
१२.	,, रवीन्द्रनाथ दूबे	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	१५०० मी० धावन
१३.	,, भरतराम	सं० सं० विद्यालय, प्रभुपुर	द्वितीय	,, ,, ,,
१४.	,, कमलाराम	,, ,, ,,	तृतीय	,, ,, ,,
१५.	,, दिनेशप्रसाद श्रीवास्तव	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	१००४ रिलेरेस यूथ धावन
१६.	,, दूधनाथ प्रसाद	,,	,,	,, ,, ,,
१७.	,, मुन्नालाल चन्दपुरिया	,,	,,	,, ,, ,,
१८.	,, राजदेव यादव	,,	,,	,, ,, ,,
१९.	,, अवधेश मिश्र	आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी	द्वितीय	,, ,, ,,
२०.	,, देवव्रत पाण्डेय	,,	,,	,, ,, ,,
२१.	,, विनोद कुमार	,,	,,	,, ,, ,,
२२.	,, जयप्रकाश अवस्थी	,,	,,	,, ,, ,,
२३.	,, राममूरत यादव	सरस्वती गुरुकुल सं० वि०, मुनारी	प्रथम	५०० मी० धावन
२४.	,, आशाराम शर्मा	मुमुक्षु भवन, अस्सी, वाराणसी	द्वितीय	,, ,, ,,
२५.	,, रवीन्द्रनाथ दूबे	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,, ,,

२६.	,, रामकृत राम	सं० सं० वि०, प्रभुपुर	प्रथम	दीर्घकूदन
२७.	,, दूधनाथ प्रसाद यादव	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
२८.	,, लाल सिंह रावत	संन्यासी सं० महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
२९.	,, वरुणप्रसाद चौरिहा	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	हाई जम्प
३०.	,, रामअवध पाण्डेय	,, ,, ,, ,, ,,	द्वितीय	,, ,,
३१.	,, रमेश उपाध्याय	श्रीमती भागीरथी ट्रस्ट आ० संस्कृत विद्यालय, चुनार	तृतीय	,, ,,
३२.	,, नन्दलाल यादव	काशी गुरुकुल, धूपचण्डी, वाराणसी	प्रथम	यष्टिका कूदन
३३.	,, वरुणप्रसाद चौरिहा	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
३४.	,, विनोदकुमार	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
३५.	,, नन्दलाल यादव	काशी गुरुकुल विद्यापीठ, वाराणसी	प्रथम	त्रिपादिका कूदन
३६.	,, दूधनाथप्रसाद यादव	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
३७.	,, रामकृत राम	सं० सं० वि०, प्रभुपुर	तृतीय	,, ,,
३८.	,, राजेन्द्रप्रसाद	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	मण्डल प्रक्षेप
३९.	,, देवदत्त दिहुलिया	,, ,, ,, ,, ,,	द्वितीय	,, ,,
४०.	,, विनोदकुमार	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
४१.	,, राजेन्द्रप्रसाद	सं० सं० वि०, वाराणसी	प्रथम	शाटपुट
४२.	,, आशाराम शर्मा	मुमुक्षु भवन ,,	द्वितीय	,,
४३.	,, हरीशकुमार द्विवेदी	सं० सं० वि० वि० ,,	तृतीय	,,
४४.	,, राजदेव यादव	,, ,, ,,	प्रथम	हैमर थ्रो
४५.	,, शिवराम शर्मा	रामानुजसं०म०वि० ,,	द्वितीय	,,
४६.	,, किशोरीलाल	आयुर्वेद महावि० ,,	तृतीय	,,
४७.	,, रामदेव यादव	सर० गुरु० सं० वि०, मुनारी	प्रथम	जेवेलिन थ्रो
४८.	,, वरुणप्रसाद चौरिहा	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
४९.	,, हरिप्रसाद मिश्र	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
५०.	,, बालकृष्ण पाण्डेय	बिरला सं० महावि०, वाराणसी	प्रथम	मल्लखम्भ
५१.	,, राजेन्द्रप्रसाद	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
५२.	,, रामकिशोर द्विवेदी	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
५३.	,, रामकिशोर द्विवेदी	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	सूर्य नमस्कार
५४.	,, वीरेन्द्रकुमार वर्मा	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
५५.	,, प्रेमपति द्विवेदी	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
५६.	,, कृष्णकुमार शुक्ल	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
५७.	,, रामकिशोर द्विवेदी	,, ,, ,, ,, ,,	प्रथम	योगासन
५८.	,, कृष्णकुमार शुक्ल	,, ,, ,, ,, ,,	द्वितीय	,, ,,

५९.	,, प्रेमपति द्विवेदी	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	तृतीय	,, ,,
६०.	,, रमाशंकर यादव	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	प्रथम	कुश्ती
६१.	,, कृष्णकुमार शुक्ल	,, ,, ,, ,, ,,	द्वितीय	,, ,,
६२.	,, राजेशकुमार मिश्र	गुरुकुल संस्कृत विद्यालय, मुनारी	प्रथम	,, ,,
६३.	,, जनार्दन पाण्डेय	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
६४.	,, लल्लू यादव	ब्रह्मचारी सं० विद्यालय, तिलमापुर	प्रथम	,, ,,
६५.	,, सुमन्तकुमार सिंह	सं० सं० वि० वि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,
६६.	,, रवीन्द्रकुमार सिंह	,, ,, ,, ,, ,,	प्रथम	,, ,,
६७.	,, वीरेन्द्रनारायण सिंह	,, ,, ,, ,, ,,	द्वितीय	,, ,,
६८.	,, राजदेव यादव	,, ,, ,, ,, ,,	प्रथम	,, ,,
६९.	,, दीनानाथ त्रिपाठी	आयुर्वेद महावि०, वाराणसी	द्वितीय	,, ,,

रज्जू कर्षण

प्रथम, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

१—श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह, २—दूधनाथ प्रसाद यादव, ३—जनार्दन पाण्डेय, ४—सत्यनारायण शर्मा, ५—भुवनचन्द्र जोशी, ६—मुन्नालाल चनपुरिया, ७—पीयूषकान्त दीक्षित, ८—राजनाथ यादव, ९—रामअवध पाण्डेय, १०—कल्पनाथ पाण्डेय, ११—सुमन्त कुमार सिंह, १२—राजदेव यादव।

द्वितीय, आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी

१—श्री श्रीप्रकाश पाठक, २—किशोरी लाल, ३—विष्णुदेव मिश्र, ४—विनोद कुमार, ५—गोविन्द राम पयासी, ६—गिरजाशंकर त्रिपाठी, ७—सतीश कुमार मिश्र, ८—दीनानाथ त्रिपाठी, ९—मदन गोपाल बहल, १०—अनिल कुमार त्रिपाठी, ११—अवधेश मिश्र, १२—सुशील कुमार त्रिपाठी।

बालीबाल निर्णय

श्रीमती भागीरथी ट्रस्ट आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, चुनार — प्रथम

आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी — द्वितीय

कबड्डी निर्णय

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी — प्रथम

दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी — द्वितीय

विशिष्ट खिलाड़ी **बालीबाल** १—रमेश उपाध्याय, २—देवव्रत पाण्डेय।

कबड्डी १—वीरेन्द्रनारायण सिंह, २—स्वामी शुद्धनाथ।

२१ दिसम्बर, १९७८

संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर अन्तर्विश्वविद्यालयीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता २१-१२-७८ को १ बजे दिन से मुख्य भवन में आयोजित हुई। प्रतियोगिता में उत्तरप्रदेश के संस्कृत विद्यालय, महाविद्यालय एवं बिहार आदि अन्य प्रदेशों के भी छात्रों ने भाग लिया। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भी नियमानुसार चुने हुए दो छात्रों ने भाग लिया।

प्रतियोगिता का विषय था 'संस्कृतज्ञानमेव समाजोत्कर्षाय प्रभवेत्'। प्रतियोगिता में पक्ष एवं विपक्ष में भाषण करने वाले छात्रों

को योग्यतानुसार निश्चित पुरस्कार के अर्ह चुनने के लिए निम्न-लिखित निर्णायक बनाये गये थे—

१. श्री अमरनाथ पाण्डेय, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

२. श्री रतिनाथ झा, संस्कृत कालेज, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी।

३. श्री नवरंग चतुर्वेदी, प्रधानाचार्य रामानुज संस्कृत महा-विद्यालय, मिश्रपोखरा, वाराणसी।

४. श्री दीनानाथ पाण्डेय, साहित्य विभागाध्यक्ष, विश्वनाथ गुरुकुल सं० म० कर्णघण्टा, वाराणसी।

५. श्री जगन्नाथ कण्डेल, वेदान्त विभागाध्यक्ष, रामानन्दपीठ सं० म० कर्णघण्टा, वाराणसी।

६. श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, आचार्य-अध्यक्ष, साहित्य विभाग, सं० सं० वि० वि० वाराणसी।

प्रतियोगिता के संयोजक थे देवस्वरूप मिश्र, आचार्य-अध्यक्ष, वेदान्त विभाग सं० सं० वि० वि० वाराणसी।

निर्णायकों ने सभी प्रतियोगियों के भाषण सुनने के पश्चात् निम्नलिखित छात्रों को उनके नाम के सम्मुख लिखित रूप से प्रतियोगिता में सफल घोषित किया :—

१. श्री सूर्यप्रकाश त्रिवेदी — प्रथम
साहित्याचार्य, सं० सं० वि० वि० वाराणसी।

२. श्री विद्याभास्कर त्रिपाठी — द्वितीय
वेदान्ताचार्य, श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, श्री वैष्णवाश्रम, दारागंज, प्रयाग।

३. श्री कमलेश झा, वेदान्ताचार्य तृतीयवर्ष, वेदान्त विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि० वि०, वाराणसी। — तृतीय

विजयी घोषित छात्रों में प्रथम को रजत विजय फलक तथा सुवर्ण पदक, द्वितीय को सुवर्ण पदक तथा तृतीय को रजत पदक प्रदान किया गया।

२१ दिसम्बर, १९७८

हिन्दी वाद-विवाद प्रतियोगिता

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के सन्दर्भ में दि० २२ दिसम्बर ७८ को हिन्दी वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता का विषय था—'भारत के लिये प्राचीन शिक्षा पूर्ण है'। विश्वविद्यालय और सम्बद्ध संस्कृत शिक्षा संस्थाओं के बीस से अधिक छात्रों ने प्रतियोगिता में भाग लिया। छात्रों ने पक्ष में जहाँ प्राचीन पारम्परिक संस्कृत शिक्षा की उपादेयता पर बल दिया, वहीं विपक्ष में पारम्परिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी शिक्षा में आधुनिक दृष्टि को भी महत्त्व दिया गया। अन्त में दक्षिणामूर्ति सं० म० वाराणसी के छात्र श्री पुरुषोत्तमानन्द को प्रथम, साधुवेला सं० म० वाराणसी के छात्र श्री अम्बिका चौबे को द्वितीय तथा विश्वविद्यालय की छात्रा कु० माहेश्वरी गुप्ता को महिला पुरस्कार के लिये विजयी घोषित किया गया। दीक्षान्त समारोह में प्रतियोगियों को क्रमशः रु०१०१ प्रथम, ५१ रु० द्वितीय और रु० २५ महिला पुरस्कार स्वरूप प्रदान किए गए।

प्रतियोगिता का संयोजन विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्राध्यापक डा० श्रीप्रसाद ने किया।

२१ दिसम्बर, १९७८

शास्त्रार्थ सभा

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के २१वें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दीक्षान्त समारोह के अंगभूत संस्कृत के विद्वानों का शास्त्रार्थ समारोह २१-१-७८ को सायंकाल ७ बजे मुख्य भवन में आचार्य श्री बदरीनाथ शुक्ल कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। काशी के पचास विशिष्ट विद्वान् शास्त्रीय विचार में भाग लेने को आमन्त्रित थे। विश्व-विद्यालय के प्रायः सभी अध्यापक भी सभा में समवेत थे। शास्त्रार्थ की प्राचीन प्रक्रिया से व्याकरण, न्याय, मीमांसा, साहित्य, वेदान्त विषयों पर विद्वानों ने गम्भीर विचार प्रस्तुत किये।

व्याकरण में 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' इस पाणिनि सूत्र के विधेय कोटि में प्रविष्ट प्रथमोपस्थित 'स्थान' पदार्थ का विमर्श हुआ जिसका सभा में उपस्थापन शास्त्रार्थ के संयोजक डा० देवस्वरूप मिश्र ने किया। श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, आचार्य-अध्यक्ष, व्याकरण विभाग ने 'स्थान' पदार्थ के विविध स्वरूपों का उल्लेख करते हुए एक पक्ष पर पक्ष-प्रतिपादन के रूप में विद्वानों को स्थान पदार्थ निरूपण के लिए संकेत किया—अवच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकतानिरूपितो-च्चारणत्वावच्छिन्ना या साधुत्वप्रकारकभ्रमात्मकज्ञानीयविशेष्यता-त्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिता विशेष्यता तदवच्छेदकधर्मावच्छिन्ना या साधुत्वप्रकारकप्रमात्मकज्ञानीयविशेष्यतात्वावच्छिन्नप्रकारता-निरूपिता विशेष्यता तदवच्छेदकतावच्छेदकरूपः स्थानपदार्थः।

विचार विमर्श में श्री रामयत्न शुक्ल, उपाचार्य व्याकरण विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री मंगलाप्रसाद पाठक, व्याकरण विभागाध्यक्ष, विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय कर्णघण्टा, श्री शशिधर मिश्र आदि ने भाग लिया।

श्री रामयत्न शुक्ल द्वारा 'जराया जरसन्यतरस्याम्' इस सूत्र के अर्थ के निरूपण में भ्रमात्मक ज्ञानीय विशेष्यता विशिष्ट प्रमात्मक ज्ञानीय विशेष्यता न होने के दोष का उद्भावन होने पर कुलपति श्री शुक्ल ने कहा कि 'अजव्यवहितपूर्वत्वविशिष्टजराकर्मकमुच्चारणं साधु' इत्याकारक ज्ञान के भ्रम न होने पर भी 'अजव्यवहितपूर्वत्वविशिष्टजराकर्मकमुच्चारणमेव साधु' इत्याकारक भ्रम हो सकता है। उसी को लेकर 'भ्रमात्मकज्ञानीयविशेष्यता-विशिष्टप्रमात्मज्ञानीयविशेष्यता' सुलभ हो जायगी, अतः जराशब्द-स्थल में स्थान्यादेशभाव की अनुपपत्ति न होने से परिष्कारान्तर के अन्वेषण की कोई आवश्यकता नहीं है।

कुलपति श्री शुक्ल की इस नवीन अपूर्व कल्पना को सभा ने एक स्वर से स्वीकृत किया। सभा के संयोजक डा० देवस्वरूप मिश्र ने कहा कि शिरोनमनपूर्वक इस अपूर्व पदार्थ को परमलाभ मानकर स्वीकार करना चाहिये तथा शास्त्रार्थ की कोटियों में श्री शुक्ल का नामोल्लेख होना चाहिए।

साहित्य में काव्य के लक्षण पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। रसगङ्गाधर के काव्यलक्षण पर श्री दीनानाथ पाण्डेय, साहित्य विभागाध्यक्ष, विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी ने पूर्व पक्ष उपस्थित किया। डा० कैलाशपति त्रिपाठी, उपाचार्य साहित्यविभाग, सं० सं० वि० वि० वाराणसी ने पूर्व पक्ष का समाधान किया। विचार में श्री रामसेवक झा, दर्शन विभागाध्यक्ष, उदासीन संस्कृत महाविद्यालय ने भी अपनी सूझ प्रस्तुत की। डा० श्रीराम पाण्डेय ने भी काव्य लक्षण के परिष्कार पर अपना विचार प्रकट किया। डा० देवस्वरूप मिश्र द्वारा शब्दार्थात्मक काव्य में लक्षण की अव्याप्ति की उद्भावना करने पर कुलपति श्री शुक्ल ने कहा कि रसगङ्गाधरकार के मत में शब्द मात्र ही काव्य है और प्रस्तुत चर्चा उन्हीं के लक्षण पर हो रही है, अतः अर्थ को काव्य का कलेवर मानकर अव्याप्ति का उद्भावन उचित नहीं है। कुलपति की इस उपसंहारात्मक उक्ति के साथ साहित्य का शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ।

न्यायशास्त्र के हेत्वाभास के दूसरे लक्षण 'मेयत्वविशिष्टव्यभिचार' आदि में अतिव्याप्ति वारण के लिए प्रविष्ट 'विशिष्टान्तराघटितत्व' निवेश में गदाधर भट्टाचार्य ने 'अन्तर' शब्द को भिन्नार्थक न मानकर 'स्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदकावच्छिन्न' ऐसा पारिभाषिक अर्थ किया है। प्रश्न था कि भट्टाचार्य द्वारा ऐसा करने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि अन्तर शब्द का भिन्न अर्थ मानने पर दोष तभी होता है, जब घटक में भेद का निवेश किया जाय, किन्तु 'घटकतावच्छेदकव्यभिचारत्व' आदि में भेद का निवेश करने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि 'मेयत्वविशिष्टव्यभिचार' तथा शुद्ध व्यभिचार में भेद न होने पर भी मेयत्वविशिष्टव्यभिचारत्व और व्यभिचारत्व में भेद बना हुआ है। न्याय विभाग के अध्यक्ष डा० श्रीराम पाण्डेय ने प्रश्न पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यह कैसी विडम्बना की बात है कि व्यभिचार और मेयत्वविशिष्टव्यभिचार में अभेद होने पर भी व्यभिचार को हेत्वाभास माना जाता है और मेयत्व-विशिष्टव्यभिचार को हेत्वाभास न मानकर उसके अतिव्याप्ति के वारणार्थ चेष्टा की जाती है। सभाध्यक्ष कुलपति श्री शुक्ल ने कहा कि श्री पाण्डेय की इस उक्ति का उत्तर देना आवश्यक है। श्री रामसेवक झा ने न्याय सम्प्रदाय की मान्यता के आधार पर मेयत्वविशिष्टव्यभिचार को हेत्वाभास न मानने का समर्थन किया। वेदान्त विभाग के अध्यक्ष एवं सभा के संयोजक डा० देवस्वरूप मिश्र ने तत्त्वबिन्दु ग्रन्थ के वाचस्पति मिश्र के 'कल्पनालाघवं यत्र तं पक्षं रोचयामहे' इस वचन को उद्धृत करते हुए लाघव के आधार पर व्यभिचार को ही हेत्वाभास मानने का समर्थन करते हुए मेयत्वविशिष्टव्यभिचार को ही हेत्वाभास न मानने का उपपादन किया। श्री कुलपति ने शुद्ध और विशिष्ट के ऐक्य पक्ष में उक्त समाधानों को पूरा उचित न कह कर यह बताया कि मेयत्वविशिष्ट व्यभिचार के व्यभिचारत्व रूप में हेत्वाभास होने पर भी मेयत्व-विशिष्टव्यभिचारत्व रूप से हेत्वाभास संबन्धी के भट्टाचार्य के प्रयास की सार्थकता है।

मीमांसा के शास्त्रार्थ में श्री सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, सम्मानित प्राध्यापक, श्री साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी तथा श्री ए० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, मीमांसाध्यापक, सं० सं० वि० वि० ने प्रमुख रूप से भाग लिया। "श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्" जैमिनि महर्षि प्रणीत इस मीमांसा सूत्र के बलाबल पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। कुलपति ने कहा कि वेद के सभी वाक्यों के प्रामाण्य को समान रूप से स्वीकार करने से ही वेद की मर्यादा रक्षित होती है अतः उनमें बाध्य-बाधक भाव मानना उचित नहीं है; तब फिर महर्षि जैमिनि ने ऐसा विचार क्यों किया जिससे वेद का कोई अंश बाध्य हो और कोई बाधक हो। इस प्रश्न पर मीमांसा पद्धति से दोनों विद्वान् मीमांसकों ने अपने विचार प्रकट किए और बाध्यबाधकभाव की कल्पना की आवश्यता को सिद्ध करते हुए वेद की मर्यादा की अक्षुण्णता का प्रतिपादन किया।

अन्त में वेदान्त के शास्त्रार्थ का उपक्रम करते हुए वेदान्त विभाग के प्राध्यापक श्री श्यामनारायण दीक्षित ने यह पूर्व पक्ष प्रस्तुत किया कि अखण्डार्थत्व के जितने सम्भावित लक्षण हैं, वे सब दोषग्रस्त हैं; अतः 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों के अखण्डार्थत्व का समर्थन दुष्कर है। श्री एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री ने प्रश्न का उत्तर देते हुए अद्वैतसिद्धि के द्वितीय परिच्छेद में उल्लिखित 'अपर्यायशब्दानां

पदवृत्तिस्मारितातिरिक्तागोचरप्रमाजनकत्वम् अखण्डार्थत्वम्' इस परिष्कार से पूर्व पक्ष के सभी प्रदत्त दोषों का निराकरण किया। उसके बाद विशिष्टाद्वैत के विद्वान् श्री सम्पन्नारायणाचार्य ने अखण्डार्थत्व लक्षण में असम्भव दोष की उद्भावना की। उसका समाधान श्री एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री एवं डा० देवस्वरूप मिश्र ने सुन्दर पद्धति से प्रस्तुत किया।

शास्त्रार्थ सभा के अवसान में आमन्त्रित विद्वानों को शिष्ट सम्मत प्राचीन प्रणाली से विश्वविद्यालय की ओर से सम्मानित किया गया।

२१ दिसम्बर, १९७८

संस्कृत कवि सम्मेलन

दीक्षान्त समारोह के क्रम में २१ दिसम्बर, रात्रि ९ बजे मुख्य भवन में संस्कृत कवि सम्मेलन हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता नागपुर निवासी महाकवि श्री वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े ने की तथा संयोजक का कार्य आचार्य बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने किया।

कुछ को छोड़कर प्राय सभी की रचनायें 'हिमान्यागमः' तथा 'कन्दलयति' इन दो समस्याओं की सीमा में आबद्ध थीं। आज का स्वैरिताप्रिय स्वच्छन्द कवि समस्याओं का आबन्धन नहीं सहना चाहता, किन्तु समस्यामूलक कविताओं का एक अलग आस्वाद है और उनके एक ही बिन्दु पर अनेक कल्पनाप्रवण मेधाओं का विच्छित्तिप्रचुर लास्य देखने को मिलता है।

'हिमान्यागमः' हिम समूह के आगम की तरह श्लेष द्वारा अर्थ समूह का आगम भी प्रस्तुत करता है। 'कन्दलयति' भी सहस्रधार अस्त्र की तरह अनेकविध संघटनाओं में लगने वाली समस्या है। दोनों समस्याओं के समीप, किन्तु उन्मुक्त आयाम का कवियों ने भरपूर उपयोग किया। इस सम्मेलन में संस्कृत कवियों की अवस्था और प्रवृत्ति की विभिन्न पीढ़ियों का सन्तुलित प्रातिनिध्य था।

प० लीलाधर पन्त ने दोनों समस्याओं की पूर्ति श्रृंगार की भूमिका में चमत्कारप्रवण कोमल मार्ग से की। प० शिवजी उपाध्याय ने श्लेष के परिवेष में श्रृंगार को सजाया और बड़े कौशल से उसकी महिमा को अम्लान रखा। प० वायुनन्दन पाण्डेय ने हिमागम के समीप जाकर उसके बिम्ब को प्रस्तुत किया।

डा० परमहंस मिश्र की रहस्यान्वेषिणी कल्पनाएँ प्रसादवसना थीं, अतः उनके आस्वाद में किसी को आयास का उपयोग नहीं करना पड़ा। डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी की सुमधुर संघटना, प० मनुदेव भट्टाचार्य की गम्भीरपदा श्रृंगार सरस्वती, प० रमाकान्त पाण्डेय और प० राधाकान्त ओझा की स्वरमाधुरी प्रशंसनीय थी।

डा० श्रीराम पाण्डेय की मर्मस्पर्शिवी सानुप्रास अविरल तरल वाग्धारा, डा० अमरनाथ पाण्डेय की भावानुवद्ध कल्पनाएँ तथा डा० कैलाशपति त्रिपाठी के श्लेषान्वेषी नवोन्मेष के पृथक् आस्वाद थे। श्री प्रशस्य मित्र के हास्योन्नत सत्यान्वेषी व्यङ्ग्य, डा० कपिलदेव पाण्डेय की लोकभाषाञ्चित गीतस्पर्धिनो संस्कृत गज्जलिका तथा डा० कपिलदेव त्रिपाठी के भारत वर्णन का अच्छा प्रभाव रहा।

अन्त में आचार्य बटुकनाथ शास्त्री की विस्मयवाहिनी शब्दार्थ-संघटना तथा महाकवि शेवड़े की प्रसादसंप्लुत सान्द्र सुमधुर बहुतलस्पर्शिनी वाक्प्रवृत्ति से समस्त श्रोतृवृन्द आप्लावित हो उठा। सहृदयों के सानुनय आग्रह पर श्री शेवड़े जी ने विभिन्न रसों की अपनी कुछ प्रतिनिधि रचनाएँ सुनायीं, जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और सम्मेलन ने यह मत व्यक्त किया कि श्री शेवड़े जी की कविता के लिये एक अतिरिक्त गोष्ठी आयोजित की जाय, जिसमें केवल उन्हें ही सुना जाय।

संस्कृत कवियों के ऐसे सम्मेलन संस्कृत और संस्कृति के अभ्युदयाकांक्षी समाज को यह इंगित करते हैं कि आज भी प्राचीन काल के पुण्यश्लोक कवियों की प्रतिभाओं के स्फुलिंग विद्यमान हैं। उनके संयोजन और संवर्द्धन की आवश्यकता है। सौहार्द सम्पन्न सावधान यत्न से अतीत का गौरव पुनः प्रत्यावर्तित किया जा सकता है।

कवि सम्मेलन का यह पूरा कार्यक्रम बड़े ही उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुआ। अन्त में संयोजक आचार्य श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने कवियों और श्रोताओं को धन्यवाद दिया।

२२ दिसम्बर, १९७८

हिन्दी कवि-सम्मेलन

इक्कीसवें दीक्षान्त समारोह की पूर्व सन्ध्या पर दि० २२ दिसम्बर १९७८ को बौद्ध कक्ष में व्याकरण विभाग के अध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में हिन्दी कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सफल कवि सम्मेलन में पूरे पाँच घंटे तक विभिन्न रसों की कविताओं का रसास्वादन बड़ी तन्मयता के साथ श्रोताओं ने किया। कवि सम्मेलन के संचालन का कार्य किया सामाजिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री शम्भुनाथ मिश्र ने, जिनकी कलात्मक तथा हास्यप्रधान टिप्पणियों के साथ कवियों का आवाहन तथा कवियों के काव्यपाठ के अनन्तर श्री मिश्र द्वारा की गयी लघु समीक्षाओं को श्रोताओं ने विशेष रूप से पसन्द किया। डा० श्रीप्रसाद (प्राध्यापक हिन्दी) ने अन्त में आगत कवियों के प्रति अपना आभार व्यक्त किया।

कवि सम्मेलन का शुभारम्भ श्री वीरेन्द्र उपाध्याय की वाणी-वन्दना से हुआ। श्री अनिरुद्धप्रसाद त्रिपाठी ने अपने नवगीत के माध्यम से वर्तमान परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला—'आज तक सहता रहा हूँ, कब तलक सहता रहूँगा'। श्री कृष्ण तिवारी ने अपने भावपूर्ण नये गीतों के द्वारा यौवन को प्रलय के गीत गाने का सन्देश दिया—'आज जवानी गीत प्रलय के गायेगी'। वर्तमान आडम्बरयुक्त जीवन पर प्रहार करते हुए श्री तिवारी ने कहा—'बाहर से हँसते हैं लोग, भीतर से रोते हैं लोग'।

वीर रस के प्रसिद्ध कवि श्री चन्द्रशेखर मिश्र ने अपने कई सवैयों से श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन करने के बाद 'चुरिहारिन गाँव में आवत नाहीं' से कुँवरसिंह की वीरतायुक्त गाथा को साकार किया। सरस गीतों के रचयिता श्री बुद्धिनाथ मिश्र ने अपने मधुर और संगीतमय स्वरों में गंगा का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया—

अमृत दिया है मरघट मरघट
बस्ती बस्ती स्वर्ग दिया है।

श्री गणेशसिंह मानव ने 'भारत माता के लाल उठो' तथा 'जी करता है मैं भी जग को अपने मन के गीत सुनाऊं' द्वारा क्रान्ति का आवाहन किया, तो अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'सब अपनी कहने को आतुर, मैं अपनी किसको समझाऊँ' द्वारा वर्तमान परिवेश का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया।

श्रीमती सरला भारती ने पवित्र साहचर्य व्रत का स्मरण दिलाते हुए अपने कोमल स्वरों में यह मधुर गीत गाया 'देखना मुझको न शंका दृष्टि से तुम, मैं तुम्हारे पुण्य पथ की सहचरी हूँ'।

डा० परमहंस मिश्र की 'दीपक' और 'फूल' शीर्षक कविताओं में काव्यत्व का उत्कर्ष था। डा० कपिलदेव पाण्डेय ने 'एकला चलो रे' के अमर भाव का चित्रण अपने गीत 'चलते चलते कभी मत सोचो कर सकता क्या मनुज अकेला' के द्वारा प्रस्तुत किया।

श्री श्रीराम पाण्डेय ने भोजपुरी की एक सशक्त रचना द्वारा विरहिन नारी का अनुपम चित्र चित्रित किया। डा० श्रीप्रसाद ने अपने दो शिशु गीत 'बिल्ली को जुकाम' तथा 'टिल्लू यार' और दो बाल गीत 'आती हैं ये चिड़िया' तथा 'सागर में लहराये चाँद, तालों पर मुसकाये चाँद' सुनाकर अपने सफल बाल कवि का स्वरूप प्रकट किया। डा० कपिलदेव त्रिपाठी 'जटिल' ने 'नाविक नाव चलाना धीरे' के माध्यम से अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया। श्री शम्भुनाथ मिश्र ने अपने दो मुक्तक सुनाये। त्याग और बलिदान के महत्त्व को उजागर करने के लिये उन्होंने अपना यह मुक्तक सुनाया—

मैं अकेला जिन्दगी की राह पर चलता रहा,
दिल के शोलों में कोई दिन रात यूँ ज़लता रहा,
अपने दामन में छुपा कर आशियाँ ने बर्क को
रोशनी दे दी चमन को और खुद जलता रहा।

श्री वीरेन्द्र उपाध्याय ने अपनी भोजपुरी गजल 'बात बूझल न तू रिसा गइल' द्वारा प्रेम के आदर्श को प्रकट किया तो 'सास मोटी धरती ससुर आसमान' द्वारा कृषक बाला के आकर्षक रूप में चार चाँद लगा दिये। श्री दानिश जमाल सिद्दीकी की रचनाओं में पर्याप्त ओज था। श्री श्रीराम गुप्त ने 'घर घर में आज दिवाली है' के द्वारा दीप-पर्व को साकार किया।

कवि सम्मेलन में सर्वश्री त्रिभुवन मिश्र, गर्गाचार्य, त्रिवेणी-प्रसाद शुक्ल, सभाजीत चतुर्वेदी, सूर्यप्रकाश त्रिवेदी, रामकृपालु मिश्र, बृहस्पति त्रिपाठी और बनवारी मिश्र ने भी अपनी सरस रचनाओं द्वारा श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन किया।

सम्मानित विद्वानों को मानद वाचस्पति उपाधि देने के लिए कुलपति द्वारा अभ्यर्चना तथा प्रशस्तियाँ

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः !

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्करणाय भारतवर्षस्य विभूतिप्रायान् वैदिकसंस्कृतिशास्त्रपरम्परा-संरक्षणैकव्रतान् परमतपस्विनस्त्यागतपोमूर्तीन् श्री १००८ हरिहरा-नन्दसरस्वती—श्रीकरपात्रस्वामी—संज्ञया प्रथितान् (नाम्ना) समुपस्थापयामि।

एते हि बाल्यात् प्रभृति प्रखरतरवैराग्यभास्वराः सकलवेद-शास्त्राध्ययनाध्यापनैकतत्परा वैदिकसनातनसंस्कृतधारायाः काल-प्रभावात् मन्दीभवन्त्याः पुनः समुज्जीवनाय समर्पितजीवना महात्मानः।

एभिः धर्मसङ्घशिक्षामण्डलसंस्थापनद्वारा विशुद्धायाः संस्कृत-पठनपाठनपरम्परायाः समुज्जीवनम्, शतमुखकोटियज्ञादिनानाविध-यागानुष्ठानेन सद्धर्माचरणप्रचारणम्, उपदेश-व्याख्यान-शास्त्रार्थसन्नाहैः संशयनिराकरणद्वारा भारतीयार्यमर्यादादृढीकरणम्, प्रभूतग्रन्थनिर्माणैः प्राचीनवाङ्मयरहस्योपबृंहणञ्च विधाय नूनमुपकृतः सकलोऽपि लोकः, संवर्धिता समाराधिता च भगवती सुरभारती।

स्वामिपादैः प्राचीनाऽऽधुनिकराजनीतिविषये समीक्षाग्रन्था लिखिताः, शास्त्रीयेषु नानाविधेषु विषयेषु निबन्धपरम्परा प्रतिष्ठा-पिता, लुप्तप्रायाणां शङ्करमठानां पुनः प्रतिष्ठापनञ्च विहितम्। सम्प्रति भक्तिरसप्रबन्धेन वेदभाष्यप्रणयनसन्नाहेन च महानुपकारः सुविहितः शास्त्रमार्गस्य।

४

श्रीस्वामिपादानां सुमहदवदानं भारतवर्षस्य कृते सर्वदा स्मरणीयम्।

अतो महानुभावाः!

भवतोऽहमभ्यर्थये यदेतेषामप्रतिमं शास्त्रीयपाण्डित्यं निरन्तरमनुष्ठीयमानं वैदिकमर्यादासंरक्षणं नानाविधग्रन्थनिर्माणगौरवं त्यागमयं तपोमयञ्च चरितमभिलक्ष्य एतान् श्रीहरिहरानन्दसरस्वती—श्रीकरपात्रस्वामी-चरणान् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः।

प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः!

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्करणाय देशस्य गौरवावहचरितान् प्राचीनभारतीयविद्यागवेषणाक्षेत्रे संस्कृतिसमुन्नयने च वैदुष्येण विश्रुतान् भारतशासनेन 'पद्मभूषणो'पाधिना विभूषितान् विविधेषु विद्याक्षेत्रेषु निरन्तरोद्यमपरायणान् डॉ० रामचन्द्रनारायणदाण्डेकरमहोदयान् समुपस्थापयामि।

एते हि देशस्य प्राच्यविद्याविदां समाजे स्वकीयेन अनवरतेन अध्ययनाध्यापनेन नानाविधगवेषणात्मकग्रन्थनिर्माणेन विविधसंस्थासञ्चालनेन परिषदां समायोजनेन समग्रस्य शिक्षाजगतो भारतीयप्राच्यविद्यानां संस्कृतभाषाया भारतीयसंस्कृतेश्च देशे विदेशे च अतिस्तुत्यं समुन्नयनमकार्षुः। एते हि पूनाविश्वविद्यालये संस्कृतप्राकृतादिविभागाध्यक्षपदेन, तत्रैव कलासङ्कायाध्यक्षपदेन, कुलपतिपदग्रहणेन, सम्मानितसंस्कृताचार्यपदग्रहणेन, भाण्डारकर-प्राच्यविद्यामन्दिरसचिवपदसञ्चालनेन, अखिलभारतीयप्राच्यविद्यापरिषदश्चिरतरं सचिवपदग्रहणेन, एवंविधेन बहुना कार्यजातेन संस्कृतविद्याया विविधायाः प्राच्यविद्याधारायाश्च संवर्धनं प्रसारणं संरक्षणं गौरवापादनं च साम्प्रतमप्यनुतिष्ठन्ति। एतेषां प्राच्यविद्याक्षेत्रे महदवदानं राष्ट्रस्य गौरवास्पदं वर्तते, एभिरनुष्ठीयमाना संस्कृतसेवा न कदाऽपि शक्या विस्मर्तुम्।

अतो महानुभावाः!

भवतोऽहमभ्यर्थये यदेतेषामनवरतं विद्यासंरक्षणव्रतं ग्रन्थनिर्माणगौरवं सन्ततं संस्कृतिसमुन्नयनोद्यमञ्च अभिलक्ष्य एतान् विद्वद्वरान् डॉ० रामचन्द्रनारायणदाण्डेकरमहोदयान् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः।

प्रो० वासुदेव विष्णु मिराशी

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः!

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्करणाय देशस्य प्रख्यातान् प्राच्यप्रतीच्यविद्याविदो भारतशासनेन महामहोपाध्याय-पद्मभूषणाद्युपाधिना सम्मानितान् मनीषिप्रवरान् डॉ० वासुदेवविष्णुमिराशीमहोदयान् (नाम्ना) समुपस्थापयामि।

एते हि कोल्हापुर-पुण्यपत्तनादिषु विद्यामभ्यस्य लब्धयशसो नागपुरमहाविद्यालये विश्वविद्यालये च चिरमध्यापनादिना पारेशतं विद्यार्थिनः सुयोग्यान् सम्पाद्य प्राच्यविद्यापरम्परामुन्नमयामासुः।

एतेषां कालिदास-भवभूति-प्रभृतिविषयिणः प्रबन्धाः, हर्षचरिताद्विव्याख्यानम्, मुद्राशास्त्रविषयकं वैदुष्यम्, नानाविधप्राचीनोत्कीर्णलेखादीनामैतिहासिकं विवेचनम्, असंख्यासु परिषत्सु सुविहितं व्याख्यानजातम्, स्वानुरूपशिष्यसम्प्रदायनिष्पादनञ्च नूनं देशे विदेशे च भारतीयप्राच्यविद्यापरम्पराया गौरवावहमविस्मरणीयञ्च।

एतेषां 'विदर्भ संशोधन मण्डल' प्रभृतिसंस्थासञ्चालनद्वारा गवेषणाविषये परिश्रमः, सर्वास्वपि प्राच्यविद्याशाखासु प्रयासः, सुदीर्घश्च ग्रन्थलेखनाध्यवसायः सर्वदा संस्मरणीयः।

अतो महानुभावाः!

भवतोऽहमभ्यर्थये यदेतेषामसाधारणं नानाविधवाङ्मयक्षेत्रेषु परिश्रमं वैदुष्यं भारतीयसंस्कृतेरुन्नयने सन्ततमध्यवसायं जीवनक्रमञ्चाऽभिलक्ष्य एतान् मनीषिप्रवरान् डॉ० वासुदेवविष्णुमिराशीमहोदयान् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः।

प्रो० पण्डित सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः!

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपधिना अलङ्करणाय देशस्य प्रख्यातान् संस्कृतविद्याविदो मनीषिप्रवरान् पण्डितश्रीसरस्वतीप्रसादचतुर्वेदमहोदयान् (नाम्ना) समुपस्थापयामि।

एते हि संस्कृतभाषाया व्याकरणादिशास्त्राणां प्राच्यविद्याया अन्येष्वपि क्षेत्रेषु चिरं विहितावदानाः प्रवयसः सुप्रसिद्धा विद्वांसः।

प्रथमतः प्रयागे धर्मज्ञानोपदेशपाठशालायामन्यत्र वाराणस्यादौ च प्राचीनपरम्परानुसारं शब्दशास्त्रमधीत्य ततो विश्वविद्यालयेषु नव्यरीतिमनुसृत्य वैदुष्योत्कर्षमधिरूढा एते परं सुयशःप्रकर्षमधिजग्मुः।

एभिश्चिरकालं नागपुरमहाविद्यालये प्रधानाचार्यपदग्रहणेन, केन्द्रीयशिक्षामन्त्रालयस्य संस्कृतविभागसञ्चालनेन, रायपुरसंस्कृत-महाविद्यालयाध्यक्षपदग्रहणेन, प्रयागविश्वविद्यालये संस्कृतविभागाध्यक्षपदग्रहणेन, एवमादिना बहुविधेन अध्यवसायेन सुचिरं सम्पादिता संस्कृतविद्यायाः सेवा ।

एभिर्वैदिकवाङ्मयविषये, शब्दशास्त्रे, अन्येष्वपि प्राच्यविद्याविषयेषु नानाविधप्रबन्धलेखनादिना, स्वानुरूपशिष्यसम्प्रदायप्रवर्तनेन, भारतीयसंस्कृतिशिष्टाचारपरम्परानुपालनेन च सर्वथा सुरभारत्याः संवर्धितः सम्मानः, देशस्य गौरवञ्च ।

अतो महानुभावाः !

अहमभ्यर्थये यदेतेषां चतुरस्रं विशिष्टं वैदुष्यमाजीवनं देशस्य शैक्षिकसमुन्नतये विहितं परिश्रमं परिपूतं जीवनक्रमञ्च अभिलक्ष्य एतान् मनीषिवर्यान् श्रीपण्डितसरस्वतीप्रसादचतुर्वेदमहोदयान् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः ।

पण्डित श्री चन्द्रशेखर शास्त्री

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः !

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्करणाय विविधशास्त्राणां विशिष्टान् प्रख्यातांश्च प्रवयसो विद्वद्वरेण्यान् पण्डितश्रीचन्द्रशेखरशास्त्रिमहोदयान् समुपस्थापयामि ।

एते हि पण्डितविश्वम्भरनाथशास्त्रिप्रभृतिभ्यो गुरुभ्यो लब्धविद्याः प्रथितयशसः प्रवचन-व्याख्यानादौ प्रगल्भवचस उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमीसंस्थया सम्मानिताः चिरकालं कर्णपुरस्थबलदेवसहाय-संस्कृतमहाविद्यालयस्य प्रधानाचार्यपदे सुप्रतिष्ठिताश्चासन् ।

पञ्चत्वारिंशद्वर्षावधि निरन्तरं साहित्यव्याकरणदर्शनादीनि शास्त्राणि समध्यापयन्तः सुयोग्यान् शिष्यान् सम्पादयन्तः शास्त्रीय-सिद्धान्तसंरक्षणाय सर्वदा जागरूकाः शास्त्रिवरेण्या एते निरुपमं सुयशोराशिमधिजग्मुः ।

एभिर्महानुभावैः सुदीर्घकालं शिष्येभ्यो विद्याप्रदानेन, विविधानां परिषदां संस्कृतसम्बन्धिनीनां सदस्यपदग्रहणेन, संस्कृतसम्मेलनादौ अध्यक्षत्वेन, नानाविधप्रबन्धनिर्माणेन, निर्भीकतया शास्त्रसम्मत-पक्षोपपादनेन च सरस्वत्या महती सेवा समनुष्ठिता ।

अतो महानुभावाः !

एतेषामुज्ज्वलं धर्मपूतमास्तिकभावं सत्पक्षसमर्थननिर्भीकतां प्रभावशालिनीं वाणीं स्वाभिमानसमुन्नतमौदार्यं चिरमनुष्ठितां देववाणीसेवाञ्च अभिलक्ष्य सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना एतान् पण्डितचन्द्रशेखरशास्त्रि-महाभागान् अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः ।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

माननीयाः श्रीमन्तः प्रति-कुलाधिपतिमहाभागाः !

अहं भवतां समक्षं 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना अलङ्करणाय भारतस्य सुप्रसिद्धान् संस्कृत-हिन्दी-साहित्यविद्यापारङ्गतान् सुयशोराशिविभूषणान् विद्वद्वरेण्यान् डा० हजारीप्रसाद-द्विवेदिमहोदयान् समुपस्थापयामि ।

एते हि वाराणस्यां प्रथमतः संस्कृतविद्याक्षेत्रे साहित्यादीनि शास्त्राणि ज्यौतिषादिविद्याश्च सम्यगधिगत्य राष्ट्रभाषायां सुचिरं कृतमननाध्यवसायाः समालोचनकर्मणि प्रत्नतत्त्वान्वेषणे लेखने विवेचने च सर्वदा समेधमानप्रतिभाप्रभावाः परां प्रतिष्ठामध्यगच्छन् । एभिर्महानुभावैर्वङ्गप्रान्तीयशान्तिनिकेतने, काशीहिन्दूविश्वविद्यालये, चण्डीगढविश्वविद्यालये च सुचिरमध्यापयद्भिः साहित्य-समालोचनादौ नवनवोन्मेषं प्रकटयद्भिः सुरभारती राष्ट्रभारती च परं गौरवमापादिता । एतेषां 'हिन्दीसाहित्यभूमिका, बाणभट्टस्यात्मकथा, कालिदासस्य लालित्यम्' इत्याद्या अनेके ग्रन्थाः कबीर-गोरक्षनाथ-प्रभृतीनां सिद्धान्तचिन्तनपराः प्रबन्धाश्च साहित्यरत्नभाण्डागारस्य महतीं श्रियं समभिवर्धयन्ति । रवीन्द्रनाथटैगोरमहोदयस्याऽऽसीत् स्नेहः प्रतिभाप्रकर्षादेतेषु । विविधेषु प्राशासनिकपदेष्वपि स्थितैरेभिरतिप्रशस्यं लोकोपकारकं कार्यजातं सम्पादितम् । एतेषां व्याख्यान-कौशलं व्यापकञ्च भारतीयसंस्कृतेरनुशीलनं देशस्याऽस्य महते गौरवाय कल्पते ।

अतो महानुभावाः !

एतेषां चिरकालानुवर्तिनीं साहित्यसेवां भारतीयसंस्कृतेः समुन्नयने निरन्तरमध्यवसायं चतुरस्रं वैदुष्यं सुरभारतीसमुन्नयनोद्यमञ्च अभिलक्ष्य सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य 'वाचस्पतिः' इति शैक्षिकसम्मानोपाधिना एतान् डा० हजारीप्रसादद्विवेदिमहाभागान् अलङ्कुर्वन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः ।

उपाधिप्राप्तकर्ताओं की सूची, सन् १९७७

परीक्षा नाम	उपाधि प्राप्तकर्ताओं की संख्या
१. आचार्य	३८८
२. भोटबौद्धदर्शनाचार्य	२०
३. आयुर्वेदाचार्य	५६
४. शिक्षाचार्य (एम० एड्०)	५
५. शिक्षाशास्त्री (बी० एड्०)	३२७
६. शास्त्री	१०५०
७. (उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थान, सारनाथ, वाराणसी) शास्त्री	२५

८. (विशेष केन्द्रीय विद्यालय, बेला रोड, दिल्ली-६) शास्त्री	२
९. ग्रन्थालयविज्ञान शास्त्री	४६

सन् १९७८

परीक्षा नाम	उपाधि प्राप्तकर्ताओं की संख्या
१. आचार्य	४५३
२. भोटबौद्धदर्शनाचार्य	१५
३. आयुर्वेदाचार्य	५३
४. शिक्षाचार्य (एम० एड्०)	६
५. शिक्षाशास्त्री (बी० एड्०)	३३४
६. शास्त्री	१४०८
७. (उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी) शास्त्री	१७
८. ग्रन्थालयविज्ञान शास्त्री	४२

पदकप्राप्तिकर्ता स्नातक

सन् १९७७

स्नातक नाम	पदक नाम
१. श्री किशोर मिश्र	(१) श्री गङ्गानाथ झा स्वर्णपदक
,,	(२) रिपन स्वर्णपदक
,,	(३) सवाई माधोसिंह रजतपदक
,,	(४) स्वामी धर्मानन्द स्वर्णपदक
,,	(५) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
,,	(६) कैप्टन उमाकान्त शुक्ल स्वर्णपदक
२. श्री केदारनाथ त्रिपाठी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
३. श्री नारायणदत्त जोशी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
४. श्री प्रकाशचन्द्र ग्रोवर	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
५. कु० मिनती चौधरी	विवेकानन्द स्वर्णपदक
६. श्री माधवप्रिय दास	(१) श्री अन्नदाप्रसाद मुखर्जी स्वर्णपदक
,,	(२) श्री रामकुंवर बाँगड़ स्वर्णपदक
,,	(३) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
७. श्री गौरीशंकर प्रसाद	सौराष्ट्रस्थ शेषमठ श्री रामानन्द विद्यापीठाधीश स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य योगीन्द्र स्वर्णपदक
८. श्री गो० विश्वनाथ जोशी	स्वामी कृष्णानन्द महामण्डलेश्वर स्वर्णपदक
९. श्री दुर्गाप्रसाद दवाड़ी	श्री कर्णसिंह स्वर्णपदक
१०. श्री यज्ञनारायण पाण्डेय	(१) श्री हृषीकेश स्वर्णपदक
,,	(२) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
११. गायत्री देवी मिश्र	श्रीमती गङ्गामणि स्वर्णपदक
१२. श्री मोतीलाल	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
१३. श्री विशाल त्रिपाठी	श्री मंगनीराम बाँगड़ स्वर्णपदक
१४. श्री हरीराम मिश्र	श्री रामप्रसाद शास्त्री स्वर्णपदक
१५. श्री कर्मचन्द्र	श्री महाराज काशिराज स्वर्णपदक
१६. श्री अवधेश त्रिपाठी	श्री वक्रतुण्ड शुक्ल स्वर्णपदक

सन् १९७८

स्नातक नाम	पदक नाम
१. श्री कुन्जविहारी शर्मा	(१) श्री गङ्गानाथ झा स्वर्णपदक
	(२) रिपन स्वर्णपदक
	(३) सवाई माधोसिंह रजतपदक
	(४) स्वामी धर्मानन्द स्वर्णपदक
	(५) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
२. श्री सुधाकरराम त्रिपाठी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
३. कु० कमला पाण्डेय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
४. श्री सीताराम शर्मा	विवेकानन्द स्वर्णपदक
५. श्री मधुकर फाटक	(१) श्री अन्नदाप्रसाद मुखर्जी स्वर्णपदक
	(२) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
	(३) श्री रामकुंवर बांगड़ स्वर्णपदक
६. श्री महावीरदास वैष्णव	सौराष्ट्रस्थ शेषमठ श्री रामानन्द विद्यापीठाधीश स्वामी श्री रामप्रपन्नाचार्य योगीन्द्र स्वर्णपदक

७. श्री हुमनाथ गौतम	(१) स्वामी कृष्णानन्द महामण्डलेश्वर स्वर्णपदक (२) श्री कर्णसिंह स्वर्णपदक
८. श्री हरिप्रसाद जैन	श्री भगवानदास शोभालाल जैन स्वर्णपदक
९. श्री उमाशंकर शुक्ल	(१) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक (२) श्री हृषीकेश स्वर्णपदक
१०. श्री जगदीशप्रसाद पाण्डेय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
११. श्री मलजी जयतीर्थाचार्य	श्रीमती गङ्गामणि स्वर्णपदक
१२. श्री आर्येन्द्रकुमार	सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास स्वर्णपदक
१३. श्री दिनेश्वर पाण्डेय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय स्वर्णपदक
१४. श्री व्यासनन्दन शर्मा	श्री रामप्रताप शास्त्री स्वर्णपदक
१५. कु० गीता देवी	श्री वक्रतुण्ड शुक्ल स्वर्णपदक
१६. श्री नारायणदत्त देवीदास	श्री महाराज काशिराज स्वर्णपदक
१७. श्री कृष्णदेव मिश्र	श्री मंगनीराम बांगड़ स्वर्णपदक

विद्यावाचस्पति (डी० लिट्०)

सन् १९७७

नाम	विषय
१. श्री रामनारायण दास	ध्वनितत्त्वसमीक्षा

सन् १९७८

नाम	विषय
१. श्री कालिकाप्रसाद शुक्ल	वैयाकरणानामन्येषां च मतेन शब्दस्वरूपतच्छक्तिविचारः
२. श्री श्रीराम पाण्डेय	दीधितिकारोपज्ञविचाराणामालोचनम्

विद्यावारिधि (पी-एच० डी०) सन् १९७७-७८

	स्नातक नाम	विषय नाम	वर्ष नाम
१.	प्राणमोहन कुमार	भट्टोजिदीक्षितनागेशयोर्मतभेदविमर्शः	१९७७
२.	पारसनाथ द्विवेदी	अव्ययीभावान्तलघुशब्देन्दुशेखरशब्दरत्नयोस्तुलनात्मकमनुशीलनम्	१९७७
३.	त्रिवेणीप्रसाद शुक्ल	वाल्मीकिरामायणस्य काव्यदृष्ट्यानुशीलनम्	१९७७
४.	कैलाश नारायण चतुर्वेदी	संस्कृतसाहित्ये प्रशस्तेर्विमर्शः	१९७७
५.	महावीर मिश्र	नवसाहसाङ्कचरितस्य साङ्गोपाङ्गसमालोचनात्मकम् ऐतिहासिकञ्चाध्ययनम्	१९७७
६.	बुद्धिसागर त्रिपाठी	मल्लिकामारुतमालतीमाधवयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्	१९७७
७.	कु० शान्ती देवी	बाणसाहित्ये नारीपात्राणि	१९७७
८.	केदारनाथ मिश्र	भट्टप्रभाकरकृतस्य रसप्रदीपस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्	१९७७
९.	राजेन्द्रप्रसाद त्रिपाठी	१९०१ ईशवीयाब्दात् १९३० ईशवीयाब्दपर्यन्तं वाराणसेय-संस्कृतकवीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्	१९७७
१०.	कु० प्रेमा सरीन	जानकीहरणमहाकाव्यस्य साहित्यिकमनुशीलनम्	१९७७
११.	बनवारीलाल पाठक	भारतीयज्यौतिषरमलसाहित्यम्	१९७७
१२.	ओंकारनाथ चतुर्वेदी	वलनविमर्शः	१९७७
१३.	नागेन्द्र पाण्डेय	ज्यौतिषशास्त्रे दिग्देशकालज्ञानम्	१९७७
१४.	कपिलदेव त्रिपाठी	पाराशरोपपुराणस्य समीक्षात्मकं सम्पादनम्	१९७७
१५.	मुरलीधर दूबे	वाल्मीकिरामायणमहाभारतयोर्वर्णितानामायुधानां पर्यालोचनम्	१९७७
१६.	हरिशंकर पाण्डेय	भक्तिसाहित्ये श्रीरामानन्दमते भक्तिस्वरूपम्	१९७७
१७.	स्वामी सदानन्द शास्त्री	हिन्दीकविकबीरसिद्धान्तस्य द्वैतवेदान्तेन सह साम्यम्	१९७७
१८.	फ्रामहा सुरचितसांगसकुल	थेरवादमहायाननिकायेसु पञ्ञाय सरूपम् (स्थविरवादमहायाननिकायेषु प्रज्ञायाः स्वरूपम्)	१९७७
१९.	श्रीपति अवस्थी	उत्तरभारतीयाभिलेखानां राजनीतिकं सांस्कृतिकञ्चाध्ययनम्	१९७७
२०.	लालताप्रसाद शुक्ल	श्रीफणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का रीतिवैज्ञानिक अध्ययन	१९७७

२१.	जगदीश नारायण दूबे	वाराणसी के नाविकों एवं मछुओं की शब्दावली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन	१९७७
२२.	विनायक रामचन्द्र रटाटे	अथर्ववेदे राजनीतिः	१९७८
२३.	प्रभाकर द्विवेदी	वाल्मीकीयरामायणे अपाणिनीयशब्दानां समीक्षणम्	१९७८
२४.	बदरीनारायण पाण्डेय	हेमपाणिनीयव्याकरणयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्	१९७८
२५.	कमलेश कुमार द्विवेदी	वृत्तिप्रदीपस्य सम्पादनम्	१९७८
२६.	गिरिजेश कुमार दीक्षित	परिभाषेन्दुशेखरस्य सर्वमङ्गलाख्यपरिभाषाव्याख्यासम्पादनम्	१९७८
२७.	तालुकदार शुक्ल	वाक्यपदीयद्वितीयकाण्डस्य दार्शनिकतत्त्वानां समीक्षा	१९७८
२८.	रामयत्न शुक्ल	व्याकरणदर्शने सृष्टिप्रक्रियाविमर्शः	१९७८
२९.	केशवप्रपन्न शर्मा	परिभाषावृत्तिपरिभाषेन्दुशेखरयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्	१९७८
३०.	प्रभाकर मिश्र	व्याकरणशास्त्रे प्रमेयसमीक्षा	१९७८
३१.	दयाराम शुक्ल	धातूपसर्गसमीक्षा	१९७८
३२.	नर्वदेश्वर तिवारी	शाब्दिकनये कालस्वरूपपर्यालोचनम्	१९७८
३३.	श्रीकान्त पाण्डेय	व्याकरणशास्त्रदृष्टया सम्बन्धस्वरूपपर्यालोचनम्	१९७८
३४.	महेन्द्रकुमार शुक्ल	न्यासपदमञ्जर्योस्तुलनात्मकमध्ययनम्	१९७८
३५.	श्रीपतिराम त्रिपाठी	सारस्वतव्याकरणविमर्शः	१९७८
३६.	नरेन्द्रनाथ पाण्डेय	उदयशङ्करकृतपरिभाषाप्रदीपार्चिग्रन्थस्य सम्पादनम्	१९७८
३७.	व्रजकिशोर त्रिपाठी	पाणिनिप्रत्ययविमर्शः	१९७८
३८.	चन्द्रभानुशर्मा भारद्वाज	श्रीमद्भागवते अपाणिनीयशब्दविमर्शः	१९७८
३९.	हीरालाल मिश्र	योगतन्त्रव्याकरणशास्त्रदृष्टया बौद्धपदार्थविमर्शः	१९७८
४०.	श्रीमती मार्कण्डेश्वरी चतुर्वेदी	दर्शनान्तरापेक्षया तार्किकापवर्गवादवैशिष्टयम्	१९७७
४१.	हरिपाल द्विवेदी	श्रीमदम्बिकादत्तव्यासस्य वैदुष्यम्	१९७८
४२.	जयप्रसाद बलोधी	कालिदासवृत्तीनां रसालङ्कारदृष्ट्यानुशीलनम्	१९७८
४३.	लालजी पाठक	पञ्चमहाकाव्येषु ऋतुवर्णनम्	१९७८
४४.	श्रीमती शैल द्विवेदी	नरहरिविरचितोद्योतसहितस्य वेणीनाथविरचितजामविजयकाव्यस्य आलोचनात्मकमध्ययनम्	१९७८
४५.	वायुनन्दन पाण्डेय	श्रीमम्मटभट्टपण्डितराजजगन्नाथयोर्मतभेदविमर्शः	१९७८
४६.	गुलावप्रसाद द्विवेदी	समासोक्त्यलङ्कारस्य शास्त्रीयमैतिहासिकञ्च पर्यालोचनम्	१९७८
४७.	रामप्रसाद मिश्र	औचित्यविचारचर्चायाः काव्यानुशीलनात्मकमध्ययनम्	१९७८
४८.	रामजी मालवीय	योगतन्त्रदृष्टया मन्त्रमातृकयोस्तत्त्वविमर्शः	१९७८
४९.	रामरक्षा त्रिपाठी	योगस्य तदङ्गानाञ्च लौकिकोपयोगः	१९७८
५०.	एस० वि० रघुनाथाचार्य	न्यायशास्त्रोक्तप्रमाणानां मीमांसाशास्त्रदृष्टया परिशीलनम्	१९७८
५१.	ठाकुरप्रसाद मिश्र	कालिदास की काव्यभाषा का अध्ययन	१९७८
५२.	बदरीनाथ तिवारी	विनयपत्रिका का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	१९७८
५३.	शिवशंकर सिंह	हिन्दी के विभिन्न स्वरों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	१९७८
५४.	कु० बालचन्द्रिका पाठक	सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के व्रज-पदसाहित्य का रीति-विज्ञानपरक अध्ययन	१८७८
५५.	ब्रह्मानन्द पाण्डेय	वैयाकरणभूषण का भाषावैज्ञानिक अध्ययन	१९७८
५६.	दिलीप सिंह	सामाजिक स्तरभेद और भाषाभेद का समाजशास्त्रीय एवं भाषावैज्ञानिक अध्ययन	१९७८
५७.	सत्यव्रत शर्मा	पाणिनीय व्याकरण पर आधारित कम्प्यूटर प्रोग्राम (सुप-तिङ् रचना)	१९७८
५८.	श्यामसुन्दर दास	रामानन्दाचार्यस्तदीयग्रन्थसमीक्षा च	१९७८

मुख्य अतिथि प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर द्वारा दीक्षान्त भाषण

माननीय प्रतिकुलाधिपति जी, कुलपति जी, उपस्थित विद्वद्-वृन्द एवं प्रिय स्नातकों,

कुछ समय पहले समाचार पत्रों में किसी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण का समाचार देखने को मिला था। मैं समझता हूँ, इस प्रकार के अवसरों पर दिये गए भाषणों में यह सबसे छोटा था। उस भाषण में केवल दो वाक्य थे—"युवक मित्रों, आप लोगों ने विश्वविद्यालय से उपाधि पत्र प्राप्त कर लिया है। अब यहाँ से निकलकर किसी प्रकार का ज्ञान अर्जित कीजिये"। इन अभिभाषक महोदय की तरह मैं विश्वविद्यालयों के सभी कार्यकलापों को तुच्छ नहीं मानता और न मैं इन विश्वविद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षा की प्रतिष्ठा को ही हलका करना चाहता हूँ। मैं तो उन-उन परीक्षाओं में अपनी विशेषता प्रदर्शित करने वाले, अपने परिश्रम से उपाधि प्राप्त करने वाले यशस्वी स्नातकों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। इसके साथ ही मैं उन स्नातकों का ध्यान तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।११। ३-४) में वर्णित प्रसिद्ध इन्द्र-भरद्वाज की कथा की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसमें यह उल्लेख है—"ऋषि भरद्वाज ने अपनी आयु के तीन भागों में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। जीर्ण-शीर्ण वृद्ध शरीरवाले थके-माँदे भरद्वाज के पास आकर इन्द्र ने कहा कि यदि मैं तुमको चौथी आयु दूँ, तब तुम क्या करोगे? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि मैं उसमें भी ब्रह्मचर्य व्रत का ही पालन करूँगा। इन्द्र ने भरद्वाज को पर्वत के समान विशाल तीन अविज्ञात वस्तुएँ दिखायीं और उनमें से एक-एक मुट्ठी लेकर भरद्वाज से कहा कि इन पर्वतों की तरह वेद अनन्त हैं। अपनी आयु के तीन भागों में तुमने इन तीन मुट्ठियों जितना ही ज्ञान अर्जित किया है। बाकी सब तुम्हारे लिये अभी भी अज्ञात है"। इस कथा का अभिप्राय स्पष्ट है। यथार्थ ज्ञान का यही एक मुख्य लाभ है कि वह मनुष्य को अपने अज्ञान की सीमा से परिचित करा देता है। मनुष्य की वास्तविक शक्ति अपनी सीमाओं को पहचानने में है। शिक्षा 'मद' को 'दम' में परिवर्तित कर देती है—'मदो दमत्वं यद् याति शिक्षायाः फलितं हि तत्।'

यह बात सही है कि ज्ञानार्जन ही शिक्षा का एकमात्र अथवा प्रधान उद्देश्य नहीं है। हम यह भी कह सकते हैं कि यह शिक्षा का गौण प्रयोजन है। शील, सदाचार अथवा व्यक्तित्व का विकास ही इसका मुख्य प्रयोजन हो सकता है। शिक्षा से मन के संस्कार के साथ व्यक्तित्व का विकास भी होना चाहिये। जीवन के मूल्यों का परिचय प्राप्त करने और उनमें रस लेने के लिये छात्रों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। जो कुछ भी शिव और सुन्दर है, उसको पहचानने की दृष्टि उनमें होनी चाहिये। निःसन्देह ज्ञान एक महान् शक्ति है, किन्तु इस शक्ति का विनियोग, शील-सदाचार के नियन्त्रण और दिशा-निर्देश में ही होना चाहिये। विश्वविद्यालयों में ज्ञान की शिक्षा भले ही दी जाती हो, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि स्वार्थलम्पटता, सबका अनादर और निराशावाद जैसे दुर्गुणों का विरोध करने के लिये जिन संस्कारों की इस आयु में आवश्यकता है, और जिन संस्कारों को इस आयु में सरलता से ग्रहण किया जा सकता है, उनको देने में ये विद्यापीठ असमर्थ हैं। छात्र और अध्यापक दोनों को यह नहीं भूलना चाहिये कि बुद्धि के संस्कार से ज्ञान का और आत्मा के संस्कार से शील-सदाचार और व्यक्तित्व का विकास होता है। यह ठीक ही कहा गया है कि आत्मा का संस्कार ही संस्कृति का सर्वस्व है।

यदि इस तरह के समावर्तन समारोह के अवसर पर मैं संस्कृत के विषय में यह कहूँ कि संस्कृत भाषा, विद्या और संस्कृति का यह महत्त्व है, अथवा संस्कृत के अध्ययन और अनुसन्धान के क्षेत्र में यह अभीष्ट कार्य करना अभी बाकी है, तो यह परम्परा के अनुरूप भले ही हो, किन्तु संस्कृत विश्वविद्यालय के स्नातकों के सामने इस प्रकार के भाषण करने वाले का कार्य गङ्गाजल को वाराणसी से कहीं दूर से ले आने के समान होगा। इसलिये इस चपलता को मैं छोड़ता हूँ। तो भी आजकल की भारतीय शिक्षा-पद्धति के सन्दर्भ में मैं अपने कुछ विचार इस विश्वविद्यालय के विभिन्न घटकों के समक्ष रखना चाहता हूँ।

सामान्य शिक्षा में ही नहीं, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी आज आदर्श प्रधान विचार पद्धति लुप्त होती जा रही है। यह शोचनीय स्थिति है। शिक्षा के विषय में 'ऐसी हो' अथवा 'ऐसी न हो' आधिकारिक रूप से यह कहने वाले विचारक आजकल शिक्षा के क्षेत्र में भी 'लाभ के उद्देश्य से धन का विनियोग', 'लाभांश' प्रभृति वाणिज्यिक शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। शिक्षा नीति को अत्यधिक व्यावसायिक बनाने से शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन ही आँख से ओझल हो जाता है। खाली जगहों पर भरती के लिये युवकों को प्रशिक्षित करना शिक्षा का उद्देश्य नहीं होना चाहिये। शिक्षा को ऐसा प्रयास करना चाहिये कि युवक समाज की आकांक्षाओं को पहचानें, समाज के ऋण को याद रक्खें और नवीन उद्योगों की सृष्टि करने में समर्थ हों। उदार अथवा सांस्कृतिक शिक्षा का उपहास करना आज का रिवाज बन गया है। यह नहीं भूलना चाहिये कि उदार शिक्षा किसी वृत्ति विशेष की समता पर यद्यपि जोर नहीं देती, किन्तु अन्ततः जिस किसी भी वृत्ति को स्वीकार किया जाय, उसके लिये सर्वसाधारण समता का निर्माण

अवश्य करती है। महान् भारतीय शास्त्रज्ञ भाभा महोदय आग्रह के साथ यह कहा करते थे कि अध्ययन और अध्यापन बिना तात्कालिक लाभ की अपेक्षा के निरन्तर चलते रहने चाहिये। "ब्राह्मण को बिना किसी प्रयोजन के षडङ्ग वेद का अध्ययन करना चाहिये"—यही हमारे यहाँ अध्ययन का प्राचीन आदर्श था।

हमें उस शिक्षा प्रणाली को भी नहीं स्वीकार करना चाहिये, जिससे छात्र शिक्षा के प्रति उदासीन हो जाँय। यह कथन सत्य ही है कि शिक्षा में सम्भूय-समुत्थान होता है; इसमें छात्र और अध्यापक दोनों का उत्थान निहित है। शिक्षा के माध्यम से अध्यापक किसी निष्क्रिय छात्र में कुछ भी संस्कार नहीं डाल सकता। शिक्षा वास्तव में वही है जिसके द्वारा अध्यापक छात्र में कुछ कर गुजरने का उत्साह भर दे। शिक्षकों में प्रथम स्थान किसको मिलना चाहिये? उसको नहीं, जिसके छात्र पूछे गये प्रश्नों का सरलता से उत्तर दे सकते हों; किन्तु उसको, जो इस तरह के प्रश्नों को पूछने के लिए छात्रों को प्रेरित करता है जिनका उत्तर देने में वह स्वयं भी असमर्थ हो। सन् प्रत्ययान्त 'शक' धातु से शिक्षा शब्द बनता है। इससे यह घोषित होता है कि गुरु शिष्य में अपनी शक्ति को जगाता है। 'तेजस्वि नावधीतमस्तु' हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी हो, यह प्राचीन प्रार्थना भी गुरु-शिष्य के सम्भूय-समुत्थान को ही व्यक्त करती है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति की विफलता का कारण छात्रों के अशोभन और उत्तरदायित्वहीन व्यवहार को मान लिया गया है। सभी की यह मान्यता है कि राष्ट्र भारतीय युवक से निराश हो चुका है। इसके विपरीत मैं यह कहना चाहता हूँ कि युवक को ही राष्ट्र से निराशा हाथ लगी है। आज हम युवक और युवतियों को नीतिमत्ता, अनुशासन तथा सदाचार की शिक्षा देते हैं। किन्तु हमारे आज के समाज में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हो गये हैं, जिनके गुणों को आत्मसात् करने के लिये वे उनका अनुकरण करें। शासकों को पहले अपने को ही अनुशासित करना चाहिये। इसके बाद ही भावी भारत की आकांक्षाओं को वे युवजनों में देख सकते हैं। शिक्षकों और नेताओं को मतभेद के प्रति आक्रोश नहीं प्रकट करना चाहिये, क्योंकि मतभेद से रहित विद्यापीठ का परिसर बौद्धिक व्यापार से वंचित होकर मुर्दा सा बन जायेगा। इसके विपरीत छात्रों की इस नकारात्मक मनोवृत्ति को न केवल प्रोत्साहित ही न किया जाना चाहिये, किन्तु उसको सहन भी नहीं किया जाना चाहिये, जो उनकी उन्नति में बाधक है। विचारकों का कहना है कि आज का भारतीय छात्र 'क्या हो' इस विषय में उतना निश्चित नहीं है, जितना 'क्या न हो' इस विषय में।

उच्च शिक्षा संस्थाओं की लोकतन्त्रात्मक पद्धति से व्यवस्था करने का अभिप्राय बीच-बीच में प्रकट होता रहता है। इस विषय में यह ध्यान देने की बात है कि लोकतन्त्र एक राजकीय संकल्पना है। इस संकल्पना के अनुसार हर मनुष्य, चाहे वह कोई भी हो, केवल अनेक में से एक होता है, इससे अधिक उसका कोई मूल्य नहीं होता। बहुमत के आधार पर एक बार कोई निर्णय लेने पर उसका पालन सभी को अवश्य करना पड़ता है। इस तरह के लोकतन्त्र को राजनीति के क्षेत्र में स्वीकार कर लेने मात्र से यह नहीं सिद्ध हो जाता कि सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थाएँ राजकीय लोकतन्त्र के अनुसार ही संचालित हों और न यह इष्ट ही है। सेना, धर्म, कुटुम्ब अथवा विद्यालय अपने कार्य विधिवत् चलाते रहें, यह यदि अभीष्ट है, तो इसका संगठन लोकतन्त्रात्मक पद्धति से नहीं किया जा सकता। लोकतन्त्रात्मक पद्धति से विश्वविद्यालय चल सकते हैं, किन्तु उसका आधार नैतिक होगा। जैसे राजकीय समाज में नागरिक व्यवहार करते हैं, उसी तरह का व्यवहार विश्वविद्यालयों में छात्रों के करने पर यदि उनके शैक्षणिक अनुभव को अधिक अर्थवान् बनाने के लिये उनसे सहयोग लिया जाय, तब भी लोकतन्त्र की आत्मा वहाँ सुरक्षित रह सकती है। छात्र और अध्यापक के बीच बौद्धिक समानता को स्थापित करने का प्रयास गलत, अस्वाभाविक और प्रमादपूर्ण भी है। तब वस्तुतः आवश्यकता किस बात की है? स्वाभिमानी व्यक्तियों जैसा ही व्यवहार छात्रों के साथ भी होना चाहिये; उनके साथ सदा विचार-विमर्श होता रहना चाहिये और उनके विचारों को सदा आदर-पूर्वक सुनना चाहिये। उनकी योग्यता, परिपक्वता और आयु के अनुसार उनको महत्त्वपूर्ण कार्यभार भी दिया जाना चाहिये, जो नियमानुसार उन्हें दिया जा सकता हो। अध्यापक छात्रों की आवश्यकताओं को पहचानें और उन पर ध्यान भी दें, किन्तु ऐसा करते समय उनको अपनी उपदेशक की भूमिका कभी नहीं भूलनी चाहिये और न कभी उसकी प्रामाणिकता पर शंका ही करनी चाहिये। किसी शिक्षाविद् ने ठीक ही कहा है कि अध्यापक को अपनी आत्मा को कायरता का बन्दी कभी नहीं बनाना चाहिये।

आदर्शवाद का अनुसरण करते हुए मैंने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में तीन सूत्र बनाये हैं। इनमें से पहले में उद्देश्य का, दूसरे में स्वरूप का और तीसरे में इतिकर्तव्यता का निरूपण किया गया है। इस त्रिसूत्री के दो सूत्र प्राचीन शास्त्रों से लिये गए हैं, पहला श्रीमद्भागवत से और दूसरा भगवद्गीता से। मूल ग्रन्थ में सन्दर्भ कुछ दूसरा ही है। मैंने इनका विनियोग उच्च शिक्षा के विषय में कर लिया है। तीसरा सूत्र मैंने स्वयं बनाया है।

उच्च शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाला पहला सूत्र है—"सत्यं परं धीमहि"। सत्य की खोज—उच्चतम अन्तिम सत्य की

दीक्षान्त समारोह की शिष्ट-यात्रा का आंशिक दृश्य ।

प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर, दीक्षान्त भाषण करते हुए ।
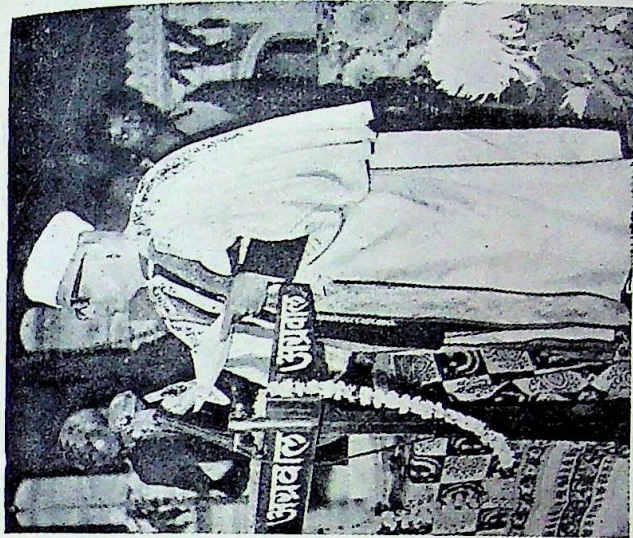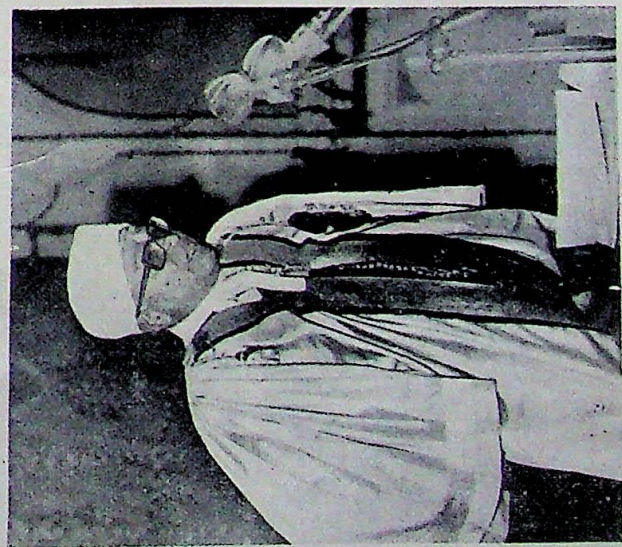
कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल, दीक्षान्त समारोह के अभ्यागतों को धन्यवाद देते हुए ।

पू० स्वामी करपात्री जी महाराज, कुलपति से सम्मानित वाचस्पति उपाधि ग्रहण करते हुए ।
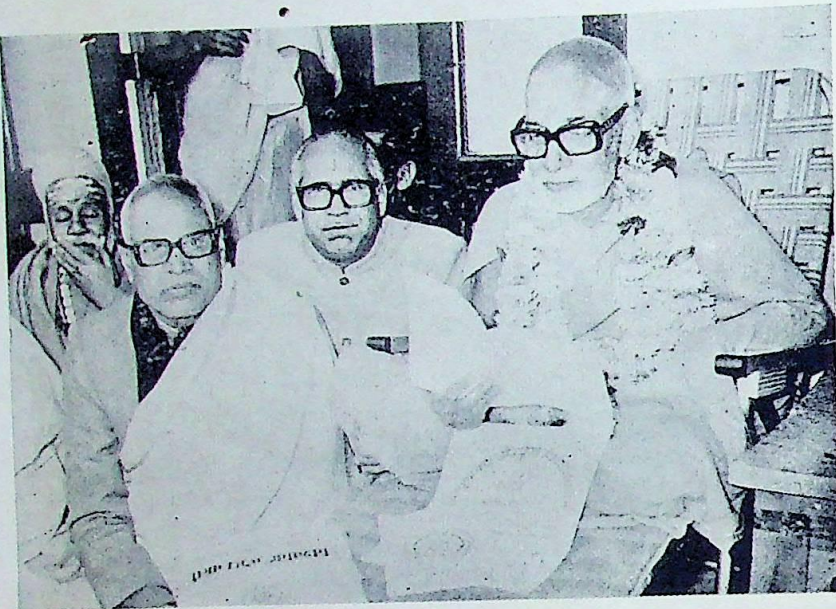
पू० स्वामी करपात्री जी महाराज, कुलपति द्वारा समर्पित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का अवलोकन करते हुए।
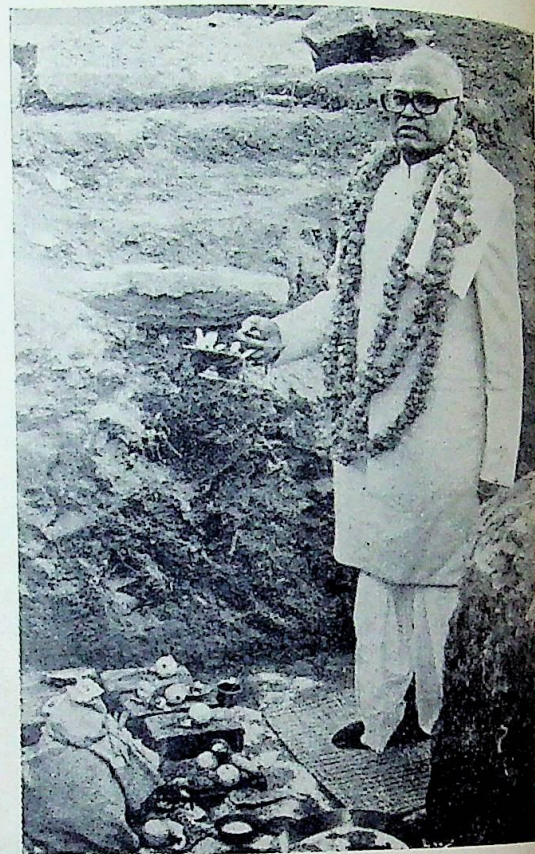
कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा छात्रावास भवन का शिलान्यास।

पू० स्वामी करपात्री जी महाराज को सम्मानित वाचस्पति उपाधि प्रदान करने के अवसर पर उपस्थित विद्वन्मण्डली।

श्री बैरिस्टर तिवारी, अध्यक्ष, कर्मचारी संघ, शपथ-ग्रहण समारोह के अवसर पर बोलते हुए।

खोज—ही उच्च शिक्षा का उद्देश्य हो सकती है, यह मेरा निश्चित मत है। वह सत्य ज्ञान विषयक हो (जिसकी खोज मानवतावादी अथवा सामाजिक शास्त्र करते हैं), अथवा विज्ञान विषयक (जिसकी खोज भौतिक एवं तान्त्रिक शास्त्र करते हैं); सत्य की खोज की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, यह कभी रुकती नहीं। मुझे सदा यह अनुभव होता है कि सत्य क्षितिज के समान है। 'अब हम निकट आ गये हैं' ऐसा मानने वालों से वह दूर हटता जाता है। ऐसा होने पर भी अथवा इसी कारण से सत्य की खोज एक साथ ही लुभाने और व्यथा देने वाली भी है। सत्य की खोज वह आह्वान है, जिसके कारण जीवन सार्थक हो जाता है।

इस सूत्र के 'धीमहि' शब्द के विशेष अर्थ को मैं यहां स्पष्ट करना चाहता हूँ। यह शब्द केवल बौद्धिक अनुमान का ही नहीं, किन्तु साक्षात् प्रत्यक्ष का निदर्शक है। केवल बौद्धिक कलाबाजी अन्तिम मूल्य का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती। ज्ञान तभी सफल हो सकता है, जब वह अनुभव पथ पर उतरे, जीवन में प्रतिबिम्बित हो। विचार परम्परा और जीवन पद्धति के बिलगाव को भारतीय परम्परा ने कभी स्वीकार नहीं किया है।

उस उस परिस्थिति में जीवन के उन उन अनुभवों के स्तरों में सत्य के अन्यान्य रूप परम सत्य के रूप में व्यक्त होते हैं। उस उस समय प्रतीत हो रहे सत्यों की प्रामाणिकता की परीक्षा का एक ही उपाय पर्याप्त है कि उनको अपने जीवन में उतारा जाय, उनको पूरी तरह आत्मसात् किया जाय। इस तरह से परीक्षित सत्य यदि आंशिक रूप से गलत या अपर्याप्त सिद्ध हों तो उनको छोड़कर नवीन सत्यों का अन्वेषण करना पड़ता है। अन्तिम सत्य को देखने की इच्छा से मानव इस जगत् नाम की प्रयोगशाला में एक के बाद दूसरे अनन्त प्रयोग करता चला आ रहा है। जीवन का यही प्रयोजन है। महात्मा गांधी ने इसको देखा था। इसीलिए उन्होंने अपनी जीवनी का नाम 'सत्यान्वेषण के प्रयोग' रखा था।

सत्यान्वेषण एक पवित्र व्रत है। अतः इसको एक आचार संहिता की आवश्यकता है। अमेरिका में विद्यमान एक महाविद्यालय के ध्येय वाक्य में इस आचार संहिता का अच्छा निरूपण हुआ है—

"From the cowardice which shrinks from new truth,
From the laxness which is content with half truth,
From the arrogance which thinks that it knows all truth,
O God of truth, deliver us".

'उस कायरता से, जो सत्य से पृथक करे; उस उदासीनता से, जो अर्धसत्य से परितृप्त हो; उस अहंकार से, जो स्वयं को पूर्णज्ञ मानता है, हे सत्य के प्रभु, मुक्त करो इनसे।

उच्च शिक्षा सम्बन्धी मेरा दूसरा सूत्र उसके स्वरूप को स्पष्ट करता है। वह है—"ज्ञानं विज्ञानसहितम्"। यहां ज्ञान और विज्ञान शब्द पारिभाषिक हैं। मोटे तौर पर ज्ञान शब्द मानवतावादी और सामाजिक तथा विज्ञान शब्द भौतिक और तान्त्रिक शास्त्रों के लिये प्रयुक्त होता है। यहां दोनों के अभिप्राय की व्याख्या अभीष्ट नहीं है, किन्तु इनके अध्ययन से उत्पन्न होने वाली मनोवृत्तियों का हमें विश्लेषण करना है। विज्ञान के अध्ययन से उत्पन्न बौद्धिक औद्धत्य और आक्रमणशीलता को ज्ञान के अध्ययन से उत्पन्न चिन्तनात्मक संयम और आदर्शवाद से नरम बनाना पड़ेगा। साथ ही 'ज्ञान' से प्रेरित स्वप्नलोक की कल्पनाओं की मदहोशी और निष्क्रियता में 'विज्ञान' की सप्रयोजन प्रेरणा और आत्मविश्वास से बल और प्राण का संचार करना पड़ेगा। इस प्रसंग में माक्सबोर्न की कथा याद आती है। इस सुप्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक के तीन शिष्य थे, जिन्होंने आगे चलकर अनुसन्धान के क्षेत्र में बड़ी निपुणता प्राप्त की और जो साक्षात् अथवा परोक्ष रूप से अणु अस्त्रों के आविष्कारक थे। ये थे इटली निवासी फेर्मी, स्कैण्डिनेविया के नीलबोर और अमेरिकी ओपेनहायमर। प्रसंगवश यह बता देना आवश्यक है कि ओपेनहायमर के पास 'धम्मपद' और 'भगवद्गीता' की प्रति सदा रहती थी। विश्व का संहार कर देने वाला अणुबम जब बनाया जा रहा था, तब उसके भावी विस्फोट की कल्पना उनने गीता के "दिवी सूर्यसहस्रस्य" इस श्लोक से की थी। इन तीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक शिष्यों के रहते हुए भी, सुना जाता है कि माक्सबोर्न ने बड़े दुःख के साथ कहा था—"निःसन्देह मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि मुझे ऐसे निपुण शिष्य मिले, किन्तु मैं सोचता हूँ कि यह ज्यादा अच्छा होता कि इनमें निपुणता की कमी के रहते भी ज्ञान की गरिमा होती।" मनुष्य की बुद्धि जो निपुणता की जननी है, शक्य और अशक्य का विचार कर अशक्य से प्रतीत हो रहे कार्य को जबरदस्ती शक्य बनाने में लग जाती है। इसके विपरित प्रतिबोध, जो कि बुद्धि का जनक है, युक्त और अयुक्त का विवेचन कर जो कुछ संभव है, वह निश्चित रूप से उचित ही होगा, इस बात का आग्रहपूर्वक निषेध करता है। अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेना यथार्थ गौरव की बात नहीं है, किन्तु उचित को प्राप्त करने में ही गौरव है। विज्ञान ज्ञान के बिना अन्धा है और ज्ञान विज्ञान के बिना लंगड़ा। इसलिये दोनों को मिलकर ही रास्ता तय करना है।

अब हम तृतीय सूत्र पर आते हैं। उच्च शिक्षा को सदा आगे की ओर बढ़ना चाहिये। हमारे पूर्वजों की अर्जित ज्ञान सम्पत्ति हमारे पास है। उच्च शिक्षा उस सम्पत्ति के संवर्धन और उन्नयन में समर्थ होनी चाहिये। इसी अभिप्राय को "गातुर्योगप्रयोगाभ्याम्" यह तृतीय सूत्र अभिव्यक्त करता है। इस सूत्र में विद्यमान 'गातुः'

५

शब्द को मैं प्रगति का पर्याय मानता हूँ। मानव के जीवन में दो प्रवृत्तियां प्रधान हैं। पहली है 'योग' रूप, जिससे अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति होती है और दूसरी है 'क्षेम' रूप, जिससे प्राप्त वस्तु की रक्षा होती है। 'प्रकृत में 'योग' प्रवृत्ति नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिये, उसका निर्माण करने के लिये और 'क्षेम' प्रवृत्ति अनादि काल से संचित उपलब्ध ज्ञान की रक्षा के लिये होती है। आज हमारा देश केवल 'क्षेम' प्रवृत्ति में ही रम रहा है और उसी से सन्तुष्ट होकर 'योग' प्रवृत्ति से पराङ्मुख हो गया है। इसीलिये वह संस्कृति और सभ्यता की घुड़दौड़ में पीछे पड़ गया है। भारतीय विद्याओं का इतिहास हमें यही बताता है।

ज्ञान तभी तक विकासशील रहता हैं, जब तक उसका प्रयोग और उपयोग व्यवहार में होता रहता है और बिना किसी रोक-टोक के उसे फैलाया जाता है। धन-कृपण से ज्ञान-कृपण अधिक बुरा है। हमने पहले ही बताया है कि ज्ञान और जीवन को परस्पर निरपेक्ष कभी नहीं रखना चाहिये। उपलब्ध ज्ञान का जब साक्षात् जीवन में उपयोग किया जाता है, तभी मनुष्य उसके गुण-दोषों का विवेचन कर सकता है और तभी वह स्वभावतः नवीनतर अधिक प्रामाणिक ज्ञान के अन्वेषण की अन्तःप्रेरणा प्राप्त करता है।

'सेनफ्रांन्सिस्को स्टेट कालेज' नामक महाविद्यालय के अध्यक्ष प्राध्यापक श्री हायाकावा ने आदर्श विश्वविद्यालय का एक शब्दचित्र रेखित किया है। उस चित्र से मेरा मन बहुत प्रभावित हुआ है। उनका कहना है—"मैं विश्वविद्यालयों में उस तरह के वायुमण्डल का निर्माण देखना चाहता हूँ, जिसमें छात्र और अध्यापक दोनों मिलकर एक ही शैक्षणिक समाज के अंग के रूप में समानरूप से विकासोन्मुख हों। वैचारिक संघर्ष वहाँ खूब जोरशोर से फैलें, किन्तु साथ ही दोनों परस्पर एक दूसरे का आदर भी करें। यह विश्वविद्यालयीय समाज किसी बात में स्थितिवादी रहे, किसी विषय में सारी व्यवस्थाओं को तोड़ देने वाला, कहीं पर ईमानदारी से गम्भीर चिन्तन में लगा हुआ और कहीं उल्लास से भरा तथा सभी चिन्ताओं से मुक्त, सभी परिस्थितियों में यह निष्कपट और तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो। इसी तरह के भावी विश्व के निर्माण और उसकी सेवा के लिये यह सत्यनिष्ठ विद्यापरायण समाज अपना जीवन अर्पित कर दे, जिसमें सभी मनुष्य सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न और सामाजिक दृष्टि से न्याय और समता से परिपूर्ण हों।"

यह आदर्श इस विश्वविद्यालय का मार्गदर्शक बने।

कुलपति का समापन भाषण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश को यह अनुभव हुआ कि भारत की प्राचीनतम सर्वश्रेष्ठ निधि संस्कृत वाङ्मय के उच्चतम अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था देश के प्रधान कर्तव्यों में है। फलतः स्वर्गीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त (तदानीन्तन मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेशएवं स्वर्गीय श्री सम्पूर्णानन्द (तदानीन्तन शिक्षा मन्त्री, उ० प्र० जैसे राष्ट्रनायकों के सहयोग से संस्कृत विद्याओं के अनादि केन्द्र वाराणसी के अन्ताराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त राजकीय संस्कृत महाविद्यालय को संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर उसके सर्वतोमुख संवर्धन तथा विकास का संकल्प किया गया। तदनुसार उत्तर प्रदेश शासन द्वारा वाराणसी में इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उपलब्ध समस्त वेद शाखाओं के मन्त्रोच्चारण की माङ्गलिक ध्वनि के बीच डा० सम्पूर्णानन्द, मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश के द्वारा २२.३.५८ को इस विश्वविद्यालय का उद्‌घाटन सम्पन्न हुआ और प्रदेश के मुख्य सचिव, भारतीय संस्कृति के उन्नायक, प्रसिद्ध मनीषी डा० आदित्यनाथ झा इसके प्रथम उपकुलपति नियुक्त हुए। हमें यह बताते हुए प्रसन्नता है कि यह विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल से ही द्रुतगति से नहीं, किन्तु क्रम से उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है और इस क्रम में ऐसे अनेक नवीन शास्त्रीय विभागों के उद्‌घाटन हुए, विश्वविद्यालय के स्थापना-काल या उसके पूर्व जिनके पठन-पाठन की व्यवस्था नहीं थी। वैदेशिक भाषाओं में उल्लिखित संस्कृत वाङ्मय की जानकारी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को प्राप्त हो सके, एतदर्थ कतिपय विदेशी भाषाओं के प्रमाणपत्रीय पाठ्यक्रम को परिचालित किया गया। पालि और प्राकृत विभागों की स्थापना कर इन भाषाओं के अध्ययन की भी सुविधा सम्पन्न की गयी।

इस सन्दर्भ में हमें यह भी बताने में हर्ष का अनुभव हो रहा है कि दूरवर्ती एवं पड़ोसी देशों के छात्र यहाँ अध्ययनार्थ आते हैं और यहाँ के ज्ञान को अपने देशों में प्रसारित करने की अर्हता प्राप्त करते हैं। शास्त्रीय अनुसन्धान का कार्य, जो वर्षों से इस देश में मन्द पड़ गया था, इस विश्वविद्यालय के माध्यम से अब पर्याप्त मात्रा में होने लगा है। एतदर्थ विश्वविद्यालय में एक अनुसन्धान संस्थान भी स्थापित है, जिसके माध्यम से बहुजन साध्य शास्त्रीय अनुसन्धान को प्रस्तुत करना इस विश्वविद्यालय का लक्ष्य है। सरस्वती-भवन का महान् पुस्तकालय इस विश्वविद्यालय को इस कार्य के लिए वरदान-स्वरूप प्राप्त है।

मुझे इस अवसर पर यह भी कहने में प्रसन्नता हो रही है कि प्रदेश तथा प्रदेश के बाहर के सहस्रों संस्कृत महाविद्यालय इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं, जहाँ से प्रतिवर्ष ३५,००० छात्र इस विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आज प्रदेश तथा देश में राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के विविध संकटों के बीच विश्वविद्यालय अपनी वार्षिक तथा पूरक परीक्षायें यथासमय सम्पन्न कर

वर्ष १९७७ एवं १९७८ का दीक्षान्त महोत्सव सम्पन्न कर रहा है। इस अवसर पर हमें अपने माननीय प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करनी है और धन्य-वाद देना है कि माननीय कुलाधिपति के कार्यान्तर में व्यस्त होने से आज उनके उपस्थित न हो सकने की स्थिति में हमारे प्रति-कुलाधिपति महोदय ने इस महोत्सव की अध्यक्षता करने की स्वीकृति प्रदान की और आज हमारे बीच उपस्थित होकर हमारा उत्साहवर्धन कर रहे हैं।

हमें अपना यह हार्दिक भाव प्रकट करने में अत्यन्त आनन्द हो रहा है कि अन्ताराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त देश के उत्कृष्टतम विद्वान् प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर ने आज हमारे बीच उपस्थित हो हमारे स्नातकों को आशीर्वाद देने और उन्हें नयी दिशा का निर्देश देने की कृपा की है। अपने दीक्षान्त भाषण में जिस त्रिसूत्री की कल्पना कर उसका संक्षिप्त भाष्य भी आपने प्रस्तुत किया है, वह समस्त शिक्षा जगत्, विशेषकर संस्कृत शिक्षा जगत् के लिए नवीन प्रकाश प्रस्तुत करती है। आपके इस वक्तव्य का महत्त्व अत्यन्त असाधारण है कि देश के नागरिकों को मात्र ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने से ही विश्वविद्यालय के कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं होती, अपितु उन्हें शील और चरित्र से युक्त करना भी विश्वविद्यालय का कर्त्तव्य है। उनका यह कहना भी समीचीन है कि इस ओर पर्याप्त ध्यान न देने से ही छात्र जगत् में असन्तोष और अनुशासनहीनता की लहर व्याप्त है। प्रो० दाण्डेकर महोदय के इस विचार का भी असामान्य महत्त्व है कि मनुष्य को असत्य से विरत होने, अर्ध-सत्य से सन्तुष्ट न होने और पूर्णसत्य को प्राप्त करने के लिये सतत जागरूक रहना चाहिये। अर्धसत्य से सन्तुष्ट न होने की उनकी चेतावनी भर्तृहरि के इस श्लोक का स्मरण दिलाती है—

> 'यदा किञ्चिद् ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
> तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
> यदा किञ्चिद् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
> तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः' ॥

अध्यापकों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रो० दाण्डेकर ने कहा—'द्रव्यकृपणाद् ज्ञानकृपणः पापीयान्', जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि विद्वानों को अपने ज्ञान का संवर्धन करना चाहिये और मुक्त हस्त से उसे अपने पुत्रों और विद्यार्थियों में वितरित करते हुए अपने जीवन को सफल बनाना चाहिये।

कुलपति ने अन्त में उन विद्वानों के प्रति भी आभार प्रकट किया, जिन्होंने सम्मानित उपाधियों के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की। साथ ही विश्वविद्यालय के छात्रों, अध्यापकों एवं कर्मचारियों के प्रति भी उन्होंने कृतज्ञता व्यक्त की, जिनके सहयोग से यह महोत्सव सफल हुआ।

परम्परानुसार प्रतिकुलाधिपति से अनुमति प्राप्त कर कुलपति द्वारा दीक्षान्त समारोह की समाप्ति की औपचारिक घोषणा के अनन्तर राष्ट्रगान हुआ और यह महोत्सव पूर्ण हुआ।

२५ दिसम्बर, १९७८

प० श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी को सम्मानित वाचस्पति उपाधि प्रधान करने का उत्सव

अस्वस्थता के कारण दीक्षान्त समारोह में उपस्थित न होने पर विश्वविद्यालय ने प्रयाग में प० श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी के निवास स्थान पर सम्मानित वाचस्पति उपाधि देने का आयोजन किया।

श्री चतुर्वेदी की प्रशस्ति चर्चा में कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि परम्परागत संस्कृत पण्डितों की चर्चा में इनका नाम सर्वत्र लिया जाता है और संस्कृत सेवा हेतु उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने अपने सर्वोच्च पुरस्कार द्वारा इन्हें अलङ्कृत किया है। विश्वविद्यालय ने इस दीक्षान्त समारोह में वाचस्पति की सर्वोच्च शैक्षिक सम्मानोपाधि से श्री चतुर्वेदी जी को अलङ्कृत करने का संकल्प किया। हमारी यह इच्छा थी कि विश्वविद्यालय परिवार समारोह में इनके आने से कृतार्थ हो। श्री प्रभात शास्त्री ने प्रस्ताव किया था कि एतदर्थ एक विशिष्ट आयोजन किया जाय। किन्तु हमने सोचा कि यह कार्य तत्काल सम्पन्न होना चाहिये, जिससे समय इसकी महिमा को कम न कर सके। यह हर्ष का विषय है कि प्रयाग के परम्परागत संस्कृत पण्डितों एव नागरिकों की उपस्थिति में यह कार्य सम्पन्न हो रहा है।

श्री चतुर्वेदी जी की संस्कृत सेवाओं का उल्लेख करते हुए कुलपति ने कहा कि संस्कृत भाषा के व्याकरण आदि तथा प्राच्य-विद्या के उन्नयन के अन्य क्षेत्रों में आपका योगदान विदित है। प्रयाग की प्रसिद्ध संस्कृत पाठशाला धर्मज्ञानोपदेश से प्राचीन परम्परा से शब्दशास्त्र का अध्ययन करके प्रतीच्य रीति से आपने विश्वविद्यालय में इसके अध्ययन कार्य को सम्पन्न किया और नागपुर एवं रायपुर महाविद्यालय के प्रधानाचार्य, केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के संस्कृत विभाग के सञ्चालन एवं प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रूप से संस्कृत भाषा एवं शास्त्रों की दृढ़तर सेवा की और विविध प्रकार के विशिष्ट लेखों एवं गुरुशिष्य सम्प्रदाय के प्रवर्तन द्वारा सुरभारती तथा देश के गौरव को प्रतिष्ठित किया। आप में शास्त्रों के प्रति अटूट आस्था एवं शब्द-प्रयोग की प्रवीणता विद्यमान है। ऐसे ज्ञानतपस्वी को सम्मानित उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय गौरवान्वित है—यह कहते हुए आपने श्री चतुर्वेदी जी को वाचस्पति की सम्मानितोपाधि अर्पित की।

श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी ने इस अवसर पर अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि प्रयाग मेरी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि दोनों रहा है और यह अपूर्व संयोग मुझे प्राप्त हुआ है। कुलपति जी ने मेरा अधिक गुणगान किया है। जीवन भर मैं प्रसिद्धिपराङ्मुख रहा हूँ। किन्तु यह सम्मान परम्परागत संस्कृत विद्यास्थान से किया जा रहा है, अतः इसे तो स्वीकार ही करना पड़ेगा।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी, प्रयाग की संस्कृत पाठशालाओं के प्राचार्यगण, श्री भूपेन्द्रपति त्रिपाठी, श्री प्रभात शास्त्री, श्री श्रीधर शास्त्री एवं प्रयाग के अन्य प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे।

२८ दिसम्बर, १९७८

श्री स्वामी करपात्री जी को सम्मानित वाचस्पति उपाधि प्रदान करने का उत्सव

दीक्षान्त समारोह में पू० स्वामी करपात्री जी के न आने पर विश्वविद्यालय ने उनके निवास स्थान 'वृन्दावन विहारी धाम', लक्सा, वाराणसी जाकर सम्मानित वाचस्पति उपाधि प्रदान करने का आयोजन किया था।

विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो० बदरीनाथ शुक्ल, ने पू० स्वामी जी की प्रशस्ति चर्चा में कहा कि समस्त भारत की जनता अपने धार्मिक एवं आध्यात्मिक हितों के संरक्षण के लिये आपकी ओर देख रही है। वैदिक संस्कृति, शास्त्र, परम्परा तथा समस्त भारतीयता आपसे ही सुरक्षित है। धर्म, राजनीति, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में आपके निर्देशन एवं योगदान से भारतीय जनता अपने को कृतकृत्य मानती है। भारतीय संस्कृति के महान् उन्नायक के रूप में आपकी महती ख्याति है। विश्वविद्यालय ने अपनी सर्वोत्तम उपाधि प्रदान करने का निर्णय कर अपने पावन कर्त्तव्य का पालन किया है। इस उपाधि की सार्थकता भी आपके श्रीचरणों में ही है। यदि विश्वविद्यालय ने ऐसा नहीं किया होता तो यह उसकी भयंकर उत्तरदायित्व-विहीनता होती। आपके निर्देशन में विश्व के सभी प्राणियों को कल्याण का मार्ग मिलता रहे, यही हमारी आपके चरणों में प्रार्थना है।

धर्म-सम्राट्, यतिचक्रचूडामणि श्री हरिहरानन्द सरस्वती (स्वामी करपात्री जी) के श्रीचरणों में अपनी भावाञ्जलि अर्पित करते हुए कुलपति ने उन्हें वाचस्पति की सम्मानित उपाधि अर्पित की।

सन्मार्ग के प्रधान सम्पादक श्री स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती ने कहा कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने आज अपने स्वरूप को प्रतिष्ठित किया है। अन्य विश्वविद्यालयों से इसका अपना अलग वैशिष्ट्य है और वह यह है कि परम्परागत पाण्डित्य तथा भारतीय संस्कृति की इससे रक्षा होती है। यह हर्ष का विषय है कि पाण्डित्य प्रतीकस्वरूप प० बदरीनाथ शुक्ल ऐसा कुलपति इसे प्राप्त है और सम्प्रति विश्वविद्यालय में संस्कृत का वातावरण उपस्थित है, और यह सभी संस्कृतज्ञों के लिए उल्लास का विषय है। धर्मसङ्घ शिक्षा मण्डल तथा नगर की अन्य शिक्षा-संस्थाओं की ओर से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अधिकारी, विशेष रूप से कुलपति, इस कार्य हेतु धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि से श्रीचरणों को विभूषित किया है।

पू० स्वामी करपात्री जी ने इस अवसर पर विद्वानों की उपस्थिति पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए एवं विद्या के वास्तविक लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विद्या वही है जिससे धर्म बुद्धि और ब्रह्म बुद्धि प्राप्त हो। धर्म साधन है और ब्रह्म साध्य है। विद्या मनुष्य को धर्म में प्रतिष्ठित कर संसार समुद्र को पार करा कर विशुद्ध परमशुद्धानन्द समुद्र में अवगाहन कराती है। इससे अविद्या तथा सर्वप्रपञ्चों की निवृत्ति होती है। अतः इस विद्या के लिये परम प्रयास होना चाहिए।

योगवासिष्ठ में प्रतिपादित है कि सर्वत्याग करने से सम्पूर्ण वस्तुओं की उपस्थिति होती है। त्याग की संसार में बड़ी महिमा है। जो जितना ही त्याग करता है, वह इसके बल पर संसार को नन्दनवन बनाने में समर्थ होता है। संसार में रहते हुए भगवान् श्री रामचन्द्र तथा परमानन्दकन्द भगवान् श्री कृष्णचन्द्र इसी के द्वारा संसार को नन्दनवन बना सके। यहीं रहते-रहते अखण्ड ब्रह्मस्वरूप बन जाता है। संसार का कल्याण इसी विद्या से है, अतः विद्वानों को इसी विद्या को अपने तथा अपने अनुयायियों में सम्पादित करना चाहिए।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय परिवार के श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी (कुलसचिव), श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी (पुस्तकाध्यक्ष), श्री रामकृपाल मिश्र (वित्ताधिकारी), प्रो० कालिकाप्रसाद शुक्ल, प्रो० देवस्वरूप मिश्र, प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय, प्रो० रामप्रसाद त्रिपाठी, प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, विश्वविद्यालय के विभागीय अधिकारी, नगर के संस्कृत महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यगण, परम्परागत संस्कृत विद्वान्, मान्य नागरिक एवं पत्रकार उपस्थित थे।

स्वामी सदानन्द जी सरस्वती, श्री आत्मचैतन्य ब्रह्मचारी, श्री रमागोविन्द त्रिपाठी, श्री सीताराम खेमका, श्री राधेश्याम खेमका, प० मुक्तिनाथ ओझा, श्री रामसहोदर पाण्डेय, श्री रामगोविन्द शुक्ल तथा श्री प्रकाश मिश्र ने आगन्तुक विद्वानों का स्वागत किया।

जयन्तियाँ तथा दिवस

१० दिसम्बर, १९७८

मानवाधिकार दिवस

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा की तीसवीं जयन्ती के अवसर पर यूनेस्को क्लब तथा विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनाङ्क १० दिसम्बर, १९७८ को अपराह्न तीन बजे एक सभा आयोजित हुई। उक्त सभा में अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने बताया कि समस्त मानवाधिकार निम्नाङ्कित श्लोक में अन्तर्निहित हैं—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

श्लोक में अन्तर्निहित भाव की व्याख्या करते हुए आपने कहा कि भारतीय संस्कृति में इन अधिकारों की मान्यता राष्ट्रसंघ द्वारा मानवाधिकार की घोषणा के सहस्रों वर्ष पूर्व से ही रही है। पर मानवाधिकारों की घोषणा के बाद भी विश्व के नागरिकों को इन अधिकारों के उपभोग का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में यह घोषणा ही वर्तमान जगत् के लिये एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस घोषणा से हमारे भीतर प्रेरणा उत्पन्न होती है और हम अपने विगत इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तथा मानवीय अधिकारों के लिये पश्चात्ताप करते हैं। दास प्रथा का पूर्णरूप से उन्मूलन आज भी नहीं हुआ है और वह दूसरे रूप में पनप रही है।

अन्त में आपने कहा कि अधिकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं। ये राज्य एवं समाज की देन नहीं हैं। राज्य एवं समाज इन अधिकारों को नियन्त्रित करते हैं। आज आवश्यक यह है कि मानव एक दूसरे से स्नेह करे और एक दूसरे के निकट आये। इसी से राष्ट्रसंघ द्वारा घोषित मानवाधिकारों को हम अपनी शक्ति और बुद्धि से अधिक प्रभावशाली बना सकेंगे। इसी प्रकार देश का तथा समस्त विश्व का कल्याण होगा।

समारोह के मुख्य अतिथि काशी विद्यापीठ के राजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ० मुरलीधर भगत ने अपने विस्तृत तथा विद्वत्तापूर्ण भाषण में इन अधिकारों की घोषणा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि प्रारम्भ से हो रहे मनुष्य की महिमा एवं गरिमा के दमन और दलन को नियन्त्रित करने के लिये तथा मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास के उद्देश्य से इन अधिकारों की घोषणा की गयी। पर यह विडम्बना ही है कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के बावजूद निरन्तर मनुष्यों का दमन किया जा रहा है। इस दमन के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए डॉ० भगत ने कहा कि यह दमन अनादिकाल से चला आ रहा है। प्रारम्भिक अवस्था में पुरुषों ने बलपूर्वक स्त्रियों को दमित किया, चारागाह युग में पुरुषों को दास बनाया गया, और इस प्रकार दास प्रथा का उदय हुआ।

आपने आगे बताया कि दास प्रथा का जो रूप प्राचीन यूनान तथा रोम में मिलता है, वह भारत में कभी नहीं रहा। फिर भी एक विभिन्न परिवेश में यहाँ दास प्रथा रही है। इसी क्रम में भारतीयों को श्रमिक के रूप में विदेशों में भेजा गया। समाज का एक वर्ग भी इसी प्रकार अर्धदासों के रूप में रहने के लिए विवश किया गया।

डॉ० भगत के अनुसार दास प्रथा का प्रचार यूरोप में १९२१ तक रहा है। रूसी ज़ारशाही के समय में बुखारा एवं ताशकन्द आदि क्षेत्रों में दासों का विक्रय हुआ करता था। अमेरिका में भी क्रीत अफ्रीकियों का प्रयोग दास के रूप में होता रहा है। अरब देशों में तो आज भी यह प्रथा प्रचलित है। आज विश्व के साम्यवादी तथा पूँजीवादी दोनों क्षेत्रों में व्यक्ति की गरिमा का हनन किया जा रहा है।

प्राचीन राजशास्त्र अर्थशास्त्र विभाग के श्री विश्वनाथ शास्त्री दातार ने कहा कि दासत्व का हमारे यहाँ बड़ा गौरव रहा है। दासत्व भारत में हीनता के भाव से कभी भी ग्रस्त नहीं था। इस सन्दर्भ में उन्होंने—

"दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्य क्लिष्टकर्मणः" तथा 'दासानुदासः' का उद्धरण दिया। आपने मानवाधिकारों की व्याख्या करते हुए बताया कि प्रत्येक मनुष्य के लिये भोजन, वस्त्र, आवास आदि सुखों की व्यवस्था आवश्यक है। इसमें जाति, लिङ्ग आदि का भेद बाधक न हो, इस परिस्थिति में ही हम इन अधिकारों का उपभोग

करने में पूर्ण सक्षम हो सकते हैं। हमारे देश में मानवाधिकारों की व्यवस्था रही है। पर भारतीय शास्त्रों के अनुसार वास्तविक स्वातन्त्र्य कर्त्तृत्व में ही निहित होता है। कर्त्ता वही होता है जो ज्ञानी होता है।

प्राचीन राजशास्त्र अर्थशास्त्र विभाग के प्राध्यापक श्री रमागोविन्द पाण्डेय ने मानवाधिकारों की घोषणा के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्यों के लिए आवश्यक हैं। पशुओं तक में अधिकार की प्रबल भावना होती है।

श्री पाण्डेय ने अधिकारों का वर्गीकरण करते हुए यह स्पष्ट किया कि नैसर्गिक, वैधानिक, सामाजिक तथा परम्परागत अधिकारों का उल्लेख भारतीय शास्त्रों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वस्तुतः मानवाधिकारों में जब तक उपयोगिता, सामाजिक मान्यता, समानता, तथा कर्त्तव्य की भावना नहीं आती, तब तक उन्हें समुचित महत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता।

अन्त में यूनेस्को क्लब के संचालक तथा राजशास्त्र विभागाध्यक्ष श्री शम्भुनाथ मिश्र ने कहा कि मानवाधिकारों का प्रारूप राष्ट्रसंघ द्वारा नियुक्त उस आयोग ने बनाया है, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती रूज़वेल्ट थीं। १० दिसम्बर, सन् १९४८ को महासभा की तृतीय बैठक में सर्वसम्मति से इसे पारित किया गया, और उसी दिन इन अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी।

श्री मिश्र ने कहा कि इन अधिकारों के सिद्धान्त एवं व्यवहार में महान् अन्तर है। दक्षिण अफ्रीका, स्वेज, मध्यपूर्व वियतनाम तथा हिन्द चीन में इन अधिकारों का घोर उल्लङ्घन हुआ है। अमेरिका में भी हब्शियों तथा भारतीयों के साथ न्याययुक्त व्यवहार नहीं किया जाता। भारतीय दासत्व विनम्रतापूर्ण है। भारत में अर्धदास प्रथा थी, ऐसा कहा जा सकता है।

अन्त में श्री शम्भुनाथ मिश्र ने धन्यवाद प्रदान किया।

२६ जनवरी, १९७९

गणतन्त्र दिवस समारोह

गणतन्त्र दिवस भारत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्व है। स्वतन्त्रता के पूर्व २६ जनवरी को ही देश के लिये पूर्ण-स्वराज्य का संकल्प घोषित किया गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर सन् १९५० में इसी दिन भारतीय संविधान कार्यशील हुआ। तब से प्रति वर्ष २६ जनवरी गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाया जा रहा है।

इस वर्ष भी गणतन्त्र दिवस बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। आरम्भ में कुलपति ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया। आपने राज्यपाल श्री ग० दे० तपासे और मुख्यमन्त्री के सन्देशों को पढ़ कर सुनाया तथा विश्वविद्यालयीय अध्यापकों, कर्मचारियों तथा छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा—

ऐसे अवसरों पर समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के सन्देश राष्ट्र एवं समाज के उद्बोधन के लिये ही प्रस्तुत होते हैं। आज हम गणतन्त्र दिवस की २९ वीं वर्ष गाँठ मना रहे हैं। अब गणतन्त्र की रक्षा, इसके सर्वतोमुख विकास एवं उत्थान के प्रति अनवरत सचेष्ट रहने तथा इसे आगे बढ़ाते रहने की दिशा में उन्मुख होने की आवश्यकता है। भारत की प्राचीन संस्कृति अनादिकाल से अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित होती आ रही है और गङ्गा की चिरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा के समान यह कभी भी नहीं रुकी। इसके मार्ग में आने वाले अनेक विघ्न एवं कण्टकों को अपने वेग से दूर करते हुए यह सदा ही गतिशील रही है और इसे अपने लक्ष्य की ओर से कोई विमुख नहीं कर पाया। प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है और हमें सचेष्ट रहना है कि विभिन्न प्रकार के मतभेदों के बीच सदा से विद्यमान रहने वाली भारतीय एकता और समग्रता कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से लेकर नागालैण्ड तक के विशाल भू-भाग तक अपने प्राचीन स्वरूप में प्रतिष्ठित रह सके।

कुलपति ने आगे बताया कि इस वर्ष विश्वविद्यालय ने गणतन्त्र दिवस के सन्दर्भ में अपनी सम्बद्ध पाठशालाओं के लिये संस्कृत भाषा में निबद्ध कुलपति के सन्देश को परम्परागत संस्कृत के छात्रों को प्रेरित करने हेतु प्रेषित किया है। आपने उक्त सन्देश को विश्वविद्यालय परिवार के सम्मुख भी पढ़कर सुनाया। (देखें, 'संस्कृत के अभ्युदय के सम्बन्ध में नये प्रयास' स्तम्भ में)।

इस अवसर पर कुलपति ने यह भी निर्देश दिया कि विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय कैडेट कोर द्वारा क्रीड़ा प्राङ्गण में आक्रमण तथा रक्षा सम्बन्धी प्रदर्शन आयोजित है और श्रोताओं को वहाँ चलकर इसे देखने के लिये उन्होंने निवेदित किया।

राष्ट्रीय कैडेट कोर द्वारा आयोजित कार्यक्रम

गणतन्त्र दिवस के शुभ पर्व पर विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय कैडेट कोर के छात्रों तथा अधिकारियों द्वारा एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित था। इस कार्यक्रम में कुलपति एवं अधिकारियों तथा उपस्थित श्रोताओं एवं दर्शकों का स्वागत करते हुए विश्वविद्यालय के कैप्टन देवनारायण मिश्र ने राष्ट्रीय कैडेट कोर के उद्देश्य तथा कार्यक्रमों को स्पष्ट करते हुए कहा कि इसकी स्थापना

छात्रों में अनुशासन तथा राष्ट्र प्रेम एवं मातृभूमि की रक्षा की भावना को प्रेरित करने हेतु की गयी है। साथ ही इससे सम्बन्धित छात्रों को दुस्तर कार्यों को करने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। सेना किस प्रकार से मातृभूमि की सुरक्षा में संलग्न रहते हुए आत्मोत्सर्ग करती है, इस सन्दर्भ में एक छोटा सा कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है, जो सेना के सबसे छोटे दस्ते, जो सेक्शन कहा जाता हैं, के आक्रमण तथा बचाव के रूप में है। उस मुख्य कार्यक्रम के पूर्व इसी से सम्बन्धित अन्य छोटे कार्यक्रम भी हैं, जो प्रस्तुत होने जा रहे हैं।

सर्वप्रथम एन० सी० सी० के कैडेट श्री दिनेश कुमार उपाध्याय ने मातृभूमि वन्दना स्वरूप "वन्दे जगदम्बाम्" पद्य संगीत-बद्ध रूप से प्रस्तुत किया। मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले सैनिक जब रणभूमि की ओर प्रस्थान करते हैं तो उनकी मानसिक स्थिति क्या रहती है, इसे व्यक्त करते हुए एन० सी० सी० के कैडेट श्री सुरेशचन्द्र शुक्ल ने प्रयाण गीत प्रस्तुत किया, जिसकी पंक्तियाँ थी :—"साथी घर जाकर मत कहना संकेतों से बतला देना।" यह गीत मातृभूमि की रक्षा से सम्बन्धित संवेदनाओं को स्पष्ट करते हुए एक सैनिक की उस समय की मानसिक परिस्थिति को द्योतित करने वाला था।

इसके बाद सेक्शन आक्रमण तथा इस आक्रमण से रक्षा करने का कार्यक्रम प्रस्तुत हुआ। इसका संक्षिप्त परिचय देते हुए श्री मिश्र द्वारा बताया गया कि सेना की सबसे छोटी इकाई सेक्शन होती है और राष्ट्र की रक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य इन्हीं सेक्शनों के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता है। आज हम जो कार्यक्रम प्रस्तुत करने जा रहे हैं, वह इस छोटी इकाई द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये गये आक्रमण तथा दूसरे सेक्शन द्वारा इस आक्रमण से अपनी रक्षा करने का दृश्य प्रस्तुत करता है। हम यों कल्पना कर लें कि आक्रमणकारी सेक्शन एक ऐसे राज्य की सेना का है, जिसके कुछ भाग को दूसरे राज्य ने बलात् हड़प रखा है और उसे मुक्त करने हेतु उस राज्य की सेना का यह सेक्शन भूमि हड़पने वाले राज्य के सेक्शन पर आक्रमण करता है। आक्रमण करने के लिये लैस सेक्शन को दर्शकों के बीच बुलवाकर उन्होंने सबको अपना परिचय देने तथा उसके पास क्या शस्त्र अथवा अन्य हथियार हैं, इसे व्यक्त करने का निर्देश दिया। सेक्शन में मुख्य हथियार :—स्टेनगन, राइफल तथा लाइट मशीनगन एवं संगीन होते हैं और सेक्शन के प्रत्येक सदस्य ने, जिसके पास जो शस्त्र थे, उनका परिचय दिया। बाद में सेक्शन कमाण्डर ने अपने अधीन सेक्शन के प्रत्येक सदस्य का निरीक्षण किया और यह देखा कि उनके पास कोई ऐसी वस्तु तो नहीं विद्यमान है, जो उन्हें उनके उद्देश्यों से विमुख कर सकती है, अथवा कोई ऐसी आवश्यक चीज, जो उनके पास रहनी चाहिए, छूट तो नहीं गयी है? इस सन्दर्भ में विद्यमान भूलों का परिहार करते हुए सेक्शन को आक्रमण के कार्य में जाने का आदेश सेक्शन कमाण्डर ने दिया और आक्रमण करने हेतु निर्धारित स्थान से सेक्शन ने अपना कार्य आरम्भ किया। इसका प्रधान लक्ष्य था भूमि हड़पने वाले राज्य द्वारा अनधिकृत भूमि पर उसके द्वारा नियुक्त सेक्शन का मूलोच्छेद करके उस पर कब्जा करना। अतः आक्रमणकारी सेक्शन अपने कार्य में अग्रसर हुई। सर्वप्रथम दुश्मन के सेक्शन की टोह लेते हुए इस सेक्शन के दो स्काउट क्रमशः पोजीशन लेते हुए आगे बढ़े। दूसरे राज्य की सेक्शन ने जब इसे देखा तो उनने उन्हें मारने हेतु फायर किया। स्काउटों ने पोजीशन लिये हुए ही संकेतों द्वारा सेक्शन कमाण्डर को इसकी सूचना दी और सेक्शन कमाण्डर के निर्देश पर सेक्शन का राइफल ग्रूप एक तरफ तथा लाईट मशीनगन ग्रूप दूसरी तरफ हो गया। सेक्शन कमाण्डर ने इस कार्य हेतु अपना लक्ष्य बताते हुए फायर कण्ट्रोल आर्डर दिया कि सेक्शन का राइफल ग्रूप आक्रमण करने हेतु दायें बाजू से पोजीशन लेते हुए आगे बढ़ेगा और उसके इस कार्य में एल० एम० जी० ग्रूप ऊपर से कवर फायर देते हुए सहायता करेगा। आक्रमण में कवर फायर दुश्मन का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करने के लिये किया जाता है। इस कार्य को करने वाला ग्रूप दूरी से सीधे दुश्मन की पोजीशन पर फायर करता है और वास्तविक आक्रमणकारी ग्रूप इस फायर की आड़ में दायीं ओर अथवा बायीं ओर से अलग रहते हुए दुश्मन को समाप्त करने हेतु आगे बढ़ता रहता है। इस विधि से एल० एम० जी० ग्रूप सामने से आटोमेटिक कवर फायर देता रहा और सेक्शन के बाकी लोग सेक्शन कमाण्डर के नेतृत्व में अपने उद्देश्य की ओर बढ़ते रहे।

दुश्मन ने अपनी रक्षा पंक्ति को छिपाने के उद्देश्य से स्मोक बम (धूँयें के बम) का प्रयोग किया, जिससे सफेद तथा मटमैले रंग के धूयें का गहरा पर्दा उस रक्षा पंक्ति पर छा गया, जिससे वे अदृश्य हो गये। फिर भी आक्रमणकारी सेक्शन अपने उद्देश्यपूर्ति हेतु आगे बढ़ती रही और पहले से तय किये हुए स्थल पर पहुँचकर रक्षा करने वाली सेक्शन पर अन्तिम आक्रमण करने के लिए हर-हरमहादेव का नारा लगाते हुए वे उनके ऊपर दौड़ पड़े। यह बड़ा ही रोमाञ्चकारी दृश्य था। अपने प्राणों की आहुति देने वाला सैनिक शत्रु की ओर से आती हुई गोलियों से अपने भुने जाने की परवाह न करते हुए अन्तिम विजय के लिये अपनी राइफल पर संगीन लगाते हुए जब दौड़ पड़ता है तो यह दृश्य कल्पनातीत होता है। इसे देखकर इसी सेक्शन का

एल० एम० जी० ग्रुप भी इसकी सहायता हेतु पीछे ली हुई अपनी पोजीशन से तेजी से आगे बढ़ा और उन्होंने दुश्मनों का सर्वथा विनाश कर दिया।

इस दृश्य में आक्रमण करने वाली सेक्शन के सेक्शन कमाण्डर का जब यह आदेश होता था कि नम्बर वन सेक्शन सामने देखो, दुश्मन, दुश्मन को जान से मार डालेंगे, आखिरी हुक्म फायर होगा, हुक्म का इन्तजार करो तो रोयें खड़े हो जाते थे। इस प्रकार सेना की सबसे छोटी इकाई सेक्शन के आक्रमण का यह दृश्य ४।१०० एन० सी० सी० बटालियन द्वारा प्रस्तुत हुआ।

अपने उद्देश्य में सफल होने पर आक्रमणकारी सेक्शन ने वापस आकर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की कि दुश्मन का सफाया किया जा चुका है और आक्रमण का यह दृश्य अत्यन्त रोमाञ्चकारी वातावरण में समाप्त हुआ।

इस कार्यक्रम के पश्चात् कुलपति ने एन० सी० सी० के वर्ष १९७७ तथा १९७८ के विभिन्न दृष्टियों से उत्तम निम्नाङ्कित छात्रों को प्रमाण-पत्र वितरित किया :—

(१) श्री राजेन्द्र कुमार द्विवेदी, (२) श्री राजेन्द्र प्रसाद पाठक, (३) श्री भोलानाथ पाण्डेय, (४) श्री मोहन कुमार उपाध्याय, (५) श्री राजेश्वर शर्मा, (६) श्री गङ्गेश्वर कात्यायन, (७) श्री भारद्वाज पाण्डेय, (८) श्री रवीन्द्रनाथ दुबे।

इसी क्रम में १९७९ वर्षीय सर्वोत्तम कैडेट पुरस्कार सीनियर अन्डर आफिसर श्री श्रीकान्त मिश्र को कुलपति द्वारा प्रदान किया गया।

एन० सी० सी० के छात्रों को सम्बोधित करते हुए कुलपति ने कहा—"मातृभूमि की रक्षा राष्ट्र में सर्वोपरि है। कहा भी गया है 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते'—अर्थात् शस्त्र द्वारा राष्ट्र की रक्षा सम्पन्न होने पर ही शास्त्रचिन्तन आदि अन्य राष्ट्रोन्नायक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। आज गणतन्त्र दिवस के शुभ पर्व पर हमें राष्ट्र रक्षा का संकल्प लेना है और इसके लिये अपने प्राणों की आहुति देने की प्रतिज्ञा करनी है"।

आपने आगे कहा कि केवल पुस्तकीय शिक्षा मात्र से किसी भी राष्ट्र का कल्याण सम्भव नहीं है। जब तक इस राष्ट्र के लोग अनुशासनबद्ध रहते हुए इसकी रक्षा एवं विकास का व्रत नहीं लेंगे तब तक हमारे देश का उत्थान सम्भव नहीं है।

इसी सन्दर्भ में उन्होंने आगे कहा कि हमारा देश अत्यन्त विशाल है और यहां अनेक धर्म, सम्प्रदाय तथा उपासना पद्धतियां प्रचलित हैं। ऐसा होते हुए भी भारतीय समाज की एक समग्र दृष्टि है, जो अपने में अनोखी एवं अनूठी है। इसी के कारण ये सभी भेद स्वयं ही तिरोहित हो जाते हैं और हमारे सामने यही चित्र उपस्थित होता है कि हम सभी केवल भारतीय हैं और भारतमाता की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। प्राचीन संस्कृतरूपी प्रवाह भी देश की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग हेतु हमें प्रेरित करता है और देश की अखण्डता तथा एकता का सन्देश देता है।

अन्त में एन० सी० सी० के कैप्टन श्री देवनारायण मिश्र ने कुलपति एवं दर्शकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा कि हम अपने कुलपति के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इस नये सत्र में हमें अनेक नवीन कार्यक्रमों को प्रदान करते हुए विश्वविद्यालय को विकासोन्मुख करने का अथक प्रयत्न किया है। उनसे अध्ययन, अध्यापन तथा छात्रों के उत्साहवर्द्धन हेतु किसी भी नवीन कार्यक्रम के लिए सर्वदा ही प्रेरणा प्राप्त होती है और उनकी यह प्रेरणा इस विश्वविद्यालय में एन०सी०सी० के प्रशिक्षण एवं अभ्युदय को भी उन्नति-पथ की ओर अग्रसर करेगी, इसका हमें दृढ़ विश्वास है। साथ ही दर्शकों ने शान्तिपूर्वक दत्तचित्त होकर इस कार्यक्रम के देखने में जो अभूतपूर्व उत्सुकता प्रदर्शित की है उसके लिए हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं और उन्हें धन्यवाद प्रदान करते हैं। इस प्रकार यह कार्यक्रम गणतन्त्र दिवस के शुभ अवसर पर नवीन प्रेरणा के साथ समाप्त हुआ।

विभागीय समारोह

१७ दिसम्बर, १९७८

(क) पुराणेतिहास विभाग

पुरातत्त्व संग्रहालय विज्ञान की स्नातकोत्तर कक्षाओं का शुभारम्भ

संस्कृत विश्वविद्यालय में पुरातत्त्व संग्रहालय विज्ञान विषय का अध्ययन एवं अध्यापन १७ दिसम्बर ७८ से विधिवत् प्रारम्भ कर दिया गया। कुलपति प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में उद्घाटन भाषण करते हुए अन्ताराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् श्रीकृष्ण देव जी ने पुरातत्त्व विषय के अध्ययन एवं अध्यापन योजना पर हर्ष प्रकट किया और उन्होंने इसकी सफलता की शुभ कामना की। उन्होंने आशा प्रकट की कि संस्कृत के मेधावी छात्र पुरातत्त्व के क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसन्धान में विशेष रूप से सफल सिद्ध होंगे। प्रोफेसर शुक्ल ने पुरातत्त्व योजना को सफल बनाने में सभी सम्भव सहायता का आश्वासन दिया। वर्तमान स्थिति में इस विज्ञान का अध्ययन काल एक वर्ष रखा गया है। कुलपति ने इस अवधि को तीन वर्ष करने का विचार प्रकट किया, जिससे संस्कृत के विद्यार्थी इस तकनीकी विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन कर सकें। प्रोफेसर जगन्नाथ उपाध्याय ने पुरातत्त्व विषय के अध्ययन-अध्यापन एवं इस विज्ञान के प्रसार पर अधिक बल देते हुए कहा कि प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास की जानकारी करने में पुरातत्त्व एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है और विशेषकर संस्कृत विश्वविद्यालय में इसकी और भी आवश्यकता है।

व्याख्यान एवं चर्चाएँ

पुरातत्त्व सम्बन्धी विषयों पर बाहर से विद्वानों को आमन्त्रित किया गया, जिससे विद्यार्थियों को विशेष लाभ हो सके। इसका विवरण प्रस्तुत है :—

इतिहास सृजन में योगदान

डॉ० दीनबन्धु पाण्डेय, प्राध्यापक, कला विभाग (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) का व्याख्यान "पुरातत्त्व का इतिहास-सृजन में योगदान" विषय पर पुरातत्त्व संग्रहालय में आयोजित किया गया। पुरातत्त्व विज्ञान के महत्त्व को समझने में इसके समस्त विद्यार्थियों को इससे लाभ हुआ।

प्राचीन भारतीय इतिहास का मूल स्रोत

श्री कृष्णकान्त त्रिवेदी, एम० ए०, शोध अधिकारी, मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा, का व्याख्यान "प्राचीन भारतीय इतिहास का मूल स्रोत—विशेषकर अभिलेख" विषय पर पुरातत्त्व संग्रहालय में आयोजित किया गया। विद्यार्थियों को प्राचीन अभिलेखों को जानने में एवं उनके महत्त्व पर विशेष जानकारी प्राप्त हुई।

पाश्चात्य देशों में भारतीय शास्त्रों का अध्ययन

डा० अवध किशोर नारायण, प्रोफेसर, विसकौसिन विश्वविद्यालय, अमेरिका, को पुरातत्त्व संग्रहालय में विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया। कार्यक्रम का संचालन बौद्ध दर्शन विभागाध्यक्ष रामशङ्कर त्रिपाठी ने किया। डा० नारायण ने "पाश्चात्य देशों में प्राचीन भारतीय शास्त्रों का अध्ययन एवं अध्यापन" विषय पर विस्तृत रूप से चर्चा की। इस व्याख्यान से सभी लोगों को विशेषकर विद्यार्थियों को विश्व के पैमाने पर भारतीय शास्त्रों के अध्ययन एवं अध्यापन की जानकारी मिली।

इसके साथ ही केन्द्रीय शासित **हिस्टोरिकल रेकार्ड कमीशन** को इस विश्वविद्यालय द्वारा गाजीपुर के प्राचीन स्थल मसौन से प्राप्त उपलब्धियों के विषय में विशेष जानकारी दी गयी। ये सूचनाएं गंगाघाटी की प्राचीन सभ्यताओं से संबन्धित हैं।

संग्रहालयों के लिये अपनी निजी पुस्तकालय का होना अनिवार्य है, विशेषकर ऐसे संग्रहालयों को जो पुरातत्त्व सम्बन्धी उत्खनन, सर्वेक्षण एवं अध्ययन-अध्यापन के कार्य कर रहे हों। विश्वविद्यालय की ओर से इस पुरातत्त्व संग्रहालय को एक अपना पुस्तकालय बनाने के लिये सम्भव आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव है।

पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्राचीन स्थल मसौन का उत्खनन प्रतिवेदन प्रकाशनार्थ तैयार है। आर्थिक अनुदान के निमित्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से विश्वविद्यालय की ओर से अनुरोध किया गया है। आयोग ने प्रतिवेदन की प्रति विचारार्थ माँगी है, जो भेजी जा रही है।

प्राचीन मृण्मय खिलौनों का पुरातत्त्व से सम्बन्ध है। इसी दृष्टि से पुरातत्त्व संग्रहालय में चित्र कक्षा और मृण्मय खिलौने का कक्ष विशेष रूप से बनाया जा रहा है। आधुनिक सुविधाओं से पूर्ण विशेष प्रकार की भित्ति प्रदर्शन मञ्जूषाएँ बनायी जा रही हैं। ये दोनों कक्ष शीघ्र ही तैयार हो जायेंगे।

१८ जनवरी, १९७९

(ख) बौद्ध दर्शन विभाग

वैभाषिक दर्शन में प्रज्ञा और दृष्टि

१८ जनवरी, गुरुवार को अपराह्न ३ बजे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के श्रमणविद्या संकाय के बौद्धकक्ष

हाल में कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, अमेरिका के बौद्ध-अध्ययन-विभाग के प्रोफेसर, भारतीय विद्वान्, डा० पद्मनाभ जैनी का 'वैभाषिक दर्शन में प्रज्ञा और दृष्टि' विषय पर विद्वत्तापूर्ण एवं सारगर्भित भाषण हुआ। सभा में प्रायः सभी दर्शन-विभागों के विशिष्ट विद्वान्, अनुसन्धाता, देशी और विदेशी छात्र पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे।

विद्वान् वक्ता ने विषय को उपस्थित करते हुए कहा कि वैभाषिक दर्शन के अनुसार प्रज्ञा विद्या का पर्याय है। अविद्या न तो विद्या का अभाव है और न तो कुत्सित विद्या या क्लिष्ट विद्या ही अविद्या है, अपितु विद्याविरोध एक स्वतन्त्र चित्तधर्म अविद्या है, जैसे कि कुमित्र और अनृत मित्र और सत्य से भिन्न वस्तुभूत पदार्थ होते हैं। क्लिष्ट प्रज्ञा इसलिए अविद्या नहीं है, क्योंकि उसे (क्लिष्ट प्रज्ञा को) वैभाषिक अभिधर्म शास्त्रों में दृष्टि कहा गया है और यह भी कहा गया है कि वह दृष्टि अविद्या से सम्प्रयुक्त होती है। यदि अविद्या भी प्रज्ञास्वभाव होगी, तो दो प्रज्ञा द्रव्यों का सम्प्रयोग मानना होगा, जो अभिधर्म के नियमों के अनुसार असमीचीन है।

स्थविरवादी बौद्ध दर्शन की चर्चा करते हुए डा० जैनी ने कहा कि पालि-अभिधर्म के अनुसार दृष्टि प्रज्ञास्वभाव नहीं है, जैसा कि वैभाषिक दर्शन में माना जाता है। पालि-अभिधर्म में दृष्टि और प्रज्ञा दोनों स्वतन्त्र चित्तधर्म हैं। दृष्टि का अर्थ पाँच मिथ्या दृष्टियाँ है, जैसे—१. सत्यकायदृष्टि, जो पञ्च स्कन्धों से भिन्न नित्य, कूटस्थ आत्मा के अस्तित्व में अभिनिवेश करती है। २. अन्तर्ग्राहदृष्टि, जो शाश्वत या उच्छेद इन दो अन्तों (छोरों) में से किसी एक में पतित होती है। ३. मिथ्यादृष्टि, जो हेतु-फलवाद कर्म-कर्मफल आदि का अपवाद करती है। ४. दृष्टिपरामर्श, जो पञ्च स्कन्धों को ही उत्तम, श्रेष्ठ एवं निर्मल ग्रहण करने वाली दृष्टि है। ५. शीलव्रत-परामर्श—विभिन्न प्रकार के व्रत, उपवास, स्नान, पञ्चाग्नि सेवन आदि से क्लेशों से विमुक्ति या शुद्धि मानना या उन्हें मोक्ष प्राप्ति का साधन समझना शीलव्रतपरामर्श है। ये पाँच प्रकार की मिथ्या दृष्टियाँ दृष्टि हैं। प्रज्ञा इस (दृष्टि) से भिन्न सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि भी लौकिक सास्रव दृष्टि तथा लोकोत्तर अनास्रव दृष्टि के भेद से दो प्रकार की है। पृथग्जनों का सम्यग् ज्ञान लौकिक सम्यग् दृष्टि तथा आर्य पुद्गलों का अनास्रव ज्ञान लोकोत्तर सम्यग् दृष्टि है। इस तरह हम देखते हैं कि वैभाषिक दर्शन के अनुसार प्रज्ञा और दृष्टि एकस्वभाव हैं। क्लिष्ट प्रज्ञा मिथ्या दृष्टि तथा सम्यक् प्रज्ञा सम्यग् दृष्टि कहलाती है। स्थविरवादी दर्शन के अनुसार दृष्टि और प्रज्ञा दो भिन्नस्वभाव धर्म हैं। विद्या और अविद्या ये दोनों दर्शनों के अनुसार स्वतन्त्र और भिन्न-भिन्न धर्म हैं।

दृष्टि शब्द का निर्वचन करते हुए डा० जैनी ने कहा कि दृष्टि वह ज्ञान है, जिसमें निश्चय करने का गुण विद्यमान होता है। निश्चय करना हमेशा विकल्पों का काम होता है। ऐसी स्थिति में सम्यग् दृष्टि भी सविकल्पिका प्रज्ञा सिद्ध होती है। अतः जिस प्रकार मिथ्या दृष्टि प्रहेय होती है, इसी प्रकार सम्यग् दृष्टि भी एक अवस्था के बाद त्याज्य हो जाती है। इस तरह वैभाषिक दर्शन के अनुसार मिथ्या और सम्यक् इन दोनों दृष्टियों से ऊपर जो विशुद्ध अमला प्रज्ञा होती है, वही साध्य होती है, जो अर्हत् पुद्गलों का क्षयज्ञान और अनुत्पादज्ञान होती है। जब कि स्थविर-वादी बौद्ध सम्यक् दृष्टि को ही प्रज्ञा कहते हैं। इस सम्यग् दृष्टि से श्रेष्ठ प्रज्ञा उनके दर्शन में ज्ञात या मान्य नहीं है।

डा० जैनी ने कहा कि मेरे इस विवेचन का उद्देश्य महायान में, जहाँ प्रज्ञा का चरम विकास दिखलाया गया है और जहाँ प्रज्ञा प्रज्ञापारमिता या अद्वय बुद्धज्ञान का रूप धारण कर लेती है, क्रमिक विकास दिखलाना है। वैभाषिक दर्शन ने प्रारम्भिक स्थविरवादी बौद्ध दर्शन की अपेक्षा इस दिशा को एक कदम आगे बढ़ाया है, जब कि उसने सम्यग् दृष्टि में भी विकल्पात्मकता होने के कारण प्रज्ञा को उस (सम्यग् दृष्टि) से श्रेष्ठ निरूपित किया, जब कि स्थविरवादियों ने सम्यक् दृष्टि को ही प्रज्ञा कहा।

महायान ने समस्त दृष्टियों को विकल्पात्मक और हेय घोषित किया तथा समस्त दृष्टियों के प्रहाण और उन (दृष्टियों) से निर्याण को प्रज्ञा का असली स्वरूप निरूपित किया। उन्होंने पुद्गल-नैरात्म्य को जानने वाली प्रज्ञा को ही प्रज्ञा का अन्तिम स्वरूप नहीं कहा, जैसा कि स्थविरवादी और वैभाषिक कहा करते थे; अपितु धर्मनैरात्म्य को भी जो प्रज्ञा जानती है, वही—नैरात्म्यद्वय की साक्षात्कारिणी प्रज्ञा ही—वास्तविक प्रज्ञा है। यद्यपि इस प्रज्ञा का बीज भगवान् बुद्ध के उस सूत्र में निहित था, जिसमें उन्होंने कहा था—"भिक्षुओं, समस्त धर्म कोलोपम (बजड़े के समान) हैं, संसार-सागर से पार उतरने के लिये हैं, पकड़ कर बैठने के लिये या सिर पर ढोने के लिए नहीं"। यह सूत्र स्थविरवादी और वैभाषिक दोनों के त्रिपिटकों में मौजूद है। इसमें धर्मात्मदृष्टि का त्याग स्पष्ट संकेतित है, किन्तु महायानियों ने जिस प्रकार अपने दर्शन में उसका विकास किया, स्थविरवादी और वैभाषिक उसके अन्तःस्थ स्वारस्य को उतना हृदयङ्गम नहीं कर सके। फिर भी स्थविरवादियों की अपेक्षा वैभाषिकों का दर्शन महायान की दिशा में विकास का अगला कदम कहा जा सकता है।

डा० पद्मनाभ जैनी ने अपने लिखित निबन्ध का, जो अंग्रेजी में था, हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत किया। निबन्ध की विशेषता थी, उसमें उद्धरणों की प्रचुरता। इससे उनके कथन की प्रामाणिकता प्रदर्शित हो रही थी। विद्वानों ने उसकी सराहना की तथा अनुसन्धाताओं और छात्रों को उससे विशेष लाभ हुआ।

प्रारम्भ में श्रमणविद्या संकाय के अध्यक्ष प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने डा० जैनी का परिचय दिया तथा अन्त में उन्होंने विद्वान् वक्ता और उपस्थित लोगों को धन्यवाद प्रदान किया।

संस्कृत के अभ्युदय के सम्बन्ध में नये प्रयास

(क) संस्कृत अकादमी द्वारा संस्कृत पण्डितों से सम्बद्ध किंवदन्तियों का संकलन

[उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के अध्यक्ष तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने देश के विद्वानों और संस्थाओं के पास एक परिपत्र प्रेषित किया है। परिपत्र में संस्कृत क्षेत्र के पण्डितों और विद्वानों के सम्बन्ध में किंवदन्तियाँ एकत्र करने का अनुरोध किया गया है। इन किंवदन्तियों से केवल संस्कृत के विद्वानों के सम्बन्ध में ही जानकारी प्राप्त नहीं होगी, बल्कि संस्कृत की विकास परम्परा पर भी प्रकाश पड़ेगा। परिपत्र निम्नाङ्कित है—]

भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अत्यन्त प्राचीन काल से संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा प्रचलित रही है और संस्कृत वाङ्मय की विविध शाखाओं के उच्चकोटि के विद्वान् विभिन्न प्रदेशों में तैयार होते रहे हैं। ऐसे विद्वानों में अनेक ऐसे हैं, जिनका संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेख हो चुका है, जिससे उनकी कृतियों और उनके सम्बन्ध में विभिन्न शैक्षिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु अनेक ऐसे विद्वान् भी हो चुके हैं, जो केवल किंवदन्तियों के माध्यम से जीवित हैं। इन किंवदन्तियों में उनकी वंशपरम्परा, उनकी शिक्षापद्धति, उनकी शिष्य-परम्परा और उनके वैदुष्य की रोचक एवं अर्थपूर्ण चर्चाएँ समाविष्ट हैं। यदि इन किंवदन्तियों का संकलन कर उनके प्रेषक विद्वानों का नामोल्लेख करते हुए ग्रन्थ के रूप में उनका प्रकाशन किया जा सके तो निश्चय ही उससे उन विद्वानों को ऐतिहासिक अस्तित्व प्राप्त होगा और उन किंवदन्तियों के द्वारा अनेक ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाश में आयेंगी, जिनसे पर्याप्त ज्ञान-संवर्धन होगा और विस्तृत शास्त्रीय सूचनाएँ प्राप्त होंगी तथा उनके समय की विचार-पद्धति एवं अध्ययन-अध्यापन का स्वरूप भी प्रकाश में आयेगा।

अतः उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी का विचार है कि इन किंवदन्तियों का शीघ्र संकलन किया जाय, क्योंकि इन किंवदन्तियों के ज्ञाता प्राचीन परम्परा के पण्डितों के धीरे-धीरे उठते जाने से थोड़े दिनों में उनकी प्राप्ति असाध्य हो जायगी। अतः इस कार्य को पूरी सावधानी, तत्परता और त्वरा से सम्पन्न करना आवश्यक है। एतदर्थ अकादमी के माध्यम से मिथिला, बंगाल, राजस्थान, कश्मीर, महाराष्ट्र, केरल, गुजरात, तामिलनाडु, कर्नाटक आदि के संस्कृत प्रतिष्ठानों और प्राचीन पण्डितों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ किया जा रहा है।

अध्यक्ष ने किंवदन्तियाँ निम्नाङ्कित पते पर भेजने का अनुरोध किया है—

१—श्री विश्वनाथ शर्मा, निदेशक, उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, १२५ रायल होटल, लखनऊ।

अथवा

२—श्री शालिग्राम यादव, वै० स० (कुलपति), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

३०, ३१ दिसम्बर, १९७८

(ख) प्रादेशिक संस्कृतविद्यालयाध्यापक समिति का अधिवेशन

प्रादेशिक संस्कृतविद्यालयाध्यापक समिति, उत्तर प्रदेश, का नवम-दशम महाधिवेशन ३० और ३१ दिसम्बर १९७८ को गोरखपुर में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे थे महन्त श्री अवैद्यनाथ एम० एल० ए०। सम्मेलन का शुभारम्भ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल ने किया। महाधिवेशन में उत्तर प्रदेश के ११ मण्डलों के विभिन्न जनपदों से लगभग ४०० प्रतिनिधि उपस्थित थे। महाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे गोरखपुर के पुराने रईस सेठ श्री रामलखन चन्द्र और स्वागतमन्त्री थे श्री हरिकेश बहादुर, संसद-सदस्य।

इस अवसर पर प्रो० शुक्ल ने कहा कि संस्कृत किसी वर्ग, जाति या सम्प्रदाय की भाषा नहीं है। सच तो यह है कि वह किसी राष्ट्रविशेष की भी भाषा नहीं है। वह मानव की आदिम भाषा है। इस समय उपलब्ध प्राचीनतम वाङ्मय वेद संस्कृतभाषा में ही हैं। संसार को भारत से चरित्रशिक्षा ग्रहण करने का महाराज मनु का जो आदेश है, वह इसी आदिम वाङ्मय वेद की ओर संकेत करता है। संस्कृत को जो 'देव भाषा' कहा जाता है, उसका 'देवों के समाज में बोली जाने वाली भाषा' इतना ही अर्थ नहीं, प्रत्युत वह अनेकानेक दिव्य गुणों से सम्पन्न

है यह भी है। आज कहा जाता है कि विज्ञान और कला इस युग की देन हैं। किन्तु भारत का प्राचीन वाङ्मय देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि आज की शोधों के मूल स्रोत संस्कृत भाषा में ग्रथित भारत के वेद, शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, राजशास्त्र, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र आदि वाङ्मय हैं। भारत की अमूल्य और बेजोड़ निधि का पूरा पता पाने के लिये संस्कृत भाषा की शिक्षा और संस्कृत वाङ्मय का आलोड़न नितान्त आवश्यक है। यदि हम भारतीय इस ओर उन्मुख होते हैं तो विश्व को भारत की कुछ मौलिक देन बता सकेंगे। इस दृष्टि से इस संस्कृत भाषा और वाङ्मय को सुरक्षित रखने वाले विद्वान्, विद्यालय और उनका संगठन निश्चय ही देश की महान् सम्पत्ति हैं। इसका संरक्षण प्रदेश, भारतीय जन और भारत राष्ट्र के संचालकों का पावन कर्तव्य है। भारत और प्रदेश के सजग प्रहरी संस्कृत के विद्वान् और अध्यापकों को अपना सर्वविध सम्बल देकर स्वतन्त्र देश में इस प्राच्यविद्या को शत-शत शाख पल्लवित, पुष्पित और फलित करें।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए महन्त श्री अवैद्यनाथ ने कहा कि संसार का विश्वास है कि हर भारतीय संस्कृत और दर्शन का वेत्ता है। लेकिन हम तो पाश्चात्य भौतिकता का अनुसरण करते हुए पथभ्रष्ट हो गये हैं। 'संस्कृत केवल पण्डितों की भाषा है, यहाँ केवल ज्योतिष या कर्मकाण्ड ही भरा है, वैज्ञानिकता नाममात्र की नहीं, ऐसा कहने और मानने वाले पाश्चात्यों का अन्धानुकरण कर रहे भारतीयों का उत्थान तभी सम्भव है जब कि वे भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखते हुए शास्त्रप्रतिपादित विधियों का अनुसरण करेंगे। अतः शिक्षा क्षेत्र में संस्कृत भाषा का प्रवेश अनिवार्यतः अपेक्षित है, जिसमें भारतराष्ट्र की अमूल्य निधि सुरक्षित है।

आपने बताया कि ऋग्वेद में आर्यों के सामाजिक, वैज्ञानिक, गृह्य, धार्मिक आदि अनेक विषय भरे पड़े हैं। यजुर्वेद में मानवमात्र की उन्नति के लिये वर्णव्यवस्था के प्रतिपादन के साथ ही भौतिक विज्ञान, गणित विज्ञान, और अध्यात्मज्ञान प्रतिपादक अनेक श्रेयस् एवं प्रेयस् के साधन वर्णित हैं। सामवेद तो भारतीय संगीतशास्त्र की उद्गमस्थली ही है। अथर्ववेदमें प्रतिपादित आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक विषयों में आश्रमव्यवस्था, नृप और राजतन्त्र तथा आगमादि, यज्ञ व्यवस्था, चिकित्सा, गृहनिर्माण, कृषि, वाणिज्य आदि अनेक जनसाधारणोपयोगी कर्तव्य और ज्ञान संगृहीत हैं। उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों तथा लौकिक संस्कृत के काव्य नाटकादि ग्रन्थों में जीवनोपयोगी विविध विषय चर्चित हैं। भगवान् वेदव्यास की यह उक्ति सत्य है कि जो यहाँ है, वही अन्यत्र है और जो यहाँ नहीं, वह अन्यत्र कहीं सुलभ नहीं—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।'

आपने आगे कहा कि यदि आज भी शिक्षा पद्धति में संस्कृत का अनिवार्य प्रवेश कर दिया जाय तो अनेक समस्याओं का समाधान हो जायगा।

यद्यपि हमारे विद्वान् आज भी अपनी प्राच्यविद्या के संरक्षण में कटिबद्ध हैं, फिर भी जनसाधारण संस्कृत के अध्ययन में अपेक्षित उत्साह नहीं दिखलाता। इसका मुख्य कारण है—संस्कृत प्राच्यशिक्षा को अपेक्षित राज्याश्रय और राजकीय प्रोत्साहन का अभाव। शास्त्री और आचार्य कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों को भी वही वेतन दिया जाता है, जो माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों को दिया जाता है। तथ्य तो यह है कि संस्कृत विद्यालय तथा महाविद्यालयों के अध्यापकों को वे सारी सुविधाएँ भी आज सुलभ नहीं, जो माध्यमिक विद्यालयों को वर्षों से दी जा रही हैं। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों का इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए आपने अन्त में यह श्लोक सुनाया—

भारतस्योन्नतिः शान्तिर्भवेत् संस्कृतभाषया।
वदामि करमुद्धृत्य विदुषां सदसि स्थितः॥

विराट् संस्कृत सम्मेलन

इसकी अध्यक्षता श्री बदरीनाथ शुक्ल ने की। सम्मेलन का आरम्भ करते हुए उत्तर प्रदेश की संस्कृत पाठशालाओं के प्रधान निरीक्षक, श्री उमाशङ्कर मिश्र ने कहा कि संस्कृत भाषा और वाङ्मय की निरपेक्ष भाव से सेवा करने वाले हमारे प्राच्य विद्वान् देश के लिए गौरवास्पद हैं। हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। उन्होंने सामान्य जीवन की अनेक अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव की ओर भी ध्यान न देकर हमारी इस निधि को आज तक सुरक्षित रखा है। अवश्य ही आज का युग इस तरह असुविधाओं के बीच अपने कर्तव्य में दत्तचित्त रहने को प्रोत्सहित नहीं करता। यही कारण है कि इधर शासन ने उनके आर्थिकादि पक्षों के उन्नयन में कदम उठाया है और अनेक सुविधाएँ दी हैं। फिर भी वे पर्याप्त नहीं कही जा सकतीं। हमें विश्वास है कि हम अपने-अपने कर्तव्य में इसी प्रकार परिनिष्ठित रहें तो शासन भी अपेक्षित समस्त सुविधाएँ शीघ्र ही सुलभ कर देगा।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए प्रो० शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत की सारी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि समस्त विषयक निधि को बिना संस्कृत भाषा और साहित्य के गहन अध्ययन के प्राप्त नहीं किया जा सकता। आपने संस्कृत वाङ्मय का अनुसन्धान कर संस्कृत के रत्नों को उद्घाटित करने की आवश्यकता स्पष्ट की और अन्त में कहा कि संस्कृत के

द्वारा देश में राष्ट्रभाषा की समस्या का हल प्रस्तुत किया जा सकता है।

सम्मेलन में अनेक विद्वानों के संस्कृत में भाषण हुए। सभी ने एकमत से निर्णय किया कि शिक्षा पद्धति में प्रारम्भ से ही बालकों को संस्कृत भाषा से अनिवार्यतः परिचित कराया जाय। तदर्थ प्राथमिक कक्षा से उच्चतर माध्यमिक कक्षा तक संस्कृत अनिवार्य विषय कर दिया जाय।

खुले अधिवेशन में पारित प्रस्ताव निम्नाङ्कित हैं—

१. प्रादेशिक संस्कृतविद्यालयाध्यापक समिति का यह नवमदशम महाधिवेशन उत्तर प्रदेश सरकार से माँग करता है कि वह इसी सत्र में प्रदेश के समस्त संस्कृत विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के लिये लिपिक, परिचारक और पुस्तकालयाध्यक्षों के पद सृजित कर उनके लिये वेतन आयोग द्वारा संस्तुत नवीन वेतनमान का राज्यादेश निर्गत करे।

२. संस्कृत विद्यालयों के शिक्षक और गैरशिक्षक सभी कर्मचारियों के लिये इसी सत्र में लाभत्रयी योजना कार्यान्वित कर दी जाय।

३. संस्कृत विद्यालयों के लिये सेवा नियमावली सम्बन्धी अधिनियम को इसी सत्र में पारित किया जाय।

४. संस्कृतविद्यालयाध्यापकों को भी माध्यमिक विद्यालयों की तरह संशोधित वेतनमान (१ नवम्बर ७३ से लागू) और दस प्रतिशत आवास भत्ता (अप्रैल '७८ से) आदि समस्त सुविधाएँ तत्काल प्राप्त करायी जाँय।

५. संस्कृत विद्यालयों के लिये भी माध्यमिक विद्यालयों की तरह वेतन अध्यादेश के अन्तर्गत प्रतिमास समग्र वेतन वितरण की व्यवस्था लागू की जाय। इस व्यवस्था के अभाव में अध्यापकों को शासन द्वारा दी जाने वाली सहायता उन तक नहीं पहुँच पाती और बीच में ही विलीन हो जाती है।

६. संस्कृत शिक्षा को अद्यतनीय और संस्कृत के स्नातकों को अद्यस्नातकों की ही तरह सरकारी, गैरसरकारी, आदि सभी व्यवहार क्षेत्रों में पूर्ण योग्यता के साथ नियोजित होने की पूर्ण योग्यता हेतु संस्कृत शिक्षा में आधुनिक विषय अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, राजशास्त्र आदि की शिक्षा की सुव्यवस्था परमावश्यक है। अतः संस्कृत विद्यालयों में आधुनिक विषय के अध्यापकों को भी उचित वेतनमान दिया जाय; उनके लिए भी संस्कृत विषयों की तरह विभागाध्यक्ष (प्राध्यापक) का पद सर्जित किया जाय तथा हिन्दी का स्वतन्त्र अध्यापक रखा जाय। महाधिवेशन संस्कृत विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा के प्रोत्साहनार्थ शासन से साग्रह निवेदन करता है।

७. संस्कृत विद्यालयों में प्रचलित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयीय परीक्षाओं में मध्यमा तक की परीक्षा की सुचारु व्यवस्था, समय पर परीक्षा एवं परीक्षाफल के प्रकाशन एवं अध्ययनाध्यापन की सुचारु व्यवस्था हेतु यह महाधिवेशन शासन से तत्काल 'माध्यमिक संस्कृत शिक्षापरिषद्' के गठन की माँग करता है। क्योंकि मध्यमा तक के परीक्षार्थियों की संख्या अन्य परीक्षाओं की तुलना में उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही है।

८. महाधिवेशन की स्पष्ट शब्दों में माँग है कि समान कार्य के लिये समान वेतन के मूलभूत समाजवादी सिद्धान्त का समादर करते हुए शासन चार श्रेणियों में विभक्त संस्कृत विद्यालयों को भी क्रमशः स्नातकोत्तर, स्नातक, उच्चतर माध्यमिक और माध्यमिक विद्यालय मानकर उन्हें प्राप्त होने वाला वेतनमान इनके लिये भी घोषित करे।

९. महाधिवेशन पूरे प्रदेश के संस्कृत निरीक्षक पद को प्रथम श्रेणी का तथा ४१५ जिलों के क्षेत्रीय संस्कृत सहायक निरीक्षक के पद को द्वितीय श्रेणी के घोषित करने की प्रशासन से माँग करता है। जब प्रत्येक जिला विद्यालय निरीक्षक (माध्यमिक) का पद प्रथम श्रेणी का है तब पूरे प्रदेश और ४१५ जिलों के संस्कृत निरीक्षकों के पदों की यह स्थिति घोर असन्तोषप्रद है।

१०. अग्रिम बजट में अनिवार्यतः स्वतन्त्र संस्कृत निदेशालय की स्थापना करके कई वर्ष पूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री द्वारा प्रदेशों को प्रदत्त एतद्विषयक आदेश का परिपालन किया जाय। जब तक यह व्यवस्था नहीं हो पाती तब तक इसे उच्च शिक्षा के अन्तर्गत रखा जाय।

११. महाधिवेशन की माँग है कि त्रिभाषा योजना में संस्कृत को अनिवार्य कर दिया जाय तथा इसका अध्यापन कराने वालों की न्यूनतम योग्यता शास्त्री अनिवार्य कर दी जाय।

१२. महाधिवेशन का सुझाव है कि राज्य शासन द्वारा गठित 'संस्कृत अकादमी' को सांस्कृतिक विभाग से हटाकर शिक्षा विभाग के अन्तर्गत कर दिया जाय। इसमें रहने पर ही शासन द्वारा अपेक्षित संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार का लक्ष्य पूरा हो सकता है।

१३. महाधिवेशन शासन से माँग करता है कि पर्वतीय क्षेत्र के संस्कृत विद्यालयाध्यापकों को अति कष्टकर असुविधाओं पर ध्यान देते हुए (क) उनके विद्यालयों को भी वहाँ के माध्यमिक विद्यालयों की भाँति ही शासन अपने अधीन कर ले (ख) उन्हें भी माध्यमिक शिक्षकों की भाँति सीमान्त पर्वतीय भत्ता दिया जाय (ग) स्वतन्त्र गढ़वाल मण्डल (D.D.R.) की तरह गढ़वाल क्षेत्र

के लिये भी स्वतन्त्र गढ़वाल क्षेत्रीय संस्कृत सहायक निरीक्षक का पद सर्जित किया जाय।

१४. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय अपनी नवीन गठित होनेवाली कार्यसमिति में समिति का भी एक प्रतिनिधि रखे तथा अपनी परीक्षा, मान्यता, पाठ्यक्रम आदि सभी प्रमुख विषयों में प्रदेश के समस्त संस्कृत विद्यालयों का पूर्ण अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान करे। इसके साथ ही विश्वविद्यालय का कर्तव्य है कि वह योजनाबद्ध रूप में योग्यता के अनुसार जो महाविद्यालय स्नातक विद्यालय (डिग्री कालेज) होने के पात्र हों, उन्हें डिग्री कालेज का स्तर दिलाने में शासन से ज़ोरदार पहल करे।

(ग) भारतगणतन्त्रदिवसार्थ कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल का सन्देश

[सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का अखिल भारतीय स्वरूप और इससे सम्बद्ध शिक्षा संस्थाएँ पूरे देश में फैली हुई हैं। अपनी समस्त अङ्गभूत संस्थाओं के नाम कुलपति ने एक सन्देश प्रेषित किया है। सन्देश में संस्कृत शिक्षा के प्रति सजग होने और संस्कृत के समुन्नयन के लिए अनुरोध है। नीचे यह सन्देश अविकल रूप में प्रस्तुत है—स०]

भारतमस्मत्पूर्वजानामाद्याऽनवद्या जन्मभूमिः, या परमेश्वराधिष्ठितया प्रकृत्या सृष्टेः प्रारम्भकालादेव आत्मनः सर्वाङ्गीणाभिः समृद्धिभिः संवर्द्धमाना सम्भूष्यमाणा च विद्यते। गङ्गा-यमुना-कावेरीप्रभृतयः महानद्यः अस्याः कलेवरमात्मनः शिशिरपावनपाथः-प्रवाहैः निरन्तरमार्द्रयन्ति। हिम-विन्ध्य-नीलगिरिप्रभृतयो भूधरा अस्या महिमानं सततमुन्नयन्ति। सर्वऋतूनां साम्राज्यमत्रैव विजृम्भते। पुरा अत्रैव अनेके आचार्याः ऋषयो महर्षयो मुनयः साधकाः सिद्धाः कर्मयोगिनो भक्ताः समाजपरिष्कर्तारश्च प्रादुर्बभूवुः। रामकृष्णादिरूपेण भगवान् विश्वम्भरः अत्रैव अवततार। शिवाजी-लोकमान्यतिलक-महामनोमालवीय-महात्मगान्धिप्रभृतयः राष्ट्रनेतारः अत्रैव जन्म लेभिरे। मानवसभ्यतायाः आर्यायाः संस्कृतेः अध्यात्मप्रधानायाः जीवनदृष्टेश्च अत्रैव सर्वप्रथमं समुन्मेषोऽजायत। तस्या एव अस्याः भव्यतमायाः भारतभूमेः वयं पुत्राः। अस्याः स्वातन्त्र्यस्य अत्र उद्भूतानां विकसितानामुच्चविचाराणां च संरक्षण संवर्द्धनं च अस्माकं मुख्यो धर्मः। महाराजमनोरयं स्पष्ट उद्घोषो यत्

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

नायं मनोः वेदशास्त्राणामर्थवादः, किन्तु इयमेव वास्तवी स्थितिः। वसिष्ठ-याज्ञवल्क्य-वाल्मीकि-व्यास-भारद्वाजप्रभृतिभिः भारतनेतृभ्यः समये समये कृतो मार्गनिर्देशः तथ्यस्यास्य साक्षी।

वयं सर्वे संस्कृतवाङ्मयस्य अध्ययनाध्यापनानुसन्धानकार्येषु संलग्नाः वेदशास्त्राणामन्यसमग्रभारतीयविद्यानां च तदीयसन्देशस्य जीवने अवतारणेन विश्वस्मिन् तत्प्रकाशप्रसारणेन च उत्तरदायिनः प्रहरिणः। सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य तत्सम्बद्धानां सर्वेषां संस्कृतविद्यालयानां संस्कृतमहाविद्यालयानां च इदं कर्त्तव्यं यदस्माकं माध्यमेन वेदशास्त्राणां गभीरं पाण्डित्यं सरक्ष्य नवनवज्ञानानामुदभावनेन शिक्ष्यमाणेषु तरुणजनेषु अनुशासननिष्ठायाः चरित्रसमृद्धेः राष्ट्रहिताय आत्मत्यागभावनायाः सत्यादिगुणगणप्रतिष्ठायाः सम्पादनेन च भारतभूमेः स्वातन्त्र्यस्य अनादिकालात्प्रवृत्तस्य तदीयगौरवस्य च रक्षणं तैः भगवतो व्यासस्यानया भावनया क्रियेत, यद्

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

राष्ट्रदेवो भव !

संस्कृतदेवो भव !!

अनुशासनदेवो भव !!!

अन्य गतिविधियाँ

२१ नवम्बर, १९७८

(क) सरस्वती भवन में श्रीमती रोडा मिस्त्री का स्वागत

आन्ध्र प्रदेश की पर्यटन, महिला कल्याण तथा पुस्तकालय मन्त्री सम्माननीया श्रीमती रोडा मिस्त्री के सरस्वती भवन पुस्तकालय में शुभागमन पर विश्वविद्यालय की ओर से उनके स्वागत का आयोजन किया गया था, जिसमें यहाँ के अध्यापक गण तथा अधिकारी उपस्थित थे। श्री राजेन्द्रप्रसाद त्रिपाठी के द्वारा मङ्गलाचरण सम्पन्न होने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय विज्ञान के प्रो० श्री पी० एन० कौल ने श्रीमती मिस्त्री का परिचय प्रस्तुत करते हुए इनके द्वारा आन्ध्र प्रदेश में पुस्तकालयों की अभ्युन्नति हेतु किये गये कार्यों का उल्लेख किया।

सरस्वती भवन के पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी ने श्रीमती मिस्त्री का स्वागत करते हुए कहा कि यहाँ इस पुस्तकालय तथा विश्वविद्यालय के लिये यह हर्ष का विषय है कि यहाँ देश के एक ऐसे मन्त्री का पदार्पण हुआ है जिसके विभागों में पुस्तकालय भी एक स्वतन्त्र विभाग के रूप में रखा गया है। श्रीमती मिस्त्री इस देश की एकमात्र पुस्तकालय मन्त्री हैं तथा अपने राज्य में आपने पुस्तकालयों के अभ्युत्थान कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके पूर्व आपने भारत में पर्यटन कार्य की अभिवृद्धि एवं सुसज्जित होटलों को स्थापित करने में पर्याप्त सहायता की है। यह उल्लेखनीय है कि विद्या की प्रतीक काशी नगरी के इस प्राचीनतम अध्ययन केन्द्र में पुस्तकालय के एकमात्र मन्त्री का स्वागत करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

यद्यपि इस विश्वविद्यालय की स्थापना २२ मार्च १९५८ को हुई, किन्तु इसकी मूलभूत संस्था गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज १७९१ ई० में संस्कृत वाङ्मय के अभ्युदय, संरक्षण तथा विकास हेतु स्थापित हुई थी। इसकी स्थापना के उद्देश्यों में यह कहा गया था कि वाराणसी नगरी में यद्यपि सदा से ही विद्वानों की व्यक्तिगत पाठशालाओं में अध्ययनादि की व्यवस्था रही है, किन्तु जिस लक्ष्य को ध्यान में रखकर इस पाठशाला की स्थापना की जा रही है, ऐसी पाठशाला यहाँ पहले कभी भी स्थापित नहीं हुई थी। यह संस्था हिन्दू धर्म, कानून, कला एवं विज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों के संग्रह एवं उनसे ज्ञान प्राप्त करने में विद्यमान कठिनाईयों को दूर करने में सहायक होगी। साथ ही यहाँ के आचार्यों तथा छात्रों द्वारा प्राचीन परम्परा के उन क्षेत्रों में विद्यमान ग्रन्थों का संग्रह तथा संशोधन स्वल्प व्यय में ही सम्पन्न हो सकेगा और इसी क्रम में पुरातन विद्याओं तथा परम्परा से सम्बन्धित ग्रन्थों का एक ऐसा पुस्तकालय स्थापित होगा, जो सम्पूर्ण भूमण्डल में सम्प्रति विद्यामान नहीं है। इस प्रकार इस पाठशाला अथवा कालेज की स्थापना के प्रमुख उद्देश्यों में पुस्तकालय की स्थापना भी प्रधानभूत लक्ष्य थी और इस क्रम में हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह क्षेत्र में प्रख्यात इस सरस्वती भवन पुस्तकालय की स्थापना हुई और आज वहीं आपका स्वागत किया जा रहा है।

इस संस्था के विद्वानों के सन्दर्भ में मात्र इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृत विद्या के गणमान्य पण्डितों ने इस संस्था के आचार्य पद को सुशोभित किया और उनमें प० श्री कैलाशचन्द्र शिरोमणि, प० श्री बालशास्त्री, प० श्री शिवकुमार शास्त्री, प० श्री गङ्गाधर शास्त्री, प० श्री दामोदर शास्त्री, प० श्री सुधाकर द्विवेदी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्राच्य एवं प्रतीच्य विद्याओं के श्री जे० म्योर, डा० बैलेनटाइन, श्री ग्रिफिथ, डा० थीबो, डा० वेनिस, डा० गङ्गानाथ झा तथा श्री गोपीनाथ कविराज आदि ने यहाँ के प्राचार्य पद को सुशोभित किया। संस्कृत शिक्षा के विविध क्षेत्रों को समुन्नत करने में इस संस्था ने प्रारम्भ से ही अपना योगदान दिया। विश्वविद्यालय बनने पर भी इस संस्था ने भारतीय विद्या के परम्परागत पाण्डित्य एवं उसकी सुरक्षा को अपना प्रधानभूत लक्ष्य बनाया और इस दिशा में देश का यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। आज भी यहाँ की परीक्षाओं में प्रायः ३५,००० छात्र प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं और उत्तर प्रदेश राज्य तथा देश के अन्य राज्यों की सहस्राधिक संस्कृत पाठशालाएँ इससे सम्बद्ध हैं तथा इसका क्षेत्र सम्पूर्ण भारत है एवं विदेश स्थित संस्थानों अथवा संस्थाओं को सम्बद्ध करने का भी अधिकार इसे प्रदान किया गया है।

श्री तिवारी ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए यह बताया कि इस विश्वविद्यालय ने शास्त्रीय एवं परम्परागत विषयों में अध्ययनरत छात्रों की निःशुल्क शिक्षा तथा निःशुल्क आवास की व्यवस्था की है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार की व्यवस्था उल्लेखनीय है। सरस्वती भवन पुस्तकालय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संग्रह को दिग्दर्शित करते हुए उन्होंने कुछ ग्रन्थ-

विशेषों की भी चर्चा की तथा विश्वविद्यालय के विकास सम्बन्धी योजनाओं की ओर इंगित किया और यह बताया कि हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूचियों को मुद्रित कराने में यह पुस्तकालय सचेष्ट है और दुर्लभ तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य भी तेजी से सम्पन्न किया जा रहा है। विश्वविद्यालय के आमन्त्रण पर यहाँ पधार कर इसे तथा इसके अङ्गभूत पुस्तकालय को आपने जो देखने की कृपा की है उसके लिए आपके हम अत्यन्त आभारी हैं तथा हमें पूर्ण विश्वास है कि इसके विकास में आपका सहयोग एवं सहानुभूति हमें प्राप्त होती रहेगी।

श्रीमती रोडा मिस्त्री ने अवेस्ता की गाथाओं से अपने मङ्गलाचरण के पश्चात् भारतीय विद्याओं के प्रतिनिधिभूत इस विश्वविद्यालय में आमन्त्रित किये जाने पर हर्ष व्यक्त करते हुए कहा कि वाराणसी आने पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं एक विद्या की नगरी में आयी हूँ। यहाँ का समस्त वातावरण विद्या की प्रतिध्वनि से प्रतिध्वनित है और मेरा यह परम सौभाग्य है कि परम्परागत विद्वानों के बीच उपस्थित होने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है। पुस्तकालयों का उत्थान एवं समुन्नति समाज के लिए परमावश्यक है और इसी दृष्टिकोण से आन्ध्र प्रदेश में शिक्षा को प्रोन्नत करने हेतु पुस्तकालयों का जाल सा बिछाया गया है। आपने यह भी स्पष्ट किया कि विद्या को समुन्नत करने में पुस्तकालयों का योगदान अन्य साधनों की अपेक्षा कम नहीं है और भारतीय समाज का यह कर्त्तव्य है कि पुस्तकालयों की उन्नति एवं इसके कार्यकर्त्ताओं को समाज में प्रतिष्ठित करने की ओर वह अपनी दृष्टि रखे, जिससे विद्या का सर्वाङ्गीण विकास हो सके। समाज के सभी वर्गों का लाभ पुस्तकालय से होता है। अतः हम सभी का ध्यान पुस्तकालय के उन्नयन की ओर होना चाहिये। आपने यह भी बताया कि इस दिशा में रचनात्मक कार्य करने का मैंने सङ्कल्प लिया है।

सरस्वती भवन पुस्तकालय के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि यहाँ के संग्रह को देखकर मैं आश्चर्यचकित हूँ। यहाँ पर अनेक दुर्लभ हस्तलिखित एवं मुद्रित ग्रन्थ संगृहीत हैं और उनके रख-रखाव का उत्तम प्रबन्ध विद्यमान है। अन्य पुस्तकालयों को इससे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। आपने अन्त में यह कहा कि यह पुस्तकालय अपनी परम्परा के अनुसार विद्या की समुन्नति में संलग्न रहे, यही कामना है।

अन्त में दर्शनविभागाध्यक्ष डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी ने श्रीमती रोडा मिस्त्री के प्रति आभार व्यक्त करते हुए उपस्थित सभी श्रोताओं को धन्यवाद प्रदान किया।

२२ नवम्बर, १९७८

(ख) छात्रसंघ का शपथग्रहण समारोह

विश्वविद्यालय की गतिविधियों में छात्रसंघ की अपनी भूमिका रहती है। इसी उद्देश्य से छात्रसंघ का गठन होता है। छात्रसंघ का निर्वाचन हो जाने पर कुलपति की अध्यक्षता में इसका शपथ-ग्रहण समारोह सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कुलपति ने कहा—'मुझे विश्वास है कि आप लोग अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करते रहेंगे। आपको राष्ट्रहित के कार्य करने चाहिए और अपना अध्ययन पुष्ट करना चाहिए। इससे आपका ज्ञान विकसित होगा और विश्वविद्यालय का यश फैलेगा।' आपने छात्रसंघ के सफल भविष्य की कामना की और पदाधिकारियों को आशीर्वाद प्रदान किया।

छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष श्री देवस्वरूप मिश्र, शिक्षाशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ० देवेन्द्रदत्त तिवारी तथा न्याय विभागाध्यक्ष श्री श्रीराम पाण्डेय ने भी अपनी शुभकामना प्रकट की। श्री भुवनेशकुमार उपाध्याय, भूतपूर्व छात्रसंघ अध्यक्ष, ने आभार प्रकट किया।

१-९ दिसम्बर, १९७८

(ग) श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण

विश्वविद्यालय के इतिहास में यह प्रथम मङ्गलमय अवसर था, जब कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा कुलपति आवास में व्यक्तिगत रूप से श्रीमद्भावत के साप्ताहिक अनुष्ठान और प्रवचन का विस्तृत आयोजन किया गया। अनुष्ठान के आचार्य बस्ती के प० श्री हरिशङ्कर ओझा थे और उनके सहयोगी थे—श्री राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय, उपाचार्य संस्कृत महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, श्री रामसुभग ओझा, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, हीरालाल रामनिवास कालेज, खलीलाबाद, बस्ती, श्री लक्ष्मीनाथ ओझा, साहित्य-व्याकरण-योगतन्त्राचार्य, श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी, प्रधानाचार्य, श्री स्वामी राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, श्री विद्याधर पाण्डेय, वेदाचार्य, अध्यापक, श्री रणवीर संस्कृत पाठशाला, वाराणसी, श्री रामवचन शर्मा, वेदविभागाध्यक्ष, नथमल बरौलिया संस्कृत महाविद्यालय, टेढ़ीनीम, वाराणसी, श्री देवीप्रसाद मिश्र, साहित्याचार्य, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रतिदिन प्रातः ७ बजे से सायंकाल ६ बजे तक पूजन, कथा-वाचन तथा जप आदि का कार्यक्रम चलता था और सायं ६ बजे से रात्रि ११ बजे तक भागवत के विभिन्न प्रकरणों पर प्रवचन होते थे। प्रवचन में प्रमुख वक्ता थे श्री सूर्यनारायण उपाध्याय, प्राध्यापक, धर्मशास्त्र, श्री सत्यनारायण मिश्र, प्राध्यापक, वल्लभ वेदान्त,
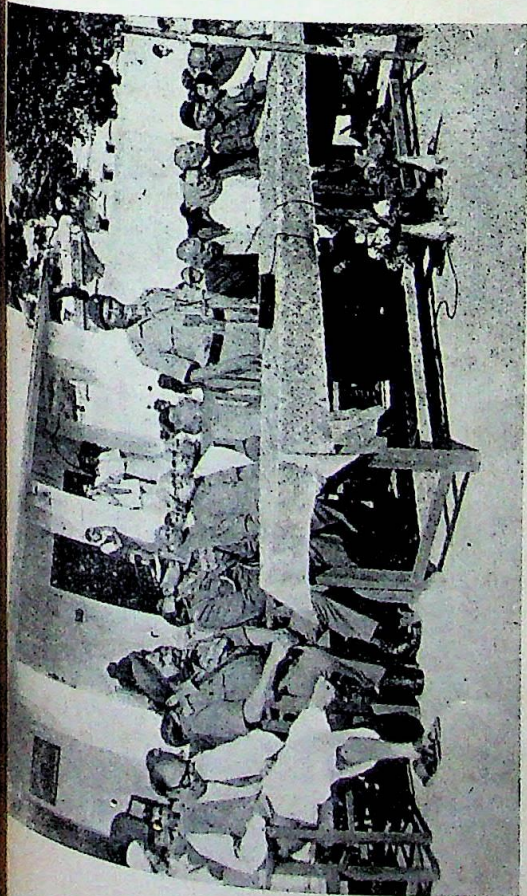
कैप्टन देवनारायण मिश्र, एन०सी०सी० के 'आक्रमण कार्यक्रम' का निर्देशन करते हुए एवं कुलपति तथा एन०सी०सी० के अन्य अधिकारी और दर्शक गण।
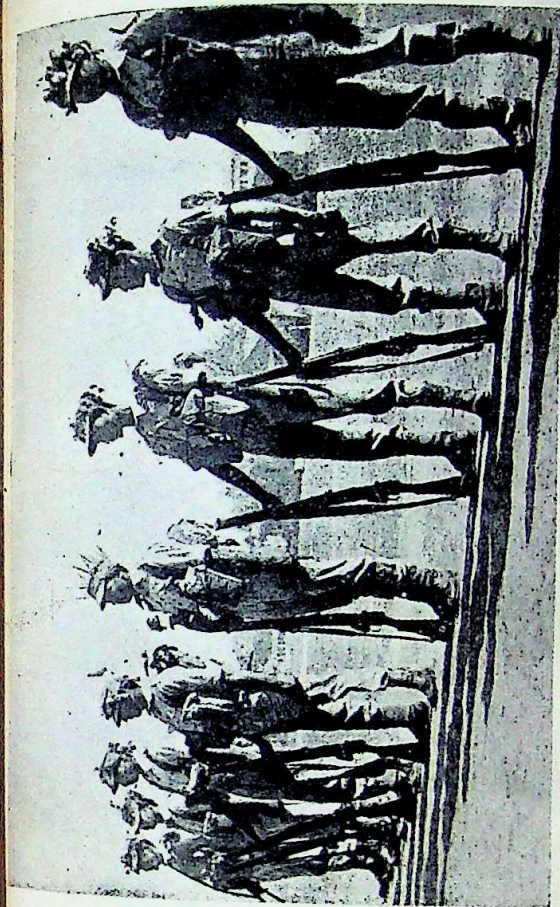
एन०सी०सी० के कैडेट्स, आक्रमण के पूर्व परिचय और तलाशी देते हुए।
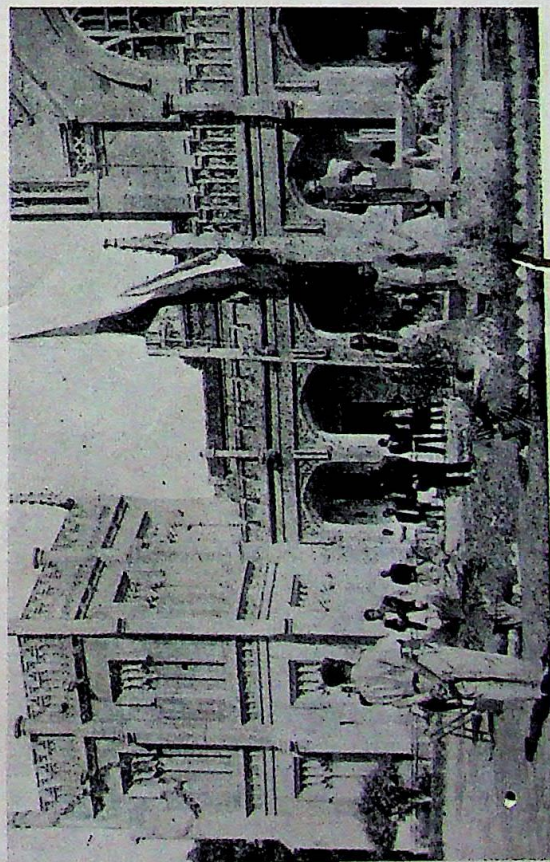
गणतन्त्र दिवस पर ध्वजारोहण के अनन्तर विश्वविद्यालय परिवार को उद्बोधित करते हुए कुलपति।
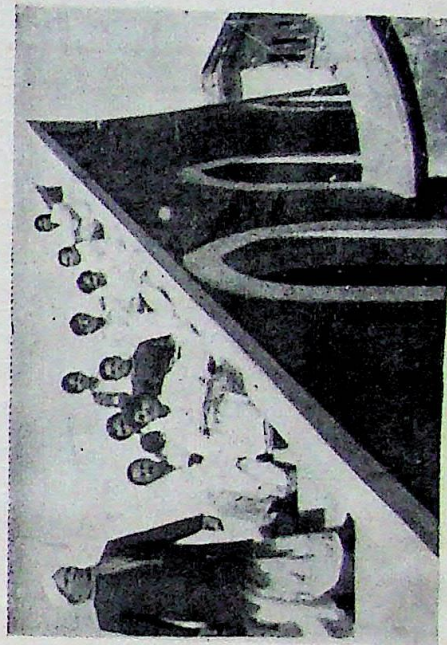
जयपुर के जन्तर-मन्तर में शैक्षिक यात्रा पर गये ज्योतिष विभाग के छात्रों के साथ प्राध्यापक डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी।

आन्ध्रप्रदेश की पुस्तकालय-पर्यटन-महिलाकल्याण मन्त्री श्रीमती रोडा मिस्त्री को सरस्वती-भवन में दुर्लभ ग्रन्थों को दिखलाते हुए पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी तथा उपपुस्तकाध्यक्ष श्री अच्युतनाथ झा ।

पुस्तकाध्यक्ष, श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी, श्रीमती रोडा मिस्त्री का स्वागत करते हुए प्रो० पी० एन० कौल (दायें) ।

सरस्वती-भवन में विश्वविद्यालय परिवार के बीच भाषण करती हुई श्रीमती रोडा मिस्त्री ।

छात्रसंघ-अध्यक्ष, श्री जगन्नाथ पाण्डेय, कुलपति द्वारा शपथ ग्रहण करते हुए

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, संकायाध्यक्ष, वेद वेदाङ्ग संकाय, डा० देवस्वरूप मिश्र, संकायाध्यक्ष, दर्शन संकाय, डा० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी, 'वागीश शास्त्री', निदेशक, अनुसन्धान संस्थान, श्री रामसेवक झा, श्री विश्वनाथ शास्त्री दातार, प्राचीन राजशास्त्र अर्थशास्त्र विभाग, श्री छोटेलाल शास्त्री, प्रधानाचार्य, धार्मिक संस्कृत महाविद्यालय, फर्रुखाबाद, श्री वेणीमाधव मिश्र, प्रधानाचार्य, श्री बलदेवदास गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी ।

आयोजन का समापन ९ दिसम्बर, १९७८ को विद्वत्सभा के रूप में सम्पन्न हुआ, जिसमें वाराणसी के और प्रदेश के अनेक स्थानों के विद्वान् सम्मिलित हुए। सभा में विद्वानों ने भागवत के विभिन्न पक्षों पर शास्त्रीय विचार प्रस्तुत किये। इनमें श्री जगन्नाथ उपाध्याय, श्री पट्टाभिराम शास्त्री, श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री, श्री गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी, श्री नवरङ्ग शर्मा चतुर्वेदी, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, डा० देवस्वरूप मिश्र तथा श्री रुद्रप्रसाद अवस्थी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

शास्त्रार्थ सभा के अन्त में सौ० सावित्री देवी उपाध्याय ने 'वृन्दावन धाम अपार' नामक प्रसिद्ध भावमय गीत प्रस्तुत करके सभा को मन्त्र मुग्ध कर दिया। अन्त में कुलपति ने सभा में उपस्थित १५१ विद्वानों का सत्कार किया।

१० दिसम्बर, १९७८

(घ) कर्मचारीसंघ का शपथग्रहण समारोह

विश्वविद्यालय के कर्मचारीसंघ का शपथग्रहण समारोह कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में दिनाङ्क १०-१२-७८ को हुआ। इस अवसर पर कुलपति ने कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए विश्वविद्यालय में निष्ठापूर्वक कार्य करने का उनसे आग्रह किया। उन्होंने प्रशासन को भी सुझाव दिया कि वह कर्मचारियों के हितों की रक्षा और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहे। विश्वविद्यालय प्रशासन कर्मचारियों के हित में तथा कर्मचारी वर्ग विश्वविद्यालय के हित में बराबर तल्लीन रहे तो विश्वविद्यालय का सम्मान तथा उसकी गरिमा की वृद्धि निश्चय ही होगी। 'संघ' के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि कर्मचारीसंघ का बहुत बड़ा महत्त्व है। 'संघ' में ही शक्ति है तथा कर्मचारियों को अपने कार्यों के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए और उन्हें अपने कार्यों से विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ाने की दिशा में प्रयत्न करने चाहिए। अपनी मांग उन्हें शान्ति तथा शालीनता के साथ उपस्थित करना चाहिए।

कर्मचारीसंघ के अध्यक्ष श्री बैरिस्टर तिवारी तथा निवर्तमान महामन्त्री श्री अवधेशमणि त्रिपाठी ने कुलपति महोदय और अन्य उपस्थित व्यक्तियों के प्रति हार्दिक धन्यवाद व्यक्त किया।

विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, सहायक कुलसचिव श्री गिरिजाशंकर मिश्र एवं श्री कमलाकान्त वर्मा, कुलपति के वैयक्तिक सहायक श्री शालिग्राम यादव आदि महानुभावों के साथ प्रीतिगोष्ठी के अनन्तर कार्यक्रम समाप्त हुआ।

कर्मचारीसंघ के पदाधिकारी

१.	श्री बैरिस्टर तिवारी	अध्यक्ष
२.	,, सुरेन्द्रकुमार मिश्र	उपाध्यक्ष
३.	,, हरिहरकान्त उपाध्याय	कोषाध्यक्ष
४.	,, महातम दूबे	महामन्त्री
५.	,, दीनानाथ राय	प्रबन्धमन्त्री
६.	,, रामलखन सिंह यादव	संयुक्त मन्त्री
७.	,, ध्रुवदेव तिवारी	कार्यालयमन्त्री
८.	,, इन्द्रदेव तिवारी	सदस्य कार्यसमिति
९.	,, कन्हैयालाल	,, ,,
१०.	,, केदारनाथ तिवारी	,, ,,
११.	,, गुणानन्द चौधरी	,, ,,
१२.	,, भगवान यादव	,, ,,
१३.	,, मातिवरप्रसाद सिंह	,, ,,
१४.	,, रमाशङ्कर उपाध्याय	,, ,,
१५.	,, रामनाथ सिंह यादव	,, ,,
१६.	,, राममूरत	,, ,,
१७.	,, रामवृक्ष	,, ,,
१८.	,, हरिवंश त्रिपाठी	,, ,,
१९.	,, सन्तोषी मण्डल	,, ,,

११ दिसम्बर, १९७८

(ङ) छात्रावास भवन का शिलान्यास

विश्वविद्यालय ज्ञानकेन्द्र होता है, जहाँ अध्ययन और शोध की सतत परम्परा चलती रहती है। ज्ञान-पिपासु अध्ययनार्थी देश विदेश से विश्वविद्यालय में आते रहते हैं। ऐसे जिज्ञासुओं के लिये आवास आदि की सुख-सुविधाओं की अपेक्षा रहती है। तभी वे ज्ञानार्जन और शोध के प्रति अपने को समर्पित कर पाते हैं। इसी उद्देश्य से दि० ११ दिसम्बर, १९७८ को अनुसन्धित्सुओं और विदेशी छात्रों के लिये एक छात्रावास का शिलान्यास हुआ। इस छात्रावास में अतिरिक्त साधनों के साथ ८७ कमरों का निर्माण होगा। इसका निर्माण व्यय ८.२७ लाख रु० है। कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने इस छात्रावास भवन का शिलान्यास किया।

१७ दिसम्बर, १९७८

(च) संस्कृत स्तोत्रों का संगीतमय गायन

नागरी नाटक मण्डली के प्रेक्षागृह में दि० १७-१२-७८ को संगीत नाट्य संस्थान 'ललित' के तत्त्वावधान में संस्कृत के विविध स्तोत्रों का गायन वाद्यवृन्द के साथ प्रस्तुत किया गया। इसका निर्देशन श्री शिवकुमार शास्त्री ने किया।

वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ स्तोत्र गायन का कार्यक्रम "हर हर महादेव शम्भो, काशी विश्वनाथ गङ्गे" के समवेत स्वर से प्रारम्भ हुआ। पार्श्व से घंटों की ध्वनि तथा पृष्ठभूमि में गति तरङ्गों के पर्दे पर गङ्गा के तट पर स्थित मन्दिरों की कतार का प्रतीक छायाङ्कन परिवेश-निर्माण की दृष्टि से सन्तुलित था। पार्श्व से शहनाई के क्रमशः उभरते स्वरों के साथ बांसुरी, वायलिन, सितार, सरोद, सारङ्गी और पखावज आदि वाद्यों का क्रम केवल संगीत मात्र न होकर भाव-व्यञ्जना में सहायक के रूप में भी सफल रहा।

हर स्तोत्र का गायन प्रारम्भ होने से पहले निदेशक स्तोत्र का हिन्दी भाषान्तर तथा फलश्रुति स्पष्ट करते थे, जिससे दर्शकों और श्रोताओं को अर्थ बोध सरलता से होता था।

'आराधना' कार्यक्रम के अन्तर्गत शिवनामावल्यष्टक, कालभैरवाष्टकम्, आत्मषट्कम्, शिवताण्डवम् तथा अन्नपूर्णास्तोत्रम् के समवेत गायन-स्वर के रूप में काशी की शैवोपासना की समूची परम्परा को उद्घाटित करने का यह प्रयास सराहनीय रहा।

कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति तथा 'सुप्रभातम्' के संरक्षक श्री बदरीनाथ शुक्ल ने वेद, पुराण एवं उपनिषद् काल से चली आ रही स्तोत्र परम्परा पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि ध्वनि और लय की अन्विति से उद्भूत संस्कृत स्तोत्रों में मन पर गहरा प्रभाव डालने की क्षमता है। स्तोत्र साहित्य में अपने इष्टदेव के गुणों का वर्णन करने के व्याज से देश की संस्कृति और परम्पराओं का सुन्दर निरूपण किया गया है। शङ्कराचार्य के स्तोत्रों में अद्वैत वेदान्त का—जीव और ईश्वर के अभेद का समर्थन किया गया है, किन्तु भक्ति अवस्था में भक्त अपने भगवान् को आराध्य देवता मानता है। षट्पदी स्तोत्र में भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

> यद्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
> सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

जिसका आशय यह है कि जीव और ईश्वर में वास्तव भेद न होने पर भी दोनों में उसी प्रकार का कथञ्चित् भेद है, जैसा कि समुद्र और उसकी तरङ्गों के जलात्मक रूप में एकता होते हुए भी उनमें कथञ्चित् भेद है। इससे स्पष्ट है कि भक्त के लिये द्वैत दृष्टि आवश्यक है। हम यह कह सकते हैं कि अपने आराध्य के प्रति निर्मल भक्ति ही स्तोत्र साहित्य की जननी है। स्तोत्र साहित्य में केवल इष्टदेव का गुणगान ही नहीं है अपितु भारतीय संस्कृति के अति उदात्त विचारों का भी इसमें समावेश है। प्रत्येक सम्प्रदाय के उद्भट विद्वानों ने प्रसन्न-गम्भीर पदावली में उच्चतम दार्शनिक सिद्धान्तों से भरपूर और कोमल-कान्त शब्दावली में भक्त के मन को विभोर कर देने वाले स्तोत्रों की रचना की है। इनके साङ्गीतिक लय से सहृदय मानव का मन झङ्कृत हो उठता है। उपनिषदों के उच्च विचारों को अर्जुन तभी हृदयङ्गम कर सका, जब भगवान् ने उनको गाया। भगवान् का यह औपनिषद् गान ही गीता के रूप में प्रसिद्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है कि भगवान् शिव के मधुर संगीत स्वर से पिघला हुआ नारायण का आह्लादमय विग्रह ही गङ्गा के रूप में परिणत हो गया। इस प्रकार से भक्त जनों की आह्लाद दशा में प्रस्फुटित वाणी ही स्तोत्र का रूप धारण कर लेती है। भारत के बंगाल, महाराष्ट्र प्रभृति राज्यों में प्रचलित कीर्तन परम्परा इस स्तोत्र साहित्य की ही देन है।

अन्त में श्री शुक्ल ने स्तोत्र साहित्य के इस सांगीतिक प्रस्तुतीकरण के लिये आयोजकों को धन्यवाद दिया।

२० दिसम्बर, १९७८

(छ) अध्यापक परिषद् का निर्वाचन

दिनाङ्क २०-१२-७८ को वेदान्त विभागाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र की अध्यक्षता में विश्वविद्यालयीय अध्यापक परिषद् के पदाधिकारियों एवं सदस्यों का चयन सर्वसम्मति से किया गया, जिसकी नामावली निम्नाङ्कित है—

१. संरक्षक—कुलपति
२. उपसंरक्षक—डा० देवस्वरूप मिश्र
३. अध्यक्ष—डा० श्रीराम पाण्डेय
४. उपाध्यक्ष—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी
५. ,, —डा० सत्यनारायण मिश्र
६. मन्त्री—श्री बुद्धिवल्लभ पाठक
७. उपमन्त्री—डा० नागेन्द्र पाण्डेय
८. कोषाध्यक्ष—श्री पुरुषोत्तम प्रसाद पाठक
९. प्रकाशन मन्त्री—श्री शिवजी उपाध्याय
१०. विधि मन्त्री—श्री शम्भुनाथ मिश्र
११. ,, —श्री विश्वनाथ शुक्ल

सदस्य

१. श्री जगन्नाथ उपाध्याय
२. डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी
३. डा० पारसनाथ द्विवेदी
४. श्री रामशङ्कर त्रिपाठी
५. श्री इन्दिराचरण पाण्डेय
६. डा० आद्याप्रसाद मिश्र
७. डा० कैलासपति त्रिपाठी
८. श्री लक्ष्मण त्रिवेदी
९. डा० आशुतोष उपाध्याय
१०. श्री राधेश्यामधर द्विवेदी
११. श्री सूर्यनारायण उपाध्याय
१२. डा० श्रीकृष्णदेव
१३. डा० श्रीप्रसाद
१४. श्री मानिकचन्द्र शुक्ल
१५. डा० कपिलदेव त्रिपाठी
१६. डा० ब्रह्मदेवनारायण शर्मा
१७. डा० रामयत्न शुक्ल

२४ दिसम्बर, १९७८

(ज) धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय द्वारा आयोजित संस्कृत नाटक के अवसर पर कुलपति द्वारा अध्यक्षीय भाषण में रसनिष्पत्ति के सम्बन्ध में नूतन विचार

२४ दिसम्बर, १९७८ को धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय प्रयाग की ओर से आयोजित "वीरधर्मदर्पणम्" संस्कृत नाटक के मञ्चन के अवसर पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल, कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी, न्यायवैशेषिक विभागाध्यक्ष डा० श्रीराम पाण्डेय, व्याकरण विभाग के उपाचार्य डा० आद्याप्रसाद मिश्र आदि उपस्थित थे। श्री कुलपति की अध्यक्षता में श्री बृजलाल वर्मा, सदस्य लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश द्वारा अभिनय का उद्घाटन हुआ।

उद्घाटन भाषण में श्री वर्मा ने कहा कि नाटक का अभिनय एक अत्यन्त रसमय व्यापार है। उसमें भाषण आदि अन्यान्य कार्यक्रमों के आयोजन से रसभङ्ग होने की सम्भावना होती है, जो किसी भी दर्शक को स्वीकार्य नहीं हो सकता। अतः मैं उद्घाटन के औपचारिक कार्य का सम्पादन मात्र कर भाषण से अपने को विरत रखना चाहता हूँ। सभासद गण कृपया क्षमा करें।

आरम्भ में श्री भूपेन्द्रपति त्रिपाठी, इस महाविद्यालय के भूतपूर्व प्रधानाचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य तथा सम्प्रति सम्मानित प्राध्यापक, ने महाविद्यालय की ओर से आगतजनों का स्वागत किया और सभाध्यक्ष श्री शुक्ल, उद्घाटनकर्ता श्री वर्मा, विशिष्ट अतिथि श्री उमाशङ्कर मिश्र, प्रधान निरीक्षक संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश तथा संस्कृत विश्वविद्यालय से आये अन्य महानुभावों का स्वागत करते हुए धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया और बताया कि प्रदेश का यह प्रथम महाविद्यालय है, जिसे ब्रिटिश शासन काल में सर्वप्रथम और सर्वाधिक अनुदान प्राप्त हुआ था। महामना प० मदनमोहन मालवीय जैसे विशिष्ट महापुरुष इस महाविद्यालय के छात्र रह चुके हैं। इस महाविद्यालय के प्रति प्रयाग के सभी नागरिकों की शाश्वत शुभाकांक्षा है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि आज हमारे बीच सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शुक्ल ने महाविद्यालय के आमन्त्रण पर अपने सहयोगियों के साथ यहाँ आने का अनुग्रह किया है। श्री शुक्ल का वैदुष्य संस्कृत जगत् में प्रतिष्ठित एवं विश्वविश्रुत है। उनकी प्राशासनिक छाया में विश्वविद्यालय का सर्वाङ्गीण विकास हो रहा है। प्रदेश और देश के जिस संकटमय वातावरण में बहुतर विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थाओं को निर्वाह करना कठिन हो गया है, उसमें कल (२३ दिसम्बर को) जिस शान्ति और उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का यह दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ है, वैसा शान्तिपूर्ण वातावरण में भी इसके पूर्व कठिनाई से सम्पन्न हुआ करता था। निश्चय ही यह सफलता श्री शुक्ल की प्राशासनिक क्षमता, धैर्य, साहस और अमोघ सङ्कल्प का ही प्रति-फल है। यह संस्कृत जगत् का सौभाग्य है और प्रदेश का शासन इसके लिये धन्यवाद का पात्र है कि उसने इस विश्वविद्यालय को श्री शुक्ल जैसा कुलपति प्रदान किया। हम श्री शुक्ल से अनुरोध करेंगे कि वे महाविद्यालय को अपने आशीर्वचनों से संवर्द्धित करने की कृपा करें।

कुलपति श्री शुक्ल ने अपने भाषण में संस्कृत वाङ्मय की गरिमा और वर्तमान युग में भी उसके व्यापक शिक्षण की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि संस्कृत विश्व की अत्यन्त प्राचीन भाषा और भारत की दृष्टि में मानव की मूलभाषा है। भारत के निवासियों ने ही पृथ्वी के सुदूर भागों में जाकर इस वाङ्मय में निहित मानवीय सन्देशों को पहुँचाया। किन्तु उनकी भाषा अन्यान्य देशों के जलवायु के सम्पर्क से पर्याप्त परिवर्तित हो गई और विभिन्न भाषा के रूप में वह आज भी अवस्थित है। इस सत्य को विभिन्न भाषाओं और संस्कृत भाषा के सहस्रों

शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रमाणित किया जा चुका है। हम सभी भारतीयों का कर्तव्य है कि इस भाषा को विशुद्ध रूप में अपने देश में घर-घर और जन-जन तक प्रचारित करें और हमारा यह प्रयत्न हमारे देश तक ही सीमित न रह कर अन्य देशों में भी प्रवर्तित हो।

संस्कृत के प्रचार-प्रसार के उपयुक्त साधनों में अभिनय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिनय के द्वारा मनुष्य के आशय का जैसा स्पष्टीकरण होता है वैसा साधारण कोटि के वार्तालाप और भाषण आदि से नहीं होता, क्योंकि वार्तालाप आदि में केवल भाषा की प्रमुखता रहती है, किन्तु अभिनय में भाषा और आङ्गिक चेष्टा इन दोनों का सहयोग होता है। अकेली भाषा अथवा अकेली आङ्गिक चेष्टायें मनुष्य के पूरे भाव को प्रकट करने में सक्षम नही होतीं। अभिनय में दोनों का समीचीन सहयोग होने से यह श्रेय अभिनय को ही प्राप्त है।

महाकवि कालिदास के शब्दों में अभिनय देव-मुनि सम्मत क्रतु है। क्रतु का प्राकट्य भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों में सृष्टि के साथ ही सम्पन्न हुआ है। जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट है—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥

अन्य क्रतुओं से अभिनय क्रतु की कुछ असाधारण विशेषता है। क्योंकि अन्य क्रतु सद्यः फलप्रद न होकर कालान्तर में फलप्रद होती हैं और उसके लिये उनके व्यापार रूप में परमेश्वर प्रीति अथवा पुण्य की कल्पना करनी होती है। जैसा कि शिव-महिम्न-स्तोत्र के इस श्लोक के स्पष्ट है—

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।

किन्तु अभिनय क्रतु का फल नाटकीय रस के अलौकिक आस्वाद के रूप में तत्काल उपलब्ध होता है। जैसा कि मम्मट ने काव्य-प्रकाश के आरम्भ में काव्य के प्रयोजनों में "सद्यः परनिर्वृति" की गणना करते हुए न केवल नाटक को, अपितु पूरे काव्य को यह विशेषता प्रदान की है। जैसा कि उनका स्पष्ट कथन है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

यही कारण है कि अभिनय क्रतु को अपने लक्ष्य की सिद्धि में परमेश्वर प्रीति आदि व्यापार की अपेक्षा नहीं होती। अभिनय सीधे द्रष्टा के हृदय को स्पर्श करता है और उसे रस विभोर कर देता है।

रस के सम्बन्ध में एक हमारा व्यक्तिगत दृष्टिकोण है, जो भरत के रससूत्र की किञ्चित् आलोचनात्मक व्याख्या से बना है। भरत ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से स्थायी-भाव की रसात्मना निष्पत्ति बतायी है। हमारी समझ से उनके सूत्र में आगत संयोग शब्द से भावों के पञ्चीकरणात्मक सम्बन्ध की सूचना होती है। उनका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव और स्थायी भाव इन पाँचों भावों का रसात्मक आत्मा रूप अधिष्ठान में 'पञ्चीकरण' होता है। यह 'पञ्चीकरण' ठीक उसी प्रकार होता है, जैसे सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप अधिष्ठान में आकाशादि पञ्चभूतों का पञ्चीकरण होता है। उसके फलस्वरूप पाँचों भूत अन्योन्यानुविद्ध हो जाते हैं और उनमें अधिष्ठान की सत्ता चेतनता और आनन्दात्मकता का अनुवेध होता है। फलतः सारे भौतिक प्रपञ्च में अस्तित्व, चैतन्य और सुखमयता की अभिव्यक्ति होने लगती है। ठीक उसी प्रकार उक्त नाटकीय सभी भाव पञ्चीकरण की प्रक्रिया से अन्योन्य मिश्रित हो जाते हैं और अधिष्ठान भूत आत्मा की रसरूपता उन सभी में अनुविद्ध हो जाती है, वे रसात्मक हो जाते हैं। यही कारण है कि भाषा ज्ञान से शून्य अशिक्षित दर्शक को भी उक्त भावों में से किसी एक भाव से ही पूरी रसानुभूति हो जाती है और बहुत से ऐसे सामान्य दर्शक होते हैं जो रंगमंच के रमणीय प्रसाधन को देखकर ही भावविह्वल हो जाते हैं। सर्वसाधारण दर्शक को अभिनय द्वारा होने वाली यह अनुभूति रसात्मक आत्माधिष्ठान में नाटकीय भावों को 'पञ्चीकरण' की प्रक्रिया से ही उपपन्न हो सकती है। मेरे विचार से भरत ने रसनिष्पादक संयोग से इसी का सङ्केत किया है।

इस सन्दर्भ में इस सत्य पर भी ध्यान देना आवश्यक कि कला की दृष्टि में किसी अभिनय की पूर्ण सफलता तभी होती है, जब कला, कलाकार और कला इस त्रिपुटी का दर्शक के हृदय में समग्र रूप से विगलन हो जाता है। जब तक दर्शक के हृदय में इन तीनों के भेदावभास की स्थिति बनी रहती है, तब तक उसकी पूरी सफलता नहीं मानी जा सकतीं। कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तल में—

"आपरितोषाद् विदुषां"

कह कर इसी तथ्य की ओर संकेत किया है।

श्री उमाशङ्कर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश, ने धर्मज्ञानोपदेश महाविद्यालय की अभ्युन्नति की कामना करते हुये सभी आगन्तुकों के प्रति आभार व्यक्त किया।

२६ दिसम्बर, ७८ से ११ जनवरी, ७९

(भ) ज्योतिष विभाग की शैक्षणिक यात्रा

धरती का सर्वप्रथम विज्ञान मानवकृत ज्योतिष विज्ञान है। लोगों ने तीव्र प्रकाशपुञ्ज सूर्य का उदय और अस्त देखा। प्रकाश
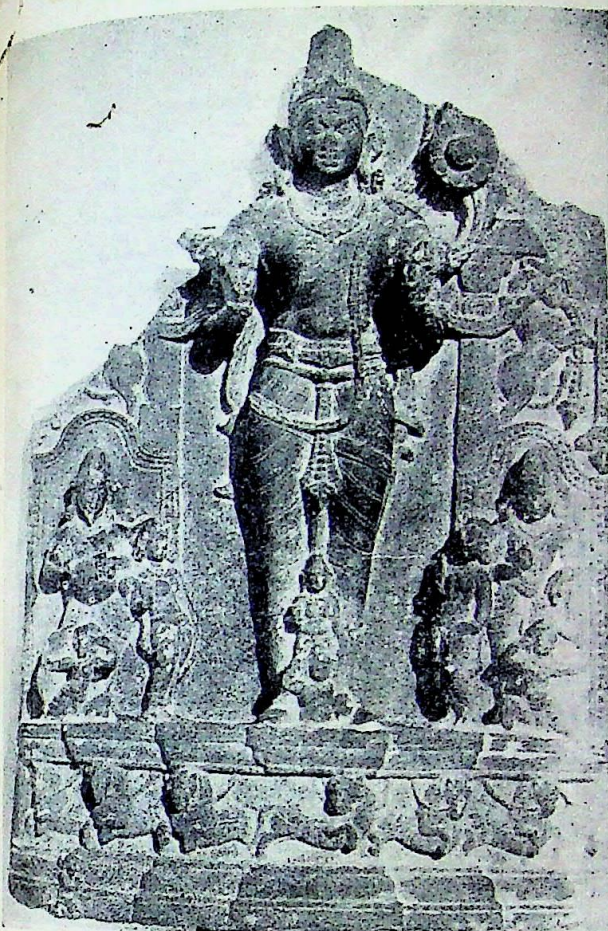
सूर्यप्रतिमा, श्री मुरारीलाल केडिया द्वारा विश्वविद्यालय संग्रहालय को प्रदत्त ।

पार्वती की गोद में कार्त्तिकेय, श्री मुरारीलाल केडिया द्वारा विश्वविद्यालय संग्रहालय को प्रदत्त ।

पूजाई स्तूप
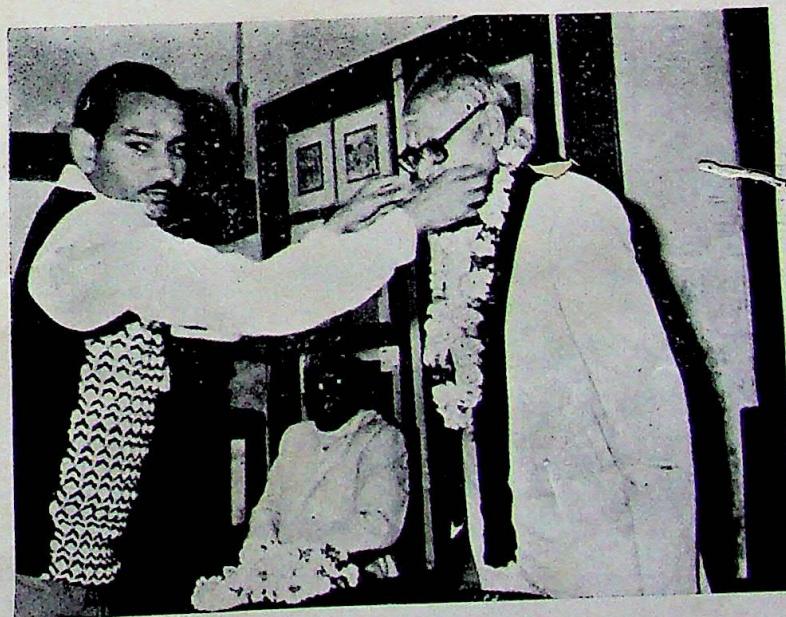
पुरातत्त्व संग्रहालयविज्ञान प्रमाणपत्रीय कक्षा का उद्घाटन ; कुलपति को माल्यार्पण करते हुए श्री छोटेलाल त्रिपाठी ।
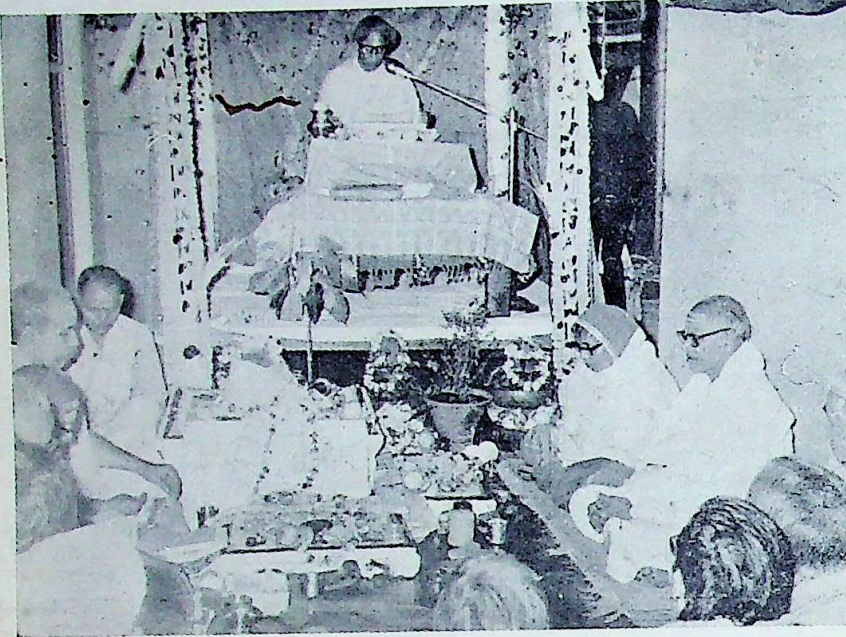
प० श्री हरिशङ्कर ओझा, व्यासासन पर श्रीमद्भागवत का प्रवचन करते हुए।
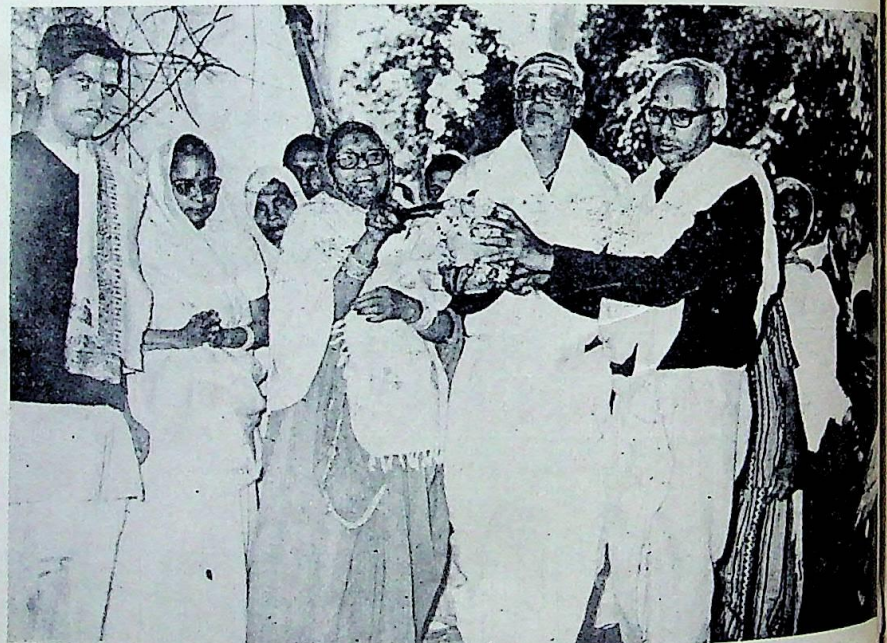
श्रीमद्भागवत सप्ताह की पूर्णाहुति करते हुए श्री बदरीनाथ शुक्ल एवं श्रीमती शुक्ल।

श्रीमद्भागवत सप्ताह के अवसर पर आयोजित पण्डित सभा।

और अंधेरे का ज्ञान हुआ। इसी को दिन तथा रात की संज्ञा दी गयी।' जाड़ा, गर्मी, बरसात आदि छ ऋतुओं का भी मानव को बोध हुआ।

मानव ने दिक्-देश-काल के ज्ञान के साथ ही साथ अपने दैनिक गणितीय सर्वेक्षण से ग्रहों, नक्षत्रमण्डल, उल्काओं धूमकेतुओं, नीहारिकाओं, आकाशगङ्गा का ज्ञान और साथ ही साथ इनका प्रचलन, सूर्य चन्द्र ग्रहणों का दर्शन तथा ग्रहचक्रों की क्रमिक जानकारी अति प्राचीन काल में ही कर ली थी, जिसका वर्णन हमारे प्राचीन आर्ष ऋग्वेदादि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

ग्रहों के उदय, अस्त और ग्रहणकाल को देखने के लिये अति प्राचीनकाल में ग्रावाकीरी नामक यन्त्र का उल्लेख प्राप्त होता है। अध्यापन के क्षेत्र में अध्ययन को विश्वसनीय और हृदयग्राह्य बनाने के लिये क्रियात्मक अध्ययन अनिवार्य है। इसी सन्दर्भ में १७१० ई० में राजा सवाई जयसिंह जी ने भारत में उज्जैन, जयपुर, दिल्ली, मथुरा और काशी में वेधशालाओं का निर्माण कराया था। इनमें जयपुर और उज्जैन की वेधशालाएँ आज भी ठीक रूप में हैं और उपयोगी हैं।

ज्योतिष के ज्ञान-विकास के लिये विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभाग के छात्रों ने प्राध्यापक डॉ० कृष्णचन्द्र द्विवेदी के नेतृत्व में शैक्षणिक यात्रा की। अनुसन्धान दल ने पाया कि उज्जैन में सम्राट्यन्त्र, नाड़ीवलययन्त्र, भित्तियन्त्र, तुरीययन्त्र, शङ्कुयन्त्र ये सभी पाँच यन्त्र अच्छी स्थिति में हैं। इनके अतिरिक्त नवीन दूरवीक्षणयन्त्र (टेलिस्कोप) ३ इञ्च व्यास का है, जिससे दूर से दूर स्थित ग्रह-नक्षत्रों का बृहद् रूप में दर्शन और प्रतिदिन वेध करके उन आकाशीय पिण्डों की गतिविधि जानी जा सकती हैं। यन्त्रों को देखने से प्रतीत होता है कि ग्रहों का नतांश-उन्नतांश छाया के द्वारा बताया जाता था। इन यन्त्रों द्वारा मानक समय का ज्ञान कराया जाता था। तुरीययन्त्र के द्वारा प्रत्यक्ष दृग्गणितैक्य का अभ्यास छात्रों से भी कराया गया। २९, ३० दिसम्बर को प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक सभी छात्रों को ३ इंच के व्यासवाले दूरवीक्षणयन्त्र (टेलिस्कोप) से आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों से परिचित कराया गया। बृहस्पति, शुक्र एवं शनि ग्रहों का भी दर्शन किया गया।

जयपुर पहुँचने पर यह ज्ञात हुआ कि वहाँ की वेधशाला में सम्राट्यन्त्र, नाड़ीवलययन्त्र, क्रान्तिवलययन्त्र, ध्रुवयन्त्र, भित्तियन्त्र, यन्त्रराज, कपालयन्त्र (अहोरात्रयन्त्र), रामयन्त्र, राशिवलययन्त्र दिगंशयन्त्र आदि यन्त्र विद्यमान हैं। यह की वेधशाला जन्तर-मन्तर नाम से विख्यात है। छात्रों जो इन यन्त्रों से स्थानीय समय, मानक समय, नतांश, विषुवांश, क्रान्त्यंश, दिक्ज्ञान, अक्षांश और देशान्तर का क्रियात्मक बोध कराया गया। जयपुर में 'मानव-जीवन' पर ज्योतिष का प्रभाव विषय पर प्राध्यापक द्विवेदी का व्याख्यान भी हुआ।

समापन यात्रा में दिल्ली की वेधशाला का परिनिरीक्षण किया गया। इस वेधशाला का नाम भी जन्तर-मन्तर है। यहाँ के यन्त्र के जीर्णोद्धार की आवश्यकता है।

दो सप्ताह से भी अधिक के सम्पूर्ण यात्राकाल में ज्योतिष के ज्ञान का तो विस्तार हुआ ही, साथ ही छात्रों में परस्पर हार्दिक स्नेह भी बढ़ा।

२८ दिसम्बर, १९७८

(ञ) नेपाल नरेश का जन्मोत्सव

[वाराणसी के प्रमुख प्रेक्षागृह नागरी नाटक मण्डली में नेपाल नरेश महाराजाधिराज श्री वीरेन्द्र वीर विक्रमशाह के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह के शुभ अवसर पर कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल के उद्गार :—]

वाराणसी के प्रमुख प्रेक्षागृह नागरी नाटक मण्डली में नेपाल नरेश महाराजाधिराज श्री वीरेन्द्र वीर विक्रमशाह के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में भारत नेपाल सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन के अवसर पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि नेपाल नरेश के जन्म-दिवस पर आयोजित इस कार्यक्रम में सम्मिलित होने में मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस कार्यक्रम में सम्मिलित कराने के लिये आयोजकों को धन्यवाद देना चाहूँगा।

श्री शुक्ल ने कहा कि किसी देश में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था हो या राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था हो, इसका कोई महत्त्व नहीं होता। महत्त्व होता है लोकरञ्जन का, प्रजारञ्जन का। कालिदास ने स्पष्ट कहा है "राजा प्रकृतिरञ्जनात्"। जिस तन्त्र में प्रजा को अपने विकास की सुविधा हो, उसकी शिक्षा-दीक्षा एवं जीविका अर्जन के लिये अच्छी व्यवस्था हो, अपनी रुचि के अनुसार धर्मपालन तथा अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता हो, वही तन्त्र प्रजा को मान्य होता है, वही चल सकता है। इतिहास बताता है कि कोई भी तन्त्र जब प्रजारञ्जन के लक्ष्य को पूरा करने में बाधक हुआ है तो उसके विरुद्ध जनद्रोह हुआ है और दूसरी व्यवस्था की स्थापना हुई है।

आज नेपाल में राजतन्त्र है और भारत में प्रजातन्त्र है, फिर भी दोनों देशों में सौहार्द है और दोनों एक दूसरे का सहयोग कर रहे हैं। भारत सभी देशों से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित

करने के लिये सचेष्ट है और ऐसा करने में ही वह अपनी परराष्ट्र नीति की सफलता मानता है।

नेपाल एक ऐसा राज्य है, जिसके साथ इस देश का अत्यन्त गहरा सांस्कृतिक सम्बन्ध है। दोनों देशों की एक ही जीवन दृष्टि है, एक ही प्रकार की सामाजिक रचना और धार्मिक आस्था है। इन दोनों देशों को वर्तमान राजनीतिक युग में अलग भले समझा जाय, किन्तु अपनी प्रकृति के अनुसार इन दोनों ही में एक परिवार जैसा सम्बन्ध है।

आज महाराजाधिराज के जन्म दिवस पर यह आशा व्यक्त करनी चाहिये कि दोनों देशों का सम्बन्ध मधुर से मधुरतर घनिष्ठ बनेगा और वर्तमान उदार शासन में वहाँ की प्रजा सुखी एवं समृद्ध होगी।

२९ दिसम्बर, १९७८

(ट) छात्रावासीय विचारगोष्ठी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के श्री शिवकुमार शास्त्री छात्रावास में दिनाङ्क २२-१२-७८ को एक आधिकारिक बैठक कुलपति की अध्यक्षता में हुई। बैठक में छात्रों के मानसिक विकास के लिये छात्रावास के वाचनालय कक्ष में प्रति पक्ष एक सांस्कृतिक गोष्ठी के आयोजन का निश्चय किया गया। साथ ही छात्रावास प्रशासन को स्वस्थ बनाने के लिये इसमें छात्रों को सक्रिय भाग देने का निर्णय हुआ। सभी खण्डों की व्यवस्था का कार्य देखने के लिये छात्र-कक्षपति के चुनाव का निश्चय हुआ।

प्रथम पाक्षिक गोष्ठी (५-१-७९)

उक्त निर्णयानुसार दिनाङ्क ५-१-७९ को गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती के उपलक्ष्य में एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, श्री शम्भुनाथ मिश्र, डा० श्रीकान्त पाण्डेय, श्री देवनारायण मिश्र आदि विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये। अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० त्रिपाठी ने कहा कि गुरु के नेत्रों के माध्यम से ही समस्त विद्यायें शिष्य के शरीर में व्याप्त हो जाती हैं। गान्धारी और दुर्योधन की कथा इसका उदाहरण है। उन्होंने छात्रों से अनुरोध किया कि वे अधिकाधिक गुरु सानिध्य प्राप्त करें तथा चित्तवृत्ति-निरोध-पूर्वक त्रिविध विद्यार्जनोपाय को प्रयोग में लायें। यही गुरुगोविन्द सिंह जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

सभा में श्री गार्गीप्रसाद मिश्र, रमेशकुमार पाण्डेय, रमेशचन्द्र द्विवेदी, त्रिभुवन मिश्र आदि छात्रों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। तदनन्तर कक्षपतियों का चुनाव सर्वसम्मति से किया गया। श्री गौरीशङ्कर शास्त्री, कृष्णकुमार शुक्ल, दिवाकर पाण्डेय, देवेन्द्र सिंह, रमेशचन्द्र द्विवेदी, जटाशङ्कर मिश्र, धरणीधर शर्मा, त्रिभुवन-मिश्र और ब्रह्मानन्द उपाध्याय को कक्षपति घोषित किया गया। श्री त्रिभुवन मिश्र को सांस्कृतिक मन्त्री भी घोषित किया गया। आगामी प्रतिपक्ष की अष्टमी को गोष्ठी के आयोजन हेतु तिथि निश्चित की गयी।

द्वितीय पाक्षिक गोष्ठी (२१-१-७९)

द्वितीय पाक्षिक गोष्ठी दिनाङ्क २१-१-७९ को डा० रामप्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में काव्यगोष्ठी के रूप में हुई। गोष्ठी में श्री रामबालकदास ने एक भजन सुनाया और श्री सुनीलकुमार शर्मा ने भोजपुरी में सरस्वती वन्दना का पाठ किया। रमेशचन्द्र द्विवेदी ने "यदि होता किन्नर नरेश मैं" कविता के समानान्तर ही "अगर कहीं मैं राजा होता" शीर्षक द्वारा छात्रों का भरपूर मनोविनोद करते हुए आधुनिक सभ्यता पर तीखा व्यंग्य किया। श्री रामराय निर्भर की "भगवान् याद तब आता है" कविता ने भगवदोन्मुख होने का सन्देश प्रदान किया। श्री राजेन्द्रप्रसाद अग्निहोत्री ने हल्दीघाटी से करुण रस भरी कवितायें सुनाकर श्रोताओं को आत्मविभोर कर दिया। श्री रमेशकुमार पाण्डेय, दिनेशचन्द्र भार्गव, कमलाशङ्कर मिश्र, त्रिभुवन मिश्र आदि छात्रों ने भी अपनी कविताओं द्वारा शृंगार, करुण, वीर, हास्य, अद्भुतादि रसों में श्रोताओं को मग्न कर दिया। डा० शम्भुनाथ मिश्र ने "मैं फूल हूँ गुलाब का" शीर्षक कविता द्वारा सम्पूर्ण मानव जीवन की कथा का चित्र श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने अध्यक्ष पद से छात्रों को काव्य-रचना की प्रेरणा देते हुए कहा कि हमें हिन्दी को सशक्त बनाने के लिये संस्कृत का सम्बल लेना ही होगा। इसके लिये संस्कृत काव्य साहित्य का गहन अध्ययन आवश्यक है।

गोष्ठी का संचालन श्री त्रिभुवन मिश्र ने किया। सफलता के लिये धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करते हुए आगामी गोष्ठियों में भी छात्रों से अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होने का उन्होंने निवेदन किया।

८ जनवरी, १९७९

(ठ) विद्यार्थी परिषद् के अधिवेशन में कुलपति द्वारा छात्रों को कर्तव्यदिशा का निर्देशन

[डी० ए० वी० कालेज, लखनऊ में विद्यार्थी परिषद् द्वारा आयोजित गोष्ठी में "छात्रों की कर्तव्यदिशा' विषय पर व्यक्त किये गये कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल के विचार]

दि० ८ जनवरी ७९ को डी० ए० वी० कालेज, लखनऊ, में विद्यार्थी परिषद् द्वारा आयोजित गोष्ठी में छात्रों की कर्तव्यदिशा विषयक समस्या पर भाषण करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति ने कहा कि सभाओं, गोष्ठिओं आदि में सम्मिलित होने में साधारणतया मेरी रुचि नहीं होती और मैं ऐसे अवसरों पर कतराने का प्रयत्न करता रहता हूँ; पर यहाँ आने का निश्चय करने में विद्यार्थी परिषद् का नया स्वरूप बड़ा सहायक हुआ है। विद्यार्थी परिषद् को उसके इस संकल्प के लिये मैं अभिनन्दित करना चाहता हूँ कि उसने देश के किसी भी राजनीतिक दल के साथ आसक्ति के रूप में अपना सम्बन्ध न रखने का तथा छात्रसंघों के चुनावों में भाग न लेने का निश्चय किया है।

अपने भाषण में श्री नानाजी देशमुख ने राष्ट्र के संरचनात्मक कार्यों में समर्पित होने की प्रेरणा दी है जो स्तुत्य एवं उपादेय है। इस सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि रचना, रक्षा और विध्वंस ये तीनों एक दूसरे से अत्यन्त अनुस्यूत हैं और ये तीनों क्रियायें एक साथ सदैव चलती रहती हैं। जैन दर्शन में तो सत्ता की यही परिभाषा ही बतायी गयी है—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"। यह कहना कठिन है कि निर्माण और विप्लव में किसकी महत्ता है, महान् निर्माणकर्ता है अथवा विप्लवकर्ता। भारतीय संस्कृति में तीन देवता माने गये हैं—रचनाकर्ता ब्रह्मा, रक्षक के रूप में विष्णु, संहर्ता के रूप में रुद्र। किन्तु संहर्ता को रुद्र शब्द से ही अभिहित करने में भारतीय आचार्यों की तुष्टि नहीं हुई। उन्होंने संहर्ता देव को शिव, शङ्कर, शब्दों से अभिहित कर उसे महादेव की संज्ञा प्रदान की है।

कालिदास ने "महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नाऽपरः" कह कर यह उद्घोष किया है कि रचयिता और रक्षक नहीं, अपितु संहर्ता देव ही महेश्वर हो सकता है। हमारे इस कथन का यह आशय नहीं है कि विद्यार्थियों को रचना से विमुख होकर विप्लव की ओर अग्रसर होना चाहिए। किन्तु कहने का आशय यह है कि कोई भी नवनिर्माण पूर्वस्थिति के विप्लव के ऊपर ही आधारित होता है। उर्वरा भूमि में बोये हुए टूटे बीज से ही अंकुर की उत्पत्ति होती है। भूमि को तोड़कर निकाली हुई मिट्टी से ही बड़े बड़े भवनों का निर्माण होता है। सोने चाँदी के टुकड़ों को तोड़कर ही अंगूठी कंगन आदि की रचना होती है।

विचार को आगे बढ़ाते हुए आपने कहा कि समाज और शासन में उत्पन्न विकृतिओं और संकीर्णताओं से संघर्ष करके ही नवीन समाज और सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की जा सकती है। अतः विद्यार्थी परिषद् का यह महत्त्वपूर्ण कर्तव्य होता है कि वह समाज और शासन में पैठे हुए दोषों को भली प्रकार से समझने का प्रयत्न करे और उन्हें दूर करने के लिये संघर्ष करे। किन्तु उसका वह संघर्ष सर्वदा रचनोन्मुख हो और राष्ट्र के मूल आधारों का रक्षक हो। अविवेकपूर्ण उत्साह और साहस से कोई भी संगठन भ्रष्ट हो सकता है। विद्यार्थी परिषद् उद्बुद्ध वर्ग की परिषद् है। अतः आशा है कि वह निर्माण और विप्लव के अर्थों को गम्भीरता से समझते हुए अपनी प्रवृत्तियाँ निर्धारित करेगी।

आज विद्यार्थी भविष्य का राष्ट्र नेता समझा जाता है। राष्ट्र का उत्थान उसकी योग्यता, कार्यक्षमता और उसके शौर्य पर अवलम्बित है। किन्तु विश्वविद्यालयों में आज जो गतिविधि देखी जा रही है, उससे पूरे राष्ट्र को निराशा है। आज स्थिति चिन्तनीय हो गयी है, क्योंकि बहुत से विद्यार्थी अध्ययन से विमुख होकर घेराव, प्रदर्शन, तोड़फोड़ आदि कार्यों के द्वारा उपलब्धियाँ अर्जित करना चाहते हैं। कक्षायें नहीं चल पा रही हैं। समय से परीक्षायें नहीं हो पा रही हैं।

अतः विद्यार्थी परिषद् का यह कर्तव्य होता है कि विश्वविद्यालयों से इन संकटों को दूर करने का प्रयत्न करे। यदि विद्यार्थी परिषद् इस कार्य में सफल हो जाती है तो निश्चित ही राष्ट्र के भविष्य के निर्माण में उसका यह अत्यन्त गौरवपूर्ण कार्य होगा।

१५-१७ जनवरी, १९७९

(ड) अखिल भारतीय वाक्पटुता प्रतियोगिता

'विश्वविद्यालय वार्ता' के गत अङ्क में अखिल भारतीय वाक्पटुता प्रतियोगिता की निर्णायक समिति का तथा उसके द्वारा चुने गये छात्रों का विषयानुसार परिचय प्रकाशित किया गया था। अखिल भारतीय संस्कृत वाक्पटुता प्रतियोगिता के लिये उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाली यह छात्र मण्डली सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के न्याय-वैशेषिक विभागाध्यक्ष डा० श्रीराम पाण्डेय के अभिभावकत्व में केन्द्रीय शिक्षामन्त्रालय द्वारा १५ जनवरी से गौहाटी में आयोजित त्रिदिवसीय कार्यक्रम में सम्मिलित हुई और अपने-अपने विषय के विशिष्ट वक्ताओं ने समीचीन प्रतिपादन युक्त अपने पक्षों को प्रस्तुत किया। संस्कृत भाषा पर अधिकार के लिये ऐसी प्रतियोगिता का तो महत्त्व है ही, इससे विचारों का भी विकास होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि विश्वविद्यालय के छात्रों ने अपनी संस्कृत विषयक योग्यता का वहाँ पूरा परिचय दिया। भविष्य में भी आशा है कि विश्वविद्यालय के छात्र इसी प्रकार प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहेंगे और दूसरों के लिये प्रेरणा के पात्र बनते रहेंगे।

१८ जनवरी, १९७९

(ढ) अरविन्द आश्रम द्वारा आयोजित संस्कृत समारोहों के सन्दर्भ में रामकृष्ण सांस्कृतिक सेवा संस्थान, कलकत्ता में परिसंवाद गोष्ठी का आयोजन

रामकृष्ण सांस्कृतिक सेवा संस्थान, गोलपार्क, कलकत्ता में १८-१-७९ को सायंकाल ६ बजे एक परिसंवाद गोष्ठी आयोजित हुई। इस गोष्ठी की संयोजिका थीं कला और शिक्षा के क्षेत्र में अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त विदुषी डा० रोमा चौधुरी। गोष्ठी का उद्‌घाटन पश्चिम बंगाल के राज्यपाल माननीय श्री त्रिभुवन नारायण सिंह ने किया; और आपने अपने भाषण में हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ तथा संस्कृत और संस्कृति के सम्बन्धों की घनिष्ठता बताते हुए संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिये समाज और शासन का आह्वान किया। स्वामी लोकेश्वरानन्द, श्री बदरीनाथ शुक्ल, कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा श्री नारायणचन्द्र भट्टाचार्य, सचिव, वंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद्, पश्चिम बंगाल, इस गोष्ठी में प्रमुख वक्ता थे। परिसंवाद का विषय था भारतीय संस्कृति में संस्कृत का स्थान।

माननीय राज्यपाल महोदय ने हिन्दी में, कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने संस्कृत में तथा अन्य दो वक्ताओं ने अंग्रेजी में अपने विचार प्रस्तुत किये। परिसंवाद गोष्ठी के संयोजकों के निर्देशानुसार संस्कृत की एकता-शक्ति विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि भारत एक अत्यन्त विशाल देश है। उसमें अनेक भाषाएँ, अनेक धार्मिक सम्प्रदाय, अनेक साधन पद्धतियाँ और अनेक जातियाँ-उपजातियाँ हैं। इन सभी विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत एक राष्ट्र है और उसकी एकता समूचे देश द्वारा स्वीकृत समान संस्कृति, समान जीवन दृष्टि और समान लक्ष्य पर निर्भर है। उसकी एकता के इन सभी साधनों की आधारपीठ है इस देश की प्राचीनतम मूल भाषा संस्कृत।

श्री शुक्ल ने प्रस्तुत विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए संस्कृत के सम्बन्ध में फैले हुए कुछ भ्रमों की चर्चा की और उन्हें दूर करने के लिये प्रबुद्ध श्रोताओं को सजग और सचेष्ट हो जाने के लिये कहा। आपने कहा कि बहुत दिनों से संस्कृत के विषय में यह भ्रम फैलाने की चेष्टा की जा रही है कि संस्कृत धर्म की और ब्राह्मणों की भाषा है। जिन लोगों ने संस्कृत के सम्बन्ध में उदार दृष्टि अपनायी है, उन लोगों ने भी उसे साहित्य की भाषा मानकर अपने विचारों की इतिश्री कर दी है। इस तथ्य को स्वीकार करने के लिये आगे आने वालों की संख्या बहुत कम है कि संस्कृत केवल धर्म की अथवा ब्राह्मणों की, किं वा साहित्य-मात्र की ही भाषा नहीं है, अपितु यह कभी लोक भाषा, राष्ट्रभाषा और मानव-मात्र की भाषा रही है। इसे देव-भाषा कहने का अर्थ यह नहीं है कि यह देवताओं की अथवा भूदेव ब्राह्मणों की भाषा है, किन्तु मनुष्यमात्र के लिये देव-निर्मित-भाषा होने के कारण इसे देवभाषा कहा गया है।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि भारतीय न्यायदर्शन की यह मान्यता है कि ईश्वर ने जब इस सृष्टि की रचना की और मनुष्यों को जन्म दिया, तो पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान द्वारा समाज रचना की सुविधा हेतु उसने मनुष्य के लिये भाषा की भी रचना की। इस प्रकार मनुष्य के लिये देव (ईश्वर) द्वारा निर्मित मूल भाषा देवभाषा कहलायी और यही बाद में प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना द्वारा विकसित होने पर संस्कृत शब्द से अभिहित हुई।

श्री शुक्ल ने कहा कि इस विशाल भारत राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने की शक्ति केवल संस्कृत भाषा में ही है। संस्कृत की इस अद्वितीय शक्ति के सम्बन्ध में आपने अनेक तर्क प्रस्तुत किये। आपने कहा कि संस्कृत वाङ्मय में मानव-जीवन के लिये धर्म को बड़ा महत्त्व दिया गया है और धर्म की बड़ी उदात्त परिभाषा बतायी गयी है। महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

इस वचन के अनुसार धर्म का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को जो बात अपने लिये अप्रिय लगे, उसे दूसरे के प्रति नहीं कहनी चाहिये। यह धर्म का निषेधात्मक रूप है। इसके अतिरिक्त इसका विध्यात्मक रूप भी है। जैसे कि—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
यद्यदात्मन इष्येत तत् परस्मै समाचरेत्॥

जो बात मनुष्य को अपने प्रति इष्ट हो, उसे दूसरों के लिये भी सुलभ करना चाहिये। धर्म की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि यदि मनुष्य दूसरों का अप्रिय नहीं करेगा, तो यह स्वाभाविक है कि दूसरा व्यक्ति भी उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करेगा। इस प्रकार धर्म के माध्यम से मानव मात्र में पारिवारिक भावना उत्पन्न होगी। इसी सन्दर्भ में श्री शुक्ल ने वेदव्यास के इस महत्त्वपूर्ण वचन को भी उद्‌धृत किया—

केचिद् वदन्ति जनहीनजनो जघन्यः
केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः।
व्यासोऽवदत् सकलशास्त्रविचारदक्षो
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥

व्यास ने यह कह कर उन लोगों की आलोचना की है, जो जनहीन और धनहीन लोगों को निन्दनीय मानते हैं। व्यास का अपना विचार है कि मनुष्य जन समर्थन अथवा महान् ऐश्वर्य का स्वामी होने से बड़ा और उसके अभाव में छोटा नहीं होता। छोटा और भाग्यहीन तो वह होता है जो कि नारायण के स्मरण से वंचित रहता है।

श्री शुक्ल ने कहा कि नारायण-स्मरण का अर्थ यह नहीं है कि घर के किसी कोने में, मन्दिर में, नदी के किनारे अथवा किसी साधु-सन्त के आश्रम में बैठकर नारायण के नाम का जप किया जाय; किन्तु इसका अर्थ यह है कि जैसे नारायण मनुष्य से कोई अपेक्षा किये बिना उसका सहायक और पालक होता है, अकारण सभी प्राणियों का मित्र है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अन्य मनुष्यों से कोई उपेक्षा किये बिना उनका सहायक और सुहृद् होना चाहिये। स्पष्ट है कि मनुष्य में यदि यह भावना उत्पन्न हो जाय, तो उसमें परस्पर किसी प्रकार की ईर्ष्या अथवा संघर्ष की स्थिति ही नहीं रहेगी।

श्री शुक्ल ने अपने विचार को आगे बढ़ाते हुये यह प्रतिपादन किया कि विश्व के अन्य भाषीय साहित्यों में मुख्य रूप से लोक-जीवन की ही प्रधानता स्वीकार की गयी है और भौतिक समृद्धि को ही मानव-जीवन का लक्ष्य बताया गया है। इस लक्ष्य को सामने रखने पर मनुष्य के मन में स्वभावतः यह आकांक्षा रहती है उसे विश्व में सर्वाधिक अधिकार, सर्वाधिक समृद्धि और सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये। स्पष्ट है कि इस लक्ष्य को लेकर अपने कर्तव्य की दिशा निर्धारित करने पर दूसरों को दबा कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करने को मनुष्य बाध्य होगा। इस स्थिति में मनुष्यों में परस्पर ईर्ष्या और संघर्ष अनिवार्य रूप से पनपेंगे और एकता की भावना जाग्रत न हो सकेगी। इसके विपरीत संस्कृत वाङ्मय में भौतिक उपलब्धियों को जीवन रक्षा के साधन के रूप में ही स्वीकार किया गया है। मानव का मुख्य लक्ष्य उस आनन्द को माना गया है, जिसकी प्राप्ति में सांसारिक विषयों की आवश्यकता नहीं होती।

श्री शुक्ल ने कहा कि इस प्रकार के आनन्द की मान्यता कोरी कल्पना नहीं है, किन्तु मनुष्य के प्रतिदिन के अनुभव के द्वारा यह प्रमाणित है। इस तथ्य को कौन व्यक्ति अस्वीकार करेगा कि मनुष्य जब संसार के विविध कार्यों को करते हुए थक जाता है, तब वह गम्भीर निद्रा की गोद में विश्राम करता है और उस समय उसे सांसारिक विषयों के अभाव में विलक्षण आनन्द की अनुभूति होती है। इससे स्पष्ट है कि सुषुप्ति से मनुष्य के सोकर उठने के बाद उसमें नई चेतना, नई स्फूर्ति और नवजीवन जैसी शक्ति का अनुभव होता है, यह उस अलौकिक आनन्द की ही अभिव्यक्ति है।

श्री शुक्ल ने ऐसे अनेक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए बताया कि संस्कृत वाङ्मय ने मनुष्य के सामने ऐसा लक्ष्य प्रस्तुत किया है और उसकी प्राप्ति के लिये ऐसे माध्यमों को व्यक्त किया है, जिनके द्वारा मनुष्यों में ईर्ष्या और संघर्ष की सम्भावना नहीं रहती। इसलिये संस्कृत भाषा को ही यह श्रेय प्राप्त है कि वह पूरी मानव जाति के एकत्व की भावना का आधार प्रस्तुत करती है।

इसी सन्दर्भ में श्री शुक्ल ने कहा कि भावनात्मक एकता को प्रस्तुत करने वाली यह संस्कृत भाषा कभी लोकभाषा और राष्ट्र-भाषा के रूप में भी मान्य थी। वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचार ही नहीं, कृषि, वाणिज्य (वार्ता), मृगया, ऋतुविज्ञान, बागवानी, हयपरीक्षा, गजपरीक्षा, रत्नपरीक्षा जैसे सामान्य लोक-व्यवहार के प्रचलित विषयों पर इस भाषा में असंख्य ग्रन्थ लिखे गये थे। संगीतशास्त्र, शिल्पशास्त्र, भवनमूर्ति-निर्माण प्रभृति ६४ कलाओं के निदर्शक ग्रन्थ आज भी उपलब्ध होते हैं। यात्रा, ग्रन्थलेखन विधि, भोरोत्थापन-विधि जैसे विषयों को भी संस्कृतज्ञों ने अपने लेखन का विषय बनाया था। इन सबसे यही प्रमाणित होता है कि संस्कृत भाषा लोक-जीवन की भाषा थी। यही भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। पूरा राष्ट्र इसी भाषा से अनुप्राणित और स्पन्दित होता था और आज भी पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने वाली यही एकमात्र भाषा है।

आपने संस्कृत को देवभाषा बताने के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि पारस्परिक व्यवहार के लिये मानव जाति को यही भाषा सर्वप्रथम प्राप्त हुई थी। एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक देश से दूसरे देश में जाने पर स्वभावतः जलवायु के प्रभाव से मनुष्य का उच्चारण बदल जाता है। आज भी हम देखते हैं कि विभिन्न प्रदेशों के संस्कृत विद्वानों द्वारा संस्कृत भाषा के उच्चारण में कुछ भिन्नता मिलती है। हमारे पूर्वज धर्मप्रचार, राज्यव्यवस्था, व्यापार आदि के निमित्त विभिन्न देशों में प्रवास करते रहे हैं। उनमें से कुछ जहाँ गये, वहीं बस भी गये थे। धीरे-धीरे उनका मूल देश से सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। आज उनके रीति-रिवाजों और भाषा में पर्याप्त अन्तर आ गया है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मूल देवभाषा संस्कृत का ही विभिन्न परिवर्तनों के साथ पूरी मानव जाति में प्रसार हुआ था। इस प्रकार यह देवभाषा संस्कृत ही मानव जाति की मूल भाषा है।

३० जनवरी, १९७९

(ण) श्रीमत् परमहंस संस्कृत महाविद्यालय के शिक्षाभवन का उद्घाटन

३० जनवरी, १९७९ को श्रीमत् परमहंस संस्कृत महाविद्यालय, टीकरमाफी, सुलतानपुर के नवीन शिक्षाभवन का उद्घाटन कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल द्वारा सम्पन्न हुआ। उद्घाटन के अवसर पर महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति के सदस्य, अध्यापक, छात्र, भू० पू० अमेठी नरेश तथा जनपद के सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। अन्य प्रमुख व्यक्तियों में श्री उमाशङ्कर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश, श्री रामचन्द्र झा, सहायक निरीक्षक, फैजाबाद क्षेत्र, श्री विश्वनाथ शुक्ल, अध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री सर्वेश्वर राजहंस, अध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री कुञ्जबिहारी शर्मा, भूतपूर्व अध्यक्ष-छात्रसंघ, संस्कृत विश्वविद्यालय आदि उपस्थित थे।

आरम्भ में समागत अतिथियों का स्वागत करते हुए भू० पू० राजा साहब अमेठी ने कहा कि कुलपति ने इस आश्रम में आकर जो हम लोगों को कृतार्थ किया तथा इस पवित्र आश्रम को सुशोभित किया, इसके लिये हम उनके आभारी हैं। राजा साहब ने कुलपति से आग्रह किया कि यदि इस आश्रम में वे प्रशिक्षण कक्षाओं की व्यवस्था करने की कृपा करेंगे तो इस क्षेत्र की जनता का महान् उपकार होगा।

श्री उमाशङ्कर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश ने कहा कि मुझे यहाँ आकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस तपस्थली में संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है, यह अत्यन्त प्रशंसनीय है। उन्होंने कहा कि कुलपति जी यद्यपि अस्वस्थ हैं, फिर भी इस आश्रम में आकर उन्होंने संस्कृत जगत् का महान् उपकार किया है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। उन्होंने आशा प्रकट की कि अगले मार्च के बाद यह विद्यालय 'क' वर्गीय विद्यालय की श्रेणी में निश्चित रूप से आ जायगा। आपने कहा कि इस आश्रम द्वारा संस्कृत भाषा की उन्नति के लिये किये जा रहे कार्यों में मुझे जो भी संभव सहायता हो सकेगी, अवश्य करूँगा।

कुलपति महोदय ने अपने भाषण में कहा कि सर्वप्रथम मैं उन दिवङ्गत महन्त जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ जिनकी तपस्या एवं सत्प्रयास से यह आश्रम संस्कृत जगत् का महान् उपकार करता है। ऐसे पवित्र आश्रम में इस क्षेत्र के बालक युवक शिक्षित होकर निकल रहे हैं, यह बड़ी बात है।

संस्कृत भाषा की प्राचीनता की ओर संकेत करते हुए आपने कहा कि संस्कृत भाषा में राजनीति, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि समस्त विषयों का समावेश है। संस्कृत भाषा में विज्ञान की चर्चा करते हुए उन्होंने रामायण का एक प्रसंग प्रस्तुत किया। संस्कृत भाषा में वैज्ञानिक चमत्कारों की पुष्टि करते हुए आपने कहा कि यह मानना कि यह सब कल्पना है, नितान्त भ्रामक है। समय के परिवर्तन के साथ धारणाएँ बदलती जाती हैं। इसी का दुष्परिणाम है कि आज संस्कृत भाषा में निहित तत्त्वों की उपेक्षा हो रही है।

आपने कहा कि आज इस संसार में जितनी भाषाएँ उपलब्ध हैं, उनमें से बहुत संस्कृत भाषा की विकृति हैं। संस्कृत भाषा को हम लोगों को प्रयास पूर्वक जानना चाहिए। इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए। एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब इस भाषा को पढ़नेवालों को समाज में अच्छा स्थान प्राप्त होगा। आपने उपस्थित छात्रों की ओर सङ्केत करते हुए कहा कि संस्कृत भाषा के अध्ययन के साथ उच्च विचार, नैतिकता, उचित वेशभूषा और विनय का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी से संस्कृत की शिक्षा सार्थक हो सकती है।

आश्रम के प्राचीन छात्र श्री कुञ्जबिहारी शर्मा ने अपने भाषण में कहा कि इस आश्रम के माध्यम से संस्कृत भाषा का जो प्रचार-प्रसार हो रहा है वह निःसङ्कोच प्रशंसनीय है। मैं कुलपति महोदय से निवेदन करना चाहूँगा कि इस आश्रम में प्रशिक्षण की कक्षाएँ प्रारम्भ कराने में वे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान कर आश्रम को कृतार्थ करेंगे। श्री शर्मा ने अन्त में सभी अभ्यागतों एवं विशेष रूप से कुलपति महोदय के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

(त) शोक सभाएँ

विश्वविद्यालय के कर्मचारियों श्री नन्दिनाथ मिश्र, सूचीकार, श्री सतीशचन्द्र चौधरी कार्यालय सहायक तथा श्री रामराज और श्री भगवत्प्रसाद मिश्र (भू०पू० वेदविभागाध्यक्ष) के दिवङ्गत होने पर विश्वविद्यालय में शोक सभा आयोजित हुई और विश्वविद्यालय परिवार ने अपनी संवेदनाओं को प्रकट करते हुए उनके सम्बन्ध में निम्नाङ्कित शोक प्रस्ताव पारित किये :—

श्री नन्दिनाथ मिश्र

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिखितानुभाग के परम्परागत विद्वान् श्री नन्दिनाथ मिश्र का आकस्मिक निधन दिनाङ्क १६-१२-७८ को उनके वाराणसी स्थित आवास पर हो गया। आप न्याय और साहित्य के प्राचीन परम्परा के विद्वान् थे और कई ग्रन्थों का सम्पादन भी किया था। सरस्वती भवन में 'वैठ' नामक एक ऐसे परम्परागत वैदिक सम्प्रदाय की गुत्थी को आपने सुलझाया था, जिस पर आज तक इससे पूर्व कोई कार्य नहीं हुआ था। दुःख का विषय है कि यह पुस्तक उनके जीवन काल में प्रकाशित न हो सकी। श्री मिश्र अत्यन्त सरल एवं कोमल प्रकृति के व्यक्ति थे और अपने काम तथा विषय में दक्ष थे। आप अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं।

विश्वविद्यालय के अध्यापकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं छात्रों की यह सभा भूतभावन श्री भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री सतीशचन्द्र चौधरी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कर्मचारी श्री सतीशचन्द्र चौधरी का आकस्मिक निधन दिनाङ्क १-१२-७८ को प्रातः ९-१५ बजे हो गया। श्री चौधरी केन्द्रीय कार्यालय में कार्यालय सहायक पद पर अत्यन्त ही कुशलता, तत्परता एवं लगन के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते रहे। वे सन् ७२ तक विश्वविद्यालयीय सेवा में रहे और तत्पश्चात् सेवा निवृत्त हुए थे। उनका निधन हृदय गति रुकने से हो गया। श्री चौधरी अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं। यह सभा भूतभावन श्री भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहने की शक्ति प्रदान करें।

श्री रामराज

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कर्मचारी श्री रामराज का निधन दिनाङ्क १९-१२-७८ को हो गया। श्री रामराज विश्वविद्यालयीय सेवा से लगभग ३ वर्ष पूर्व निवृत हुए थे। उन्होंने जिस लगन, उत्साह और तत्परता से विश्वविद्यालय की सेवा की उसे एक आदर्श कहा जा सकता है। वे अपने पीछे एक भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं। यह सभा भूतभावन श्री भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री भगवत्प्रसाद मिश्र

वेद के प्रख्यात विद्वान श्री भगवत्प्रसाद मिश्र के निधन पर विश्वविद्यालय परिवार की यह सभा हार्दिक शोक प्रकट करती है। श्री मिश्र मूलतः राजस्थान के निवासी थे। वाराणसी उनकी शिक्षा एवं कर्म भूमि थी। भूतपूर्व राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काशी और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में वेद विभाग के अध्यक्ष के रूप में रह कर उन्होंने अध्ययन-अध्यापन द्वारा वेद विद्या का संरक्षण किया है।

उनके निधन से यह विश्वविद्यालय, वाराणसी नगर तथा संस्कृत विद्वत् समाज अपूरणीय शून्यता का अनुभव कर रहा है। नियमित सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी अग्निहोत्री के रूप में विश्वविद्यालय के साथ उनका सम्बन्ध उनके जीवन के अन्तिम क्षण तक रहा है और विश्वविद्यालय उनकी विद्वत्ता एवं कर्मठता से निरन्तर लाभ उठाता रहा है। उनके अवसान से देश के वैदिक समाज तथा याज्ञिक समाज का बहुत बड़ा क्षेत्र शोकमग्न है। देश के विभिन्न विभागों में कार्यरत उनके सैकड़ों छात्र शोकमग्न हैं।

विश्वविद्यालय परिवार उनके निधन से होने वाली वैदिक अध्ययन-अध्यापन की क्षति का आकलन कर अत्यन्त खिन्न है।

यह सभा श्री मिश्र के दिवङ्गत आत्मा के लिये शाश्वत शान्ति तथा उनके कुटुम्ब को इस विपत्ति को सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए भूतभावन श्री भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है।

परिशिष्ट

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में संकायों का संगठन

सरकारी गजट, उत्तर प्रदेश (असाधारण) में दिनाङ्क २० दिसम्बर, १९७८ को प्रकाशित अधिसूचना संख्या ५९८७/१५-१०-७८-५ (३)-७६, दिनाङ्क २० दिसम्बर, १९७८ द्वारा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथम परिनियमावली दिनाङ्क २६, दिसम्बर १९७८ से प्रवृत्त हो गयी है। उक्त परिनियमावली के परिनियम संख्या ७-०१ से १२ द्वारा विश्वविद्यालय में निम्नलिखित संकाय गठित किये गये हैं :—

(क) वेद-वेदाङ्ग संकाय

(ख) साहित्य-संस्कृति संकाय

(ग) दर्शन संकाय

(घ) श्रमण विद्या संकाय

(ङ) आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय

(च) आयुर्वेद संकाय

विभिन्न संकायों के वर्तमान संकायाध्यक्षों, उनके अन्तर्गत आने वाले विभागों, उनके विभागाध्यक्षों और विभिन्न विभागों के अन्तर्गत (विद्यापरिषद् के निर्णयानुसार) आने वाले विषयों का विवरण निम्नलिखित है :—

(क) वेद-वेदाङ्ग संकाय — संकायाध्यक्ष—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

१. वेद विभाग — विभागाध्यक्ष—डा० गोपालचन्द्र मिश्र

२. धर्मशास्त्र विभाग (धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड और पौरोहित्य) — विभागाध्यक्ष—श्री सूर्यनारायण उपाध्याय

३. ज्यौतिष विभाग — विभागाध्यक्ष—डा० मुरारीलाल शर्मा

४. व्याकरण विभाग (प्राचीन व्याकरण और नव्य व्याकरण) — विभागाध्यक्ष—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

(ख) साहित्य-संस्कृति संकाय — संकायाध्यक्ष—डा० पारसनाथ द्विवेदी

१. साहित्य विभाग (साहित्य और ललितकला—संगीत) — विभागाध्यक्ष—डा० कैलासपति त्रिपाठी

२. पुराणेतिहास विभाग — विभागाध्यक्ष—डा० पारसनाथ द्विवेदी

३. प्राचीनराजशास्त्र-अर्थशास्त्र विभाग — विभागाध्यक्ष—श्री रमागोविन्द पाण्डेय

(ग) दर्शन संकाय — संकायाध्यक्ष—डा० देवस्वरूप मिश्र

१. न्यायवैशेषिक विभाग — विभागाध्यक्ष—डा० श्रीराम पाण्डेय

२. सांख्य-योग-तन्त्र-आगम विभाग — विभागाध्यक्ष—श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी

३. पूर्वमीमांसा विभाग	विभागाध्यक्ष—रिक्त
४. वेदान्त विभाग	विभागाध्यक्ष—डा० देवस्वरूप मिश्र
५. तुलनात्मक धर्म-दर्शन विभाग (सर्वदर्शन और तुलनात्मकदर्शन)	विभागाध्यक्ष—डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी
(घ) श्रमण विद्या संकाय	संकायाध्यक्ष—श्री जगन्नाथ उपाध्याय
१. बौद्धदर्शन विभाग	विभागाध्यक्ष—श्री रामशङ्कर त्रिपाठी
२. जैनदर्शन विभाग	विभागाध्यक्ष—रिक्त
३. पालि एवं थेरवाद विभाग (पालि, थेरवाद एवं संस्कृत प्रमाणपत्र)	विभागाध्यक्ष—श्री जगन्नाथ उपाध्याय
४. प्राकृत एवं जैनागम विभाग (प्राकृत, जैनागम, अर्धमागधी और अपभ्रंश)	विभागाध्यक्ष—रिक्त
(ङ) आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय	संकायाध्यक्ष—डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी
१. आधुनिक भाषा एवं भाषा-विज्ञान विभाग	विभागाध्यक्ष—डा० सत्यव्रत शर्मा
२. सामाजिक विज्ञान विभाग (आधुनिक राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, इतिहास, भूगोल, पुरातत्त्व और भारतीय संस्कृति)	विभागाध्यक्ष—श्री शम्भुनाथ मिश्र
३. शिक्षाशास्त्र विभाग	विभागाध्यक्ष—डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी
४. विज्ञान विभाग (विज्ञान और गृहविज्ञान)	विभागाध्यक्ष—डा० सनतकुमार सरकार
५. ग्रन्थालय विज्ञान विभाग	विभागाध्यक्ष—पुस्तकाध्यक्ष

(च) **आयुर्वेद संकाय** : इसके अन्तर्गत आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसी है। महाविद्यालय के प्राचार्य इसके संकायाध्यक्ष होंगे और इसमें निम्नलिखित विभाग होंगे—

१. शरीर विभाग
२. द्रव्यगुण विभाग
३. रसशास्त्र-भैषज्य कलपना विभाग
४. कायचिकित्सा विभाग
५. शल्य-शालाक्य विभाग
६. प्रसूति, स्त्री, बालरोग तथा अगदतन्त्र विभाग
७. आयुर्वेद संहिता और आधारभूत सिद्धान्त विभाग।

अभ्यागत विद्वानों की नियुक्ति

उच्च अध्ययन, अध्यापन और शोध के स्तर की रक्षा के लिये विश्वविद्यालय अनुभव-समृद्ध वयोवृद्ध विद्वानों का ससम्मान सहयोग लेता रहता है। ये विद्वान् ज्ञान की विशिष्ट शाखाओं में ज्ञानार्थियों, जिज्ञासुओं और अनुसन्धित्सुओं तथा विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान करते हैं। विश्वविद्यालय उनके ज्ञान से लाभान्वित होता है। सम्प्रति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने हिन्दी के विख्यात साहित्यकार, संस्कृत साहित्य शास्त्र के मर्मज्ञ और मनीषी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को एक मास के लिये अभ्यागत आचार्य के रूप में आमन्त्रित किया है। द्विवेदी जी शोधार्थियों को निर्देश देने के अतिरिक्त छात्रों और अध्यापकों के लिये उपयोगी विशिष्ट व्याख्यान भी देंगे।

इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत श्री विजयप्रसाद शर्मा और श्री शिवशंकर त्रिपाठी को एक माह के लिये अभ्यागत आचार्य के रूप में नियुक्त किया गया है। आप लोग वैष्णव सम्प्रदाय और ज्ञान की अन्य सम्बद्ध सरणियों में छात्रों को निर्देश देंगे तथा अध्यापन करेंगे।

अपने अपने विषयों के निम्नलिखित अधिकारी विद्वानों को ३१ मार्च, १९७९ तक के लिये आमन्त्रित किया गया है—

१—श्री रामनन्दन ओझा
२—,, रामवदन शुक्ल
३—,, गोविन्द पाण्डेय
४—,, रामप्रीति द्विवेदी
५—,, शशिधर शर्मा
६—,, रामनाथ सारस्वत
७—,, शेषराज शर्मा
८—,, श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

विश्वविद्यालय वार्ता के लिये आर्थिक सहयोग देनेवाले महानुभाव

विश्वविद्यालय वार्ता के संरक्षक कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल तथा विश्वविद्यालय परिवार की ओर से उन महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जा रही है, जिन्होंने वार्ता के सारस्वत आयोजन में योग प्रदान किया है। ये महानुभाव निम्नांकित हैं :—

१—स्वामी शान्तानन्द जी महाराज, श्री परमहंस संस्कृत महाविद्यालय, टीकरमाफी, सुलतानपुर।	रु० ५०१-००
२—श्रीमती मूर्तिमती देवी, धनघटा, कोहरा, बस्ती।	" १०१-००
३—श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।	" १०१-००
४—श्री रामलखन पाण्डेय, प्रधानाचार्य, देवी सम्पत् आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर।	" १०१-००
५—श्री रमापति त्रिपाठी (फलहारी जी) अभ्यागत आचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
६—श्री चन्द्रदेव मणि त्रिपाठी, प्रधानाचार्य, गौरीशङ्कर संस्कृत महाविद्यालय, सुजानगंज जौनपुर।	" १०१-००
७—श्री जगन्नाथ उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
८—डा० राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय, धर्मशास्त्रविभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
९—श्री अशोककुमार सिंह, सहदेव संस्कृत महाविद्यालय, महराजगंज, गाजीपुर।	" ११३-००
१०—डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" ११५-००
११—डा० बृजलाल वर्मा, सदस्य, लोक सेवा आयोग. उत्तर प्रदेश, १० स्टेनली रोड, इलाहाबाद।	" १०१-००
१२—प्रधानाचार्य, मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालय, अस्सी, वाराणसी।	" ११३-००
१३—प्रधानाचार्य, श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, श्री वैष्णवाश्रम, दारागंज, प्रयाग।	" १०१-००
१४—श्री ज्वाला प्रसाद गौड़, प्रधानाचार्य, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, अपारनाथ मठ, वाराणसी।	" ११३-००
१५—श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघंटा, वाराणसी।	" ५०१-००
१६—अध्यापक वृन्द, गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघंटा, वाराणसी।	" १०१-००
१७—डा० विष्णु शर्मा, दिल्ली।	" ११६-००
१८—श्री साधुवेला, संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।	" ५०१-००
१९—डा० देवस्वरूप मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०५-००
२०—श्री रामावतार मिश्र, सहायक निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी।	" १०१-००
२१—डा० आद्याप्रसाद मिश्र, उपाचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
२२—श्री सर्वेश्वर राजहंस, अध्यापक, न्यायवैशेषिक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
२३—डा० किशोरदास, दर्शन विभागाध्यक्ष, साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
२४—श्री युधिष्ठिर कुमार, प्रवक्ता, दर्शन विभाग, साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००
२५—सुश्री रामेश्वरी मालवीया, प्रधानाचार्य, लक्ष्मी विद्यापीठ, लखनऊ।	" १०१-००
२६—श्री सिद्धनाथ त्रिपाठी वैद्य, मिर्जापुर।	" १०१-००
२७—श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी, प्रधानाचार्य, श्रीमत् स्वामी राघवेन्द्रानन्द सरस्वती संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।	" १०१-००

२८—डा० परमेश्वर दत्त मिश्र, रुधौली, पो० रुद्रनगर, जि० बस्ती । — १०१-००

२९—डा० शिवप्रसाद मिश्र, प्रवन्धक, संस्कृत पाठशाला, महुलानी, बस्ती । — १०१-००

३०—श्री अभिरामदास वेदान्ताचार्य, जगत्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य आश्रम, जूनागढ़, गुजरात । — १०५-००

३१—श्रीमती विन्दुमती त्रिपाठी, ग्राम, गुरुपुरम्, पो० बरौंव, ज़िला इलाहाबाद । — १०५-००

३२—श्रीमती शोभा द्विवेदी, ग्राम व पोस्ट सुरापुर, जौनपुर । — १०१-००

'विश्वविद्यालय वार्ता' के लिये प्राप्त होनेवाली धनराशि का खाता इलाहाबाद बैंक की संस्कृत विश्वविद्यालय स्थित शाखा में 'विश्वविद्यालय वार्ता' के नाम से खोला गया है। वार्ता को उक्त रूप में आर्थिक योगदान देने वाले सज्जनों से निवेदन है कि कृपया वे उक्त खाते के नाम से बैंक ड्राफ्ट भेज सकते हैं। भेजने वाले सज्जनों का नाम वार्ता के अगले अंक में प्रकाशित होगा। १०१ रुपया देने वाले सज्जन वार्ता के आजीवन सदस्य होंगे और ५०१ रुपया देने वाले विशिष्ट आजीवन सदस्य माने जायेंगे।

363.40
18.00
381.40
18.00
399.00

वर्ष : १—अङ्क : ४

विश्वविद्यालय वार्ता

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

संरक्षक	प्रकाशक	सम्पादक
श्री बदरीनाथ शुक्ल	श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी	श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी
कुलपति	कुलसचिव	श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	श्री शंभुनाथ मिश्र
वाराणसी	वाराणसी	डा० श्रीप्रसाद

वर्ष : १ अङ्क : ४ आषाढ, सं० २०३६ जून, १९७८

विषय-सूची

सरस्वती भवन के लिये विश्वविद्यालय द्वारा ज्ञानपिपासुओं का आवाहन

अये चिरपरिश्रान्ता विद्याकान्तारचारिणः ।
समागच्छत वस्तृप्तिं करोमि ज्ञानधारया ।।

शुभकामनाएँ

Rajendra Prasad
Professor of Philosophy

Indian Institute of Technology
Kanpur
Department of Humanities and
Social Sciences
January 18, 1979

Thank you so much for sending me a copy of your journal 'Vishwavidyalaya Varta.' I have gone through it and found it very well edited and systematic. It gives a good account of the activities of Sampurnananda Vishwavidyalaya. I hope this practice of yours will be continued and will get success.

WITH BEST WISHES.

YOURS SINCERELY
R. Prasad

श्री एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय
मैनपुरी
दिनांक ५-२-७९

आपका पत्र दिनांक १२-९-७९ का 'विश्वविद्यालय वार्ता' के साथ प्राप्त हुआ। पत्रिका के सन्दर्भ में इतना लिखना ही पर्याप्त समझता हूँ कि संस्कृत जगत् में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने 'विश्वविद्यालय वार्ता' नामक पत्रिका के माध्यम से संस्कृत जगत् को अपनी गतिविधियों की जानकारी देकर एक नई दिशा प्रदान की है, जिसके लिए संस्कृत पाठशालाएँ चिरकाल से प्रतीक्षित थीं।

भवदीय,
ह० प्रधानाचार्य

❀ श्री राधासर्वेश्वरो विजयते ❀

'क' वर्गीय
श्री निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय
वृन्दावन, मथुरा (उ० प्र०)
दिनांक ६-२-७९

आप द्वारा प्रेषित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस पत्रिका का प्रकाशन बहुत ही प्रेरणाप्रद रहेगा। इसके माध्यम से अनायास ही संस्कृत विश्वविद्यालय सहित संस्कृत जगत् सम्बन्धी बहुत सी बातों की जानकारी विद्यालय के अध्यापकों एवं छात्रों को प्राप्त होती रहेगी।

इतिहास साक्षी है कि युगों तक इस देश के राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृत के विद्वानों का नेतृत्व था और सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य था। 'सैनापत्यं च राज्यं च·····' ही नहीं, 'सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति' की घोषणा थी। आज की पृष्ठभूमि में उक्त घोषणा कहाँ तक सार्थक है?

मेरी विनीत प्रार्थना है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के द्वारा 'वार्ता' के माध्यम से पुनः उक्त गौरव प्राप्त कराने तथा संस्कृत के पण्डितों में पुनः उक्त योग्यता प्रतिष्ठित कराने के लिए क्रान्तिकारी प्रयास होना चाहिये।

भवदीय,
वैद्यनाथ झा
(प्रधानाचार्य)

श्री दुर्गायै नमः

श्री दुर्गाजी महाविद्यालय, चण्डेश्वर
आजमगढ़
दिनांक १०-२-७९

श्रीमतां विश्वविद्यालयात् प्रकाशिता द्वितीया प्रतिः 'विश्वविद्यालयवार्ता' प्राप्ता। तां पत्रिकामाद्यापान्तमहमपठम्। अनेन कार्येण संस्कृतजगतो विकासो भविष्यति, एवं मयाऽनुभूयते।

भवतां कृपापात्रम्,
अमरनाथपाण्डेयः
(प्रधानाचार्यः)

❀ श्रीमते रामानुजाय नमः ❀

श्री रङ्गलक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय
वृन्दावन, मथुरा
दिनांक ११-२-७९

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक प्राप्त हुआ। एतदर्थं धन्यवाद।

वास्तव में 'विश्वविद्यालय वार्ता' का प्रकाशन संस्कृत जगत् के लिए ही नहीं, अपितु शिक्षा जिज्ञासुओं एवं प्रेमियों के लिए भी एक स्तुत्य प्रयास है। इस अवलोकन से विश्वविद्यालय संगोष्ठियों, उत्सवों, जयन्तियों एवं अन्य क्रिया-कलापों का दिव्य दर्शन सहज ही प्राप्त हो जाता है। इस अंक में विश्वविद्यालयीय गतिविधियों के अलावा माननीय श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद द्वारा प्रस्तुत प्राच्य संस्कृत शिक्षा की गतिशीलता तथा विकास के जो प्रामाणिक आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं. वे उन लोगों के लिए एक खुली चुनौती हैं, जो संस्कृत भाषा के प्रति सद्भाव नहीं रखते।

अन्त में भगवान् श्री गोदारगमन्नार के चरणों में प्रार्थना है कि वे आपके इस प्रयास को आशातीत सफलता प्रदान करें और 'विश्वविद्यालय वार्ता' त्रैमासिक न होकर मासिक प्रकाशन के रूप में प्रारम्भ हो।

'विश्वविद्यालय वार्ता' के माननीय संरक्षक, प्रकाशक एवं सम्पादक-मण्डल बधाई के पात्र हैं।

आपका,
प्राणगोपालाचार्य
(कार्यवाहक प्रधानाचार्य)

आदर्श रानी चन्द्रावती श्यामा
महाविद्यालय
कचौड़ी गली, वाराणसी
दिनांक १३-२-७९

'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक तथा उसके साथ संलग्न आपका पत्र यथासमय प्राप्त हुआ। कुछ दिनों पूर्व इसका प्रथम अंक भी प्राप्त हुआ था। दोनों अंकों का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने पर मुझे ऐसा लगा कि विश्वविद्यालयीय समस्त सूचनाओं एवं योजनाओं की जानकारी इस पत्रिका से अवश्यमेव हो जायेगी। महामान्य आदरणीय कुलपति जी, श्रीमान् कुलसचिव महोदय एवं आप सभी इस कार्य के लिए अभिनन्दनीय हैं।

आपने इस पत्रिका के लिए कुछ सुझाव भी आमन्त्रित किये हैं। एतदर्थ मेरा यह सुझाव है कि सम्बद्ध महाविद्यालयों के निमित्त एक स्थायी स्तम्भ होना चाहिए। इस स्तम्भ में महाविद्यालयों के विकास की सूचना और उनके संवर्द्धन और परिवर्द्धन के उपाय हों। शिक्षण सम्बन्धी नवीनतम सूचनाएँ भी हों।

इस प्रकाशन के लिए यह महाविद्यालय परिवार अतिशय सन्तुष्ट हो अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त करता है।

भवदीय,
डा० नरेश झा
(प्रधानाचार्य)

श्री सदाशिव केन्द्रीय संस्कृत
विद्यापीठ, पुरी, उड़ीसा
दिनांक ३-३-७९

आपके १२-१-७९ के पत्र के साथ 'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालय के परिचय एवं गतिविधियों के बारे में इस पत्रिका से पूर्ण जानकारी मिलती है। इस सम्बन्ध में आपका प्रयास सराहनीय है।

आशा है इस पत्रिका से विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा और बढ़ेगी।

आपका,
जयदेव गांगुली
(प्रधानाचार्य)

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश)

'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक पाकर अति प्रसन्नता हुई। अंक सुन्दर, उपयोगी तथा संग्रहणीय है।

भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में जो स्थान काशी नगरी का रहा है, शिक्षण संस्थाओं में वैसा ही अग्रगण्य नाम वाराणसी के संस्कृत विश्वविद्यालय का है। अपनी गौरवशाली ऐतिहासिक परम्पराओं तथा शिक्षा जगत् के लिए स्पृहणीय एवं अनुकरणीय स्थापना के साथ यह संस्था अपने कर्मवीर शिक्षकों की विद्वत्ता, ज्ञान-गरिमा और उद्भाविनी मनीषा के दिव्यालोक में विकासपथ पर निरन्तर अग्रसर होती जा रही है।

अध्यवसाय, स्वाध्याय, सेवा और साधना के पथ पर जो आदर्श संस्कृत विश्वविद्यालय प्रस्तुत करता आ रहा है, वह नितान्त श्लाघ्य एवं अनुकरणीय है।

'विश्वविद्यालय वार्ता' के माध्यम से विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठियों, समारोहों तथा अन्यान्य क्रिया-कलाओं का विवरण प्रस्तुत कर संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में आपके द्वारा किया जाने वाला प्रयास स्तुत्य है।

सत् प्रयत्नों की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

भवदीय,
जगद्बहादुर सिंह
(अध्यक्ष, संस्कृत विभाग)

ज्योतिश्शास्त्रभूषण,
प० नारायण चौथमल शास्त्री, ज्योतिषी
साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, ज्योतिषतीर्थ, सं० साहित्यरत्न,
प्राचार्य, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, धार (म० प्र०)

श्री मंगलप्रद ज्योतिष कार्यालय
८, भोज मार्ग, (शनि गली २) धार (म० प्र०)
दिनांक ९-३-७९

॥ श्री ॥

आपकी 'विश्वविद्यालय वार्ता' पत्रिका प्राप्त हुई। अवलोकन से महती प्रसन्नता हुई। यह विश्वविद्यालय प्राचीन काल से परम्परागत संस्कृत साहित्य शिक्षा का विश्वमान्य केन्द्र रहा है। आशा है इस 'विश्वविद्यालय वार्ता' रूपी सन्देश से भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में नवीन जागृति होगी।

ऐसी आशा से आप सभी मेरी अनेकानेक शुभकामनाएं स्वीकार करें।

श्रीमताम्,
नारायणः

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
मोतीलाल नेहरू पार्क, इलाहाबाद
दिनांक २२-३-७९

आपका पत्र तथा 'विश्वविद्यालय वार्ता' पत्रिका प्राप्त हुई। धन्यवाद। संस्कृत के क्षेत्र में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के द्वारा किये जाने वाले विविध कार्यों के परिज्ञान के लिये यह अत्यन्त उपयोगी है। सम्पादन बहुत अच्छा है और सामग्री पठनीय है। यदि अपने यहाँ दी गई शोध उपाधियों के शोध प्रबन्धों का सार तथा वर्तमान में किये जानेवाले शोध कार्यों की सूची भी इसमें प्रकाशित कर सकें तो हमारे जैसे शोध संस्थानों के लिये और उपयोगी होगी।

भवदीय,
गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्य

स्वामी देवानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय
देवाश्रम मठ, लार, देवरिया (उ० प्र०)
दिनांक २-४-७९

आपकी 'विश्वविद्यालय वार्ता' का द्वितीय अंक प्राप्त हुआ। इस पत्रिका के प्रकाशित होने से उत्तर-प्रदेश ही नहीं, अपितु पूरे संस्कृत जगत् का विशेष लाभ देखा जा रहा है। यदि इस दिशा में इसी तरह सक्रिय कार्य होता रहा, तो निश्चय ही संस्कृत जगत् का परस्पर समन्वयपूर्वक विकास कार्य सम्पन्न होता रहेगा।

अतः इसके लिये हम पूरे संस्कृतज्ञ सम्पादक मण्डल एवं विश्वविद्यालय के आभारी रहेंगे। विकास की द्योतक यह पत्रिका आगे बढ़ती रहे, यही मेरी शुभकामना है।

भवदीय,

ब्रह्मानन्द पाण्डेय
(प्रधानाचार्य)

'विश्वविद्यालय वार्ता' की समीक्षा

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विश्वविद्यालय वार्ता' त्रैमासिक के दो अंकों को देखने का अवसर मिला। यह मात्र विश्वविद्यालय की गतिविधियों, विभागीय कार्यक्रमों का लेखा-जोखा नहीं है और न सूचना का माध्यम ही है।

गो कि यह सचित्र त्रैमासिक मात्र इसी उद्देश्य के लिए निकाला जा रहा है। आज यूनेस्को, भारत तथा राज्य सरकारों के सहकार से अन्य संगोष्ठियाँ तथा परिचर्चाएँ आयोजित हो रही हैं, जिनमें अपने-अपने विषयों के मूर्धन्य और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विशेषज्ञ भाग लेते हैं। ऐसे अवसरों के पूर्ण विवरण समाचार पत्रों के माध्यम से प्राप्त नहीं हो पाते।

लेकिन विश्वविद्यालयों के ऐसे मुखपत्र इन विचारों को सामान्य जिज्ञासुओं तक पहुँचा सकते हैं। हमें सन्तोष है कि इन दो अंकों में बड़े ही सन्तुलित ढंग से ऐसे विवरण भी दिये गये हैं।

संगोष्ठियों और समारोहों के अवसर पर विद्वानों द्वारा व्यक्त विचारों का सम्यक् प्रचार होना ही चाहिये। आचार्य बदरीनाथ शुक्ल के कुलपतित्व में यह अनेक उपयोगी और प्रशंसनीय कार्यों में से एक उत्तम कार्य है।

अत्यन्त सुव्यवस्थित, सन्तुलित और आकर्षक ढंग से सामग्री तैयार करने और उसके प्रस्तुतीकरण के लिए सम्पादक मण्डल को बधाई दी जा सकती है। इसमें उनकी सुरुचिपूर्ण दृष्टि का भी परिचय मिलता है।

धर्मशील चतुर्वेदी
'जनवार्ता' दैनिक पत्र, दिनांक १८.३.७९

सम्पादकीय

'विश्वविद्यालय वार्ता' का चौथा अंक प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के साथ 'वार्ता' का एक वर्ष पूरा होता है। पत्रिका के लिए एक वर्ष शिशु-वर्ष माना जा सकता है। पर वर्ष पूरा होते-होते पत्रिका ने अपनी लोकप्रियता के कारण वयस्क रूप ग्रहण कर लिया है। विद्वत् समाज और सुधी पाठकों ने 'वार्ता' को बड़ी सहृदयता के साथ स्वीकार किया है।

'वार्ता' के प्रवेशांक में ही इस बात का उल्लेख किया गया था कि विश्वविद्यालय की इस मुखपत्रिका के मूल में कुलपति जी की प्रेरणा विशेष रूप से रही है। वस्तुतः उनकी प्रेरणा 'वार्ता' को अनवरत रूप से प्राप्त है। चौथे अंक में कुलपति जी की एक महत्त्वपूर्ण योजना की सूचना दी गई है। लम्बे अरसे से विदेशी शासन के सम्पर्क में रहने के कारण भारतवासी अपने स्वत्व को ही जैसे भूल गए हैं। वे अपने नव वर्ष के स्थान पर पाश्चात्य नव वर्ष मनाकर उल्लास का अनुभव करते हैं। जो अपना नहीं है, उस पर कैसा उल्लास ? कुलपति जी ने प्रथम चैत्र से आरम्भ होने वाले वर्ष को नव वर्ष के रूप में मनाने के आग्रह के साथ इस अवसर पर देश के गण्यमान्य महानुभावों को नव वर्ष की शुभकामना भेजी। इस शुभकामना परम्परा का हार्दिक स्वागत हुआ और जिन्होंने भी भारतीय नव वर्ष पर शुभकामना प्राप्त की, बदले में उन्होंने भी शुभकामना और बधाई प्रेषित की। सहृदय महानुभावों ने भारतीय वर्ष को नव वर्ष माना। 'वार्ता' के माध्यम से यह परम्परा और व्यापक होगी, ऐसी आशा स्वाभाविक है।

'विश्वविद्यालय वार्ता' विश्वविद्यालय के स्वरूप को स्पष्ट करती है। यह विश्वविद्यालयीय गतिविधियों को रेखांकित करती है। भविष्य में 'वार्ता' विश्वविद्यालय के आकलन और इतिहास-अन्वेषण में सहयोगी बन सकती है।

'वार्ता' इसी रूप में गतिशील रहेगी। सम्पादकों को आशा है कि वार्ता को सहृदय और सुधी पाठकों का सहयोग बराबर प्राप्त होता रहेगा। 'वार्ता' का लक्ष्य है—'हमको जाना दूर वहाँ तक, जिसके आगे राह नहीं'।

इसी के साथ हम भी अपने पाठकों को नव वर्ष की शुभ कामना प्रेषित करते हैं, क्योंकि इसी अंक में नव वर्ष का सन्दर्भ है।

आधुनिक परीक्षा पद्धति और संस्कृत शिक्षा की समस्याएँ

इस समय देश में मुख्यरूप से तीन प्रकार की परीक्षाएँ प्रचलित हैं—एक विभिन्न कक्षाओं की वार्षिक परीक्षा, दूसरी चिकित्सा, तकनीकी आदि कतिपय विषयों के अध्ययनार्थ प्रवेश के लिये परीक्षा और तीसरी विभिन्न सेवाओं के लिये प्रतियोगिता परीक्षा। इन परीक्षाओं में पहली परीक्षा वर्षों से उत्तरोत्तर दूषित होती जा रही है। परीक्षार्थियों द्वारा अवैधानिक साधनों के प्रयोग का परिहार कठिन होता जा रहा है। अन्य दो परीक्षाएँ भी उक्त दोषों से पूर्णतया अछूती नहीं रह गई हैं। फिर भी उनकी स्थिति अभी ऐसी अवस्था में नहीं पहुँची है, जिससे उनकी उपयोगिता को अस्वीकार किया जा सके। किन्तु पहली परीक्षा की उपयोगिता समाप्तप्राय है। उसमें जो कुछ व्यय किया जा रहा है, वह छात्रों के अभिभावकों, संस्थाओं और शासन के लिए निरर्थक वहन की वस्तु हो गया है तथा विद्यार्थी समुदाय एवं उन परीक्षाओं से सम्बद्ध निरीक्षक, केन्द्राध्यक्ष और परीक्षकों की नैतिकता अवांछनीय रूप से प्रभावित होती जा रही है, जिसके फलस्वरूप भावी पीढ़ी का वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय जीवन दोनों का पतन अनिवार्य प्रतीत हो रहा है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस स्थिति के सुधार के लिये किसी नवीन प्रणाली का अन्वेषण किया जाय। एतदर्थ कुलपतियों, शिक्षानिदेशकों और उपाधि महाविद्यालयों के प्राचार्यों का एक सम्मेलन बुलाकर अथवा उच्च कोटि के शिक्षाविदों और अधिकारियों की एक समिति गठित कर इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श द्वारा कोई निर्णय लिया जाना उचित हो सकता है।

इस विषय में हमारा अभिमत यह है कि वार्षिक परीक्षाएँ, जो विविध उपद्रवों का केन्द्र हो चली हैं, समाप्त कर दी जायँ और परीक्षाओं के प्रमाण पत्र देने की अपेक्षा छात्रों को कक्षीय उपस्थिति के आधार पर प्रमाणपत्र दिये जायँ। अन्य दो परीक्षाओं में प्रवेश के लिये यह नियम बना दिया जाय कि जिन छात्रों को ७५ प्रतिशत कक्षीय उपस्थिति का प्रमाणपत्र उपलब्ध हो, उन्हीं को अन्य दो परीक्षाओं में प्रवेश प्राप्त होगा। कक्षीय उपस्थिति के प्रमाणपत्र प्राप्त करने में अवैधानिक आधार का प्रवेश न हो, एतदर्थ अन्य दो परीक्षाओं में प्रवेशार्थी छात्रों के सम्बन्ध में कक्षोपस्थिति का प्रमाणपत्र देने वाली शिक्षा संस्थाओं से उनके गोपनीय चरित्र प्रमाणपत्र भी प्राप्त किये जायँ और सभी शिक्षा संस्थाओं के प्रधानों को शासन की ओर से यह निर्देश दे दिया जाय कि जिनके सम्बन्ध में कक्षोपस्थिति तथा उनके सम्बन्ध में गोपनीय प्रमाणपत्र देने में त्रुटि की जाने की जानकारी प्राप्त होगी, उनके प्रति शासन की ओर से कठोर कार्यवाही की जायगी, जो सेवा-समाप्ति तक सम्भव हो सकेगी।

उक्त आशय का प्रस्ताव कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल ने मुख्यमन्त्री, उत्तरप्रदेश प्रशासन, शिक्षामन्त्री, भारत सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के पास भी भेजा था। मुख्यमन्त्री जी ने दि० ७ मई, १९७९ के पत्र में इस विषय पर विचार करने का आश्वासन दिया है। शिक्षामन्त्री जी ने ४ जून, १९७९ के अपने पत्र में लिखा है कि मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुरोध कर रहा हूँ कि वे आपके सुझावों पर विचार करें। आयोग के अध्यक्ष डा० सतीशचन्द्र ने अपने दि० २८ मई, १९७९ के पत्र में लिखा है कि आपके विचार अनुदान आयोग के परीक्षा सम्बन्धी विचारों के बहुत निकट हैं। उक्त विचारों की महत्ता इससे स्पष्ट हो जाती है।

प्राचीन भारत में शलाका परीक्षा प्रणाली सर्वोपरि मान्य थी। इस प्रणाली में निर्धारित ग्रन्थ अथवा ग्रन्थों के किसी भी भाग से यथेच्छ मौखिक प्रश्न पूछे जाते थे। इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ही अध्येता विशिष्ट विद्वानों की श्रेणी में अपना स्थान बना पता था। तक्षशिला, पाटलिपुत्र जैसे विश्वविश्रुत शिक्षा-प्रतिष्ठानों में इसी तरह की परीक्षा उत्तीर्ण कर वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, कात्यायन प्रभृति ने महर्षि की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। राज-दरबारों, मठ-मन्दिरों में भी इस तरह की परीक्षा में उत्तीर्ण अध्येता ही प्रवेश पा सकते थे।

समय गतिशील है। काशी में भी आज से लगभग १०० वर्ष पहले सन् १८८० में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्वरूप राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में तत्कालीन प्रिंसिपल डाक्टर जी० थीवो के कार्यकाल में संस्कृत शिक्षा के लिये आधुनिक परीक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ। किन्तु उस समय परीक्षा का मानदण्ड बहुत ऊँचा था। उस वर्ष आचार्य परीक्षा में प्रविष्ट १९ छात्रों में से केवल ३ छात्र ही सफल हो सके। इस नूतन परीक्षा प्रणाली में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। परीक्षार्थी छात्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही है और इसका पर्याप्त मात्रा में क्षेत्र विस्तार भी हुआ है। प्रारम्भ में यह परीक्षा केवल काशी तक सीमित थी। अब उत्तरप्रदेश और उसके बाहर सहस्राधिक पाठशालाएँ इस परीक्षा से सम्बद्ध हैं और पूरे उत्तरी भारत में इसके शताधिक केन्द्र हैं। निकट भविष्य में हम 'आधुनिक संस्कृत परीक्षा प्रणाली के सौ वर्ष' शीर्षक से 'वार्ता' के पाठकों के समक्ष इसका विवरण प्रस्तुत करेंगे। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का कार्यक्षेत्र केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, विदेशी संस्थाएँ भी अधिनियम के आधार पर इससे सम्बद्ध की जा सकती हैं।

हमारे लिये प्रस्तुत प्रसंग में सर्वाधिक अवधेय विषय यह है कि छात्र संख्या और केन्द्र संख्या में पर्याप्त वृद्धि होने पर भी, संख्या और क्षेत्र का विस्तार होने पर भी, संस्कृत शिक्षा का मानदण्ड तेजी से गिरता जा रहा है। यह एक शोचनीय स्थिति है। यही स्थिति चलती रही तो कुछ समय बाद संस्कृत शिक्षा की प्राचीन प्रणाली की विशेषता प्रौढ़ पाण्डित्य का तथा ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक पद का अभिप्राय समझाने वाली प्रतिभा का अकाल पड़ जायगा। इस विभीषिका की ओर से हमें अभी से सचेत हो जाना चाहिये।

२४ फरवरी, १९७९

विश्वविद्यालयीय समारोह

महामना मदनमोहन मालवीय, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एवं डॉ० सम्पूर्णानन्द के चित्रों का अनावरण

दिनाङ्क २४-२-७९ को विश्वविद्यालय में महामना प० मदनमोहन मालवीय, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी तथा डा० सम्पूर्णानन्द के विशाल चित्रों के अनावरण हेतु एक आयोजन किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष की इस कार्य हेतु सहमति प्राप्त हो गयी थी, किन्तु अतर्कित उपनत विशेष कारणों से न आ सकने की उन्होंने सूचना दी। अतः विश्वविद्यालय के अनुरोध पर प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह जी के कर-कमलों द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। सभा की अध्यक्षता कुलपति आचार्य बदरीनाथ शुक्ल ने की।

इन तीनों महाविभूतियों के चरित्र का व्याख्यान प्रस्तुत करने के उद्देश्य से एतदर्थ एक परिसंवाद गोष्ठी का भी आयोजन किया गया, जिसके उद्घाटन कर्ता उत्तर-प्रदेश लोक सेवा आयोग के सदस्य डा० वृजलाल वर्मा थे तथा महामना के चरित्र को व्यक्त करने के लिए आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का व्याख्यान प्रस्तुत करने के लिए प्रो० मुकुटबिहारी लाल तथा डा० सम्पूर्णानन्द के चरित्र को उजागर करने हेतु काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो० राजाराम शास्त्री आमन्त्रित थे।

सांगीतिक मङ्गलाचरण तथा विश्वविद्यालय के कुलगीत गान के पश्चात् परिसंवाद गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए कुलपति प्रो० शुक्ल ने कहा कि किसी भी विश्वविद्यालय का परमोद्देश्य है विद्या तथा शील के आदर्श की स्थापना करना। अर्थात् वह अपने यहाँ ऐसी व्यवस्था करे कि वहाँ विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा तथा शील एवं चरित्र की प्राप्ति हो सके। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को आचार्य का आदर्श सर्वदा सुलभ है, किन्तु विज्ञान एवं राजनीति बहुल इस युग में यह प्रश्न बराबर प्रस्तुत होता है कि अतीत के महापुरुषों को छोड़कर इस युग के आदर्शभूत पुरुष कौन हैं, जिनके अनुकरण से विद्या तथा शील का आदर्श प्रतिष्ठित हो सकता है। मेरी दृष्टि से ये तीन महापुरुष : महामना मालवीय, राष्ट्रपिता गाँधी जी तथा डा० सम्पूर्णानन्द जी हैं और इनके चरित्र के अनुकरण से विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपने जीवन को समुन्नत तथा परिष्कृत बना सकते हैं। अतः विश्वविद्यालय ने यह संकल्प लिया कि इन महापुरुषों के विशाल चित्र बनवाकर उनके अनावरण का उत्सव आयोजित किया जाय और इस सन्दर्भ में व्याख्यान प्रस्तुत करने हेतु तीन विशिष्ट व्यक्तियों को आमन्त्रित करके एक परिसंवाद गोष्ठी भी आयोजित हो। इसी दृष्टि से यह समारोह हो रहा है।

इन तीनों महापुरुषों में से सर्वप्रथम महामना का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए आपने कहा कि महापुरुषों के नाम, चरित्र तथा गुण-गण में वैशिष्ट्य होता है और इस दृष्टि से विचार करने पर महामना पूर्णरूप से भारतीय सनातन संस्कृति के प्रतीक थे। इनका सम्पूर्ण जीवन भारत की सभ्यता तथा संस्कृति से ओत-प्रोत था तथा राष्ट्र के प्रति इनके जीवन में सत्यनिष्ठा विद्यमान थी। हमारे विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि इनका अनुकरण कर अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करें।

राष्ट्रपिता गाँधी जी मानवता के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं और उनका व्यक्तित्व परमोदात्त है। इस देश को न केवल आपने स्वाधीनता प्राप्त कराई, अपितु इसे अपने अतीत के गौरव को स्मरण करने के लिए भी बाध्य किया। साथ ही मुनियों की परम्परा में विद्यमान साधना पद्धति की ओर भी भारतीय जन को प्रेरित किया। प्रत्येक कार्य में भारतीय संस्कृति के गौरवमय गुणगणों का आश्रय लेकर सर्वधर्म समन्वय की भावना से प्रेरित होते हुए भारतीय समाज में इन्हें प्रतिष्ठित करने का आपने अथक प्रयत्न किया और सही अर्थों में राष्ट्रपिता होने के साथ आप मानवता के भी पिता थे। आपकी जीवनचर्या के अनुकरण मात्र से किसी भी व्यक्ति का जीवन धन्य हो सकता है।

यह विश्वविद्यालय डा० सम्पूर्णानन्द की मूर्तिमान् कीर्ति है। आप संस्कृत भाषा तथा उसके शास्त्रों में वर्णित अनूठी भावनाओं एवं परिकल्पनाओं के उन्नायक थे। भाषा भावों के प्रकटीकरण का सर्वोत्कृष्ट साधन है। इस दृष्टि से आपकी यह मान्यता थी कि अतीत के सर्वोत्कृष्ट भाव जिस संस्कृत भाषा के माध्यम से व्यक्त हैं, उसका विशेष अध्ययन परमावश्यक है और इसी दृष्टि से प्राचीन परम्परा को स्पष्ट करने हेतु इस विश्वविद्यालय की आपने स्थापना की थी। इससे सम्पूर्ण देश की दृष्टि संस्कृत विद्या की ओर आकृष्ट हुई। भारतीय साधना आपको कुल परम्परा के रूप में

प्र.[illegible] थी । अतः इनके आदर्श को अपने जीवन में उतारना हम सभी का लक्ष्य होना चाहिए ।

इस प्रकार इन तीन महापुरुषों के जीवन-चरित्र को व्यक्त करने के लिए क्रमशः आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी, प्रो० मुकुट-[illegible] लाल तथा प्रो० राजाराम शास्त्री को आमन्त्रित किया गया है और यह कार्य परिसंवाद गोष्ठी के रूप में होगा । महाराज काशीनरेश द्वारा इन चित्रों का क्रमशः अनावरण होगा । यह कहते हुए श्री शुक्ल ने आमन्त्रित अतिथियों का स्वागत किया और परिसंवाद गोष्ठी के उद्घाटन हेतु डा० वृजलाल वर्मा से अनुरोध किया ।

गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए डा० बृजलाल वर्मा ने कहा कि ऐसे किसी मंच पर काशी में उपस्थित होने का यह मेरा दूसरा अवसर है और इसके लिए मैं कुलपति जी का आभारी हूँ । काशी के विद्वद्वृन्द के समक्ष बोलने में पहले मन में भय आया, किन्तु विद्वानों से सुना था कि सरस्वती के उपासक को डरना नहीं चाहिए । आज जिस बृहत्त्रयी की चर्चा होने जा रही है, उसका भी सर्वत्र निर्भय रहने का सन्देश है । अतः मैंने सोचा कि यदि मैं इस आमन्त्रण को भय के मारे स्वीकार नहीं करूँगा तो मेरा परिष्कार कैसे होगा । इसी भाव से प्रेरित होकर इच्छापूर्वक यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।

संसार में दो प्रकार के लोग हैं—एक तो वे जो अपने में ही मुरझा कर रह जाते हैं और दूसरे वे जिन पर विद्वानों की कृपा होती है और जो अपनी बात कह गुजरते हैं । वक्ताओं के प्रति समादर भाव की सम्प्रति कमी देखी जाती है, फिर भी इस पवित्र अवसर पर मैं कुछ कहने की धृष्टता कर रहा हूँ ।

विचार इस निखिल ब्रह्माण्ड में एक यात्री के रूप में यात्रा करता है । यह यात्रा गन्तव्यहीन नहीं होती, अपितु इसका गन्तव्य सुनिश्चित होता है तथा यह आचार पर प्रतिष्ठित होती है । महापुरुष वे हैं, जिनके पास जाकर आचार भी प्रतिष्ठित हो जाय । वे दर्शन के बहुत ही सन्निकट होते हैं और उनके पास पहुँचकर विचार भी धन्य हो जाते हैं । इन विचारों के प्रभाव सदैव अनुकूल नहीं होते । ये दोमुहाँ अर्थात् अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार के होते हैं । इस सन्दर्भ में उन्होंने श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री मोहम्मद अली जिन्ना की अगाध राष्ट्रनिष्ठा को व्यक्त करते हुए विचारों के आनुकूल्य तथा प्रातिकूल्य की व्याख्या प्रस्तुत की और इस सन्दर्भ में यह कहा कि जब विचार पूर्ण परिणति को नहीं प्राप्त करता या अधूरा रह जाता है, तो उद्देश्य में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त होती । इस कथन को आपने निम्नांकित शेर का उल्लेख करके स्पष्ट किया—

ऐसेवैसे कैसे कैसे हो गये ।
कैसे कैसे ऐसेवैसे हो गये ॥

इस शेर में प्रथम पंक्ति के द्वारा उत्कर्ष और द्वितीय पंक्ति के द्वारा अपकर्ष का संकेत प्राप्त होता है । इस सन्दर्भ में इन तीनों महापुरुषों के व्यक्तित्व के सार की व्याख्या करते हुये डा० वर्मा ने कहा कि इनके द्वारा यही मन्त्र अपनाया गया कि अपना जितना समाज के पास चला जाय, वही वास्तविक अपना है । अर्थात् स्वत्व का जो विसर्जन समष्टि के चरणों में हो जाय, वही वास्तविक है । इसका सार यह है कि अपना सम्पूर्ण विसर्जन समाज के लिए किया जाय । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, महामना मालवीय जी तथा डा० सम्पूर्णानन्द ने समाज को अपना सर्वस्व ही दे दिया और इन तीनों की कीर्ति के रूप में यहाँ काशी विद्यापीठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, ये तीन विश्वविद्यालय स्थापित हैं । महापुरुषों के संकल्प तथा उनकी निष्ठा गौरवमय होती है । वे सर्वस्व त्याग का संकल्प लेते हैं और समाज की प्रत्येक वस्तु को अपना मानते हैं । ऐसे दृढ़संकल्प, सत्यनिष्ठ एवं उदारमना व्यक्तित्व वाले लोग महापुरुष कहे जाते हैं । ये कार्य कितने बड़े हैं, इसको हम इसी सामान्य वस्तु से माप सकते हैं कि दूसरों के लिए झोपड़ी बनाना भी एक बड़ा कार्य होता है ।

यदि नाम पर ही विचार करें, तो गाँधी जी मोहनदास करमचन्द थे और मालवीय जी मदनमोहन थे । इन दोनों ने काम, क्रोध तथा मद को मोड़ने का प्रयोग किया । इनके सर्वस्व त्याग के पीछे योग की भी साधना का पुट विद्यमान था । सम्पूर्णानन्द जी तो सम्पूर्ण आनन्द के ही प्रतीक थे । गाँधी जी विश्ववन्द्य थे । मालवीय जी मानववन्द्य तथा सम्पूर्णानन्द जी समाजवन्द्य थे । हमें स्मरण है कि किस विरोध के बावजूद डा० सम्पूर्णानन्द जी ने बनारस के स्थान पर हमें वाराणसी दिया । ये तीनों अपने विचारों को लेकर आगे चले और उससे कभी भी नहीं डिगे । यह सत्य ही है कि प्राणसंकट की स्थिति उत्पन्न होने पर भी महापुरुषों के स्वभाव में विकार नहीं आता ।

इन शब्दों के साथ आपने गोष्ठी का उद्घाटन किया । इस औपचारिक उद्घाटन के पश्चात् महापुरुषों के वयक्रम से उनके चरित्र के व्याख्यान प्रस्तुत हुए और प्रत्येक व्याख्यान के पश्चात् प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह ने सन्दर्भित महापुरुष के चित्र का अनावरण किया ।

महामना प० मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी ने कहा कि यह एक विशिष्ट आयोजन है । महापुरुषों के नामकीर्तन से वाणी पवित्र होती है तथा हृदय निर्मल और शुद्ध हो जाता है । इधर मैंने

प्रतिकुलाधिपति डॉ० विभूतिनारायणसिंह देव शर्मा द्वारा अनावृत चित्र
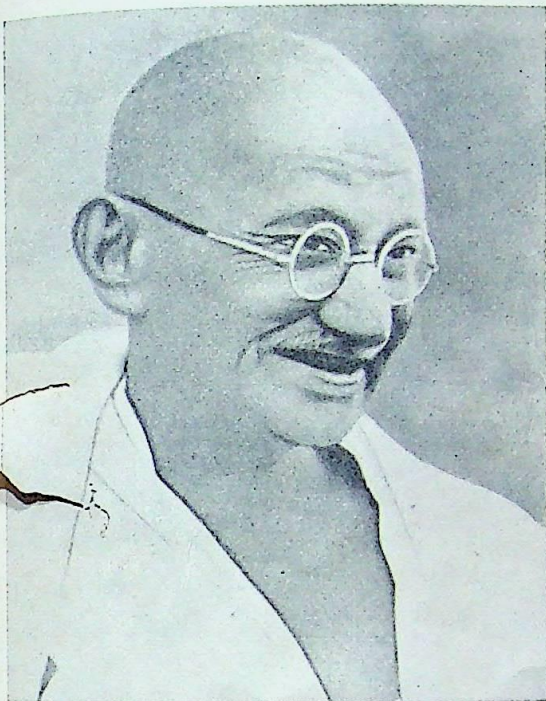
महात्मा गाँधी

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

डॉ० सम्पूर्णानन्द

सभाओं में भाषण देने से वैराग्य ले लिया था। लेकिन ऐसा आयोजन कराकर कुलपति श्री शुक्ल ने मेरे इस व्रत को तुड़वा दिया। महामना के साथ मुझे सन् १९२४ से १९४६ तक रहने का गौरव प्राप्त रहा है और हिन्दू विश्वविद्यालय के उनके द्वारा निर्मित एवं संचालित करने के कार्य के अध्ययन करने का सुअवसर सुगमता के साथ मिला है। साथ ही उनकी कृपा से अनेक महाविभूतियों से सम्पर्क करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मालवीय जी के प्रति मेरी यह धारणा है कि निश्चित ही वे कोई ऐसे विशेष देवदूत थे, जो स्वर्ग से आकर अपना कार्य पूर्ण कर चले गये।

जब उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय को स्थापित करने की योजना बनाई थी, तो इनके साथी इनका परिहास करते थे। उनकी आर्थिक स्थिति यह थी कि घर में अच्छी तरह खाने-पीने की सुविधा भी विद्यमान न थी और महामना बताते थे कि बाल्यकाल में अक्सर वे बासी रोटी मट्ठे के साथ खाकर पढ़ने चले जाते थे। इस प्रकार की परिस्थितियों में पला हुआ बालक ऐसी परिकल्पना करे कि प्रयाग से काशी तक गंगा किनारे विद्या के अध्ययन के लिए आश्रम केन्द्रों की स्थापना होगी, तो इसे एक देवदूत की ही कल्पना माननी होगी।

काशी परम्परा से ही विद्या की नगरी रही है और यहाँ एक विश्वविद्यालय की कल्पना करना तथा उसे स्वरूप प्रदान करना अन्य नगरियों में इस कार्य को करने से कठिन है, क्योंकि यहाँ पर विद्या का मापदण्ड पूर्ण रूप से पहले से ही प्रतिष्ठित है। अतएव अपने संकल्प को पूर्ण करने हेतु सर्वप्रथम महामना ने प्रयाग के पुण्य स्थल संगम पर एक लाख गायत्री जप का पुरश्चरण किया और उसके पश्चात् इस कार्य में प्रवृत्त हुए। सर्वप्रथम काशी में काशिराज की अध्यक्षता में सभा का आयोजन हुआ और उनके प्रस्तावों को सुनकर महाराज ने सहर्ष भूमिदान दिया। परन्तु प्रारम्भ में महाराज की इस सन्दर्भ में आशंका बनी रही कि विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में मालवीय जी की कल्पनायें अत्यन्त विस्तृत तथा विशाल हैं और वे व्यावहारिकता से परे हैं। बात यह थी कि प्रारम्भ में ही महामना ने इस विश्वविद्यालय के विशाल स्वरूप का खाका प्रस्तुत किया था और इसका मानचित्र केवल उनके मानसिक धरातल पर ही नहीं था, अपितु उन्होंने योजनाबद्ध रूप से इसके विस्तृत स्वरूप के मानचित्र को खिंचवाकर प्रस्तुत भी किया था, जिसे लोग देखते थे और दर्शकों के मन में यह आशंका होती थी कि क्या यह योजना कभी पूर्ण हो सकेगी। जब सर सुन्दरलाल से उन्होंने इसकी चर्चा की, तो इस चर्चा के उपरान्त वे उनसे अक्सर पूछा करते—मालवीयजी, आपका खिलौना विश्वविद्यालय (टॉय युनिवर्सिटी) कब बनेगा? यह प्रश्न स्पष्ट करता है कि बहुत से संभ्रान्त लोगों की भी यह धारणा थी कि महामना की कल्पना का यह विश्वविद्यालय पूर्ण नहीं हो सकेगा और यह कार्य मालवीय जी के बूते के बाहर है।

किन्तु महामना अपनी धुन के पक्के थे और वे बराबर इस विषय पर सोचते रहते थे कि इस कार्य को कैसे पूर्ण किया जाय। वकालत प्रारम्भ करने के कुछ दिनों पश्चात् इसमें इन्हें ख्याति [illegible] हो रही थी और आर्थिक उपलब्धियाँ भी प्राप्त हो रही थीं। परन्तु विश्वविद्यालय की चिन्ता इस कार्य में अवरोध उत्पन्न कर रही थी। इस दृष्टि से खिन्न होकर एक दिन इनके पिता ने कहा—"मदनमोहन, या तो तुम वकालत करो या विश्वविद्यालय ही बनाओ। ये दोनों कार्य एक साथ नहीं चल सकते।" इस पर महामना ने तत्काल ही अपनी जमी हुई वकालत छोड़ने का निर्णय किया और सर्वप्रथम इसके लिए अपने पिता से ही चंदा माँगा। पिताजी ने भी इसके लिए ५१) रु० चंदा स्वरूप दिये। जो व्यक्ति दरिद्रता में पला था, बाल्यकाल में बासी रोटी तथा मट्ठा खाकर अपने अध्ययन में प्रवृत्त था और एक रुपये के वजीफे को प्राप्त करने के लिए ३ मील पैदल जाता था, जिसने दरिद्रता के आनन्द का ही वरण किया था, उसने वैभव के आते ही अपने उच्च आदर्श तथा शिक्षा के स्वप्न को साकार करने हेतु उसे तिलाञ्जलि दे दी। इसी की ओर इंगित करते हुए प्रयाग उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने कहा था—मालवीय जी ने अपने कब्जे में आती हुई गेंद को छोड़ दिया। इसी की ओर संकेत करते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि त्याग मालवीय का ही है।

विश्वविद्यालय की स्थापना के इनके व्रत का सम्पूर्ण देश ने आन्दोलन के रूप में स्वागत किया और उस समय १ करोड़ ३४ लाख रुपयें की धनराशि मात्र इनकी वाणी के बल पर एकत्रित हो गई। विश्वविद्यालय के लिए चंदा एकत्र करने के सम्बन्ध में भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनके स्मरण और श्रवण मात्र से ही व्यक्तियों के नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। एक बार ये अमृतसर में एक संभ्रान्त व्यक्ति के यहाँ चंदा लेने गये। उनके साथ लखनऊ के श्री मुल्ला भी थे। वहाँ सबने जलपान किया, किन्तु मालवीय जी ने नहीं किया। आग्रहपूर्वक कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि निश्चित दान की प्राप्ति के पश्चात् ही जलपान कर सकेंगे। इस पर उक्त महानुभाव ने मालवीय के सामने खाली चैक बुक रख दी और कहा कि यह चैक मेरे द्वारा हस्ताक्षरित है, इस पर चाहे जो धनराशि भर लीजिये। दान प्राप्त करने पर ही मालवीय जी ने जलपान किया।

जहाँ तक अपना प्रश्न है, इन्होंने सर्वस्व दान कर दिया था और विश्वविद्यालय में किसी भी पद पर अपने किसी सम्बन्धी को नहीं रहने दिया। श्री रमाकान्त मालवीय के जामाता प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण थे और डा० राधाकृष्णन् के कुलपति काल में अध्यापक

पद पर उनका चयन हो गया था। मालवीय जी ने इस चयन का विरोध किया ! यह भी एक आदर्श है । क्या हम लोग ऐसा करने में समर्थ हैं ?

किसी भी विद्यार्थी के किसी कार्य का उत्तरदायित्व महामना अपने ऊपर ले लेते थे । मुरादाबाद का एक ऐसा छात्र था, जो सम्पन्न परिवार का था पर वह परीक्षा देने योग्य न था । महामना ने उसके सम्पूर्ण उत्तरदायित्व को अपने ऊपर लेकर इस कार्य को पूर्ण किया । इसी प्रकार माननीय जगजीवन राम के पढ़ने की व्यवस्था आपने व्यक्तिगत रुचि लेकर की थी ।

विद्यार्थियों की सहायता करने में वे कभी भी नहीं हिचकते थे । एक बार श्री युगलकिशोर बिरला ने किसी छात्र के सम्बन्ध में, जिसके अंक कम थे, विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु संस्तुति की । मालवीय जी ने इस सम्बन्ध में उस पत्र के साथ अपनी संस्तुति भिजवा दी । ये सब उदाहरण उनकी उदारता, परोपकारिता तथा निःस्वार्थ सेवाभाव को उद्घाटित एवं प्रकाशित करते हैं ।

शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी यह मान्यता थी कि इसका यह प्रकार होना चाहिए कि विद्यार्थियों को इसमें प्रत्येक क्षेत्र में अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सके । इसी दृष्टि से मुख्य अध्ययन के साथ-साथ छात्रों के लिए प्रति रविवार को गीता के उपदेश तथा एकादशी कथा आदि का आयोजन उन्होंने कराया था । वे श्वेत वस्त्र के समर्थक थे । एक बार मैंने काली सदरी पहन रखी थी । इस पर उन्होंने प्रश्न किया कि काला रंग किस ग्रह का रंग है ? मैंने उत्तर दिया—शनि का रंग है । इस प्रश्नोत्तर से ही मैं जान गया कि काले वस्त्र धारण करना उचित नहीं है । श्वेत में सभी रंगों के तत्व उपस्थित रहते हैं, अतः इसे ही धारण करना उचित है । उनकी यह मान्यता विज्ञान समर्थित भी थी ।

विलायत जाने पर भी भारतीयता को उन्होंने नहीं छोड़ा और सर्वत्र वे इसके प्रतीक रूप में ही प्रस्तुत होते थे । सभा में माला पहनाने पर वे उसे वहाँ नहीं उतारते थे । उज्जैन में एक बार ऐसे अवसर पर जब मैंने माला उतार कर सामने की मेज पर रख दी तो उन्होंने मुझे बताया कि ऐसा करना पुष्पों का तथा माला पहनाने वाले का अपमान है । इस सन्दर्भ में प्रयाग के उर्दू के प्रसिद्ध शायर नूह नारवी के शेर का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि माला क्यों नहीं उतारना चाहिए । तब से मैं भी ऐसे अवसरों पर धारण की गई माला को उस समय नहीं उतारता हूँ ।

वे बड़े ही भावुक थे । उनके चिन्तामणि शरीर में केवल हृदय ही हृदय था । इस सन्दर्भ में आचार्य चतुर्वेदी ने कई घटनाओं का उद्धरण देते हुए बताया कि किसी भी प्रश्न के पूछने पर महामना इस बात पर विशेष ध्यान नहीं देते थे कि प्रश्न किस व्यक्ति ने पूछा है और वे उसकी शंका के समाधान में लग जाते थे । एक बार इटावा से आये सज्जन ने रामचरितमानस के—"चढ़े जो प्रथमहि मोहबस" इस दोहे के बारे में शंकायें कीं और इस पर उनका समाधान तथा पुनः उनकी शंका का क्रम ढ़ाई बजे दिन से रात में डेढ़ बजे तक चलता रहा । मुझे यह सब अच्छा नहीं लगा और युक्तिपूर्वक मैंने उनको बाहर ले जाकर गाड़ी में बैठा दिया कि इस प्रकार से कहीं महामना का स्वास्थ्य न खराब हो जाय । वास्तविकता ज्ञात होने पर उन्होंने मेरे द्वारा उनके पास क्षमा पत्र भिजवाया और स्वयं भी क्षमा माँगी । ये सब उदाहरण उन्हें महर्षिकल्प तथा साक्षात् देवता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं । वे कभी भी अपने निश्चय से नहीं टले । मातृभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के संकल्प में भी वे अडिग रहे ।

इस विश्वविद्यालय ने उनके चित्र के अनावरण का जो निर्णय लिया है और अन्य महापुरुषों के जो चित्र अनावृत हो रहे हैं, इसके लिए विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शुक्ल विशेष धन्यवादार्ह हैं । इस पवित्र आयोजन पर हमें भी अपने संकल्पों की पूर्ति का व्रत लेना चाहिए और महामना के चरित्र तथा उपदेशों को अपने जीवन में उतारने की कल्पना को साकार करने में जुट जाना चाहिए ।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में प्रो० मुकुटबिहारी लाल ने कहा कि गाँधी जी का जीवन महान् था और उन्होंने अनेक क्षेत्रों में समाज की सेवा की । उन्हें ठीक से समझने के लिए हमें उनके नैतिकता सम्बन्धी विचारों को हृदयंगम करना चाहिए । वे नैतिकता तथा धर्म के घनिष्ठ सम्बन्धों को जोड़ने के पक्षपाती थे तथा इन दोनों को एक दूसरे के पूरक रूप में स्वीकार करते थे । धर्म की उनकी यह व्याख्या थी कि विश्व के नैतिक विधान ही धर्म हैं । इस प्रकार नैतिकता का दूसरा स्वरूप ही उनके अनुसार धर्म था । इस सन्दर्भ में यह प्रश्न हो सकता है कि जिसे नैतिक विधान पर विश्वास न हो, वह कैसे नैतिक हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि नैतिकता के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सामाजिक था, क्योंकि नैतिकता का प्रश्न समाज में ही होता है । एक प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक व्यवहार ही नैतिकता है और इस सन्दर्भ में इसका ग्रहण कर जो इसे निभाने में समर्थ होता है, उसे ही हम नैतिक कह सकते हैं ।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि समाज की दशा के अनुसार ही मनुष्य का व्यवहार चलता है और इसके सुधरने पर यह व्यवहार स्वयं ही सुधर जायेगा, किन्तु गाँधी जी इसे नहीं मानते थे । उनका यह मत था कि समाज की दशा को सुधारना तथा

मानव को ऊँचा उठाना, ये दोनों काय महत्त्वपूर्ण हैं और हमें इन दोनों को करना चाहिए। समाज को सुधारने के लिए मानव का अपने में सुधार लाना परमावश्यक है। मानव जीवन पर समाज का प्रभाव पड़ता है, क्योंकि समाज साधन मुहैया करता है। किन्तु व्यक्ति भी साध्य है और प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्व का विकास करे। इस सन्दर्भ में प्रो० लाल ने स्वामी रामतीर्थ द्वारा मजाक में किये गये एक विज्ञापन का उल्लेख किया। विज्ञापन में कहा गया था—"स्वयं अपना सुधार करने वालों की आवश्यकता है"। मजाक स्वरूप प्रस्तुत यह विज्ञापन इसी तथ्य की ओर इंगित करता है कि मनुष्य को स्वयं ही अपना सुधार करना चाहिए और इस प्रकार वह स्वयं अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। यह विकास उसके समाज में रहते हुए ही सम्भव है। गांधी जी की मान्यता के अनुसार मनुष्य की जीवन सिद्धि जंगल की अपेक्षा समाज में भी सम्भव है और इस दृष्टि से उनके अनुसार वही कार्य नैतिक है, जो निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा के लिए हो। उनका विश्वास मोक्ष में भी था, किन्तु व्यक्तिगत मोक्ष की कामना को वे नैतिक नहीं मानते थे।

सत्य, अहिंसा, स्वतन्त्रता, अन्त्योदय, सहकारिता तथा सर्वोदय आदि उनके प्रमुख सिद्धान्त थे। उनके अनुसार सत्य ईश्वर है, तथा ईश्वर ही सत्य है। सत्यनारायण व्रतकथा में सत्य सम्बन्धी जो तत्त्व प्रस्तुत हुये हैं, वे सभी गाँधी जी को मंजूर थे। वे मानते थे कि अन्त में शक्ति की ही अवश्य विजय होती है और इसे प्रतिष्ठित करना मानव मात्र का कर्तव्य है। सत्य के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो विचार हुए हैं, वे भी उन्हें स्वीकार थे। वे सत्य तथा अहिंसा के घनिष्ठ सम्बन्धों में विश्वास करते थे और उनकी मान्यता थी कि अहिंसा के द्वारा ही सत्य प्रतिष्ठित होता है, हिंसा के द्वारा नहीं। किन्तु वे निष्क्रिय अहिंसा तथा सक्रिय अहिंसा में भेद मानते थे। इनमें से प्रथम को वे कायरता समझते थे। उनके अनुसार सक्रिय अहिंसा ही समीचीन है।

गाँधी जी स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे और उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि स्वतन्त्र व्यक्ति ही नैतिक जीवन व्यतीत कर सकता है, क्योंकि स्वेच्छा से किया गया सत्कर्म ही नैतिक होता है। इसके साथ ही उनकी यह भी मान्यता थी कि सबके साथ हमारे व्यवहार सम हों और हमारा सम्पूर्ण सामाजिक जीवन समता पर आधारित हो, समतोन्मुखी हो।

उनके अनुसार सहकारिता, स्वैच्छिक सामाजिक जीवन का आधार है और एक प्रकार से समाज में स्वतन्त्र मानव को नैतिकता के साथ अपना विकास करने का अवसर प्रदान करती है। ग्रामसमाज की धारणा को प्रतिष्ठित तथा विकासोन्मुख करने में सहकारिता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एतदर्थ इसे अपनाना हमारा परम कर्तव्य है। वे राष्ट्रीयकरण के विरोधी थे और उनकी यह मान्यता थी कि भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति में शक्तियों का समावेश मानववृन्द की सेवा के लिए किया है। उद्योगपतियों के लिए उनका यह संदेश था कि उन्हें यह समझना चाहिए कि उद्योग के रूप में जिन शक्तियों की उपलब्धि उनको है, वे सभी समाज के परोपकार हेतु हैं। अतएव उद्योगों का गठन न्यासिता के आधार पर होना चाहिए और ऐसे सम्पूर्ण संगठन का ढाँचा भी इसी आधार पर खड़ा होना चाहिए। निजी उद्योगों के मालिकों को सर्वदा अपने को न्यासी समझना चाहिए और अपने मजदूरों को अपना सहयोगी। इस प्रकार की भावना रखने पर उद्योगों में किसी प्रकार की कटुता नहीं आवेगी और उनका विस्तार यद्यपि किसी व्यक्ति के द्वारा होगा, फिर भी वह सम्पूर्ण उद्योग समाज के हित तथा लाभ के लिए ही कार्य करेगा। इस प्रकार दृष्टि रखने पर उद्योगों की स्थिति राष्ट्रीयकरण से भी उत्तम रहेगी।

सर्वोदय को मानव मात्र के उत्थान के रूप में वे ग्रहण करते थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि पतित से पतित व्यक्ति में भी मनुष्यत्व होता है और वह प्रयत्न करके अपने जीवन को ऊँचा उठाने में सर्वदा समर्थ होता है। अन्त्योदय के लिए भी उनकी यही कसौटी थी और यह धारणा थी कि निम्न से निम्न व्यक्ति का भी उत्थान होना आवश्यक है।

इस प्रकार राष्ट्रपिता के सम्पूर्ण विचारों को यदि हम लें, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमें भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण धारा का प्रवाह विद्यमान है और आदर्शों के साथ समाज के उत्थान को जो परिकल्पनायें इस धारा में यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं, उन्हें आधुनिक युग में अपने आदर्शमय जीवन से व्यावहारिकता का स्वरूप प्रदान कर महात्मा गाँधी ने समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया और इसके लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को भी उसी साँचे में ढाला। भारतीय सन्तों की भाँति उनकी भी यह मान्यता थी कि कोरे सिद्धान्तों की स्थापना अथवा कथन समाज के उत्थान में विशेष सहायक नहीं होते, जब तक वह उपदेश स्वयं अपने जीवन को उसके अनुसार ढालकर प्रदर्शित न करे। आज समाज वैषम्यरूपी जीवन जी रहा है और इस परिस्थिति में हमें राष्ट्रपिता के व्यावहारिक सिद्धान्तों की ओर दृष्टिपात करना होगा। उन्हीं से विषमताओं को दूर करने में हमें संबल प्राप्त होगा। यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

विश्वविद्यालय ने इस सन्दर्भ में नवयुवकों तथा समाज को इस दिशा में प्रेरित करने हेतु महात्मा गाँधी के विशाल चित्र को प्रतिस्थापित करने का जो निर्णय लिया है, वह स्तुत्य है। एतदर्थ विश्वविद्यालय परिवार धन्यवाद का पात्र है।

इस परिसंवाद गोष्ठी के तृतीय मुख्य वक्ता काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो० राजाराम शास्त्री ने डा० सम्पूर्णानन्द के व्यक्तित्व की चर्चा प्रारम्भ करते हुए कहा कि मेरी दृष्टि से यह परिसंवाद गोष्ठी न होकर महापुरुष महोत्सव है। इस तथ्य पर आज विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन तीनों महापुरुषों से हमें क्या नैतिक प्रेरणा प्राप्त होती है। राष्ट्रभक्ति तथा राष्ट्रीयता के दो प्रकार हैं। इनमें से एक प्रकार शुद्ध राजनीतिक है और वह यह है कि हमारे देश की सीमाएँ अक्षुण्ण रहें और उनकी रक्षा हेतु हम आत्मोत्सर्ग करें। अधिकांश लोग राष्ट्रभक्ति का यही अर्थ ग्रहण करते हैं। किन्तु राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रभक्ति का एक द्वितीय प्रकार भारतीय संस्कृति पर आधारित है और उसकी आत्मा उससे अनुप्राणित है। वह यह है कि भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज का उत्थान प्रस्तुत हो। यह विचारणीय है कि यदि हम अपनी राष्ट्रीयता को विदेशी विचारों से प्रस्फुरित करें तो क्या इससे हमारा काम चल सकेगा? अर्थात् क्या हम इस दृष्टि से अपने उद्देश्यों को प्राप्ति में समर्थ हो सकेंगे? क्या इससे राष्ट्र की आत्मा आगे बढ़ सकने में समर्थ हो सकेगी? यह इस सन्दर्भ में भी विचारणीय है कि राष्ट्रभक्ति भौगोलिक की अपेक्षा सांस्कृतिक अधिक होती है। आज जिन तीन विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्र पर हम विचार कर रहे हैं, उनकी यही धारणा थी कि राष्ट्रीयता भौगोलिक कम और सांस्कृतिक अधिक होती है। अतएव भारतीय राष्ट्रीयता का आधार भी भारतीय संस्कृति को ही होना चाहिए।

इसी दृष्टि से गाँधी जी ने अपने सभी सिद्धान्तों को भारतीय संस्कृति पर ही आधारित किया। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की राजनीति की आधारशिला भारतीय संस्कृति ही थी और सम्पूर्णानन्द जी भी इसी परम्परा के थे। इसीसे अनुप्राणित होकर उन्होंने 'आर्यों का आदिदेश' आदि ग्रन्थों की रचना की। ऐसे अन्य नेताओं में आचार्य नरेन्द्रदेव भी आते हैं। यह सांस्कृतिक आधार थोड़े से ही नेताओं में प्राप्त है और अन्य नेता राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीय हैं। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीय लोग देश तथा राष्ट्र को सम्यक् रीति से निर्मित करने में सक्षम नहीं हो सकते। वर्तमान युग में गाँधीजी को राष्ट्रीयता की संस्कृतिप्रधान दृष्टि राजा राममोहन राय से आधार रूप में प्राप्त हुई थी। उन्होंने इसे भारतीयता का और पुट देकर आगे बढ़ाया। वर्तमान स्थिति में देश तथा समाज को निर्मित करने के लिए भारतीय संस्कृति का आधार ग्रहण करने वाले ऐसे नेताओं की आवश्यकता है, क्योंकि वे ही समाज को एक नया मोड़ दे सकते हैं।

निष्क्रिय नैतिकता का अर्थ है व्यक्तिगत रूप से नैतिक होना। उदाहरणार्थ हम स्वयं हिंसा नहीं करेंगे, पर दूसरों का क्या होगा? यदि समाज में अन्य लोग हिंसा करेंगे तो एक व्यक्ति के अहिंसक होने का क्या अर्थ होगा? अतः दूसरों को अहिंसा की ओर प्रेरित करने वाला व्यक्ति ही वास्तविक नैतिक है और इसे ही सक्रिय नैतिकता की संज्ञा दी जाती है। निष्क्रिय नैतिकता कभी-कभी पर्याप्त दूर तक जा सकने में समर्थ होती है, क्योंकि इसमें केवल एक व्यक्ति का ही प्रश्न होता है और उसके लिए इसका निर्वाह करना सम्भव होता है। किन्तु नैतिकता के सामूहिक निर्वाह में कठिनाई होती है। कोई व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन में जितना अहिंसक होता है, उसके लिए आन्दोलन में भी उतना ही अहिंसक होना सम्भव नहीं होता। इसके लिए आवश्यक है कि सत्य तथा अहिंसा में तादात्म्य स्थापित हो। सत्य हम लोगों के समक्ष वस्तुसत्ता का ज्ञान प्रस्तुत करता है, किन्तु वस्तुस्थिति को ठीक रखने में अहिंसा ही सक्षम होती है। ऋत नैतिक सत्य है और वह जगत् के आधार में प्रविष्ट है, अतः नैतिक सत्य को ऋत की संज्ञा प्रदान की जाती है। महात्मा गाँधी के अनुसार सत्य तथा ऋत एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं और इसे जो अस्वीकार करता है, वही अनैतिक है। सूक्ष्मता से विचार करने पर नैतिक सत्य तथा आध्यात्मिक सत्य एक ही कड़ी के ज्ञात होते हैं।

हरिजन वर्ग को ऊँचा उठाने के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी की यह मान्यता थी कि समाज में बिना किसी भी प्रतिबन्ध के हमें उन्हें प्रतिष्ठित करना चाहिए, किन्तु महामना उन्हें मन्त्र आदि से संस्कार युक्त करके ऊँचा उठाना चाहते थे, जिससे उनका जीवन सभी दृष्टियों से मर्यादित रहे। इस प्रकार मालवीय जी में भी शास्त्रीयता का पुट लिए हुए प्रचुर मात्रा में प्रगतिशीलता थी। सम्पूर्णानन्द जी की मान्यता थी कि व्यवस्था आदि का प्रश्न कुछ सीमा तक शास्त्रसम्मत होना चाहिए। इतने अंश में महामना तथा सम्पूर्णानन्द जी एक दूसरे के सन्निकट थे। गाँधी जी की राजनीति उग्र थी। सम्पूर्णानन्द जी विचारों में उनसे भी उग्र थे। अहिंसा के सन्दर्भ में सम्पूर्णानन्द जी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का यह विचार था कि आततायी के साथ हिंसा नैतिक होती है। विचारों की इन स्थितियों में भी वे गाँधी जी को सदा ही अपना नेता मानते थे और वैचारिक जगत् में सर्वदा उनकी प्रतिभा प्रतिष्ठित रही। सम्पूर्णानन्द जी के व्यक्तित्व के ये वैशिष्ट्य अपनी कुल परम्परा से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुये थे और मेरा यह स्पष्ट मत है कि वे सरस्वती के वरद पुत्र थे। महामना भक्तियोगी, गाँधी जी कर्मयोगी और सम्पूर्णानन्द जी ज्ञानयोगी थे। ऐसे ज्ञानयोगी के चित्र के अनावरण का इस उच्च शिक्षा केन्द्र में बहुत ही महत्त्व है, क्योंकि ज्ञानपिपासुओं को इससे सर्वदा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी।

प्रतिकुलाधिपति महाराज डा० विभूतिनारायण सिंह ने कहा कि यह प्रसन्नता की बात है कि काशी के दो विश्वविद्यालयों के कुलपति इस महोत्सव में उपस्थित हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना महामना द्वारा और काशी विद्यापीठ की स्थापना गाँधी जी द्वारा हुई, किन्तु इस पर यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों विश्वविद्यालयों की आधारशिला यह विश्वविद्यालय था। क्योंकि यह इस नगर का प्राचीनतम विद्यापीठ रहा है।

सनातन परम्परा के अनुसार काशी शंकर के त्रिशूल पर स्थित है और अतीत से ही यह सर्वविद्या की राजधानी रही है। आज भी यह इस तथ्य द्वारा प्रस्फुटित है कि यहाँ पर तीन-तीन विश्वविद्यालय स्थापित हैं और मेरी यह कामना है कि इससे प्रशिक्षित लोग सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करें।

इन तीनों महापुरुषों के चित्रों का अनावरणरूपी यह महोत्सव सुसमीचीन है, क्योंकि विद्या के क्षेत्र में लगे हुये लोगों को इससे नवीन प्रेरणायें प्राप्त होंगी। मेरी दृष्टि में प्राचीन परम्परा से संस्कृत की शिक्षा में संलग्न छात्रों को योग्यता में वरीयता प्राप्त होनी चाहिए।

ऐसे आयोजन हमें सामाजिक तथा आध्यात्मिक उत्थान की प्रेरणा प्रदान करते हैं। प्राचीन परम्परा की रक्षा में संलग्न यह विश्वविद्यालय रत्नजटित हाथी है और सम्प्रति समाज में जो कलह विद्यमान है, उसे शान्त करने में इसका अभूतपूर्व योगदान प्राप्त होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

अन्त में कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि महापुरुषों की चर्चा से पुण्यार्जन होता है, साथ ही व्यक्ति तथा समाज के उत्थान के लिए नई प्रेरणा प्राप्त होती है। इस परिसंवाद गोष्ठी के माध्यम से इन तीनों महाविभूतियों के सन्दर्भ में जो बातें कही गई हैं, वे निश्चय ही हम लोगों के लिए अनेक क्षेत्रों में मार्गदर्शक होंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी ने महामना के व्यक्तित्व में विद्यमान कोमलता आदि को प्रकट करके हमें सत्पथ पर चलने की जो प्रेरणा दी है, उससे हमारे छात्र समाज को नव-चेतना युक्त कर सकेंगे, प्रो० मुकुटबिहारी लाल द्वारा गांधी जी द्वारा उपर्युक्त सक्रिय निष्क्रियता का आज सम्यक् प्रतिपादन किया गया है और प्रो० राजाराम शास्त्री ने डा० सम्पूर्णानन्द की वैचारिक प्रतिभा का प्रकाशन करते हुए उनके व्यक्तित्व का जो व्याख्यान प्रस्तुत किया, उसका अनुकरण मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है। हम इन तीनों महानुभावों के प्रति स्वयं तथा विश्वविद्यालय की ओर से अत्यन्त आभारी हैं। डा० बृजलाल वर्मा ने इस परिसंवाद गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए समष्टि के चरणों में स्वत्व के विसर्जन को ही वास्तविक स्वत्व मानकर इस दिशा में मौलिक स्थापना की है। साथ ही हमारे प्रतिकुलाधिपति महाराज के इस कथन पर प्रतियोगिता परीक्षाओं में परम्परागत दृष्टि से संस्कृत के अध्ययन में संलग्न छात्रों को वरीयता प्राप्त होनी चाहिए। डा० वर्मा ने इसके समर्थन में अपना जो मत व्यक्त किया है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। यद्यपि हमारी परीक्षाओं को अनेक क्षेत्रों में मान्यता मिली है, किन्तु जिनके हाथ में नियुक्तियाँ होती हैं, उन लोगों की निष्ठायें दूसरी ओर हैं, अतः हमें मान्यता का लाभ नहीं प्राप्त होता। हम लोगों का यह कर्तव्य है कि ऐसे लोगों की निष्ठा को अपनी ओर मोड़ने के प्रयत्न में लग जायँ। तभी हमारे छात्रों का कल्याण होगा।

पूज्य महाराज का सहयोग प्रत्येक संकट की घड़ी में इस विश्वविद्यालय को प्राप्त होता रहा है और उन्हीं की सहानुभूति के सम्बल से यह विश्वविद्यालय अनेक विघ्न-बाधाओं को दूर करने में समर्थ हो सका है। इस दृष्टि से सदा ही इस संस्था को उनकी सहायता का भरोसा रहता है। अतः हम सदा ही उनके आभारी हैं तथा रहेंगे। अपने परिवार में महाराज ने परम्परागत संस्कृत शिक्षा को आश्रय देकर एक महान् आदर्श उपस्थित किया है। महाराजकुमार अनन्तनारायण सिंह जी तथा राजकुमारी नव्य-न्याय के अध्ययन में रत हैं और वह राजकुल धन्य है, जहाँ परम्परागत संस्कृत विद्या की यह सरिता अबाध गति से प्रवाहित हो रही है और हमें इस क्षेत्र में सदैव ही अनुप्राणित कर रही है। महाराज को हम धन्यवाद कैसे दें। हमारी यह प्रार्थना है कि उनकी कृपादृष्टि इस संस्था पर बनी रहे।

आचार्यप्रवर श्री सीताराम चतुर्वेदी सदा ही हमारे सहायक तथा संस्कृत विद्या के उन्नायक रहे हैं। प्रो० मुकुटविहारी लाल का त्यागमय जीवन आश्रमवासियों के आदर्श जीवन की ओर इंगित करता है और प्रो० राजाराम शास्त्री के द्वारा मनीषाप्रधान कुलपतित्व स्थापित है। इन तीनों को हम अपनी ओर से तथा विश्वविद्यालय की ओर से धन्यवाद प्रदान करते हैं।

कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने यह भी बताया कि विश्वविद्यालय के छात्रों को अनुप्राणित करने के लिए हमारी यह योजना है कि विश्वविद्यालय परिसर में डा० सम्पूर्णानन्द की एक विशाल कांस्य प्रतिमा प्रतिस्थापित की जाय। एतदर्थ प्रस्ताव शासन के पास भेज रहे हैं। साथ ही हमारी यह भी योजना है कि विश्वविद्यालय प्रांगण में स्थित ग्रिफिथ स्मारक को, जहाँ पर बैठकर आदरणीय ग्रिफिथ महोदय ने वाल्मीकि रामायण का आंग्ल भाषा में पद्यानुवाद प्रस्तुत किया था, भव्य रूप प्रदान किया जाय। हमें दृढ़ विश्वास है कि आप सभी के सहयोग से हम अपने इन प्रयत्नों में सफल होंगे।

अन्त में राष्ट्रीय गान के पश्चात् अध्यक्ष श्री शुक्ल ने उत्सव समाप्ति की घोषणा की ।

२९ मार्च, १९७९

विश्वविद्यालय का स्थापनादिवस समारोह

अपने इक्कीस वर्ष पूर्ण करके बाईसवें वर्ष में प्रवेश करने पर विश्वविद्यालय का बाईसवाँ स्थापनादिवसोत्सव दिनाङ्क २९ मार्च, १९७९ को सोल्लास मनाया गया ।

प्रातःकाल सात बजे से सम्पूर्ण विश्वविद्यालय में शहनाई की माङ्गलिक धुन प्रसारित हो रही थी । इस वर्ष के कार्यक्रम की यह विशेषता थी कि वेदभवन की यज्ञशाला में शतचण्डी पाठ का आयोजन किया गया था । भगवती जगदम्बा सामूहिक शक्ति की प्रतीक हैं और उनमें विश्व की सभी प्रकार की शक्तियाँ अधिष्ठित हैं । अतः कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल की प्रेरणा से भगवती आराधन का आयोजन विश्वविद्यालय तथा इससे सम्बद्ध समस्त संस्कृत पाठशालाओं में विश्व के कल्याणार्थ किया गया । इस अवसर के लिए श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, कुलसचिव तथा श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश के संयुक्त हस्ताक्षर से एक पत्र भेजा गया था, जिसमें इस अवसर पर विश्वविद्यालय तथा संस्कृत पाठशालाओं द्वारा सर्वविध समुन्नति के लिये किये जाने वाले सङ्कल्प का उल्लेख था । पत्र एक विज्ञप्ति के रूप में पाठशालाओं को प्रेषित किया गया था । यह विज्ञप्ति इस प्रकार थी :—

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालस्य द्वाविंशस्थापना-दिवसोत्सवविज्ञप्तिः

प्रेयांसो महोदयाः,

मन्यावहे, भवतामनेन निश्चयेन नूनं महान् मनस्तोषः स्याद् यत् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्थापनादिवसोत्सवकार्यक्रमस्योत्तरोत्तरं विकासः कर्तव्यः । एतन्निश्चयानुसारेण आगामिनि २९-३-१९७९ दिनाङ्के आयोजयिष्यमाणस्य विश्वविद्यालयद्वाविंशस्थापनादिवसोत्सवस्य निर्धारितं कार्यक्रमं प्रेष्य सादरं भवन्तोऽनुरुध्यन्ते यद् भवद्भिरपि उक्तदिने स्वविद्यालये अध्यापकैः छात्रैश्च वक्ष्यमाणसङ्कल्पानुसारेण श्रीदुर्गासप्तशत्याः साधारणं पाठनवकं स्वविद्यालयस्य बहुमान्यसम्प्रदायसम्मतं परमेश्वराराधनं वा समनुष्ठाय विश्वविद्यालयाय तदवगमस्त्वरितं कर्तव्यो येन 'विश्वविद्यालयवार्ता'— पत्रिकायां तत्प्रकाशनेन भवतां शुभः प्रयत्नः संस्कृतप्रणयिजनैः विदितः कर्तुं शक्येत ।

विश्वविद्यालयेन करिष्यमाणस्यानुष्ठानस्य तत्सम्बद्धविद्यालयैः करिष्यमाणस्य चानुष्ठानस्य संकल्पो निर्देक्ष्यमाणस्वरूप उपादेयः ।

विश्वविद्यालयीयः संकल्पः—

आचम्य प्राणानायम्य इष्टदेवं स्मृत्वा देशकालौ संकीर्त्य

अद्य गर्गगोत्रो बदरीनाथशर्माऽहं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतेः कर्तव्यमाकलयन् भगवत्या दुर्गादेव्याः प्रीतये तत्प्रीत्या च सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य तत्सम्बद्धसंस्कृतविद्यालयानां च समग्रे परिवारे शिक्षाऽनुशासनसच्चारित्र्यादिगुणगणसंवर्धनद्वारेण विश्वविद्यालयस्य चतुरस्रसमुन्नत्युपेतस्य विश्वव्यापिनो यशसोऽभिवृद्धये तत्सम्बद्धानां सर्वेषां संस्कृतविद्यालयानां तत्प्रतिष्ठानुरूपाय सर्वविधविकासाय च तदभ्युदयकामैः विद्वद्भिः विद्यार्थिभिः अधिकारिभिः कर्मचारिभिश्च कवचार्गलाकीलकशापोद्धाराष्टोत्तरशतसंख्याकनवार्णमन्त्रजपसहितं श्रीदुर्गासप्तशत्याः साधारणं पाठशतकं कारयिष्ये ।

विद्यालयीयः सङ्कल्पः—

अद्य अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिना श्रीबदरीनाथशुक्लेन सङ्कल्प्यमानस्य विश्वविद्यालयतत्सम्बद्धसर्वविधसंस्कृतविद्यालयसमूहयोः सर्वतोमुखाभ्युदयस्य निर्बाधमविलम्बं च सिद्धये श्रीदुर्गासप्तशत्याः पाठनवकम् अभिमतदेवाराधनं वा करिष्ये ।

—निवेदकौ—

विश्वम्भरनाथत्रिपाठी	**उमाशङ्करमिश्रः**
कुलसचिवः	निरीक्षकः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य	उत्तरप्रदेशसंस्कृतविद्यालयानाम्

उक्त सङ्कल्प को लेकर कुलपति श्री शुक्ल ने विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में यजमान पद पर आसीन होकर सङ्कल्प की पूर्ति के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक गणपति पूजनादि के अनन्तर भगवती आद्या शक्ति का वेदमन्त्रों के उद्घोष के साथ सविधि साङ्गोपाङ्ग पूजन किया तथा १३१ विद्वानों के साथ भगवती जगदम्बा के पाठ में भाग लिया । इस कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के सङ्कायाध्यक्षों— आचार्य डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, आचार्य डा० देवस्वरूप मिश्र, आचार्य डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी, आचार्य डा० पारसनाथ द्विवेदी आदि ने, सम्मानित प्राध्यापक प० निरीक्षणपति मिश्र ने, आचार्य डा० कालिका प्रसाद शुक्ल, उपाचार्य डा० आद्याप्रसाद मिश्र, उपाचार्य डा० कैलासपति त्रिपाठी, उपाचार्य प० रामयत्न शुक्ल ने एवं डा० सत्यनारायण मिश्र, श्री शम्भुनाथ मिश्र, डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी, श्री सूर्यकान्त मिश्र प्रभृति विश्वविद्यालय के प्रमुख

प्राध्यापकों ने तथा अनेक छात्रों ने शतचण्डी समाराधन में सोत्साह भाग लिया।

इस कार्यक्रम में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मशास्त्र विभागाध्यक्ष प० राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय, डा० युगलकिशोर मिश्र आदि ने तथा स्थानीय प्रमुख संस्कृत महाविद्यालयों के विद्वानों ने भी सोल्लास भाग लिया। सम्पूर्ण वातावरण जगदम्बा की आराधना की तन्मयता को व्यक्त करते हुए सामूहिक शक्ति के उद्घोष की व्यञ्जना को ध्वनित कर रहा था और इसे देखकर यह स्पष्ट प्रतिभासित हो रहा था कि भगवती का आशीर्वाद संस्कृत जगत्, इस संस्था तथा विश्व के कल्याणार्थ अवश्य प्राप्त होगा एवं विश्वविद्यालय अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होगा।

आराधना के इस कार्यक्रम के समापन में आचार्य डा० गोपालचन्द्र मिश्र ने पराम्बा को पुष्पाञ्जलि प्रदान कराते हुए समस्त संस्कृत जगत् और विश्व के अनन्त कल्याण की कामना की।

इस कार्यक्रम में सभी छात्रों एवं कर्मचारियों का प्रशंसनीय योगदान प्राप्त था।

मुख्योत्सव

इस समारोह के मुख्योत्सव का आयोजन सायंकाल ३ बजे मुख्य भवन के हाल में प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह देवशर्मा के मुख्य आतिथ्य में हुआ।

प्रारम्भ में वैदिक, पालि, प्राकृत, पौराणिक एवं साङ्गीतिक मङ्गलाचरण एवं विश्वविद्यालय के कुलगीत गान के पश्चात् स्थापना-दिवस पर प्रकाश डालते हुए कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि यह परम हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय आज अपना बाईसवां स्थापनादिवसोत्सव मना रहा है। इस अवसर पर हमें अपनी मूलभूत संस्था 'राजकीय संस्कृत महाविद्यालय' का भी गौरवपूर्ण स्मरण करना चाहिए। पूरे विश्व में इस महाविद्यालय की महती ख्याति थी तथा अपने क्षेत्र में यह जगत् का सर्वश्रेष्ठ शिक्षासंस्थान था। यहाँ पर अनेक शास्त्रों के दिग्गज विद्वानों का प्राकट्य हुआ, जिनकी विद्यागत उपलब्धियाँ अखिल विश्व में इस देश के मस्तक को ऊँचा करने में समर्थ हुई।

वह दिन सदैव अभिनन्दनीय रहेगा, जिस दिन देश को आत्मबलिदान द्वारा स्वतन्त्रता हस्तगत हुई और महामना मालवीय जी के शब्दों में 'अपने देश में अपना राज्य' स्थापित हुआ। हम अपने आपके स्वयंप्रभु हुए और अपना विकास अपने ढंग से करने के लिए स्वतन्त्र हुए।

संस्कृत विद्या हमारे पूर्वजों की थाती है और इसका पालि तथा प्राकृत से भी घनिष्ठतम सम्बन्ध है। इसी दृष्टि से इन्हें भी साथ लेते हुए राजकीय संस्कृत महाविद्यालय को विश्वविद्यालय का स्वरूप देने के लिये उस समय के इस प्रदेश के मुख्यमन्त्री सुप्रसिद्ध राष्ट्रनेता माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने घोषणा की। उसके पश्चात् मुख्यमन्त्री पद पर प्रतिष्ठित होने पर डा० सम्पूर्णानन्द ने यह उद्घोष किया कि यदि यह संस्था विश्वविद्यालय के रूप में न परिणत हो सकी, तो मेरा मुख्यमन्त्री बनना व्यर्थ होगा। इसके स्वरूप के सम्बन्ध में उनके यह विचार थे कि यह विश्वविद्यालय संस्कृत तथा भारतीय विद्याओं के अध्ययन का इस देश का सर्वतो महान् केन्द्र हो और इन क्षेत्रों में होने वाले अनुसन्धान की भी यह प्रधान केन्द्रभूमि बने।

इस सन्दर्भ में जो कुछ अब तक हुआ है, उससे हम सन्तुष्ट हैं, यह हम नहीं कह सकते, क्योंकि कुछ से सन्तुष्ट हो जाना कापुरुष का लक्षण है :—

> सुपूरा स्यात् कुनदिका सुपूरो मूषकाञ्जलिः।
> सुपूरः स्यात् कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति॥

आधुनिक सामाजिक परिपेक्ष्य में परम्परागत शिक्षा के संरक्षण में लग्न हम यद्यपि अनेक दृष्टियों से निर्बल हैं, किन्तु 'निर्बल के बल राम' इस धारणा के अनुसार रामकृपा के बल हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। हमारे कार्य के लिये हमें जिसकी सहायता मिलनी चाहिए, वह नहीं मिल रही है। संस्कृत विद्या को उजागर करने के लिये जितने साधनों की आवश्यकता है, वे हमें नहीं प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी हमें भगवान् विश्वनाथ और भगवती अन्नपूर्णा का ही बल है और उनसे प्रार्थना है कि वे हमें पर्याप्त बल दें, जिससे हम डा० सम्पूर्णानन्द के संकल्प को पूर्ण करके संसार में मानवता और भारत की महनीय संस्कृति का विस्तार करने में समर्थ हो सकें।

विश्वविद्यालय के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब विश्वविद्यालय के स्थापनादिवसोत्सव के सन्दर्भ में विश्वविद्यालय में १३१ व्यक्तियों द्वारा शतचण्डी की आराधना हुई। निश्चय ही इससे हमारे उत्साह और शास्त्र का संवर्द्धन होगा।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में शिक्षामन्त्री ने आने की स्वीकृति प्रदान की थी, पर कुछ अनिवार्य कारणवश वे नहीं आ सके, इसका हमें दुःख है। विश्वविद्यालय की सेवा में कुलपति के दायित्व के अनुसार कुछ करणीय है। उसे करने का हमारा दृढ़ संकल्प है और हमें प्रसन्नता है कि इस कार्य में हमें अपने प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह से सदा ही सहायता प्राप्त होती है। यह प्रथम अवसर है तथा विश्वविद्यालय के लिये उत्साहवर्धक है कि हमारे प्रतिकुलाधिपति काशीनरेश की राजकुमारियाँ इस उत्सव में सम्मिलित हुई हैं। यह हमारे

लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद है कि महाराज की इच्छानुसार राजकुमार ने न्याय-शास्त्र के परम्परागत अध्ययन में अपने को समर्पित किया है। यह तथ्य काशी के सम्पूर्ण विद्वत्समाज को ज्ञात है। यह बात तो पूरे देश के गौरव की ज्ञापक है कि महाराज की राजकुमारियाँ भी परम्परागत शास्त्रों के अध्ययन में पीछे नहीं हैं। यह बात राजकुमार के जन्मोत्सव दिवस पर आयोजित शास्त्रसभा में छोटी राजकुमारी ने न्याय-शास्त्र के क्षेत्र में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देकर सिद्ध की है। उक्त सभा के शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले योग्य छात्रों को काशीनरेश द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये थे, किन्तु राजकुमारी को इस विश्वविद्यालय के कुलपति की ओर से पुरस्कृत किये जाने की घोषणा मैंने की थी, क्योंकि मेरे द्वारा पूछे गये अनूठे शास्त्रीय प्रश्नों का भी यथार्थ उत्तर प्रस्तुत कर राजकुमारी ने सभा को आश्चर्य में डाल दिया था और मैं उनकी न्याय-शास्त्रानुरूप प्रतिभा से हर्षोत्फुल्ल हो उठा था। आज वह शुभ अवसर उपस्थित है और व्यक्तिगत रूप से विश्वविद्यालय के इस स्थापनोत्सव के सन्दर्भ में उन्हें प्रमाण-पत्र तथा ग्रन्थों द्वारा पुरस्कृत किया जा रहा है, क्योंकि उनके अनुरूप कोई अन्य वस्तु विश्वविद्यालय की ओर से प्रदान कर सकना समीचीन नहीं ज्ञात होता। साथ ही शास्त्रार्थ प्रतियोगिता में उत्तम घोषित अन्य छात्रों को भी आज हमें पुरस्कृत करना है, जिससे विद्या के क्षेत्र में प्रोत्साहित होकर वे प्राचीन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार वैदुष्य प्राप्त करने का व्रत ले सकें।

इसके पश्चात् निदेशक, अनुसन्धान संस्थान ने इस वर्ष प्रकाशित ग्रन्थों की सूचना ग्रन्थमालाओं के परिचय के साथ प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्राचीनकाल में अध्येता वेद शास्त्रों का केवल श्रवण करके ज्ञान धारण करने में समर्थ थे। लिख कर स्वाध्याय करने में विद्या का अनादर समझा जाता था। पाणिनि के 'पुस्त आदरानादरयोः' धातु से दोनों भाव प्रकट होते हैं। 'पुस्तं लेखादिकर्मणि' से प्रकट होता है कि पुस्तक लिपियुक्त होती थी। फारस में पुस्तक का आरम्भ चमड़े पर किया गया। फारसी में पोस्त का अर्थ चमड़ा होता है। 'पोस्तीन' भी पुस्तक की जिल्द पर बनायी जाती है। पर भारतवर्ष में पूज्यता बुद्धि होने के कारण पहले पुस्तकें वृक्षचर्म (भूर्जपत्र) पर लिखी गयीं। मनुस्मृति के अनुसार केवल अज्ञों की अपेक्षा ग्रन्थ से अध्ययन करने वाले श्रेष्ठ माने गये हैं—

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥

(मनु० १२।१०३)

संस्कृत के हस्तलेख सरस्वतीभवन पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। पर प्रत्येक जिज्ञासु उससे लाभान्वित हो सके, एतदर्थ उनके प्रकाशन का कार्य सन् १९२० ई० में प्रारम्भ हुआ था। सरस्वतीभवन ग्रन्थमाला में हस्तलेखों के सम्पादित संस्करण किये जाते हैं। इस वर्ष इस ग्रन्थमाला में—

१. शुक्लयजुर्वेदकाण्वसंहिता (सायण भाष्य सहित) (उत्तरविंशतिः) का प्रकाशन हुआ है। श्री चिन्तामणि मिश्र ने बड़े परिश्रम से हस्तलेखों को खोजकर इसका सम्पादन किया है।

२. वाक्यपदीयम् (प्रकाश तथा अम्बाकर्त्री व्याख्यासहित) के तृतीय काण्ड के द्वितीय भाग का सम्पादन अम्बाकर्त्रीकार पण्डित श्री रघुनाथ शर्मा ने किया है।

३. सिद्धान्तसार्वभौम (तृतीय भाग) (ज्योतिष) के रचयिता श्री मुनीश्वर शाहजहाँ नृपति के आश्रित पण्डित थे। इन्होंने शाहजहाँ की जन्मकुण्डली भी बनायी थी।

४. उकरा (गोलीय ज्यामिति) यह ग्रन्थ मूलरूप से यूनानी भाषा में सावजूषयूस द्वारा लिखा गया था। उसका अरबी अनुवाद अबुल अब्बरस अहमद की आज्ञा से कुस्ताविनिलूका बालबकी ने किया था। संशोधक थे सावित विनकुसे। टीकाकार थे—नसीर तूसी। इसकी टीका बीजगणित की तरह 'अ ब स' पद्धति से हुई है। इसके संस्कृतानुवादक हैं सवाई जयसिंह के समकालिक श्री नयनसुखोपाध्याय। ग्रन्थ अनेक रेखाचित्रों से मण्डित है।

प्रकाशित ग्रन्थों तथा हस्तलेखों पर आधुनिक प्रक्रिया द्वारा अनुसन्धान कार्य भी हो, एतदर्थ सरस्वतीभवन अध्ययनमाला का प्रवर्तन किया गया। इस वर्ष इसमें पण्डित देवस्वरूप मिश्र के गवेषणाप्रबन्ध 'महाभाष्यनिगूढाकूतयः' का प्रकाशन किया गया है।

संस्कृतेतर जिज्ञासु भी शास्त्रों का आनन्द उठा सकें, एतदर्थ दुरूह आकर ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद की योजना विश्वविद्यालय की स्थापना के अनन्तर 'गंगानाथझा ग्रन्थमाला' के रूप में प्रचलित की गयी। इस वर्ष इसमें प्रशस्तपाद रचित प्रशस्तपादभाष्य की 'न्यायकन्दली' व्याख्या के हिन्दी अनुवाद का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है।

आधुनिक ज्ञानविज्ञान से भी संस्कृत जगत् जुड़ा रहे, एतदर्थ विश्वविद्यालय की स्थापना के अनन्तर 'सम्पूर्णानन्द ग्रन्थमाला' प्रचलित की गयी। इसमें अब तक आठ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस वर्ष 'भारतीयविचारदर्शनम्' नामक ग्रन्थ के द्वितीय भाग का प्रकाशन किया गया है।

दीक्षान्त समारोहों के अवसर पर विशिष्ट विद्वानों से जो प्रवचन कराये जाते हैं, उनका प्रकाशन 'गंगानाथझा प्रवचनमाला' में किया जाता है। इस वर्ष कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

इसी प्रकार गोपीनाथकविराज ग्रन्थमाला, योगतन्त्र ग्रन्थमाला पालि ग्रन्थमाला, भोटचैनिक ग्रन्थमाला, वल्लभ ग्रन्थमाला, म० म०

शिवकुमार शास्त्री ग्रन्थमालाओं का प्रवर्तन किया गया है। लघु हस्तलेखों को सम्पादित कर 'सारस्वती सुषमा' में प्रकाशित करने के अनन्तर उन्हें अलग से भी उपलब्ध कराया जाता है। इसमें इस वर्ष श्रीमदप्पय दीक्षित के 'वृत्तिवार्त्तिकम्' का प्रकाशन किया गया है।

'सारस्वती सुषमा' संस्कृत जगत् की गवेषणा पत्रिका है। इसका ३२वें वर्ष का द्वितीय अंक प्रकाशित हुआ है। दृग्गणित के आधार पर यह विश्वविद्यालय 'दृक्सिद्धपञ्चाङ्ग' प्रकाशित करता है।

कुलसचिव ने विश्वविद्यालय का वार्षिक विवरण प्रस्तुत करते हुए अनेक क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त होने की सूचना दी और विश्वविद्यालय की अनेक नूतन उपलब्धियों का उल्लेख किया।

मुख्य अतिथि तथा अध्यक्ष प्रतिकुलाधिपति डा० विभूतिनारायण सिंह ने कहा कि मुझे ऐसी सूचना दी गयी थी कि उत्तरप्रदेश के शिक्षामन्त्री आज की सभा के विशिष्ट अतिथि होंगे और मुझे अध्यक्षता करनी होगी। यह भी आशा थी कि संस्कृत विद्या के विकास आदि के सम्बन्ध में शिक्षामन्त्री कोई घोषणा करेंगे। किन्तु उनके उपस्थित न हो सकने का हमें खेद है। हमारा दृढ़ विश्वास था कि उनके द्वारा जो घोषणा होगी, वह निश्चय ही विश्वविद्यालय के हित में होगी और उससे विश्वविद्यालय को उचित मार्गदर्शन प्राप्त होगा। महाराज ने कहा कि विश्वविद्यालय का यह बाईसवाँ स्थापनोत्सव दिवस है, इस अवसर पर आप सब लोगों को समवेत देखकर हमें अत्यन्त हर्ष है। क्योंकि आप सबकी सोत्साह उपस्थिति से यह स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय का वातावरण सम्प्रति पूर्व की अपेक्षा पर्याप्त सुधरा है और उसमें संस्कृत विद्या का श्लाघनीय सौरभ है। यह बड़ी सुन्दर बात है कि आज स्थापनोत्सव के दिन प्रातःकाल दुर्गासप्तशती का १३१ विद्वानों द्वारा पाठ सम्पन्न हुआ है। ऐसे ही कार्यों से विद्वानों तथा इस विश्वविद्यालय के संस्थापकों का यह स्वप्न साकार हो सकता है कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा देश को वेद, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि के अध्ययन को प्रोत्साहन मिलेगा और उसके द्वारा पूरे राष्ट्र में आस्तिकता, नैतिकता और सदाचार की वृद्धि होकर मानवता के उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा।

महाराज ने बताया कि संस्कृत शिक्षा का यह पीठ १८८ वर्षों से स्थापित है और इसकी स्थापना में काशिराज के परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। महाराज बनारस की अंग्रेजों से जो सन्धि हुई थी, उस सन्धि-पत्र में संस्कृत कालेज का संरक्षण तथा व्यवस्था आदि का स्पष्ट उल्लेख था। बाद में सरकार की ओर से एक बार इसको बन्द करने की भी बात उठायी गई, किन्तु तत्कालीन काशीनरेश ने इस सन्धिपत्र का उल्लेख करते हुए इस प्रस्ताव के प्रति घोर आपत्ति की। फलतः सरकार को अपना यह विचार त्याग कर इसे संरक्षण देने के लिए विवश होना पड़ा। महाराज ने कहा कि यह भी प्रश्न उठता है कि देश में अन्य भी कई राजकीय संस्कृत विद्यालय विद्यमान थे, किन्तु उनमें से किसी को संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में क्यों नहीं परिवर्तित किया गया? इसी को यह गौरव क्यों प्राप्त हुआ? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि देश के किसी भी अन्य राजकीय संस्कृत कालेज की ऐसी गौरवमयी परम्परा नहीं रही है, जैसी कि राजकीय संस्कृत कालेज, वाराणसी की थी। यही कारण था कि इसे ही विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रदान किया गया, अन्य को नहीं। इस कार्य में माननीय स्वर्गीय डा० सम्पूर्णानन्द जी का जो योगदान रहा है, उसके लिए आज हम कृतज्ञता तथा श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। यह सत्य है कि उनके अमोघ संकल्प, दृढ़ अध्यवसाय तथा कल्पनाशक्ति के द्वारा ही इस विश्वविद्यालय की स्थापना हो सकी। सम्पूर्णानन्द जी का परिवार काशीराज से घनिष्ठ सम्बद्ध रहा है और इस परिवार के लोग यहाँ के वक्शी पद को सुशोभित करते रहे हैं। उन्होंने इस परम्परा का निर्वाह करते हुए काशीराज्य से सम्बद्धित इस कालेज को विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रदान किया, जिसका मुझे गर्व है और जिसके कारण ही मुझे इस विश्वविद्यालय के साथ अपना आजीवन आधिकारिक सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ा।

इस विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद ही मिथिला में एक और संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और सम्प्रति आन्ध्र में तृतीय संस्कृत विश्वविद्यालय के स्थापित होने की बात चल रही है। हमारा यह विचार है कि मिथिला के विश्वविद्यालय तथा इस विश्वविद्यालय में आपस में अध्ययन के क्षेत्र में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। विद्या के क्षेत्र में आपस में वैचारिक आदान-प्रदान अत्यन्त आवश्यक है। इस क्षेत्र को अत्यन्त समुन्नत करने में आपसी सम्पर्क का बहुत बड़ा महत्त्व है। हमें दृढ़ विश्वास है कि दोनों विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के सम्पर्क स्थापित होंगे और उससे विद्या की अभिवृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा।

अभी कुलसचिव द्वारा विश्वविद्यालय का जो वार्षिक विवरण प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि विद्या के क्षेत्र में जो कार्य अन्य स्थानों में सम्भव नहीं हैं, उन्हें यहाँ पूर्ण किया जा रहा है। आप इस कसौटी पर सदा ही खरे उतरें, यही कामना है।

महाराज ने छात्रों से अनुरोध किया कि अन्य शिक्षा संस्थाओं के छात्रों की भाँति परीक्षा में नकल आदि की कुप्रवृत्तियों से यहाँ के छात्र अपने को विरत रखें, क्योंकि इस प्रकार के कार्य मनुष्य

के नहीं, किन्तु पशु के आचरण माने जाते हैं। छात्रों ने आज अपने आदरणीय गुरुजनों के साथ दुर्गा तथा महाविद्या की आराधना की है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह आराधना उन्हें जीवन के उच्च लक्ष्यों की ओर अग्रसर करेगी और उनके प्रत्येक अच्छे प्रयत्न को सफल बनायेगी।

कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल का मेरे परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस उत्सव में राजकुमारियों के सम्मिलित होने के लिए जब उन्होंने प्रस्ताव रखा तो मैंने उसका विरोध किया, किन्तु न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड वैदुष्ययुक्त इस व्यक्तित्व के सामने मेरे तर्क व्यर्थ हो गये और स्थिति यह हुई कि महारानी साहिबा भी कुलपति के प्रस्ताव के पक्ष में हो गयीं। अतः हमें यह आज्ञा देनी पड़ी कि मर्यादा की रक्षा के साथ राजकुमारियाँ इस उत्सव में सम्मिलित हों।

प्रतिकुलाधिपति ने आगे कहा कि जब डा० सम्पूर्णानन्द जी ने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय अधिनियम का बिल तैयार करवाया था, तो सुझावों के लिये उसे मेरे पास भी प्रेषित किया था। सुझावों के साथ उसे वापस करने पर उन्हें सम्मिलित करते हुए वह पुनः मेरे पास भेजा गया और उसमें मैंने यह व्यवस्था देखी कि मुझे इसका आजीवन प्रतिकुलाधिपति बनाया गया है। उस वक्त मेरे मन में यह विचार आया कि इस विश्वविद्यालय को मेरे द्वारा कुछ भी नहीं दिया गया। हिन्दू विश्वविद्यालय को भूमि तथा उस समय दस लाख रुपये दान स्वरूप दिये गये थे। इस अधिनियम के बनने के समय राज्य की जमींदारी सरकार द्वारा ले ली गयी थी और इसका विलय भी हो गया था। मैंने इस सन्दर्भ में डा० सम्पूर्णानन्द को एक भावुक पत्र भी लिखा था कि इस विश्वविद्यालय को मैं कैसे कुछ दूँ? जमींदारी तो ले ली गयी, अब अन्य क्या साधन शेष है, जिसके द्वारा कुछ दे सकना सम्भव हो। इसके साथ ही मैंने पूज्य पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री जी से भी विचार किया कि शासन द्वारा मुझे आजीवन प्रतिकुलाधिपति बनाकर मुझ पर ऋण लादा गया है। मैं इस ऋण से किस प्रकार उऋण होऊँगा। शास्त्री जी के विचारानुसार निर्णय हुआ कि मैं कुमार को परम्परागत संस्कृत विद्या के अध्ययन में अर्पित करूँ। वे ही पिता को इस ऋण से उऋण करायेंगे। माननीय पण्डितराज जी राजकुमार के गुरु रहे हैं और उनके ऋण से भी उन्हें उऋण होना है। अतः इस सन्दर्भ में आज मेरी यह घोषणा है कि कुमार अपने को परम्परागत संस्कृत शिक्षा के अध्ययन में अर्पित करके हमें इन ऋणों से मुक्ति देंगे और उन्हें इस कार्य में उनकी बहनों का विशेष कर उनकी बहन सौ० कृष्णप्रिया का पूरा सहयोग प्राप्त होगा, क्योंकि वह भी नव्यन्याय के अध्ययन में रुचि ले रही हैं। भाई, बहन दोनों का विचार है कि वे इस विश्वविद्यालय से नव्य-न्याय में आचार्य की उपाधि तथा अनुसन्धानोपाधि प्राप्त करें।

आज विश्वविद्यालय के स्थापनादिवसोत्सव के अवसर पर विद्या के विकास के सम्बन्ध में प्रतिकुलाधिपति महाराज ने कुछ सुझाव भी दिये जो निम्नांकित हैं :—

१—विश्वविद्यालय में एक कोश विभाग की स्थापना की जाय, जिसके द्वारा दो कार्य सम्पादित हों :—

(क) एक यह कि संसार की सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा का कोश निर्मित हो; साथ ही संसार की सभी भाषाओं के शब्दों का कोश संस्कृत भाषा में प्रस्तुत हो।

(ख) दूसरा यह कि संस्कृत भाषा का राज्य की सभी भाषाओं में कोश निर्मित हो और राज्य की सभी भाषाओं के शब्दों का कोश संस्कृत में प्रस्तुत हो।

२—आकाशवाणी से सम्पर्क स्थापित करके संस्कृत शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम चलाना परमावश्यक है। काशी संस्कृत शिक्षा का केन्द्र एवं गढ़ है, अतः यहीं से यह कार्य सम्पन्न होना चाहिए। यह कार्य दो स्वरूपों में होना आवश्यक है। भारत की सभी भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शिक्षण तथा प्रमुख अन्ताराष्ट्रीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शिक्षण। उदाहरणार्थ हिन्दी, बंग्ला, मराठी, पंजाबी, सिन्धी, उड़िया, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, असमी, कश्मीरी आदि के माध्यम से संस्कृत शिक्षण तथा अंग्रेजी, फ्रांसासी, जर्मन, स्पैनिश, इटालियन, रूसी, चीनी, अरबी, फारसी, सिंहली, बर्मी, थाई आदि के माध्यम में संस्कृत शिक्षण। जब इंग्लैण्ड से अंग्रेजी के माध्यम से बंगला भाषा का शिक्षण रेडियो पर प्रसारित होता है, तो क्या अंग्रेजी आदि भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था आकाशवाणी से नहीं की जा सकती? मेरी धारणा है कि निश्चय ही की जा सकती है।

हमारा विश्वविद्यालय प्रत्येक दृष्टि से अन्ताराष्ट्रीय विश्वविद्यालय है और हमारी प्रार्थना है कि काशी के अधिष्ठातृदेव विश्वनाथ तथा माता अन्नपूर्णा हमें तथा हमारे छात्रों को सद्बुद्धि तथा बल प्रदान करें, जिससे हम सभी इस विद्यापीठ को वास्तविक अर्थ में अन्ताराष्ट्रीय विश्वविद्यालय बनाने के स्वप्न को साकार कर सकें।

कुलपति श्री शुक्ल ने अपने समापन भाषण में कहा कि महाराज ने विश्वविद्यालय के विकास के लिए कोशों के निर्माण तथा आकाशवाणी से संस्कृत शिक्षण का जो प्रस्ताव किया है, वह बहुत ही उत्तम है। साधनों के प्राप्त होने पर विश्वविद्यालय इस कार्य को अवश्य ही सम्पन्न करेगा।

श्री शुक्ल ने कहा कि महाराज ने परम्परागत संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में कुमार को अर्पित करके उऋण होने की जो बात कही है, वह समीचीन ही है, क्योंकि श्रुति का भी यही मत है—'आत्मा वै जायते पुत्रः' । श्री शुक्ल ने यह भी कहा कि महाराज के इस प्रस्ताव का स्वागत परम्परागत समग्र संस्कृत जगत् अत्यन्त भावविभोर होकर करता है, किन्तु इस सन्दर्भ में मेरा एक विनम्र अनुरोध है कि महाराज की ओर से काशीनरेश नव्यन्याय गोष्ठी की स्थापना हो। इसके लिए जिस सीमित धनराशि की आवश्यकता होगी, उसका प्रबन्ध करना महाराज के लिए अत्यन्त सरल है। एतदर्थ जो धन प्राप्त होगा, उससे इस प्रकार की गोष्ठियां सम्पन्न कराकर न्यायशास्त्र के अध्ययन की दिशा को समुन्नत किया जायेगा। प्रति वर्ष गोष्ठी में देश के नव्यन्याय के विद्वानों को आमन्त्रित कर नव्यन्याय में शास्त्रीय विचार आयोजित किये जाएँगे, जिसमें राजकुमार और राजकुमारी भी भाग लेंगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि महाराज की स्वीकृति इसके लिए हमें प्राप्त होगी।

कुलपति ने अतीव भावपूर्ण भाषा में कहा कि आज के ही दिन, अर्थात् २९ मार्च, १९७८ को उन्होंने कुलपति पद का कार्यभार ग्रहण किया था और यह एक संयोग ही है कि उसी दिन आज स्थापनादिवसोत्सव की तिथि भी पड़ी है। इस सन्दर्भ में हमें यह कहना है कि इस विश्वविद्यालय के विकास तथा समुन्नति हेतु हमें सभी का सहयोग तथा सहानुभूति प्राप्त हुई है। इससे विश्वविद्यालय का वातावरण कुछ बदला है। छात्रों में यह भावना आई है कि उन्हें पढ़ना-लिखना है और देश का नागरिक बन समाज के विकास में सहयोग देते हुए संस्कृत विद्या की समुन्नति करनी है। हमने विद्वानों से अनुरोध किया था कि अधिकाधिक १५ दिनों में विश्वविद्यालयीय परीक्षाएँ सम्पन्न करा ली जाँए। हमारे इस प्रस्ताव से सभी सहमत हुये। हमारा विश्वविद्यालय प्रदेश तथा उत्तर भारत का प्रथम विश्वविद्यालय है, जहाँ १९७९ वर्षीय परीक्षाएँ समय से सम्पन्न होने जा रही हैं। नकल आदि की जो बात छात्रों के सम्बन्ध में कही जाती है, वह मेरी दृष्टि से कुछ बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत होती है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि परीक्षाएँ अत्यन्त पावन ढंग से पूर्ण होंगी। हम तो संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा तथा शास्त्रार्थ की दृष्टि से यह विचार रखते हैं कि छात्रों को पूर्व से ही यह सूचित कर दिया जाय कि ग्रन्थ के अमुक अंश में शास्त्रार्थ अथवा परीक्षा होगी। यदि छात्र उस अंश से सम्बद्ध २०-२५ प्रश्न तैयार कर लें और वे ही प्रश्न उनसे पूछे जायँ, तो ग्रन्थ का सम्पूर्ण अंश छात्रों द्वारा ग्रहण कर लिया जायगा और इस पारम्परिक शिक्षा के क्षेत्र में विद्या की समुन्नति होगी। हमारे अन्दर जो त्रुटियाँ हैं, वे मां जगदम्बा की कृपा से दूर होंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

कुलपति ने आगे बताया कि प्रत्येक दृष्टि से प्रस्तुत वर्ष के उत्तम विद्यार्थी के रूप में कुछ छात्रों की आज इस उत्सव के अवसर पर उन्हें घोषणा करनी थी, किन्तु कार्यक्रमों की व्यस्तता के कारण यह घोषणा इस वर्ष नहीं की जा सकी। इस सम्बन्ध में कार्यवाही अगले वर्ष की जायगी। विगत स्थापनोत्सव के अवसर पर कर्मचारियों के परिचय-पत्र बनाने की जो घोषणा की गई थी, वह कार्यान्वित हो गई है। इससे यह लाभ होगा कि किसी अज्ञात स्थान पर कर्मचारी अपना परिचय-पत्र प्रस्तुत कर सम्भावित कठिनाई से मुक्ति पा सकेंगे।

कुलपति ने कहा कि विदेशी प्रभाव से भारत में एक जनवरी से नव वर्ष मानने की परम्परा चल पड़ी है, किन्तु वास्तव में नव वर्ष आज से, अर्थात् वैक्रम संवत् के प्रारम्भ से माना जाना चाहिए। इस हेतु इसे मान्यता प्रदान करने के लिये हमने भारत के प्रमुख व्यक्तियों तथा अपनी पाठशालाओं, संस्कृत शिक्षा से सम्बद्ध अध्ययन केन्द्रों आदि को नव वर्षाभिनन्दन प्रेषित किया है। आशा है, इस शुभारम्भ से भारतीय समाज में नव वर्षाभिनन्दन की भारतीय परम्परा स्थापित हो सकेगी।

कुलपति श्री शुक्ल ने यह बताया कि वर्तमान युग प्रचार-प्रसार का युग है और विश्वविद्यालय की प्रगति पर तथा इसके द्वारा विद्या के क्षेत्र में किये जा रहे विभिन्न कार्यों पर प्रकाश डालने के लिये एक माध्यम की महती आवश्यकता थी। अतः विश्वविद्यालय ने इस कमी को पूर्ण करने हेतु "विश्वविद्यालय वार्ता" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया है, जिसके तीन अङ्क इस सत्र में अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके द्वारा विश्वविद्यालय की सामान्य प्रगति की सूचना तो प्राप्त होती ही है, साथ ही यहां आयोजित गोष्ठियों में विभिन्न विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों द्वारा जो विचार प्रस्तुत किये जाते हैं, उनके सम्बन्ध में भी प्रभूत वैचारिक सामग्री यह पत्रिका प्रदान करती है। इसके सम्बन्ध में समाज के विभिन्न महानुभावों की जो शुभकामनाएँ आदि प्राप्त हुई हैं, वे इसकी आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए यथेष्ट हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस पत्रिका के माध्यम से भारतीय विद्या सम्बन्धी विचार समाज में प्रतिष्ठित होंगे, साथ ही विश्वविद्यालय तथा इससे सम्बद्ध महाविद्यालयों सम्बन्धी सूचनाएँ भी जनमानस में स्थान प्राप्त करेंगी।

विश्वविद्यालय की प्रगति को अग्रसर करने में हमें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का सहयोग प्राप्त हो रहा है और इससे हम भारतीय विद्या के अनेक ऐसे पक्षों को, जो अध्ययन के क्षेत्र में उपेक्षित रहे हैं, संवर्द्धित करने की दिशा में संलग्न हैं। इसी दृष्टि से अनेक ऐसे विषयों में 'विजिटिंग प्रोफेसरों' की नियुक्ति की

गई है, उदाहरणार्थ—प्राचीन भारतीय संगीत शास्त्र का भारतीय दृष्टि से अध्ययन अब तक अत्यन्त सामान्य रूप में प्रस्तुत हुआ है। आवश्यकता यह है कि इसके विकास के वास्तविक स्वरूपों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाय। इस कार्य हेतु विश्वविद्यालय ने इस क्षेत्र के निष्णात विचारक ठाकुर जयदेव सिंह को 'विजिटिंग-प्रोफेसर' नियुक्त किया है। इसी प्रकार आधुनिक भाषा एवं विचार दर्शन को प्रोन्नत करने हेतु लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की एवं आयुर्वेद के क्षेत्र में विश्वविद्यालय में अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहित करने हेतु ख्यातनामा वैद्य पण्डित बृजमोहन दीक्षित तथा श्री यदुनन्दन उपाध्याय की नियुक्ति 'विजिटिंग प्रोफेसर' के रूप में की गई है। ये दोनों विद्वान् आयुर्वेद के अनुसन्धान को नयी दिशा प्रदान करने हेतु विशिष्ट व्याख्यान दे रहे हैं। इसी प्रकार वेदविद्या को प्रोत्साहित करने हेतु स्वामी गङ्गेश्वरानन्द जी को आमन्त्रित किया गया है। व्याकरण, साहित्य, न्याय आदि शास्त्रों में निष्णात अवकाशप्राप्त परम्परागत विद्वानों की कुछ समय के लिये नियुक्ति इस हेतु की गई है कि वे तत्तत् शास्त्रों की गूढ़ ग्रन्थियों को विमोचित करते हुए हमारे नव विद्वानों को शास्त्र के गूढ़ मर्म को उद्घाटित करके उसके वास्तविक अर्थ को स्पष्ट कराने में सहायक होंगे, साथ ही इन क्षेत्रों में शास्त्रार्थ की परम्परा को पुनरुज्जीवित करने में सम्बल स्वरूप सिद्ध होंगे। एतदर्थ नियुक्त विद्वानों में श्री विनयप्रकाश शर्मा (नरवर), श्री शिवदर्शन त्रिपाठी (कर्वी, बांदा) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हमारा यह भी विचार है कि विश्वविद्यालय की ओर से महाकवि जयदेव के गीतगोविन्द का नृत्यगीतात्मक एक रूपक तैयार किया जाय, जिससे भारतीय संगीत एवं नाट्य परम्परा के वास्तविक स्वरूप को जनमानस में प्रतिष्ठित किया जा सके।

इस प्रकार इस विश्वविद्यालय के अनेक कार्यक्रम हैं, जिन्हें हम अध्यापकों, छात्रों तथा कर्मचारियों की सहायता से पूर्ण करने में समर्थ हो सकेंगे।

कुलपति ने प्रतिकुलाधिपति भूतपूर्व काशीनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह से नव्य-न्याय गोष्ठी के सन्दर्भ में जो अभ्यर्थना की थी, उसके सम्बन्ध में पुनः महाराज ने यह कहा कि इसके लिये धन की कोई कमी नहीं रहेगी। काशिराज न्यास इस गोष्ठी का सम्पूर्ण व्यय वहन करेगा। हमारी केवल यह शर्त है कि एक बार यदि यह कार्य प्रारम्भ हो तो प्रति वर्ष इसे अवश्य ही सम्पन्न होना चाहिए और कभी भी इस कार्य में रुकावट नहीं आनी चाहिए। हमें अब यह दृढ़ विश्वास है कि रामनगर दुर्ग से बाहर निकल कर न्यायशास्त्र समाज में प्रतिष्ठित होगा, क्योंकि राजकुमार तथा राजकुमारी दोनों ने मिलकर यह संकल्प ले लिया है। स्त्रियां जिस कार्य को पूर्ण करने का व्रत ले लेती हैं, वह कार्य अवश्य ही सम्पन्न होता है। इस न्यायगोष्ठी के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि इसमें काशिराज के साथ-साथ पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री जी का नाम भी संबद्ध किया जाय।

अन्त में राष्ट्रगीत के पश्चात् कुलपति ने इस उत्सव के समापन की घोषणा की।

संस्कृत विद्यालयों में विश्वविद्यालय स्थापनादिवस समारोह

प्राचीन परम्परित संस्कृत शिक्षा का केन्द्र सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय इस संदर्भ में अखिल भारतीय है कि इससे सम्बद्ध संस्कृत विद्यालय और महाविद्यालय पूरे देश में फैले हुए हैं। इस वर्ष दिनांक २९ मार्च, ७९ को विश्वविद्यालय का बाईसवाँ स्थापना दिवस समारोह जिस उत्साह से विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित हुआ, उसी उत्साह से संबद्ध संस्थाओं में भी स्थापना दिवस मनाया गया; संबद्ध संस्थाओं को इसकी प्रेरणा विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी और उत्तर प्रदेश संस्कृत विद्यालयों के निरीक्षक श्री उमाशंकर मिश्र ने अपने एक संयुक्त पत्र द्वारा प्रदान की थी। पत्र इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है।

विश्वविद्यालय स्थापना दिवस के अवसर पर संस्कृत शिक्षा संस्थाओं में दुर्गासप्तशती पाठ के निर्दिष्ट आयोजन के अतिरिक्त भी अनेक कार्यक्रम हुए, जैसे रामचरितमानस का पाठ, संस्कृत के प्रचार-प्रसार के विषय में गोष्ठियाँ, संस्कृत विद्वानों का सम्मान, काव्य-शास्त्र चर्चा और संस्कृत की महत्ता के संबन्ध में विद्वानों के वक्तव्य। आयोजन में संस्था के अधिकारियों, अध्यापकों, छात्रों तथा कर्मचारियों ने उल्लासपूर्वक भाग लिया। हर संस्था ने आयोजन अपनी कल्पना के अनुसार किया था। दुर्गासप्तशती पाठ के प्रमुख आयोजन का उद्देश्य था विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और संस्कृत के विकास की कामना।

जिन विद्यालयों और महाविद्यालयों ने उल्लासपूर्वक यह आयोजन किया, उनमें कुछ निम्नांकित हैं—

१. श्री दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय, मिश्रपोखरा, वाराणसी।
२. श्री मानव जीवन सुधार ब्रह्मचर्य संस्कृत महाविद्यालय, डलमऊ, रायबरेली।
३. श्री बलदेव सहाय संस्कृत महाविद्यालय, कैंट, कानपुर।
४. श्री सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय, बदायूँ।
५. श्री कुंजबिहारी संस्कृत महाविद्यालय, बिहारीपुरा, वृन्दावन (मथुरा)।

६. श्री साङ्गवेद महाविद्यालय, हनुमानगढ़ी, आजमगढ़।
७ श्री रामकुमार सिंह संस्कृत पाठशाला, काँठ, मुरादाबाद।
८. वैदिक संस्कृत विद्यालय, कचौरा, अलीगढ़।
९. श्री डाकोर संस्कृत पाठशाला ट्रस्ट, स्टेशन रोड, डाकोर (गुजरात)।
१०. संस्कृत महाविद्यालय, पट्टी नरेन्द्रपुर, जौनपुर।
११. श्री रामकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय, मऊरानीपुर, झाँसी।
१२. श्री शिवसनातनधर्म संस्कृत पाठशाला, बिलवाई, सुलतानपुर।
१३. श्री देववाणी प्रचारक विद्यालय, शाहगंज, जौनपुर।
१४. बिसंडा संस्कृत महाविद्यालय, बिसंडा, बाँदा।
१५. श्री वैकुण्ठनाथ पवहारि संस्कृत महाविद्यालय, श्री पवहारि आश्रम, वैकुण्ठपुर, देवरिया।
१६. श्रीमती भागीरथी ट्रस्ट आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, चुनार, मिर्जापुर।
१७. श्री दुर्गावती संस्कृत महाविद्यालय, चण्डेश्वर, आजमगढ़।
१८. श्री हरीराम गोपालकृष्ण सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय, ऊँचामण्डी, प्रयाग।
१९. श्री व्यासक्षेत्र संस्कृत महाविद्यालय, कालपी, जालौन।
२०. श्री शारदा संस्कृत महाविद्यालय, रामगोपाल विद्यान्त मार्ग, लखनऊ।
२१. श्री दुर्गा संस्कृत महाविद्यालय, महोबा, हमीरपुर।
२२. आदर्श भारती महाविद्यालय, खेतासराय, जौनपुर।
२३. श्री धर्मसंघ संस्कृत विद्यालय, रमणरेती, वृन्दावन (मथुरा)।
२४ श्री भगवानदास संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार (सहारनपुर)।
२५. साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय, सकरकन्द गली, वाराणसी।
२६. श्रीमत् परमहंस संस्कृत महाविद्यालय, टीकरमाफी, सुलतानपुर।
२७. श्री शिवप्रसाद पाण्डेय आदर्श संस्कृत पाठशाला, कलक्टर-गंज, उन्नाव।
२८. श्री चण्डी मन्दिर रामस्वरूप गुप्त आदर्श संस्कृत महा-विद्यालय, राजाबाजार, बदलापुर, जौनपुर।
२९ स्वामी देवानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, देवाश्रम मठ, लार, देवरिया।
३०. श्री शिवसंकटहरण आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, सकाहा, हरदोई।
३१. पंजाब सिन्ध क्षेत्र साधु महाविद्यालय, ऋषीकेश, देहरादून।
३२. श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय, गढ़मुक्तेश्वर, गाजियाबाद।
३३. श्रीराम संस्कृत आयुर्वेदिक महाविद्यालय, मन्दिर महेवा, इटावा।
३४. श्री महाकालिका संस्कृत महाविद्यालय, सोपरा, डाक० मुरदेवा, गोरखपुर।
३५. श्रीकृष्ण आयुर्वेदिक संस्कृत महाविद्यालय, मूसानगर, कानपुर।
३६. प्रबन्ध निकाय संस्कृत वेदांग विद्यालय, श्री जनेश्वरनाथजी का मन्दिर, बाँदकपुर (दमोह)।
३७. शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, भितरी, सीधी (म०प्र०)।
३८. श्री बलवन्त आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, दुगवा, डा० पूरा, जि० फैजाबाद।
३९. श्री विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय, उत्तरकाशी (उ०प्र०)।
४० श्री भागीरथी संस्कृत विद्यालय रामघाट, बुलन्दशहर।
४१. श्री साङ्गवेद आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, तामेश्वरनाथ, देवरिया।

जयन्तियाँ तथा दिवस

१ फरवरी, ७९

वसन्तोत्सव समारोह

भारत में ऋतुओं में वसन्त को ऋतुराज कहा गया है और वसन्त के उत्सव को उल्लासपूर्वक मनाने की परम्परा रही है। भारतीय साहित्य वसन्त के उल्लास से परिपूर्ण है। वसन्तोत्सव और वसन्तविषयक साहित्य की परम्परा केवल संस्कृत में ही नहीं, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी है। समय के परिवर्तन के साथ वसन्त के उल्लास में अन्तर भी आता गया है। संस्कृत साहित्य वसन्त ऋतु की सरस अनुभूतियों की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध है। कालिदास के ऋतुसंहार का छठा सर्ग वसन्त सौन्दर्य के विविध रंगों से ही रचा गया है। उनकी यह उक्ति बड़ी सार्थक है कि लाल पलाशों के रँगी वन की भूमि लाल साड़ी पहने नववधू जैसी प्रतीत होती है—

आदीप्तवह्निसदृशैर्मरुताऽवधूतैः
सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः।
सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेयं
रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः॥

हिन्दी में वसन्त के प्रति सबसे अधिक आकृष्ट हुए रीतिकालीन कवि, क्योंकि वसन्त उनके शृंगारी काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग था, विरहिणी के लिए सबसे अधिक उद्दीपन वसन्त में ही था। पर देव ने वसन्त को आलम्बन रूप में भी प्रस्तुत किया और रूपक के माध्यम से एक सुन्दर दृश्य उपस्थित किया—

मदन महीपजू को बालक वसन्त
ताहि प्रातहिं जगावत गुलाब चटकारी दै।

ऐसे सुन्दर वसन्त की साहित्यिक और ऐतिहासिक परम्परा के परिवेश में दि० १ फरवरी, ७९ को विश्वविद्यालय में वसन्तोत्सव का आयोजन हुआ। यह आयोजन जितना सरस था, उतना ही बौद्धिक भी। आयोजन की अध्यक्षता की कुलपति प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल ने। आरम्भ में प्रोफेसर शुक्ल ने वैदिक पद्धति से ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की अर्चना की। अनन्तर आपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा—"यह संसार सत् और असत् दोनों तत्त्वों पर आधारित है। हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए कि हम सत् और असत् में समन्वय स्थापित करें। यह तभी संभव है, जब हम सबको सरस्वती की कृपा प्राप्त हो। सरस्वती की कृपा से ही विश्वविद्यालय का विकास होगा और सामंजस्य का वातावरण पैदा होगा।" आपने आगे कहा कि जिस प्रकार हंस दूध और पानी को अलग अलग कर देता है, उसी प्रकार हमें विवेक और बुद्धि से कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निर्णय करना चाहिए। आपने छात्रों को सुझाव दिया कि वे अपने रचनात्मक कार्यों से विश्वविद्यालय की प्रगति में सहयोग करें तथा विश्वविद्यालय की मर्यादा के विपरीत कोई भी कार्य न करें। इसी प्रकार के कार्यों से देश तथा संस्था का हित होगा।

विश्वविद्यालयीय वसन्तोत्सव में सभी विभागों का पूर्ण योग था। इस अवसर पर बोलते हुए प्राचीन व्याकरण विभागाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने कहा—"सनातन धर्म के दिव्य पर्वों में वसन्त पञ्चमी भी एक पर्व है। इसमें ज्ञानाधिष्ठात्री भगवती सरस्वती का सर्वोपचार पूजन किया जाता है। महामुनि पाणिनि ने अष्टाध्यायी के कतिपय सूत्रों में वसन्त शब्द के उपादान द्वारा वसन्त ऋतु की विशेषता बतायी है, जिससे वसन्त पञ्चमी का महत्त्व सिद्ध हो जाता है। जैसे 'ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्' (अ० ४।३।४६) इस सूत्र में 'उप्ते च' (अ० ४।३।४४) सूत्र का अधिकार होने से सप्तम्यन्त ग्रीष्म तथा वसन्त शब्द से उप्त अर्थ में वुञ् प्रत्यय का विकल्प से विधान होता है। अतः 'वसन्ते उप्यते यत्तद् वासन्तकम्' तथा 'वासन्तम्' ऐसे दो प्रयोग सिद्ध होते हैं। वसन्त ऋतु में बोये जाने वाले सस्य वासन्तक अथवा वासन्त कहे जाते हैं। भारतवर्ष के कतिपय भू-भागों मे आज भी वसन्त में धान आदि बोने की प्रथा है।

इस सूत्र के आगे दूसरा सूत्र है—'देयमृणे' (अ० ४।३।४७)। इस सूत्र का अर्थ है—कालवाचक सप्तम्यन्त शब्दों से 'देयम्' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय हों, जो देय हो वह ऋण रूप हो। इस सूत्र के उदाहरण के रूप में जैसे 'मासे देयमृणं मासिकम्' यह सिद्ध हुआ, ऐसे ही 'वसन्ते देयमृणं वासन्तम्' यह भी सिद्ध होता है। इससे यह समझना चाहिये कि पाणिनि मुनि इस उदाहरण से यह स्पष्ट करते हैं कि वसन्त ऋतु में कृषि प्रधान देश में कृषकों के घर में अन्न हो जाता है, जिससे वे पहले का लिया हुआ ऋण चुका लेंगे।

अन्यत्र पाणिनि ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के विषय में कहते हैं—'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत' अर्थात् वसन्त ऋतु में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार होता है तथा वह वेदाध्ययन आरम्भ करता है। इससे ऋषि ऋण का निराकरण समझना चाहिये। 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत' श्रुति से वसन्त में अग्न्याधान का विधान बताया गया है। अतः अग्न्याधान करके हवन करने से देव ऋण से मुक्ति समझनी चाहिये। इसी प्रकार चैत्र मास में मीन संक्रान्ति में गया-श्राद्धादि पितृ-कर्म का विधान होने से वसन्त ऋतु पितृ ऋण से भी मुक्ति में साधक है। तात्पर्य यह कि वसन्त ऋतु देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण—इन तीनों ऋणों से मुक्त होने का अवसर प्रदान करती है।

वेद विभागाध्यक्ष प० गोपालचन्द्र मिश्र ने कहा है कि वेदों में वसन्त शब्द ऋतुवाची है। अग्निचयन में जो ऋतव्या इष्टकाएँ रखी जाती हैं, उनमें वसन्त ऋतु सम्बन्धी इष्टकाएँ रखने में जिस मन्त्र का उपयोग है, उसमें चैत्र और वैशाख मासों को मधुमाधव कहा गया है और उनका वसन्त ऋतु से संबन्ध बताया गया है। वसन्त को ऋतुओं का मुख कहा गया है। सृष्टि के प्रमुख तत्त्वों से वसन्त ऋतु का घनिष्ठ संबन्ध है। अग्नि देवता, गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम और वसुसंज्ञक देवगण इसके सहयोगी हैं। प्रकृति में स्वाभाविक रीति से जो क्रियाएँ होती हैं, उनको यज्ञ का रूप [illegible]ा जाता है, उनमें यज्ञ के प्रमुख साधन घृत के रूप में वसन्त ऋतु को 'वसन्तोऽस्यासीदाज्यम्' उक्ति द्वारा स्पष्ट किया गया है। घृत का कार्य बल बढ़ाकर ताजगी लाना है। इसीलिए वसन्त ऋतु में पतझड़ के बाद के नूतन किसलय उत्पन्न होकर ताजगी लाते हैं।

आपने आगे बताया कि श्रृंगार रस में वसन्त का महत्त्व साहित्यिकों के लिए अपरिहार्य है। जिस प्रकार लौकिक साधनों में वसन्त ऋतु की महत्ता है, उसी प्रकार अदृष्ट कार्यों से भी वसन्त ऋतु का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इसी कारण मानव की प्रमुख जाति ब्राह्मण को वसन्त ऋतु में ही अग्न्याधान, उपनयन, अग्निष्टोम याग आदि का विधान है, एवं आदर्शचरित भगवान् श्रीराम का प्रादुर्भाव, भगवान् बुद्ध की जयन्ती, वैशाखी पर्व और अक्षय तृतीया जैसी युगादि और मन्वादि तिथियाँ एवं पर्व मनाने की परम्परा है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी 'ऋतूनां कुसुमाकरः' कहकर वसन्त ऋतु को महत्त्व प्रदान किया है। वसन्त ऋतु जिस प्रकार सर्वाङ्गीण होकर पूर्ण है, उसी प्रकार पञ्चमी भी पूर्णा तिथि मानी जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थित खगोल के संकेतों में जिस वसन्त सम्पात का वर्णन है, वह किसी समय माघ की शुक्ल पञ्चमी से सम्बद्ध था। इसीलिए माघ शुक्ल पञ्चमी को वसन्त पञ्चमी कहकर हम लोग ब्रह्मतत्त्व की उद्भावयित्री पराम्बा सरस्वती की इस दिन आराधना करते हैं।

अनुसन्धान विभाग के निदेशक डा० श्री भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री' ने वसन्त का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा कि यह एक ऐसी ऋतु है जिसमें सम्पूर्ण ऋतुओं के तत्त्व विद्यमान हैं। षड्भावविकारों का प्रत्येक ऋतु में एक एक भाव सन्निहित रहता है। पर वसन्त में उक्त सभी भावों का वास है। वसन्त को वर्षारम्भ भी माना जाता है। "वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः" में उद्धृत वसन्त, ग्रीष्म और शरद् इन तीनों को वर्ष का वाचक माना जाता था। 'जीवेम शरदः शतम्' में 'शरद्' तथा 'जिजीविषेच्छतं समाः' में 'समाः' शब्द हायनवाचक है। वसन्त से ग्रीष्म पर्यन्त अवधि के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। लैटिन, जर्मन, अंग्रेजी इत्यादि आर्यभाषाओं में 'समर' शब्द ग्रीष्मकाल का वाचक है। शरद् में वर्षाकालिक धान्य (रबी) का तथा वसन्त-ग्रीष्म की सन्धि में (खरीफ) धान्य का परिपाक होता है। भारतवासी शरद् में राष्ट्रकल्याण के लिए शक्ति समर्जनार्थ अधिष्ठात्री शक्ति शारदा की उपासना करते हैं और वसन्त में सरस्वती की। देवीभागवत में कहा है शक्ति के बिना शिव भी शव रह जाते हैं—'शिवोऽपि शवतां याति कुण्डल्यादिविवर्जितः'।

आपने आगे स्पष्ट किया कि सरस्वती का वर्ण श्याम है। सायंकालिक सन्ध्या में 'वृद्धां सरस्वतीं कृष्णाम्' के रूप में इनका ध्यान किया जाता है। देवीभागवत पुराण में श्याम या नील सरस्वती के रूप में इनका उल्लेख हुआ है। सरस्वती वीणापाणि ज्ञानविज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं। स्कन्दपुराण में नाद से शंकर का आविर्भाव माना गया है। नाद का रहस्य अगम्य है। इस विषय में एक कवि उत्प्रेक्षा करता है कि नादाम्बुधि का पार सरस्वती भी नहीं पा सकी हैं। उसमें डूब न जाएँ, इसी से उन्होंने बगल में तुम्बी लटका रखी है—

नादाम्बुधेः परं पारं किं न वेत्सि सरस्वति।
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बीं वहसि वक्षसि॥

वसन्त का ज्योतिष से भी सम्बन्ध है। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष डा० मुरारिलाल शर्मा ने बताया कि अति प्राचीनकाल से सूर्य की गतियों से वसन्त के आरम्भ का निर्णय किया जाता रहा है। सूर्य की दो प्रकार की गतियाँ मानी गई हैं। वैज्ञानिक रीति से ये पृथ्वी की ही गतियाँ हैं। ये हैं—दैनिक गति तथा वार्षिक गति। दैनिक गति से वह नाडीवृत्त के समानान्तर अहोरात्र वृत्त का भ्रमण ६० घटी में पूर्ण करता है तथा वार्षिक गति से एक वर्ष में क्रान्ति वृत्त की एक

पूर्ण परिक्रमा करता है। वर्ष में दो बार ऐसी स्थिति आती है, जब सूर्य नाडीवृत्त में हो भ्रमण करता है। उस दिन रात और दिन का मान समान हो जाता है। अर्थात् दिन भी ३० घटी का होता है और रात्रि भी ३० घटी की ही होती है। उत्तरायण में जब ऐसी स्थिति आती है, उस समय सूर्य नाड़ी और क्रान्ति वृत्त के सम्पात बिन्दु पर पहुँचता है। उसी समय वसन्त का प्रारम्भ होता है। नाड़ी और क्रान्ति वृत्त के उस सम्पात का नाम वसन्त विषुव है। सूर्य के वसन्त विषुव में पहुँचने पर वसन्त का प्रारम्भ होता है। वैदिक काल में विषुव सम्पात मृगशिरा तथा बाद में वैदिक काल ही में कृत्तिका में पहुँच गया था। अयन की गति के कारण यह सम्पात पश्चिम की ओर हटता रहता है। जब यह सम्पात अश्विनी नक्षत्र के आदि में था, तब स्थिर राशिचक्र की कल्पना की गई थी और गोल सन्धि की मेषादि में कल्पना की गई थी। उस बिन्दु से विषुव सम्पात जितना हट गया है, उसे अयनांश कहते हैं। आजकल विषुव सम्पात उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में है और इस बिन्दु पर सूर्य २१ मार्च को पहुँचता है।

डा० शर्मा ने कहा कि यद्यपि ज्योतिष शास्त्र की गणना के अनुसार वसन्त का प्रारम्भ वसन्त विषुव पर सूर्य के आने से होना चाहिये, फिर भी ऋतु परिवर्तन माघ शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ होते ही लक्षित होने लगता है। इसीलिये माघ शुक्ल पञ्चमी को लोग वसन्त पञ्चमी के रूप में मनाते हैं।

ज्योतिष विभाग के प्राध्यापक डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी ने कहा कि कवियों ने वसन्त का बड़ा मोहक वर्णन किया है। पर ज्योतिष के क्षेत्र में भी वसन्त का कम महत्त्व नहीं है। वर्ष को नापने के लिये दो बिन्दु माने गए हैं—शरत् सम्पात और वसन्त सम्पात। एक बरसात से दूसरी बरसात के बीच का समय वर्ष है। वेदों और उपनिषदों में वर्षबोधक शब्द वसन्त, शरद् तथा हेमन्त आदि का प्रयोग इसी सन्दर्भ में है। भारतीय मनीषियों ने देश तथा समाज के विकास के लिए तीन शक्तियों की उपासना बताई है— काली, लक्ष्मी और सरस्वती। काली समाजबल बढ़ाती हैं, लक्ष्मी धन-धान्य और व्यापार आदि तथा सरस्वती ज्ञान, कला-संस्कृति और मेधा का विकास करती हैं। वसन्त का दिन ही सृष्टि के आरम्भ का वासन्तिक सम्पात बिन्दु का दिन है।

विश्वविद्यालय में वसन्तोत्सव के माध्यम से अनेक रोचक तथ्य सामने आए। संस्कृत के कवि श्री शिवजी उपाध्याय ने कहा कि वसन्त ऋतु सभी ऋतुओं के परिणाम का पाचक है। इस ऋतु में सभी पदार्थ समान मात्रा में प्राप्त होते हैं—न किसी पदार्थ की अधिकता रहती है और न अभाव। कृष्ण ने गीता में अपने को 'ऋतूनां कुसुमाकरः' कहा है। अन्य ऋतुओं में विषमता होती हैं, जबकि वसन्त समशीतोष्ण ऋतु है, इसी समय प्रकृति का सुन्दर विकास होता है। यदि वसन्त न हो तो अन्य ऋतुओं का या तो विकास ही न हो, या वे विप्लवकारी सिद्ध हों। वसन्त में ही प्रकृति पुराने वस्त्र त्याग कर नये वस्त्र धारण करती है और तब गीता की यह उक्ति चरितार्थ होती है :—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

श्री उपाध्याय ने संस्कृत साहित्य से अनेक उदाहरण देकर वसन्त का महत्त्व स्पष्ट किया।

श्री अमृतलाल जैन ने जैनदर्शन की पृष्ठभूमि में बोलते हुए कहा कि जैन दर्शन में ऋतुचक्र को व्यवहार काल में गिनाया गया है। ऋतुचक्र जीवन के लिये अनिवार्य है। शीत, ग्रीष्म और वर्षा—इन तीन ऋतुओं से सभी परिचित हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी तीन ऋतुओं की चर्चा है। वर्ष में बारह मास होते हैं और पाँच ऋतुएँ। हेमन्त और शिशिर में समानता होने के कारण उन्हें संक्षेप में एक ही ऋतु में सम्मिलित किया है—'द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्त-शिशिरयोः समासेन' तथा 'हेमन्तशिशिरौ तुल्यौ'। वेदों में कहीं-कहीं छह ऋतुओं का भी उल्लेख हुआ है। ऋतुओं की संख्या तीन या पाँच हो या छह हो, पर वसन्त के प्राधान्य को सभी ने स्वीकार किया है और कवियों ने अपने काव्य में इसका वर्णन ऋतुराज के रूप में किया है।

आपने आगे बताया कि 'जीवेम शरदः शतम्' में 'शरत्' शब्द वर्ष अर्थ में विवक्षित है। पर इसका दूसरा अर्थ 'शरद् ऋतु' भी है, जिसके आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि वैदिक युग में शरद् ऋतु का भी महत्त्व था।

वसन्त पञ्चमी के दिन सरस्वती की पूजा होती है। वर्षा और शीत ऋतु में अध्ययन-अध्यापन में व्यवधान उपस्थित होता है। पर वसन्त पञ्चमी से वह व्यवधान समाप्त हो जाता है, क्योंकि वसन्त में न वर्षा होती है और न सर्दी-गर्मी। फलतः सरस्वती की अर्चना करके जो भी अध्ययन करेंगे, लाभान्वित होंगे। ज्ञान की वृद्धि वसन्त में ही होती है—'बोधवृद्धिर्वसन्ते'।

साहित्य विभाग के उपाचार्य डा० कैलासपति त्रिपाठी ने कहा कि वसन्त सारी प्रकृति में अपूर्व प्राणवत्ता ला देता है। वसन्त की ही महिमा से सर्वत्र नवता का उन्मेष दिखाई पड़ता है। पत्र, पुष्प एवं फल का सातिशय सम्भार वसन्त की प्राणदायिनी शक्ति के कारण होता है। प्रकृति के इसी प्रसाद रूप को साहित्य ग्रहण करता है।

साहित्य कलाकारों की सहज एवं प्रसन्न साधना है। वसन्त इस साधना की अपूर्व वेला है। कला मूलतः एक आध्यात्मिक क्रिया है। आत्मा आनन्दमय तत्त्व है, उसके साहचर्य एवं सामरस्य में होने वाली क्रिया तदास्वाद सोदर हुआ करती है। इसी लिये अरुचिकर एवं असरस चीजें भी कलाकार की साधना में रुचिकर एवं सरस हो जाती हैं। जो चीजें स्वभावतः प्रसन्न एवं सरस होती हैं, कला का योग पाकर रमणीयतर हो जाती हैं। प्रसाद सम्भृत सरसता के ही कारण वसन्त साहित्यिक साधकों के बीच अधिक प्रचलित है। उत्तमोत्तम प्रतिभा के सातिशय विकास का अवसर वसन्त की वेला में ही मिलता है। महाकवियों ने प्रकृति में तारुण्य सञ्चारित करने वाली वासन्तिक वेला का भरपूर उपयोग किया है।

बिम्ब जितना ही उत्तम होता है, प्रतिबिम्ब उतना ही अच्छा बनता है। वसन्त प्रकृति के बिम्ब को उद्भासित करता है, मञ्जुल एवं आस्वाद्य बनाता है। कवि उस मधुमय बिम्ब को अपनी कला का योग देकर आस्वाद्यतर बना देता है। संवेदनों की आन्तरिक समन्विति और अरूप संवेदन की अजस्र धारा वासन्तिक सुषमा के उन्मीलन का सहज लक्षण है। इसीलिये वर्ण्योपकरण के रूप में साहित्य के साथ वसन्त का अपूर्व साहित्य है।

वसन्तोत्सव के अवसर पर श्रीराम शास्त्री 'निर्भयराय' ने कहा कि वसन्त को मधु, माधव और ऋतुराज कहा गया है। जितनी ऋतुएँ भारत में होती हैं, उतनी विश्व में कहीं नहीं होतीं। पर वसन्त ऋतुराज किस प्रकार है? वर्षा के साम्राज्य में जलप्लावन का नृत्य होता है। ग्रीष्म अपने समय में विराट् विश्व दहन ताण्डव लीला करता है। शरद्, शिशिर और हेमन्त विश्व को हिमाच्छादित कर हिममय बना देते हैं। जब शिशिर-हेमन्त का पतझड़ अपनी भयङ्कर शक्ति से संसार का विशेषतया वनस्पति जगत् का सर्वस्व छीन कर उजाड़ देता है, तब ऋतुराज वसन्त कहाँ रहता है? यह तो केवल चैत्र-वैशाख मास ही में आता है। ऋतुराज माधव वसन्त के अर्थ का विशेष रहस्य है, जिससे वास्तव में वसन्त ही ऋतुराज है। यह सबसे सुन्दर रूप लावण्यमय कोमल मदमय सुखैश्वर्यवैभवविलासलास्यलीलामय नवघनबलस्मितहासरक्तस्फूर्तिकन्दमूलकिसलयदल कुसुममकरन्द परागसौरभफलादि चलाचल सम्पत्शाली है।

अन्त में श्रीराम शास्त्री 'निर्भयराय' ने स्वरचित कविता का पाठ किया—

> अनङ्गेनाज्ञप्तो विरहिदहनार्थं प्रचलितो
> वसन्तः सेनानी पिकमधुकराद्यैर्बहुभटैः।
> समारूढो गूढो मलयपवनं स्यन्दनवरं
> विहङ्गानां नादैर्विविधरणवाद्यैरिव पुनः॥
>
> समीराणां यूथैः सुरभितपरागं विकिरयन्
> प्रसूनालङ्कारैः प्रकृतिकलरूपं रुचिरयन्।
> समाचुम्बन् कुञ्जं सरसिरुहपुञ्जं मुदुलयन्
> लतासङ्गं कुर्वन् कलिकुचविमर्दं विरचयन्॥
>
> वहन् सज्जाभारं युवतिजनपुष्पं प्रजनयन्
> स्ववासन्तीसेनां दिशि दिशि सगर्वं कुशलयन्।
> मधूनामासारैरनलकुलजालैर्विधुरयन्
> मनोदाहं दाहं सकलभुवनं व्याकुलयति॥

१० मार्च, १९७९

हरिदास जयन्ती

'संगीत मेरे जीवन का आरम्भ से ही उच्च आदर्श रहा है। संगीत ने मुझे सर्वदा प्रेरणा प्रदान की है। संगीत तथा दर्शन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन के अभाव में संगीत अन्धा हो जाता है और संगीत से सम्बन्ध विच्छेद करने पर दर्शन लँगड़ा हो जाता है। दर्शन संगीत को दृष्टि प्रदान करता है और संगीत दर्शन को गतिशील बनाता है।'

उपर्युक्त उद्गार हैं संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ तथा दर्शन के उच्च कोटि के विद्वान् ठाकुर जयदेव सिंह के, जो उन्होंने विश्वविद्यालय के मुख्यभवन में दिनांक १० मार्च, १९७९ को हरिदास जयन्ती के अवसर पर आयोजित संगीत के विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का उद्घाटन करते हुए व्यक्त किये।

संगीत के प्रकाण्ड पण्डित ठाकुर जयदेव सिंह ने स्वामी हरिदास की संगीत-साधना की विवेचना करते हुए बताया कि वे भारत के अनुपम संगीतज्ञ और श्रेष्ठतम गायक थे। स्वामी हरिदास केवल गायक ही नहीं थे, बल्कि वे गीतों के रचयिता भी थे। स्वामी जी विष्णु पद की रचना करते थे। इन पदों में छन्द और संगीत के ताल दोनों का समन्वय होता है। इन पदों में संगीत की मात्राओं के साथ काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार छन्दों की योजना भी होती है। इस प्रकार स्वामी जी संगीतशास्त्र के अन्यतम साधक के साथ-साथ उच्च कोटि के कवि भी थे। यह उनकी एक प्रमुख विशेषता थी। उनके समकालीन तानसेन तथा बैजू बावरा में यह विशेषता नहीं थी। इन दोनों शीर्षस्थ संगीतकारों ने ताल पर तो ध्यान दिया, मगर छन्दों की चिन्ता नहीं की।

संगीत को तीन भागों—एकल, युगल तथा वृन्द में विभक्त करते हुए ठाकुर साहब ने स्वामी हरिदास को वृन्द संगीत का

उपासक बताया। मन्दिरों में उन दिनों यही संगीत होता था। विष्णु पदों की रचना का श्रेय स्वामी हरिदास को ही है। स्वामी जी के दो ग्रन्थों 'सिद्धान्त' और 'केलिमाला' में उनकी रचनाएँ सगृहीत हैं। 'सिद्धान्त' में उनकी १०८ तथा 'केलिमाला' में ११० रचनाएँ उपलब्ध हैं। कान्हड़ा राग उनका प्रिय राग था। विभास भी उन्हें प्रिय था।

संगीत के विकास में चार चरणों—सामवेद, मन्दिर (वृन्द), रंगमंच तथा प्रासाद (दरबारी) संगीत का उल्लेख करते हुए संगीत के मूर्द्धन्य विद्वान् ने कहा कि सामवेद का संगीत समाप्त हो चुका है। उसका सस्वर पाठ मात्र ही अवशिष्ट रह गया है। मन्दिर संगीत भी लुप्तप्राय है। पर्याप्त साधनों के अभाव में मन्दिर संगीत के कलाकार उसके प्रति उदासीन होते गये। मथुरा के मन्दिरों में प्रचलित पन्द्रह रुपये मासिक का पारिश्रमिक और एक 'पत्तल' (भोजन) संगीत की इस शाखा की बहुत दिनों तक रक्षा करने में समर्थ नहीं हुआ। इस सन्दर्भ में विद्वान् वक्ता ने अतीत में मथुरा के स्व० लक्ष्मण चौधरी एवं चन्दन चौबे को स्वामी जी का प्रतिनिधि स्वीकार किया, परन्तु आज मन्दिर संगीत का एक भी सच्चा प्रतिनिधि कहीं दिखाई नही देता। रंगमंचीय संगीत भी पतनोन्मुख है। शास्त्रीय संगीत की जो धारा आज उपलब्ध है, उसे दरबारी संगीत की परम्परा में रखा जा सकता है। दरबारी संगीत की शब्दावली लचर तथा अश्लील होती है।

प्रारम्भ में आपने स्वामी हरिदास के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उनके जीवन के सम्बन्ध में आज बहुत कम जानकारी प्राप्त है। उस समय आत्मकथा या जीवन-वृत्त लिखने की प्रथा नहीं थी। उनकी जन्मतिथि, जन्मस्थान तथा माता-पिता के नाम के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। गोस्वामी सम्प्रदाय के अनुसार उनका जन्म सं० १४८० में वृन्दावन के निकट एक गाँव में हुआ था, तो गृहस्थ सम्प्रदाय के अनुयायी उनका जन्म काल सं० १५१२ तथा जन्मस्थान अलीगढ़ के सन्निकट एक गाँव मानते हैं। गोस्वामी सम्प्रदाय के अनुसार उनकी माता का नाम 'चित्रा' है, तो गृहस्थ सम्प्रदाय 'गंगा देवी' मानता है। परन्तु सभी सम्प्रदाय यह स्वीकार करते हैं कि स्वामी जी पच्चीस वर्ष की अवस्था में संगीत की साधना करने वृन्दावन आये थे और उनका देहावसान ९५ वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर हुआ। कुछ लोग तानसेन को उनका शिष्य मानते हैं, तो कुछ लोग यह स्वीकार करते हैं कि तानसेन उनके शिष्य नहीं थे।

संगीत शास्त्र के उद्भट विद्वान् तथा दर्शनशास्त्र के प्रबुद्ध आचार्य ठाकुर जयदेव सिंह का स्वागत करते हुए कुलपति आचार्य बदरीनाथ शुक्ल ने उन्हें उच्च कोटि का कलाप्रेमी और विद्वान् बताया। भगवान शंकर को उन्होंने संगीत का आचार्य मानते हुए कहा कि भगवान् भूतभावन के गायन से संगीत के आराध्यदेव विष्णु द्रवित हो गये और उनके शरीर से गंगा का उद्भव हुआ।

आचार्य शुक्ल ने कहा कि ठाकुर जयदेव सिंह शैव दर्शन के आचार्य हैं। उनका दर्शन तथा संगीत दोनों पर अद्भुत अधिकार है। उन्होंने शिव के दर्शन, संगीत तथा पवित्र आवास काशी को अपनाकर साक्षात् मोक्ष को प्राप्त कर लिया है।

नटराज की नगरी में रह कर संगीत की साधना में अपना जीवन व्यतीत करने वाले उन कलाकारों के प्रति कुलपति ने अपना हार्दिक आभार व्यक्त किया, जो हरिदास जयन्ती के अवसर पर विश्वविद्यालय के निमन्त्रण पर अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन करने के लिये प्रस्तुत थे। संगीतप्रेमी दर्शकों के प्रति भी उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

क्रीड़ा विभाग के अध्यक्ष श्री जगन्नाथाचार्य के कलात्मक वायलिन वादन से सांस्कृतिक कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। उनके साथ संगत करने वाले थे श्री जालपाप्रसाद मिश्र (हारमोनियम) तथा श्री यमुनाप्रसाद मिश्र (तबला)। श्री जगन्नाथाचार्य ने वायलिन पर केदार राग की सृष्टि की।

सुश्री रमा चक्रवर्ती का गायन 'ठुमकि चलत रामचन्द्र' पवित्र वातावरण बनाने में पूर्णतया सफल रहा।

श्री शिवनाथ मिश्र के अद्भुत एवं कलात्मक सितार वादन से दर्शक झूम उठे। उन्होंने जोगकौश राग प्रस्तुत किया। उनके साथ तबला पर सफल संगतकार थे श्री प्रकाश महाराज। यह उल्लेखनीय है कि इन दोनों संगीतकारों की जोड़ी शीघ्र ही अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिये जर्मनी जा रही है।

आचार्य राधाकान्त का संस्कृत गायन सभी को रुचिकर लगा। इनके साथ श्री यमुनाप्रसाद मिश्र ने तबले पर संगत की।

श्री वीरेन्द्र उपाध्याय के रोचक भोजपुरी गीतों ने दर्शकों में अद्भुत आनन्द की सृष्टि की। 'छलकल गगरिया मोर निर-मोहिया' ने सचमुच रस छलका ही दिया। इनके सहवादक थे आचार्य राधाकान्त एवं श्री यमुनाप्रसाद मिश्र।

कार्यक्रम के अन्त में प्रस्तुत सुश्री मधु के कत्थक नृत्य की समस्त दर्शकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की। 'द्रौपदी चीरहरण' में कुशल कलाकार ने अपनी सफल एवं मूक अभिव्यक्तियों द्वारा करुण, बीभत्स तथा शान्त रस को साकार किया। होली नृत्य द्वारा तो उन्होंने ब्रज की होली को मंच पर प्रस्तुत ही नहीं किया, बल्कि भिन्न-भिन्न रंगों के गुलाल उड़ाकर यह संकेत भी दिया कि

चार दिन बाद ही यह राष्ट्रीय पर्व आने वाला है। नृत्य के बोल, हाथों की मुद्राएँ एवं घुँघरू की आवाज—तीनों क्षेत्रों में सुश्री मधुजी ने दर्शकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ दी। इनके साथ संगत की सर्वश्री प्रकाश महाराज, भोलानाथ तथा शिवनाथ मिश्र ने। सुश्री मधु के कला प्रदर्शन से प्रसन्न होकर कुलपति ने उन्हें १०१) का पुरस्कार दिया।

अनुसन्धान निदेशक डा० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री' ने अन्त में समस्त कलाकारों तथा श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त किया। धन्यवाद अर्पण कर यह पुनीत कार्य भी डा० त्रिपाठी ने एक श्लोक के माध्यम से सांगीतिक भाषा में अपनी मधुर स्वर-लहरी द्वारा सम्पन्न किया।

५ अप्रैल, १९७९

रामनवमी समारोह

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के बौद्ध कक्ष हाल में दिनाङ्क ५-४-७९ को सायं रामनवमी पर्व के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने कहा कि जिस प्रकार घट में आकाश की स्थिति होती है, उसी प्रकार शरीर में भी भगवान् की स्थिति को मानना चाहिए। आपने कहा कि जब-जब अधर्म में वृद्धि होती है, तब-तब भगवान् प्रगट होते हैं। आपने भगवान् राम को शान्त्यानन्द बताया, जब कि भगवान् श्रीकृष्ण शान्त्यानन्द तथा समृद्ध्यानन्द दोनों हैं। जीव और ईश्वर दोनों में केवल बाह्य स्थिति में ही भेद है। जीव कर्मपरतन्त्र है और ईश्वर कर्मबन्धन रहित। श्री राम महर्षियों का समादर करते थे और भगवान् होते हुए भी मनुष्य रूप में सामाजिक कृत्यों पर अधिक जोर देते थे। इस अवसर पर डा० ग्रिफिथ महोदय को उनके द्वारा वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किये जाने के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त किया और कहा कि इस प्रकार के कार्यों से हमारी संस्कृति का अन्य देशों में प्रसार हुआ है। आपने छात्रों को भी उसी प्रकार गुरुजनों के चरण में रहते हुए उनका आशीर्वाद प्राप्त करने और रचनात्मक कार्य करने का सुझाव दिया।

आरम्भ में इस अवसर पर वाल्मीकि रामायण का २१ छात्रों द्वारा पाठ किया गया। इस अवसर पर अन्य वक्ताओं में सर्वश्री सुभाषचन्द्र त्रिपाठी, भुवनेशकुमार उपाध्याय, त्रिभुवन मिश्र एवं जगन्नाथ पाण्डेय ने भगवान् राम के धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक स्वरूप पर प्रकाश डाला। सांस्कृतिक मन्त्री श्री त्रिभुवन मिश्र ने उपस्थित महानुभावों को धन्यवाद प्रदान किया।

१० अप्रैल, १९७९

महावीर जयन्ती

महावीर जयन्ती का आयोजन विश्वविद्यालय के शिवकुमार शास्त्री छात्रावास में दिनाङ्क १०.४.७९ को हुआ और इसकी अध्यक्षता कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने की।

इस अवसर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन विभाग के प्रो० डा० महेश तिवारी ने कहा कि भारतीय संस्कृति तीन धाराओं का समग्र रूप है। ये हैं—वैदिक चिन्तन प्रवाह, जैन चिन्तन प्रवाह तथा बौद्ध चिन्तन प्रवाह। इन तीनों का योग अपने में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी से भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप अभिव्यक्त हुआ है। इस प्रकार जैन चिन्तन धारा भी भारतीय संस्कृति को एक दिशा प्रदान करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन चिन्तन धारा का मूल्याङ्कन प्रस्तुत करते हुए आपने स्वामी महावीर के समय में प्रचलित अन्य छह तैर्थिक मतों का उल्लेख करते हुए कहा कि उस समय ऐसे भी मत प्रचलित थे जो पाप अथवा पुण्य का कोई फल नहीं मानते थे। इनमें से कुछ सत्कार्यवादी, कुछ उच्छेदवादी तथा कुछ घोर रूप से जड़वादी थे। इन सबके द्वारा जब समाज एक प्रकार से उच्छृङ्ख-लता की ओर ले जाया जा रहा था, तभी स्वामी महावीर का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने समन्वयवाद की स्थापना की, जिसे स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद कहा जाता है।

अनेकान्तवाद को स्पष्ट करते हुए डा० तिवारी ने पालि त्रिपिटक से जन्मान्धों द्वारा हस्तिदर्शन का उदाहरण देते हुए कहा कि किसी राजा ने जन्मान्धों को बुलाकर उन्हें हाथी का स्पर्श कराया और इसके बाद उन्हें उसका वर्णन करने को कहा। उनमें से विभिन्न लोगों ने जिस जिस अङ्ग का स्पर्श किया था, उसी के अनुसार हाथी के स्वरूप का कथन किया और कोई उसके समग्र स्वरूप का व्याख्यान नहीं प्रस्तुत कर सका। स्वामी महावीर के चिन्तन प्रवाह के पूर्व भारतीय चिन्तन की यही स्थिति हो गयी थी। उन्होंने समन्वयवाद की स्थापना की और कहा कि कोई विचार पर्याय से ठीक अथवा बेठीक हो सकता है। इस प्रकार एकान्तवादिता से अपने को उन्होंने दूर रक्खा। वे अहिंसा के मूलभूत प्रवर्तक थे और दान पर उनका विशेष बल था। इसे उन्होंने अपरिग्रह की संज्ञा प्रदान की।

भगवान् बुद्ध के विचारों से पर्याप्त अंशों में उनका मेल प्राप्त होता है। दुःख के सम्बन्ध में उनका भी विचार था कि यह मानव धरातल पर ही उत्पन्न होता है और इसे दूर करने के लिए अपने में त्याग की भावना लानी चाहिये तथा आसक्ति से

दूर रहना चाहिए। जिसे एक प्रिय होता है उसका दुःख भी एक होता है और जिसे सहस्र प्रिय होते हैं, उसके दुःख भी सहस्र होते हैं। इस पर ध्यान देते हुए हमें प्रिय तथा अप्रिय से दूर रहना चाहिए।

इस प्रकार अपरिग्रह, अहिंसा तथा अनासक्ति से समाज सुखी रह सकता है। भगवान् महावीर के मुख्य उपदेश इन्हीं से सम्बद्ध थे। आज उनकी जयन्ती का पुण्य पर्व है और इस अवसर पर उनके प्रति मैं श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डा० रघुनाथ पाण्डेय ने कहा कि जैन धर्म का चरम विकास जैन तर्क शास्त्र के रूप में है। भारतीय न्यायशास्त्र की परम्परा के जो ग्रन्थ अपने मूलरूप में विलुप्त हैं, उनमें से कुछ के उद्धरण जैन न्यायशास्त्र में प्राप्त होते हैं। उनका अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि इनकी वाद-विवाद प्रक्रिया पर्याप्त विकसित थी और जैन विद्वानों ने इस प्रक्रिया को जीवित रखा। वहाँ पर यह प्रश्न उठाया गया है कि गोत्व का व्याख्यान तो कर दिया जाता है, जो एक प्रकार से रूढ़ सा है, किन्तु यदि गजत्व अथवा अश्वत्व आदि पूछे जाँय, तो नैयायिक निरुत्तर हो जायेंगे।

इस प्रकार भारतीय चिन्तन धारा में जैन चिन्तन धारा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज इस धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर के प्रति हम अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

अध्यक्ष प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने इस देश के 'भारत' नामकरण पर प्रकाश डालते हुए कहा कि कुछ लोगों के मतानुसार सम्राट् 'भरत' के कारण यह नाम है। किन्तु वास्तविकता यह लगती है कि इसे भारत इसलिये कहा जाता है कि यह देश 'भा' अर्थात् प्रकाश के अन्वेषण में रत है। इसी दृष्टि के कारण हमारे इस महान् देश की विश्व में प्रतिष्ठा है, क्योंकि अतीत से ही यह ज्ञान के अनुशीलन में रत है और इस तथ्य का परिज्ञान हमें महापुरुषों के जीवन से प्राप्त होता है। स्वामी वर्धमान भी इन्हीं महापुरुषों में से एक हैं।

जैन परम्परा के अनुसार चौबीस तीर्थङ्करों का प्रादुर्भाव हुआ है। तीर्थ का अर्थ है तैरने अथवा पार करने का साधन। इस साधन को प्रस्तुत कर संसार सागर को पार करने के साधक शास्त्र के रचयिता को तीर्थङ्कर कहा जाता है। महावीर स्वामी वर्तमान शासन के तीर्थङ्कर हैं। उनके मुख से निर्गत त्रिपदी से ही समग्र जैनागमों का विकास हुआ है। डा० महेश तिवारी ने अभी जो विचार व्यक्त किये हैं, वे आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से हैं। यह कहना कि जिस समय स्वामी महावीर का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय एकान्तवाद का बोलबाला था और इससे समाज में विषमता उत्पन्न हो रही थी तथा पूरा राष्ट्र दुष्प्रभावित था। उस समय महावीर स्वामी ने विभिन्न एकान्तवादों का नयवाद से समर्थन कर अनेकान्तवाद की स्थापना द्वारा इसे दूर करने की चेष्टा की। किन्तु जैन परम्परा को यह मान्य नहीं है। इस परम्परा के अनुसार जैन दर्शन महान् रत्नाकर अथवा अमर सरित् है और उसी से विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों की मान्यता की धाराएँ निर्गत हुई हैं। जैन दर्शन शाश्वत है और उसी में से एक-एक दृष्टि को लेकर लोगों ने विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय खड़े किये हैं। जैनों की इस मान्यता के अनुसार अन्य सारे दर्शन प्रस्थान जैन दर्शन से उद्भूत हैं। उसके अनुसार विचार तथा भाषा को एकान्तवादी नहीं होना चाहिए, अपितु भाषा को स्याद्वादी तथा विचारों को अनेकान्तवादी होना चाहिए।

स्याद्वाद को स्पष्ट करते हुये प्रो० शुक्ल ने आगे बताया कि इस पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में जितने भी दृष्टिकोण प्रस्तुत होते हैं, वे सभी अपेक्षाभेद से स्वीकार्य हैं। कोई भी दृष्टि सर्वथा अमान्य नहीं है। दृष्टि के अमान्य होने की तब अपेक्षा होती है जब वह अन्यों की उपेक्षा कर अपने में ही सीमित होने लगती है, क्योंकि वही देश में एकता की स्थापना में बाधक होती है।

जैन ग्रन्थों के देखने से ऐसा स्पष्ट आभास मिलता है कि जैन दर्शन वैदिक दर्शन के बहुत सन्निकट है और वह भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक दृष्टि से ओतप्रोत है। जैन ग्रन्थों में वैदिक दर्शन की अपेक्षा बौद्ध दर्शन के खण्डन पर विशेष बल दिया गया है। अभी डा० रघुनाथ पाण्डेय ने गोत्व के निर्वचन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि जिस प्रकार गोत्व का निर्वचन सास्ना (गलकम्बल) जैसे विशेष अवयवों द्वारा किया जाता है, उसी प्रकार अश्वत्व आदि के निर्वचन के बारे में प्रश्न करने पर उत्तरदाता को निरुत्तर रहना पड़ता है। अतः अवयवों द्वारा अवयवी को लक्षित करने की मान्यता साधार नहीं है। इस सन्दर्भ में यह कहना संगत प्रतीत होता है कि 'लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्' व्युत्पत्ति के अनुसार किसी भी वस्तु का कोई भी असाधारण धर्म उसका लक्षण हो सकता है। यह धर्म अवयवों का संस्थान भी हो सकता है तथा पृथिवी की गन्ध आदि के समान अन्य धर्म भी हो सकते हैं। यदि अश्वत्व आदि का निर्वचन अश्व आदि के शरीर के विशेष अंश द्वारा ही अभिप्रेत हो तो वह भी दुष्प्राप्य नहीं है। 'एकशफत्वम्' अश्व का, 'शूर्पकर्णत्वम्' आदि गज का एवं 'कमठकठोरविषमपृष्ठत्वम्' आदि उष्ट्र का लक्षण प्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त 'हिनहिनाहट शब्दकर्तृत्व' अश्व का और चीत्कारकर्तृत्व गज का लक्षण भी अति प्रसिद्ध है। इस

प्रकार किसी भी असाधारण धर्म का उल्लेख करते हुए किसी भी वस्तु का लक्षण प्रस्तुत किया जा सकता है और इस सन्दर्भ में नव्य न्याय के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान की चर्चा की जा सकती है।

प्रो० शुक्ल ने आगे बताया कि संसार में अहं तथा मम की दुराग्रहपूर्ण भावना अज्ञानमूलक है। मनुष्य इन भावनाओं के कारण काम, क्रोध तथा लोभ आदि का शिकार एवं देश, जाति, भाषा तथा सम्प्रदाय आदि के संकीर्ण विचारों से ग्रस्त हो जाता है। मनुष्य की इस विवशता को दूर करने लिये महावीर स्वामी ने स्याद्वादमयी भाषा और अनेकान्तवादी विचार के माध्यम से ज्ञान, दर्शन तथा चरित्र रूपी मुक्ति के उपायों का प्रतिपादन किया। उनके विचार से अपरिग्रह का अवलम्बन शान्ति और मुक्ति के शिखर पर आरोहण करने का प्रथम सोपान है। अपरिग्रह के अवलम्बन से समाज के भीतर आर्थिक विषमता का अङ्कुरोद्गम अवरुद्ध हो जाता है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक संघर्षों की समाप्ति होने से मनुष्य को आत्मिक उत्थान का अवसर प्राप्त होता है।

महावीर स्वामी का जीवन और मार्गदर्शन मानव-जाति के लिए महान् प्रकाश स्तम्भ है। आज उनकी जयन्ती के अवसर पर हमें उनके बताये मार्ग पर चलने का व्रत लेना चाहिये। इस प्रकार का व्रत ग्रहण ही उनके प्रति हमारी वास्तविक श्रद्धाञ्जलि होगी।

अन्त में इस पर्व पर प्रकाश डालते हुए डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने धन्यवाद प्रदान किया।

विभागीय समारोह

(क) तुलनात्मक दर्शन विभाग

८ फरवरी, १९७९

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शनों के समन्वय से नवीन दर्शन की उद्भावना

८ फरवरी, १९७९ को बौद्ध कक्ष हाल में तुलनात्मक दर्शन-परिषद् का उद्घाटन करते हुए कुलपति प्रो० वदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि संसार में जो कुछ भी है, वह मनुष्य के लिए है। दर्शन मानव की समस्याओं के परिप्रेक्ष में चिन्तन प्रारम्भ करता है। भारतीय शास्त्र भी मानव के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। दर्शन-शास्त्र में मनुष्य दो प्रकार के विचारों से अपनी धारणा बनाता है। जीवन के बाद मनुष्य अस्तित्वहीन होगा या बना रहेगा, इस आधार पर ही नास्तित्ववाद तथा अस्तित्ववाद का प्रादुर्भाव हुआ। यह भारत में काफी विकसित हुआ है। नवीन चिन्तन भी इस प्रकार का है। जब जीवन की चिरन्तन सत्ता स्वीकार कर ली जाती है, तो मनुष्य अभय प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। वह अपने से बढ़कर किसी अन्य सत्ता की ओर नहीं देखता। वह अपनी नित्य आत्मा की सत्ता के कारण मृत्यु पर विजय पाना चाहता है। वह इसके लिए साधना का मार्ग अपनाता है। नास्तित्ववाद इसका खण्डन करता है। बौद्ध और जैन दर्शन भी इसी साधना मार्ग के पक्षपाती हैं। उनके अस्तित्व की व्याख्या में अन्तर है, पर उद्देश्य उनका भी मानव को सुखी बनाना है। वैदिक दर्शन तो इसका भरपूर उपदेश देते हैं तथा नित्यता, अमरता एवं सुख की प्राप्ति के लिए मानव को सदा सचेष्ट करते हैं। शाश्वत अभय की ओर अग्रसर कराना वैदिक दर्शनों का उद्देश्य है।

तुलनात्मक दर्शन विभाग में आधुनिक मूल्यों के अध्ययन के लिए पाठ्यक्रम है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन की विचारधारा का सहयोग लेकर प्राचीन भारतीय दर्शनों का विवेचन होना चाहिए। साथ ही जो मान्यताएँ आज के अनुरूप नहीं लगतीं, विश्लेषण करके युगानुरूप उनकी प्रस्थापना करनी चाहिए। वैसे भारतीय दार्शनिक उदार हैं तथा नवीन बातों को स्वीकार करने की उनमें क्षमता है। यह काम संस्कृत विश्वविद्यालय का है। यह विभाग यदि पाश्चात्य विचारों की सहायता से प्राचीन भारतीय परम्परा को अधुनातन रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम बन सका, तो यह संस्कृत विश्वविद्यालय में नये दर्शन की प्रस्थापना का स्रोत बनेगा। हमारी व्यक्तिगत मान्यताएँ यदि परम्परावादी रूप को ठीक ढंग से आधुनिक सन्दर्भ लायक बना सकीं तो यही हम सबका समग्र चिन्तन है।

इस काम को करने के लिए साधनों की आवश्यकता है। मैं इस विभाग को विकसित करना चाहता हूँ तथा इसके लिए कुछ प्रोफेसरों को विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्त करवाने का प्रयत्न करूँगा। साथ ही षष्ठ पंचवर्षीय योजना में कुछ पद अवश्य प्राप्त होंगे। पर सीमित साधनों में भी काम आगे बढ़ना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि इस विभाग के छात्र एवं अध्यापक उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति की ओर आगे बढ़ेंगे।

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने कहा—दर्शन ज्ञान के सम्यक्त्व का विचार करता है। इसलिए यह विज्ञान से पृथक् है। विज्ञान में जड़ता एवं प्रयोग हैं। दर्शन में चेतनता एवं विचार हैं। ज्ञान कभी भी देश-काल की सीमाओं से बँधता नहीं। अतः उससे ऊपर उठकर सम्यक्त्व के बोध के लिए ऋतम्भरा प्रज्ञा को सदा सचेत रखता है। इस विभाग में देश-काल से ऊपर उठने की क्षमता है। इसे पनपाने की जरूरत है। दोनों विभागीय प्रतिवेदन इस विभाग के विस्तृत आयाम का बोध प्रस्तुत करते हैं। परम्परावादी इस विश्वविद्यालय में नये विचारों को प्रमुखता मिलनी चाहिये, ताँकि परम्परावाद का नये सन्दर्भ में विकास हो सके। न्याय की बुद्धि इस ओर बढ़ने के लिए प्रेरणा देती है।

विश्वविद्यालय के पर्यावरण का ध्यान रखते हुए तुलनात्मक दर्शन विभाग के प्राध्यापक श्री राधेश्याम धर द्विवेदी ने कहा—इस विभाग का विकास उदारवादी प्रवृत्तियों में होगा और इस दृष्टि से इसको उदारवादी प्रवृत्तियों के साथ रहना चाहिए। यद्यपि भारतीय संस्कृति उदार है, पर जब वह सम्प्रदायमूलक बनती है, तो वहाँ उदार नहीं बन पाती। न्यायविद् कुलपति को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

परिषद् के संयोजक श्री भोलेनाथ त्रिपाठी ने कहा—चूँकि आज के युग में विचारों के विकास के आधार पर भिन्न-भिन्न

दर्शन स्थापित हो रहे हैं। अतः संस्कृत विश्वविद्यालय की वैचारिक प्रवृत्तियों का भी दर्शन बनना चाहिए और इस सन्दर्भ में इस विभाग के विकास की आवश्यकता है।

धन्यवाद देते हुए विभागाध्यक्ष डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी ने कहा—दार्शनिकों को अभिनिवेशों से दूर रहना चाहिए और उन पर विजय प्राप्त कर सत्यासत्य का विवेचन करना चाहिए। भारतीय दर्शन में इस प्रकार का विवेचन प्रभूत मात्रा में है। मैं इस परिषद् के उद्घाटन कर्ता श्री कुलपति जी, विद्वज्जन तथा सभी छात्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

(ख) साहित्य विभाग

संस्कृत साहित्य देश की अमूल्य निधि है। इस विश्वविद्यालय के साहित्य विभाग के सम्मुख जिस प्रकार का गुरुतम कार्य है, उसकी तुलना में साधनों की कमी है। फिर भी यथासम्भव संस्कृत साहित्य की समुन्नति एवं विकास के लिये तथा विश्वविद्यालय की गौरववृद्धि के लिये सतत जागरूक रहकर साहित्य विभाग द्वारा वर्ष १९७८-७९ के बीच निम्नांकित कार्य सम्पन्न किये गये—

(१) विगत दीक्षान्त समारोह के अवसर पर साहित्य विभाग के १७ अनुसन्धाताओं ने विद्यावारिधि (पी-एच्० डी०) की उपाधि प्राप्त की।

(२) दीक्षान्त समारोह के अवसर पर आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में साहित्याचार्य तृतीय खण्ड के छात्र श्री सूर्यप्रकाश त्रिवेदी ने स्वर्णपदक तथा विजय चिह्न प्राप्त किया।

(३) अन्तर्महाविद्यालयीय सुस्वर पाठ प्रतियोगिता में साहित्य शास्त्री, द्वितीय वर्ष के छात्र श्री शिवनारायण मिश्र ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

(४) अन्तर्महाविद्यालयीय श्लोकान्त्याक्षरी प्रतियोगिता में साहित्य शास्त्री, द्वितीय वर्ष के छात्र श्री विष्णुप्रसाद शर्मा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

(५) संस्कृत प्रचार-प्रसार गोष्ठी में साहित्य शास्त्री, प्रथम वर्ष के छात्र श्री पद्मप्रसाद शर्मा ने अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। यह गोष्ठी साहित्य विभागीय छात्रों द्वारा प्रतिमास अष्टमी तिथि को आयोजित की जाती रही है। गोष्ठियों में डा० आद्याप्रसाद मिश्र, डा० कैलासपति त्रिपाठी तथा डा० रामप्रसाद त्रिपाठी आदि विद्वानों ने अध्यक्ष पद ग्रहण किया। इस गोष्ठी में श्लोकान्त्याक्षरी सूत्रान्त्याक्षरी, प्रहसन काव्य-पाठ, प्रहेलिका एवं विविध शास्त्रों का चिन्तन किया गया।

(६) विश्वविद्यालय स्थापनोत्सव के अवसर पर आयोजित काव्य-शास्त्र विनोद गोष्ठी में तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता में साहित्याचार्य, तृतीय खण्ड के छात्र श्री त्रिभुवन् मिश्र ने द्वितीय स्थान प्राप्त कर काशीनरेश के कर-कमलों द्वारा पुरस्कार स्वरूप 'पाणिनीयविषये प्रमाणसमीक्षा' नामक शोध ग्रन्थ प्राप्त किया।

विभाग के संयोजकत्व में तीन संस्कृत कवि सम्मेलन हुए। इनमें विभाग के समस्त अध्यापक, अनेक अनुसन्धाता तथा साहित्याचार्य, तृतीय खण्ड के छात्र श्री सूर्यप्रकाश त्रिवेदी एवं श्री त्रिभुवन मिश्र ने भाग लिया।

विविध व्याख्यान—(१) नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डा० त्र्यम्बक देशपाण्डे ने 'संस्कृत काव्य का उद्भव एवं विकासक्रम' विषय पर व्याख्यान दिया।

(२) पेरिस विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या संस्थान के प्राध्यापक डा० सोस महोदय ने 'प्राचीन भारतीय लता-पादप मनोविज्ञान' विषय पर अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान दिया, जिसका संस्कृत रूपान्तर डा० कैलासपति त्रिपाठी ने किया।

(३) कनाडावासी दो अन्वेषकों ने 'संस्कृत की वर्तमान दशा' विषय पर वार्तागोष्ठी में भाग लिया। वार्ता का संस्कृत रूपान्तर डा० कैलासपति त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया।

(४) केन्द्रीय रणवीर संस्कृत विद्यापीठ में 'राजशेखर की काव्यशास्त्रीय दृष्टि' विषय पर साहित्य विभाग के आचार्य प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने विशिष्ट व्याख्यान दिया। वहीं पर खिस्ते जी के सम्मान में एक संस्कृत कविगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें श्री खिस्ते ने भी अपनी सरस कविताएँ पढ़ीं।

(५) अखिल भारतीय कालिदास जयन्ती समारोह, उज्जैन में आयोजित संस्कृत वादविवाद प्रतियोगिता में खिस्ते जी ने अध्यक्ष पद अलंकृत किया तथा वहीं आयोजित कविगोष्ठी में भाग लिया।

(६) अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, पूना में 'लैंग्वेज इन संस्कृत पोइटिक्स' विषय पर डा० कैलासपति त्रिपाठी ने शोध निबन्ध पढ़ा तथा विविध निबन्ध वाचनों पर अपने विचार प्रकट किये।

(७) उज्जैन की एक गोष्ठी में 'लोकेशन आफ कुण्डिनपुर' विषय पर डा० त्रिपाठी में अपना निबन्ध प्रस्तुत किया और वहाँ आयोजित कविगोष्ठी में एक स्वरचित गीतिका सुनाई।

(८) विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा आयोजित संस्कृत प्रचार गोष्ठी में तथा संस्कृत वाग्वर्धिनी सभा, गीता मन्दिर, वाराणसी में डा० त्रिपाठी ने अध्यक्षता की और वहीं आयोजित सर्वशास्त्र सम्मेलन में 'साहित्य विद्या' विषय पर व्याख्यान दिया।

(९) वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी द्वारा आयोजित कालिदास जयन्ती के अवसर पर डा० वायुनन्दन पाण्डेय ने मुख्य अतिथि पद अलंकृत किया तथा अपना विशिष्ट व्याख्यान प्रस्तुत किया।

(१०) रवीन्द्रालय, लखनऊ में आयोजित कवि सम्मेलन में डा० कैलासपति त्रिपाठी, डा० वायुनन्दन पाण्डेय तथा प० शिवजी उपाध्याय ने अपनी रचनाएँ पढ़ीं।

(११) कालिदास अकादमी, प्रयाग द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में प० शिवजी उपाध्याय ने अपनी कविताएँ पढ़ीं।

(१२) साहित्य विभाग में 'शोध एवं सम्पादन प्रक्रिया' विषय पर शोध छात्रों की गोष्ठी में डा० कैलासपति त्रिपाठी ने चार व्याख्यान दिये।

९ अप्रैल, ७९

सौप्रस्थानिक समारोह

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के आचार्य, तृतीय वर्ष के साहित्यविभागीय छात्रों द्वारा दिनाङ्क ९.४.७९ को कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में सौप्रस्थानिक समारोह मनाया गया। सभा में कुलपति, कुलसचिव, संकायाध्यक्ष, विभागीय अध्यापक तथा छात्र उपस्थित थे।

प्रारम्भ में श्री सूर्यप्रकाश त्रिवेदी ने अतिथियों का स्वागत किया। छात्रसंघ के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ पाण्डेय द्वारा सबको माल्यार्पण किया गया। सांस्कृतिक मन्त्री, छात्रसंघ : श्री त्रिभुवन मिश्र ने विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन का वाचन किया। शोध छात्र श्री जटाशंकर मिश्र तथा श्री वंशगोपाल मिश्र ने छात्रों के मंगलमय भविष्य की कामना की।

प० शिवजी उपाध्याय ने छात्रों को आशीर्वाद प्रदान करते हुये सदाचार एवं संस्कृत जीवन यापन का उपदेश दिया। डा० वायुनन्दन पाण्डेय ने कहा कि संस्कृत के आचार्यों का व्यवहार दूसरों के लिए अनुकरणीय होना चाहिये। डा० कैलासपति त्रिपाठी ने शुभाशंसा के सन्दर्भ में कतिपय व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर इङ्गित करते हुए छात्रों को संस्कृत भाषा विषयक दुर्बलता को सत्वर दूर करने का परामर्श दिया।

प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने कहा—धृति आदि दस गुणों का धारण ही सफलता की कुंजी है। व्यक्ति को अपने चरित्र एवं व्यवहार की प्रतिदिन स्वयं समीक्षा करनी चाहिए। डा० पारसनाथ द्विवेदी ने कहा कि साहित्य विभाग के कार्यों की तुलना में प्रदत्त सुविधाएँ अत्यल्प हैं। छात्रों की संख्या को देखते हुए अध्यापकों की संख्या नगण्य सी है। यह अध्यापकों का गुरुत्व है कि वे अब तक इस कार्य को निर्विघ्न पूर्णता प्रदान कर रहे हैं।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए कुलपति जी ने कहा कि हम लोगों में जो अज्ञान रूप अन्धकार है, उसका विनाश होना चाहिये। विद्या के साथ तप को भी जोड़ना चाहिये। स्वाध्याय ही तप है। कर्तव्याकर्तव्य विमर्श ही विद्याध्ययन का मूल लक्ष्य है। कल्याणकारी अर्थ के उत्पादक शक्तिमान् शब्द के सानिध्य का ही नाम साहित्य है। शासन के प्रति खेद प्रगट करते हुये आपने कहा कि शासन संस्कृत शिक्षा के नाम पर केवल राजनैतिक स्वार्थसिद्धि कर रहा है। ऐसी अवस्था में संस्कृतानुरागी जनों का कार्यभार गुरुतम हो जाता है। अध्यापकों को चाहिये कि वे सच्चे आचार्य बनें और अपने अनुष्ठानों में प्रार्थना किया करें कि उनके पढ़ाये छात्र कभी भी जीविका के निमित्त दीनभाव से न भटकें। अन्त में आपने छात्रों को आशीर्वाद प्रदान किया।

समागत विद्वानों को धन्यवाद देते हुए विभागाध्यक्ष डा० कैलासपति त्रिपाठी ने साहित्य विभाग के गौरवमय अतीत की चर्चा करते हुए बताया कि विश्वविद्यालय होने के बाद विभिन्न विभागों का पर्याप्त विकास हुआ, किन्तु यह विभाग उपेक्षित रहा है। आधुनिक भाषाओं के साहित्य के अध्यापन के निमित्त विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर कक्षाओं में विविध वर्ग बनाये गये हैं। ये वर्ग काल, साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं विधाओं के आधार पर बनाये जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि तत्तत् साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों एवं विधाओं के विशेषज्ञ समाज में तैयार होते रहते हैं। यह प्रक्रिया हिन्दी आदि उन साहित्यों के संरक्षण के लिये अपनायी जाती है, जिनका सर्जना काल संस्कृत जैसा विस्तृत नहीं है। ऐसी स्थिति में संस्कृत साहित्य के सर्वाङ्गीण संरक्षण एवं संवर्धन हेतु स्नातकोत्तर कक्षाओं में अलङ्कार, ध्वनि, ध्वनिविरोध, गद्य, पद्य, चम्पू, आधुनिक संस्कृत साहित्य आदि वर्ग बनने चाहिये, जिससे समाज में संस्कृत साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ जीवित रहें। इस साहित्य के सुदीर्घ अतीत एवं विश्वव्यापी प्रसार को ध्यान में रखते हुए इसके वर्ग विभाजन एवं तदनुसार इसके अध्यापन की व्यवस्था की आवश्यकता है। इस प्रसंग में डा० त्रिपाठी ने विभिन्न स्तरों के कुल ३८ अतिरिक्त अध्यापकों की माँग की और विभाग के विशाल कार्यभार को सँभालने में समर्पित व्यक्तित्व वाले अपने सहयोगियों की प्रशंसा करते हुए सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

(ग) ज्यौतिष विभाग

९ अप्रैल, १९७९

ज्यौतिष परिषद् का सत्रावसान

ज्यौतिष परिषद् द्वारा समायोजित भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के मनीषियों ने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को विश्वचक्र का प्रारम्भ दिवस माना है और वहीं से समस्त प्रायोगिक गणित का आरम्भ किया है। आर्यभट का जन्म दिवस भी इसी चैत्र शुक्ल प्रतिपद् को स्वीकार किया गया है। प्राचीन ज्योतिर्विद् आर्यभट की प्रतिभा पूरे विश्व ने स्वीकार की है।

विश्वविद्यालय की ज्योतिष परिषद् ने अपना सत्रावसान समारोह आर्यभट की जयन्ती के रूप में ९ अप्रैल, ७९ को आयोजित किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता की प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल ने। आरम्भ में डा० मुरारिलाल शर्मा ने कहा कि भारत में ज्यौतिष के विभिन्न सिद्धान्त हैं, जिनमें अपने युग का विशिष्ट ज्यौतिष सिद्धान्त आर्यभट का सिद्धान्त है। जब विश्व के ज्योतिषी ज्यागणित तक पहुँच पाये थे, उस युग में आर्यभट ने अर्द्धज्या सिद्धान्त प्रस्तुत किया। ग्रहगणित में नूतन संस्कार तथा भूभ्रमण स्वीकार कर उसके अनुसार भूभगणमान का प्रतिपादन किया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रोफेसर शुक्ल ने कहा कि भारतीय मनीषियों की गवेषणा पूरे विश्व में सभी क्षेत्रों में अतुलनीय रही है। वैदिक वाङ्मय उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। भारतीय ज्यौतिष तीन प्रमुख स्कन्धों में विकसित है—सिद्धान्त, होरा और संहिता। यह शास्त्र नेत्र का काम देता है। इसी शास्त्र के द्वारा विश्व हित के लिए यज्ञों का आरम्भ हुआ। आपने आगे कहा कि पृथ्वी को गतिशील मान कर आर्यभट ने ज्यौतिषीय सिद्धान्तों की स्थापना की। पृथ्वी की एक संज्ञा अचल है। इसी आधार पर बह्वर्थवाद के अनुसार अल्पचला भी मानी गयी। पर सामान्य व्यक्तियों के लिये तो यह अगतिशील ही थी। इसी से कालान्तर में इसे अर्ध अचला, स्थिर और गतिशून्य माना गया और साहित्यकारों ने इसी रूप में इसका उल्लेख किया। आपने विश्वविद्यालय के ज्यौतिष विभाग की समृद्धि की कामना की और राजस्थान के मुख्यमन्त्री को लिखे गये उस पत्र का उल्लेख किया, जिसके द्वारा काशी की वेधशाला के यन्त्र विश्वविद्यालय के लिये माँगे गए हैं। काशी के मानमन्दिर घाट पर स्थित वेधशाला राजस्थान सरकार के नियन्त्रण में है। आपने प्रसन्नता व्यक्त की कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ज्यौतिष के यन्त्रों के लिए अनुदान दिया है और उससे दूरवीक्षण यन्त्र मँगाए जा रहे हैं।

आयोजन के अन्त में धन्यवाद देते हुए डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी ने आर्यभट का जीवन परिचय दिया और अतीत के महान् ज्योतिषी की उपलब्धियों की चर्चा की। आपने कहा कि आर्यभट का जन्म ४७६ ई० में हुआ था और २३ वर्ष की आयु में उन्होंने आर्यभटीय ग्रन्थ का निर्माण किया था। सन् ९५० ई० में इसी नाम के एक और ज्योतिषी का जन्म हुआ और उन्होंने भी अपने ग्रन्थ का नाम आर्यभटीय लिखा है। किन्तु दोनों में अन्तर है। अतः पाँचवीं शताब्दी के आर्यभट को ही प्रथम आर्यभट की संज्ञा दी गई है।

आर्यभट का सिद्धान्त ग्रन्थ कुल १२१ श्लोकों का है और गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद, इन चार भागों में विभाजित है।

भारतीय विद्याभवन में विचारगोष्ठी

भारतीय विद्याभवन, बम्बई में ज्यौतिष विद्या के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुसन्धान करने को प्रोत्साहित करने के लिये २४-२५ मार्च को एक द्विदिवसीय विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें ज्यौतिष विभाग के अध्यक्ष डा० मुरारिलाल शर्मा को आमन्त्रित किया गया। डा० शर्मा ने विविध चर्चाओं में सिद्धान्त ज्योतिष के वर्तमान अनुसन्धानों तथा उसकी भावी कार्यप्रणाली पर प्रकाश डाला। 'भारतीय ज्यौतिष की सतत परम्परा' विषय पर अपने भाषण में डा० शर्मा ने बताया कि प्राचीन काल में भारत में ज्यौतिष विद्या के केन्द्र उत्तरी भारत में थे, इनमें हरियाणा के कुरुक्षेत्र और रोहतक अति प्रसिद्ध केन्द्र थे। इसके बाद यह केन्द्र उज्जयिनी में हो गया। इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से प्रत्येक केन्द्र एक ही याम्योत्तर रेखा पर स्थित है, जो अतिप्राचीन काल से भारत की मानक याम्योत्तर रेखा थी और इसकी चर्चा प्रत्येक सिद्धान्त-ज्यौतिष के ग्रन्थ में पृथ्वी की मध्यरेखा के नाम से है।

वेधयन्त्र तथा अन्य उपकरणों की अवाप्ति

अभी तक ज्यौतिष के छात्रों को केवल सैद्धान्तिक शिक्षा ही दी जाती थी, किन्तु वेध द्वारा उसके परीक्षण की व्यवस्था नहीं थी। इस वर्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से निम्नलिखित वेधयन्त्र तथा व्यावहारिक शिक्षा उपकरण मँगवाये गये हैं :—

एक ६३।८४० के ताले से युक्त जॉयस स्कूल टेलीस्कोप तथा उसके उपकरण। इस यन्त्र द्वारा प्रारम्भिक वेधविधियाँ सिखाई जायँगी, क्योंकि इसमें नतकाल तथा क्रान्ति को नापने वाले चक्र लगे हुए हैं। यह यन्त्र प्राप्त हो चुका है।

अमेरिका से आने वाले यन्त्र—

इनके मँगवाने की व्यवस्था हो चुकी है और ये शीघ्र ही भारत पहुँचने वाले हैं—

१. एक ८" व्यास का दर्पणयुक्त कैसिग्रेन टेलिस्कोप, उपकरणों सहित। इसका प्रयोग अनुसन्धानात्मक कार्य के लिये केवल उत्कृष्ट वेधों के लिये किया जायगा।

२. नक्षत्र-गोल, ग्रहगोल आदि। इनके द्वारा नक्षत्रों के सापेक्ष ग्रहों की गतियों का बोध कराया जायगा।

३. छोटे प्लैनेटेरियम। इनके द्वारा ग्रहों और नक्षत्रों की सापेक्ष गतियाँ बताई जायँगी।

४. एस्ट्रोलैब—प्राचीन वेध यन्त्र, जिससे कई प्रकार के वेध किये जाते थे।

५. स्लाइड—माउण्ट पालोवार वेधशाला के विशालकाय दूरदर्शी यन्त्र द्वारा लिये गये आकाशगंगा, नीहारिकाओं, तारा गुच्छों, ग्रहों आदि के चित्र।

६. ग्रह-नक्षत्रों के विविध चार्ट।

७. ग्रहों की सूक्ष्म गणना के लिये एक कैलकुलेटिंग मशीन, (भारत निमित) प्राप्त।

८. स्लाइड आदि दिखलाने तथा रेखाचित्र दिखलाने के लिये प्रोजेक्टर, जिसे एजूकेशनल एण्ड साइण्टिफिक एक्विपमेंट्स इण्डिया, प्रा० लि० बम्बई से प्राप्त किया गया है।

१०-१३ अप्रैल, १९७९

(घ) केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

भारत में भोट विद्या का अध्ययन

सारनाथ स्थित केन्द्रीय उच्च शिक्षा संस्थान में 'भारत में भोट विद्या का अध्ययन' विषय पर एक चतुर्दिवसीय गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें इस विषय से सम्बद्ध इस विश्वविद्यालय के तथा देश के अनेक शिक्षा-संस्थानों के लोगों ने भाग लिया। सर्वप्रथम परम्परागत तिब्बती पद्धति से विद्वान् तिब्बती लामाओं ने तिब्बती में मंगलाचरण किया। इस गोष्ठी का उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर श्री बदरीनाथ शुक्ल ने किया।

उद्घाटनकर्ता एवं प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए तिब्बती संस्थान के प्राध्यापक श्री सेंपा दोरजे ने कहा कि यह हर्ष का विषय है कि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर संस्थान ने यह गोष्ठी आयोजित की है। भोट विद्या के प्रारम्भिक इतिहास को व्यक्त करते हुए आपने परिसंवाद गोष्ठी के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आपने इस अवसर पर सभी प्रतिनिधियों का स्वागत किया और उद्घाटनकर्ता के प्रति अपने भाव प्रकट करते हुए कहा कि इस अवसर पर कुलपति श्री शुक्ल का हम विशेष स्वागत करते हैं।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के प्राचार्य श्री समदङ् रिम्पोछे ने संक्षेप में विषय की स्थापना करते हुए व्यक्त किया कि भारतीय विद्याओं के अध्ययन में भोट विद्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इन दोनों के समन्वय से इनके अध्ययन में परिपूर्णता आती है। इस परिसंवाद गोष्ठी को सम्पन्न करने में सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है। मुख्यरूप से गोष्ठी न होकर इसे एक कार्यशाला का स्वरूप प्रदान किया गया है, जिससे इस सम्बन्ध में सूक्ष्मतर विचार-विमर्श हो सके। इसी सन्दर्भ में उन्होंने यह भी बताया कि इस विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित करने का उनका विचार है। इस आयोजन पर प्रकाश डालते हुए संस्थान के प्राध्यापक श्री चन्द्रचूड़ मणि ने बताया कि महायान सूत्रालंकार में ५ विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है। भारतीय विद्याओं के अध्ययन में भोट विद्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है और हम इसे इसका उत्स कह सकते हैं। श्री राम राहुल के अनुसार भोट भाषा एशिया के एक बहुत बड़े भू-भाग की राष्ट्रभाषा रही है और अब यह विद्या अपने संकुचित क्षेत्र से बाहर आकर अपने उन्मुक्त स्वरूप में प्रतिष्ठित हो रही है। अब स्थान स्थान पर तिब्बती भाषा के ग्रन्थालय एवं अभिलेखागार स्थापित हो रहे हैं।

श्री जगन्नाथ उपाध्याय ने भोट विद्या अध्ययन सम्बन्धी समस्याओं पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि हमारी बहुत सी प्राचीन परम्पराएँ जो आज यहाँ समाप्त हो गयी हैं, भोट परम्परा में अब भी सुरक्षित हैं और उन्हें जानने के लिए हमें इसका आश्रय लेना पड़ता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने प्राचीन विश्वविद्यालयों में प्रचलित दीक्षान्त समारोह की परम्परा के सम्बन्ध में कहा कि भारत की इस प्राचीन परम्परा को तिब्बत ने अपने यहाँ सुरक्षित रखा है और हमारा यह परम कर्तव्य है कि उसे वहाँ से लेकर इसे पुनर्जीवन प्रदान करें।

कुलपति श्री शुक्ल ने इस परिसंवाद गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि इसका उद्घाटन परमपावन पूज्य श्री दलाई लामा करने वाले थे और उनके अस्वस्थ हो जाने से यह भार मुझे दिया गया है। इसे मैं अपना सुकृत मानता हूँ। अपने द्वारा पढ़े गये मंगल श्लोक—'विद्यासन्ध्योदयोद्रेकादविद्यारजनीक्षये। यदुदेति नमस्तस्मै कस्मैचिद् विश्वमात्विषे ।।' के सन्दर्भ में विद्या को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि यह वह चिन्तन प्रक्रिया, है जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है। मानवमात्र दुःख से पीड़ित है और

इसकी स्थिति बड़ी भयंकर है। विचार करने पर हम यही पाते हैं कि वासना ही हमें पीड़ित करती रहती है। इसी से हमें मुक्त होना है। विश्व के प्रमुख चिन्तन इसी दिशा में हुए हैं। सूक्ष्मता पूर्वक विचार करने पर हमारे चिन्तनीय तत्त्व में भेद नहीं है। यह दृष्टि विश्व के मानवमात्र में विद्यमान है और इसे ही हम मूलविद्या कह सकते हैं। अतः भोट विद्या आदि कहने पर इसी अर्थ की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। किन्तु यहाँ पर भोट विद्या संज्ञा का प्रयोग आधुनिक अर्थ में हुआ है, जो अंग्रेजी के 'तिब्बतन स्टडीज़' का रूपान्तर मात्र है।

यद्यपि वास्तविक चिन्तन एक है, किन्तु चिन्तन प्रक्रियायें भिन्न-भिन्न हैं और इसी से इनसे सम्बद्ध पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। पर इन पद्धतियों का अध्ययन-क्षेत्र में अपना महत्त्व है। भोट विद्या के अध्ययन से हम मूल विद्या तक पहुँच सकते हैं। पद्धतियों की भिन्नता का कारण भाषा होती है और भाषा में इतनी क्षमता नहीं है कि वह उनमें एकरूपता ला सके। इसके द्वारा समान चिन्तन शैलियाँ भी काफी भिन्न परिभाषित होती हैं, क्योंकि यह चिन्तन शैली को ही बदल देती है। किसी भी भाषा को विदेशी भाषा समझना अपराध है। भाषाओं के संसरण से कण्ठ भेद हो जाने से उच्चारण भेद से भाषाएँ भिन्न हो गयी हैं। अतः सभी भाषाओं से हमें प्रेम रखना चाहिए और उनके माध्यम से जो चिन्तन हुए हैं, उनके अध्ययन में प्रवृत्त होना चाहिए। हमारा यह परम कर्तव्य है कि भारत और तिब्बत का जो प्राचीन गहरा सम्पर्क सूत्र है, उसे सुदृढ़ करते हुए भोट विद्या के अध्ययन को परिपुष्ट करें, जिससे भारतीय विद्याओं का अध्ययन और परिपुष्ट हो सके और भोट विद्या में सुरक्षित निधि के आधार पर हम भारतीय विद्या की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ हो सकें। इस दृष्टि से भारतीय विद्या के अध्ययन कर्ताओं को भोट विद्या के अध्ययन की ओर अग्रसर होना है और विद्यमान भौगोलिक भिन्नता को आँखों से ओझल कर आत्मीय एकता स्थापित करनी है।

भगवान् बुद्ध से हमारी यह प्रार्थना है कि यह गोष्ठी अपने उद्देश्य में सफल हो।

श्री सेंपा दोरजे ने आगत प्रतिनिधियों एवं विशेष अतिथि प्रो० बदरीनाथ शुक्ल के प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद प्रदान किया।

यह गोष्ठी अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार भोट विद्या की अध्ययन सम्बन्धी अनेक दिशाओं को आलोकित करती हुई चार दिनों तक चली। इसमें विविध विषयों पर विचार-विमर्श हुआ।

संस्कृत के अभ्युदय के सम्बन्ध में नये प्रयास

(क) आयुर्वेद के छात्रों की समस्या का समाधान

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर बदरीनाथ शुक्ल ने आयुर्वेद महाविद्यालयों में सस्कृत के छात्रों के प्रवेश की कठिनाइयों के विषय में प्रदेश के शिक्षामन्त्री श्री कैलाशनाथ सिंह को दो पत्र प्रेषित किए थे। ये पत्र जहाँ छात्रों की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं, वहीं संस्कृत के प्रसार में भी सहयोगी सिद्ध होते हैं। पत्र प्रस्तुत हैं :—

प्रिय श्री सिंह,

मेरा एक पत्र आपको इस पत्र के पहले अवश्य मिल चुका रहेगा जिसमें हमने और हमारे विश्वविद्यालय परिवार ने आपके शिक्षामन्त्री होने के सम्बन्ध में आपको बधाई दी है। इस पत्र द्वारा यह निवेदन करना है कि प्रदेश को आयुर्वेद परीक्षाओं में संस्कृत का अध्ययन करने वाले केवल ऐसे ही छात्रों को प्रवेश का अधिकार प्राप्त है, जो विज्ञान विषय लेकर उत्तर मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण हैं, किन्तु अत्यन्त खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सहस्राधिक विद्यालयों में प्रायः कहीं भी विज्ञान की पढ़ाई की व्यवस्था नहीं है। फलतया संस्कृत के अध्येता छात्र का आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश होना असम्भव सा हो रहा है, जब कि आयुर्वेद ही एक ऐसा विषय है, जिसका अध्ययन कर संस्कृत का विद्यार्थी अपनी जीविका का अर्जन करने में आत्मनिर्भर हो सकता है। आप एक प्रसिद्ध शिक्षाविद्, यशस्वी अध्यापक होते हुए प्रदेश के सौभाग्य से अब शिक्षामन्त्री पद पर विराजमान हैं। अतः अब आपसे संस्कृत समाज को नई आशा का होना स्वाभाविक है। इस स्थिति में हमारा विनम्र अनुरोध है कि आप कम से कम प्रदेश के पचास विद्यालयों में विज्ञान के एक-एक शिक्षक पद की स्वीकृति प्रदान करने की कृपा करें। आपके इस उदारतापूर्ण कार्य से दो लाभ होंगे—एक तो यह कि विज्ञान के स्नातकों के लिए पचास नये जीविका क्षेत्र खुल जायेंगे और दूसरा, संस्कृत के विद्यार्थियों को आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश की अर्हता का अर्जन करने का अवसर मिल सकेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप तत्काल इस विषय पर ध्यान देंगे और संस्कृत के अध्येताओं को अपनी उदारता और सहृदयता से अनुगृहीत करेंगे।

भवदीय,

बदरीनाथ शुक्ल

प्रिय श्री कैलाशनाथ सिंह,

अपने पत्र संख्या २२००।७००।७९ दिनाङ्क ९ मार्च, १९७९ द्वारा मैंने आयुर्वेद महाविद्यालयों में संस्कृत के छात्रों के प्रवेश पाने में कठिनाई की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया था। आयुर्वेद महाविद्यालयों में संस्कृत के अध्येता उन्हीं छात्रों का प्रवेश हो सकता है, जो विज्ञान विषय के साथ उत्तर मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण हों, परन्तु इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सहस्राधिक विद्यालयों में प्रायः कहीं भी विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था नहीं है। परिणामस्वरूप आयुर्वेद महाविद्यालयों में संस्कृत के छात्रों का प्रवेश असम्भव सा हो रहा है। इस कठिनाई के निवारण के लिए मैंने अपने सन्दर्भित पत्र (प्रतिलिपि संलग्न) द्वारा निवेदन किया था कि प्रदेश के कम से कम पचास संस्कृत विद्यालयों में विज्ञान के एक-एक शिक्षक के पद की स्वीकृति प्रदान करने की कृपा करें। हमें विश्वास है कि आपने हमारे इस प्रस्ताव पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया होगा और शीघ्र ही इस विषय में आपकी उदारतापूर्ण स्वीकृति से विज्ञान के स्नातकों को जीविका के नये क्षेत्र मिलेंगे और संस्कृत के छात्रों को आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश की अर्हता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा।

इस विषय में पुनः निवेदन है कि हमारे इस प्रस्ताव पर शासन की स्वीकृति के आदेश शीघ्र निर्गत कराने का अनुग्रह करें, जिससे आपकी उदारतापूर्ण स्वीकृति से आगामी शैक्षणिक सत्र से यह व्यवस्था लागू हो सके।

भवदीय,

बदरीनाथ शुक्ल

(ख) प्रतिकुलाधिपति महोदय द्वारा नव्य न्यायशास्त्र को प्रोत्साहन

माननीय प्रतिकुलाधिपति महोदय ने २९ मार्च, १९७९ को विश्वविद्यालय के बाईसवें स्थापना दिवस के अवसर पर कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए नव्य न्यायशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन के प्रोत्साहनार्थ एवं एक गोष्ठी के संचालनार्थ अपेक्षित धनराशि प्रदान करने की घोषणा की थी। तदनुसार प्रस्तावित गोष्ठी की रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है :—

काशिराज-राजेश्वर नव्य-न्याय विचारगोष्ठी

१—गोष्ठी का नाम काशिराज-राजेश्वर नव्य-न्याय विचारगोष्ठी होगा।

२—गोष्ठी के उद्देश्य निम्नलिखित होंगे :—

(१) नव्य न्यायशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहित करना।

(२) आवश्यकतानुसार द्वैमासिक और वार्षिक गोष्ठी का आयोजन करना।

(३) गोष्ठी में प्रकट होने वाले नये विचारों का संकलन करना और वार्षिक पत्रिका के रूप में उनको प्रकाशित करना।

(४) देश के विभिन्न अंचलों में विद्यमान न्यायशास्त्र के विद्वानों से सम्पर्क करना और पूर्ण पते के साथ उनकी नामावली का संकलन करना।

(५) विचारगोष्ठियों में भाग लेने वाले नये विद्यार्थियों को पुरस्कार द्वारा प्रोत्साहित करना।

(६) वार्षिक गोष्ठी में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होने वाले विद्यार्थी को अतिरिक्त छात्रवृत्ति या विशेष पुरस्कार की व्यवस्था करना।

(७) ऐसे अन्य कार्य करना, जो इस गोष्ठी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक एवं सहायक हों।

३—संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति इस गोष्ठी के संरक्षक होंगे और इसका संचालन एक समिति द्वारा होगा, जिसमें निम्नलिखित सदस्य होंगे :

(१) अध्यक्ष, न्यायवैशेषिक विभाग (संयोजक)

(२) अध्यक्ष, दर्शन संकाय

(३) अध्यक्ष, वेदवेदाङ्ग संकाय

(४) अध्यक्ष, श्रमणविद्या संकाय

(५) अध्यक्ष, साहित्य-संस्कृति संकाय

(६) श्री विश्वनाथ शास्त्री दातार

(७) श्री रामसेवक झा, न्यायाचार्य, उदासीन संस्कृत विद्यालय

(८) श्री कीर्त्यानन्द झा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

(९) श्री हेब्बार शास्त्री, साङ्गवेद विद्यालय

(१०) श्री गणेश्वर शास्त्री द्रविड़, रामनगर दुर्ग

(११) श्री विश्वेश्वर शास्त्री द्रविड़, रामनगर दुर्ग

४—प्रत्येक दो मास की अवधि पर एक द्वैमासिक गोष्ठी होगी, जिसमें काशी के स्थानीय विद्वानों को आमन्त्रित किया जायगा और गोष्ठी में भाग लेने वाले प्रत्येक विद्वान् को प्रतीक यात्रा-व्यय के रूप में पाँच रुपये दिये जायेंगे। प्रतीक यात्रा-व्यय की यह दर समय समय पर परिवर्तित हो सकेगी। द्वैमासिक गोष्ठी में भाग लेने वाले स्थानीय विद्वानों की संख्या पचीस से अधिक न होगी।

५—वर्ष में एक वार्षिक गोष्ठी होगी, जिसका आयोजन महाराजकुमार श्री अनन्तनारायण सिंह देवशर्मा के जन्म दिवस पर रामनगर दुर्ग में होगा। यह गोष्ठी तीन दिन चलेगी।

६—वार्षिक गोष्ठी में देश के विभिन्न अंचलों से न्यायशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान् भी आमन्त्रित होंगे, परन्तु आमन्त्रित बाह्य विद्वानों की संख्या दस से अधिक न होगी। वार्षिक गोष्ठी में भाग लेने वाले बाह्य विद्वानों को प्रथम श्रेणी का रेलयात्रा व्यय दिया जायगा। उन्हें एक सौ रुपया प्रतिदिन मानदेय भी प्रदान किया जायगा।

७—वार्षिक गोष्ठी के अन्तिम दिन नव्य-न्यायशास्त्र के विद्वानों की एक पण्डित सभा होगी, जिसमें आमन्त्रित विद्वान् सत्कृत किये जायेंगे।

८—वार्षिक गोष्ठी के अवसर पर छात्रों की एक प्रतिभा परीक्षा होगी और अपनी प्रतिभा का उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले छात्रों को प्रतिभा परीक्षा प्रमाणपत्र दिया जायगा।

९—वार्षिक गोष्ठी में भाग लेने वाले छात्रों और उनके अभिभावकों को उसी क्रम से पुरस्कृत किया जायगा, जिस प्रकार सम्प्रति महाराजकुमार के जन्मदिवस पर किया जाता है।

१०—गोष्ठियों आदि के आयोजन में प्रतिवर्ष लगभग पचीस सहस्र रुपये व्यय होंगे, जिसकी व्यवस्था माननीय प्रतिकुलाधिपति महोदय द्वारा की जायगी।

(ग) संस्कृत विषयक कोश रचना

माननीय प्रतिकुलाधिपति महोदय ने २९ मार्च, १९७९ को विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस के अवसर पर यह सुझाव दिया था कि सभी प्रमुख विदेशी भाषाओं और सभी भारतीय भाषाओं के संस्कृत में तथा संस्कृत के उन सभी भाषाओं में शब्दकोश बनाए जाएँ। ये कोश इस प्रकार हों :—

(१) सभी प्रमुख विदेशी भाषाओं के शब्दों का संस्कृत में

(२) संस्कृत का सभी प्रमुख विदेशी भाषाओं में

(३) सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों का संस्कृत में

(४) संस्कृत शब्दों का सभी भारतीय भाषाओं में

यह प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है और इसका कार्यान्वियन विश्वविद्यालय तथा संस्कृत भाषा एवं वाङ्मय के प्रचार-प्रसार के लिये हितावह है। अतः यह समीचीन है कि इस कार्य को विश्वविद्यालय अपने हाथ में ले।

एतदर्थ निम्नांकित व्यक्तियों की एक समिति गठित की जाती हैं, जो सम्पादक मण्डल के रूप में इस कार्य को सम्पन्न करेगी। समिति के सदस्यों से अनुरोध है कि वे इस कार्य को अविलम्ब प्रारम्भ करें। इसकी प्रगति से कुलपति को अवगत कराते रहें और इस योजना की एक ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करें, जिससे भारत सरकार से एतदर्थ अपेक्षित धनराशि की स्वीकृति के लिए अनुरोध किया जाय।

१. डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी
२. डा० पारसनाथ द्विवेदी
३. डा० सत्यव्रत शर्मा
४. श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी
५. श्री देवव्रत शर्मा
६. श्रीमती शशिबाला चौबे
७. श्रीमती इला तपादार
८. श्री गोविन्दचन्द्र विश्वास
९. डा० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री' (संयोजक)

समिति को अधिकार होगा कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सहयोगी विद्वानों को अनुमेलित कर सकती है।

अन्य गतिविधियाँ

३० जनवरी से ८ फरवरी, १९७९

(क) राष्ट्रीय सेवा योजना : विशेष शिविर

राष्ट्रीय सेवा योजना : विशेष शिविर के साफल्य के लिए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के छात्रों की एक टोली कोआर्डिनेटर प० श्री पुरुषोत्तम पाठक तथा उक्त विश्वविद्यालय के न्यायवैशेषिक विभागाध्यक्ष एवं आचार्य डा० श्रीराम पाण्डेय के निर्देशन में ३०।१।७९ को प्रातः विश्वविद्यालय से प्रस्थान कर बरहनी ब्लाक पर मध्याह्न १२ बजे पहुँच गयी। उक्त तिथि को सायं २ बजे डा० महाप्रभुलाल गोस्वामी, दर्शनविभागाध्यक्ष व आचार्य की अध्यक्षता में इसका उद्घाटन समारोह श्री चन्द्रमासिंह, ग्रामप्रधान की उपस्थिति में बड़ी धूमधाम के साथ सोल्लास सम्पन्न हुआ। कोआर्डिनेटर श्री पाठक ने इसकी उपादेयता एवं महत्त्व का बड़े जोरदार शब्दों में प्रकाशन करते हुए इसकी सफलता के लिए आये हुए छात्रों को बड़े ही मार्मिक ढंग से सम्बोधित कर उत्साहित किया। छात्रों एवं उपस्थित जनता की करतल ध्वनि से इसका समर्थन व्यक्त हुआ। शुभारम्भ के समय छात्रों का मनोबल शिशिर साफल्य की दिशा में बड़ा जोरदार सुस्पष्ट दिखाई पड़ा।

डा० पाण्डेय ने सेवा का विश्लेषण कर बताया कि उक्त योजना राष्ट्र की महती सेवा की आप सबों को चुनौती दे रही है कि संस्कृति के पुजारी इस देश की सेवा में कितनी रुचि रखते हैं तथा जनता के कल्याणार्थ कितना मनोयोग अर्पित करते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि संस्कार सम्पन्न संस्कृत छात्र सदा देश सेवा में अग्रणी रहे हैं तथा इसमें भी अग्रणी होकर देश तथा संस्कृति का भव्य भाल उन्नत कर यशस्वो बनेंगे। भारतीय संस्कृति सदा से ही जनता के कल्याणार्थ अपना सर्वस्व समर्पित करती आयी है। इसकी पुष्टि में अनेक अतीत उपाख्यानों को प्रस्तुत कर अतीत भारत का गुणगान प्रस्तुत कर छात्रों का ध्यान सहसा आकृष्ट कर अपनी सदाशा सफलता के लिए छात्रों से समर्थन प्राप्त किया। छात्रों ने अपने हाथों को उठाकर अतीत भारत के गौरव की वृद्धि की प्रतिज्ञा की।

डा० गोस्वामी ने रन्तिदेव आदि की रोचक कहानी प्रस्तुत कर छात्रों का उत्साह वर्धन किया। अन्त में बरहनी ब्लाक में आए हुए अतिथि मण्डल के समक्ष ग्रामप्रमुख श्री सिंह ने अपने मण्डल के भाग्य की सराहना करते हुए उन्हें धन्यवाद अर्पित किया।

दि० ३०।१।७९ को शिविर के उद्घाटन के पश्चात् छात्रों के दल ने बरहनी ग्राम में जाकर वहाँ के लोगों से सम्पर्क स्थापित किया, उस गाँव के अधिकांश युवक छात्रों के मनोबल को ऊँचा किया और सहयोग देने के लिए तैयार किया। गाँव में सफाई का कार्य प्रारम्भ हुआ। ९ बजे रात सभी छात्रों ने संयोजक श्री पाठक की उपस्थिति में संस्कृत काव्य पाठ किया। दि० ३१।१।७९ को प्रातः राजमार्ग का निर्माण करने के बाद ३ बजे दिन से ही ५ टोलियों में छात्र विभक्त हुए और पाँच गाँवों में गये। शिविर निर्देशक डा० श्रीराम पाण्डेय के निर्देशानुसार प्रत्येक गाँव में छात्रों ने मद्यपान निषेध एवं परिवार कल्याण नियोजन का प्रचार किया। प्रत्येक गाँव के ग्रामप्रधान से मिलकर छात्र दल ने अपना कार्य आगे बढ़ाया। ग्रामप्रधान ने छात्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

दि० १।२।७९ को प्रातःकाल सभी छात्रों ने बरहनी ग्राम के बीज गोदाम पर जाने वाली सड़क का निर्माण प्रारम्भ किया। राजमार्ग से बीज गोदाम के बीच दस फुट चौड़ी एक सौ फुट लम्बी सड़क का निर्माण कार्य ८।२।७९ तक चला। अमड़ा तथा घीना ग्राम में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम भी प्रारम्भ हुआ। ३० लोगों को प्रौढ़ शिक्षा में नामांकित कर प्रतिदिन सायं ५ बजे से छात्रों की दो टोलियों ने उक्त गांव में जाकर शिक्षा दी। इसी दिन वसन्त पञ्चमी थी। छात्रों ने प्रार्थना के पश्चात् बरहनी गाँव के लोगों के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा संस्कृत अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता की।

दि० २।२।७९ से बरहनी, भदरवरी, औरइया, अमड़ा, घीना, जेबरियाबाद नामक गाँवों में छात्रों के दल ने जाकर मद्यपान निषेध, परिवारकल्याण नियोजन को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार २।२।७९ तक एक हजार लोगों में मद्यपान निषेध एवं परिवार कल्याण नियोजन का प्रचार प्रसार कर अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन किया। उक्त गाँवों में जाने के लिए जो मार्ग भग्न हो गए थे, उन्हें रा० से० यो० के छात्रों ने सुधारा और लोगों को राहत पहुँचायी। छात्रों में इस प्रकार का उत्साह देखकर गाँव के लोगों में भी इन कार्यों में सहयोग देने की स्फूर्ति दिखाई पड़ी। दि० ३।२।७९ को छात्रों का एक [illegible] महुई ग्राम में गया और उक्त गाँव

६

के एक पण्डित परिवार से १५० की संख्या में हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त करने का प्रयास किया। उक्त ग्रन्थ शीघ्र ही प्राप्त हो जायेंगे।

दि० ६।२।७९ को सहसा कुलपति आचार्य बदरीनाथ शुक्ल एवं छात्रकल्याण संकायाध्यक्ष डा० देवस्वरूप मिश्र, कुलसचिव प० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, उपाचार्य डा० आद्याप्रसाद मिश्र तथा डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी, प० विश्वनाथ शुक्ल, श्री सर्वेश्वर राजहंस, भू० पू० छात्रसंघ अध्यक्ष श्री कुंजविहारी शर्मा एवं वर्तमान छात्रसंघ के महामन्त्री श्री पारसनाथ मिश्र शिविर में पहुँचे और छात्रों का उत्साहवर्धन किया। इसके पूर्व छात्रसंघ के उपाध्यक्ष श्री गार्गीप्रसाद मिश्र ने भी शिविर में पहुँच कर छात्रों को उत्साहित किया। छात्रों के द्वारा किये जा रहे कार्यों को देखकर कुलपतिजी ने प्रशंसा की। आपने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि आप लोग विश्वविद्यालय के छात्र हैं। आपमें गुरुजनों के प्रति निष्ठा, उनकी बातों को मानने व सहन करने की क्षमता होनी चाहिए। आप लोग इस शिविर में आकर गाँवों में जाकर जो कष्ट उठा रहे हैं, उससे कष्टसहन की भावना में भी वृद्धि अवश्य होगी। आप सबमें एक दूसरे के प्रति प्रेम अवश्य आ गया होगा। आप सब लोगों ने निर्भय होकर जो श्लोक और कविता पाठ किया, उससे ऐसा लगा कि हमारे छात्र यदि अनुशासित होकर कार्य करें, तो अवश्य ही भविष्य में अच्छे विद्वान् बन सकते हैं। शिविर के छात्रों को आशीर्वाद देते हुए आपने कहा कि आप लोगों को सरस्वती की महत्ता जाननी चाहिए।

दि० ८।२।७९ को भी छात्रों ने बरहनी ग्राम के पास दीक्षित नगर में जाकर स्वच्छता का कार्य बड़े परिश्रम से किया। राजमार्ग से दीक्षित नगर को जाने वाली सड़क के भग्न मार्ग को ६ घंटे के अथक परिश्रम से छात्रों ने मिट्टी डालकर ठीक किया। उसी दिन बरहनी ग्राम के पास स्वास्थ्य केन्द्र की सड़क को भी यत्र-तत्र ठीक किया तथा विकास भवन को जाने वाली सड़क की सफाई की गई। उक्त ग्राम के स्वास्थ्य केन्द्र के अधिकारी छात्रों के इस कार्य एवं मनोबल को देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

यह शिविर पूरे दस दिन का था, जिसमें छात्रों ने अनुशासन सीखा और प्रेम तथा सद्भाव से सभी कार्यों को बड़ी लगन एवं निष्ठा से सम्पन्न किया।

४ फरवरी, १९७९

(ख) छात्रावासीय विचारगोष्ठी

दि० २२.१२.७८ को कुलपति की अध्यक्षता में शिवकुमार शास्त्री छात्रावास में एक गोष्ठी हुई थी, जिसमें यह निर्णय किया गया था कि छात्रों के विकास के लिए पाक्षिक छात्र गोष्ठियाँ होनी चाहिए। इसी क्रम में आयोजित दो गोष्ठियों का विवरण 'वार्ता' के तीसरे अङ्क में गया है। अन्य गोष्ठियों का विवरण निम्नांकित है—

तृतीय पाक्षिक गोष्ठी

दिनाङ्क ४-२-७९ को तृतीय पाक्षिक विचार गोष्ठी का आयोजन डा० रामप्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। गोष्ठी में 'संस्कृत शिक्षा की समस्याएँ' विषय विचारार्थ रखा गया था। गोष्ठी में सर्व श्री पद्मप्रसाद शर्मा, नलिनीकान्त त्रिपाठी, राम उजागर चतुर्वेदी, उमेश झा, प्रेमपति द्विवेदी अनिरुद्धकुमार पाण्डेय, जटाशंकर मिश्र, रमेशचन्द्र द्विवेदी, दिनेशचन्द्र भार्गव आदि छात्रों ने विचार व्यक्त किए, जिनका निष्कर्ष इस प्रकार है :—

१ अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में भी संस्कृत को अनिवार्य विषय रखा जाय तथा पाठ्यक्रम ऐसा हो, जिससे संस्कृत के सभी अङ्गों का सामान्य ज्ञान सभी छात्रों को भलीभाँति हो जाय।

२. संस्कृत माध्यम से चलने वाली शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर समान पाठ्यक्रम प्रचलित किया जाय, जिससे इन संस्थाओं के छात्र भी विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रवेश ले सकें।

३. संस्कृत केवल पुस्तकों एवं समाज के वर्गविशेष की भाषा रह गयी है, यह मान्यता सर्वथा निर्मूल है। यह अतीत से ही देश की राष्ट्रभाषा रही है। आज भी राष्ट्रभाषाजननी का गौरव इसे प्राप्त है।

४. इसके प्रचार-प्रसार के लिए सरल व्याकरण का रूपान्तर विभिन्न क्षेत्रीय उपभाषाओं में उपलब्ध हो। उसके माध्यम से शिक्षण अत्यधिक प्रभावी हो सकता है।

५. भौतिकवादी युग में संस्कृत को उपयोगी बनाने के लिए व्यावहारिक बनाया जाय तथा अर्थोपार्जन से सम्बद्ध किया जाय।

६. संस्कृत के ह्रास से ही भारतीय संस्कृति का ह्रास हुआ है। अतः संस्कृति की रक्षा के लिए भी संस्कृत का प्रसार आवश्यक है।

७. समय सारिणी का निर्माण पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए तथा परीक्षा प्रणाली में भी सुधार किया जाय।

८. योग्यता का मूल्याङ्कन व्यक्तिगत व्यावहारिक योग्यता के आधार पर किया जाय, तथा कार्यक्षमता के आधार पर चयन किया जाय।

श्री शम्भुनाथ मिश्र ने छात्रों को सम्बोधित करते हुये कहा कि जन-जन की भाषा बनाने की अपेक्षा संस्कृतज्ञों को अच्छे

स्थानों पर नियुक्त करना अधिक श्रेयस्कर होगा। यद्यपि संस्कृत शिक्षा का लक्ष्य कभी भी जीविकोपार्जन नहीं रहा, बल्कि इसका लक्ष्य जीवन के व्यावहारिक पक्ष को परिमार्जित करना ही रहा है, तथापि आज के युग में केवल सैद्धान्तिक विवेचन से ही जीवन नहीं चल सकता। शासन पर आक्षेप करते हुए उन्होंने कहा कि आज भी सरकार विदेशी शासन का अनुकरण कर भारत की मूल भाषा संस्कृत को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० त्रिपाठी ने कहा कि आज समस्त संस्कार लुप्तप्राय हो चुके हैं, जिसका प्रभाव प्रत्यक्षतः समाज पर देखने को मिलता है। सभी छात्र आज आत्म-स्वरूप को भूल बैठे हैं। अतएव उनका उद्बोधन परमावश्यक है। वे स्वयं ही इस विनाश के सागर से गुरु के मुख से अपने प्रश्नों को बार-बार सुनकर पुनः-पुनः चिन्तन-मनन कर अपने को अपने में आत्मस्थ कर पार कर सकते हैं। जीविकोपार्जन की अपेक्षा आत्म-शुद्धि ही परमावश्यक है। अतः छात्रों को चाहिए कि वे कारण की अपेक्षा न कर कार्य को ही ध्यान में रखकर ज्ञानवर्धन करें। आत्मा की शुद्धि से ही जीव की शुद्धि होती है तथा जीव की शुद्धि से सर्वजगत् की शुद्धि हो जाती है। यहाँ शुद्धि का तात्पर्य आचरण की शुद्धि से है।

सभा का संचालन करते हुए श्री त्रिभुवन सिंह ने सभी आगन्तुकों के प्रति आभार एवं धन्यवाद ज्ञापन किया।

२० फरवरी, १९७९

संगीत गोष्ठी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के श्री शिवकुमार शास्त्री छात्रावास के वाचनालय कक्ष में छात्रावास समिति एवं छात्र संघ के सयुक्त आयोजन में कुलपति प० बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में दिनांक २० फरवरी, १९७९ को शाम ७ बजे से चतुर्थ पाक्षिक गोष्ठी हुई। गोष्ठी में प० देवस्वरूप मिश्र, डा० आद्याप्रसाद मिश्र, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, श्री शम्भुनाथ मिश्र आदि विद्वान् उपस्थित थे। सांगीतिक मङ्गलाचरण का शुभारंभ श्री बैजनाथ मिश्र के गायन से हुआ। श्री जमुनाप्रसाद मिश्र का तबलावादन एवं श्री शिवनाथ मिश्र का सितारवादन स्तुत्य था। छात्रसंघ के भूतपूर्व उपाध्यक्ष पूरनलाल त्रिपाठी के फिल्म की धुन पर समानान्तर रूपक-काव्य-प्रहसन ने श्रोताओं को हँसाते-हँसाते लोटपोट कर दिया। श्री उमेश झा का तबला वादन, श्री केशव ओझा का लोकगीत एवं श्री रामसेवक पाण्डेय की शंकर वन्दना श्रोताओं द्वारा प्रशंसित हुई।

कुलपतिजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि संगीत जीवन में नव स्फूर्ति जागरित करने की एक विद्या है। भारत इस विद्या का विश्व गुरु रहा है। भारतीयों की आराध्य देवी सरस्वती का परिचायक चिह्न 'वीणा' है। नारद की वीणा का नाद समस्त जगत् को गुञ्जित करता है। कृष्ण की वंशी व शंकर का डमरू भी संगीतप्रियता के ही द्योतक हैं। यद्यपि आधुनिक युग में भारतीय संगीत शास्त्र प्रायः लुप्त होता जा रहा है, फिर भी उसका मूल ग्राम्य गीतों में आज भी सुरक्षित है। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने कहा कि संगीत एक साधना का विषय है। संगीतज्ञ अनेक वर्षों की सतत साधना के पश्चात् किसी एक राग की सिद्धि कर पाते हैं। रागों की संख्या अनन्त है, पर प्रधानतः छह राग माने गये हैं। रागों के अतिरिक्त अनेक उपराग एवं उपरागिनियाँ भी हैं।

६ फरवरी, १९७९

(ग) विश्वविद्यालय के नवीन कार्यालय भवन का उद्घाटन

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के नवीन कार्यालय भवन का उद्घाटन आज दिनांक ६-२-७९ को वैदिक रीति से पूजनोपरान्त विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य प० बदरीनाथ शुक्ल के कर कमलों द्वारा वैदिक मंगलाचरण से गुंजायमान वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस भवन का शिलान्यास विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति प० करुणापति त्रिपाठी के करकमलों द्वारा दिनांक २ फरवरी, ७८ को सम्पन्न हुआ था। आचार्य बदरीनाथ शुक्ल ने इस शुभ अवसर पर उपस्थित विद्वज्जन, छात्र, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि इस नए भवन में आज जिस उत्साह एवं हर्ष के साथ हम प्रवेश कर रहे हैं, उसी उत्साह एवं हर्ष के साथ हमें अपने कर्तव्यों के निर्वाह का भी संकल्प लेना है। जब कभी नवीन वातावरण प्रारम्भ होता है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक कार्य में गति आयेगी और उत्साह बढ़ेगा। मेरा विश्वास है कि आप सभी कर्मचारीगण अधिक उत्साह एवं परिश्रम से अपने कार्यों का निर्वाह करेंगे। आपने आगे कहा कि इस विश्वविद्यालय का संबन्ध अन्य विश्वविद्यालयों के साथ-साथ संस्कृत के कई सौ विद्यालयों और महाविद्यालयों से है, जो प्रदेश में और प्रदेश के बाहर भी स्थित हैं। हमारे कार्यालय की कार्यकुशलता का प्रभाव उसकी सीमा के विस्तार के कारण समस्त देश पर पड़ेगा। यदि हमारा कार्यालय थोड़ा सा भी शिथिल हो जायेगा, तो उसका कुप्रभाव और अपयश होगा। अतः इसे दृष्टिगत रखते हुए हमें अपने कर्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक रहते हुए विश्वविद्यालय की गरिमा को सुरक्षित रखना होगा। विश्वविद्यालय में छात्रों के महत्त्व को बताते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि कार्यालय का पुनीत कर्तव्य है कि वह छात्रों की आवश्यकताओं के प्रति सौहार्द और सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाएँ।

आपने कहा कि विश्वविद्यालय के अध्यापक अपने पाण्डित्य का उपयोग छात्रों की जिज्ञासा के समाधान में करेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि अध्यापक, छात्र एवं कार्यालय—तीनों आपस में एक सामंजस्य स्थापित कर एक दूसरे की कठिनाइयों का निराकरण करेंगे और विश्वविद्यालय की प्रगति में सहायक होंगे।

१२-१३ फरवरी, १९७९

(घ) देववाणी परिषद, दिल्ली का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन

देववाणी परिषद्, दिल्ली के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति प० बदरीनाथ शुक्ल ने कहा कि संस्कृत 'देववाणी' नाम धारण करने पर भी जीवन्त मानव की भाषा है। इसे किसी जातिविशेष, किसी सम्प्रदायविशेष अथवा किसी प्रान्तविशेष की भाषा न मानकर साहित्य, दर्शन और ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में ग्रहण करना चाहिए। इस अवसर पर परिषद् द्वारा प्रकाशित चौदह सर्गों के संस्कृत महाकाव्य 'सुगमरामायणम्' का विमोचन करते हुए उन्होंने ग्रन्थलेखक आचार्य श्री रमेशचन्द्र शुक्ल को अभिनन्दित किया तथा इस रचना को संस्कृत जगत् के लिए बहुमूल्य उपहार बताया।

परिषद् के महासचिव डा० रमाकान्त शुक्ल ने परिषद् का वार्षिक विवरण प्रस्तुत करते हुए आगामी योजनाओं की ओर संकेत किया तथा परिषद् के अध्यक्ष डा० वृजमोहन चतुर्वेदी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में संस्कृत के प्रचार प्रसार के लिए अनेक व्यावहारिक सुझाव रखे।

डा० रमेशचन्द्र शुक्ल की अध्यक्षता में 'अर्वाचीनसंस्कृत-रचनाध्ययनाध्यापनस्य प्रासङ्गिकता' विषय पर आयोजित विचार गोष्ठी में विषय प्रवर्तक डा० दयानन्द भार्गव, विमर्शकार डा० कृष्णलाल नादान, डा० रामसुरेश पाण्डेय, डा० शशि तिवारी, श्रीमती शशिकुमार (सभी दिल्ली वि०वि०), डा० कृष्णकान्त शुक्ल (रुहेलखण्ड वि० वि०) और प्रो० उमाकान्त शुक्ल (मेरठ वि०वि०) ने संस्कृत की प्राचीन परम्परा के ग्रन्थों के साथ अर्वाचीन रचनाओं के अध्ययनाध्यापन की प्रासङ्गिकता पर प्रकाश डाला।

'समापनम्' के मुख्य अतिथि आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के, जो आकस्मिक कार्यवश उपस्थित नहीं हो पाये, लिखित भाषण को महासचिव ने पढ़ा, जिसमें अनेक सामयिक समस्याओं पर विचार के लिए विद्वत् समूह का आवाहन किया गया था। 'समापनम्' के अध्यक्ष प० अमीरचन्द शास्त्री ने इस अवसर पर परिषद् की ओर से सात संस्कृत विद्वानों का अभिनन्दन किया। डा० दयानन्द भार्गव, डा० कृष्णलाल नादान, डा० रमाकान्त शुक्ल तथा श्री अमीरचन्द शास्त्री की नवीनतम कविताओं के पाठ के साथ आयोजन समाप्त हुआ।

इस अवसर पर एक सांस्कृतिक समारोह भी आयोजित हुआ, जिसमें प्रीतिनाथ संस्कृत विद्यालय के छात्रों ने भाग लिया।

२५-२८ फरवरी, १९७९

(ङ) अखिल भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षक संघ का इक्कीसवाँ वार्षिक अधिवेशन

अखिल भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षक संघ का इक्कीसवाँ वार्षिक अधिवेशन इस विश्वविद्यालय में २५ फरवरी से २८ फरवरी तक सम्पन्न हुआ। इन तिथियों के पूर्व ही इसकी व्यवस्था तथा स्वागत समिति के पदाधिकारियों के निश्चय हेतु अधिवेशन के अध्यक्ष तथा संयोजक डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी, अध्यक्ष : शिक्षा-शास्त्र विभाग एवं सङ्कायाध्यक्ष, आधुनिक ज्ञान विज्ञान सङ्काय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने इस नगरी के शिक्षाशास्त्र से सम्बद्ध महाविद्यालयों तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अध्यापकों की एक बैठक कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में आहूत की थी। इसके निर्णयानुसार निम्नाङ्कित व्यक्ति स्वागत समिति के पदाधिकारी बनाये गये :—

१. अध्यक्ष :—प्रो० बदरीनाथ शुक्ल, कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

२. संयोजक :—डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी
अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग एवं सङ्कायाध्यक्ष, आधुनिक ज्ञानविज्ञान सङ्काय, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

३. मन्त्री :—(१) डा० कुमारी सरोजिनी वार्ष्णेय
प्राचार्या, महिला महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(२) श्री इन्दिराचरण पाण्डेय
प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(३, श्री देवनारायण मिश्र
प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी

४ स्वागत मन्त्री :—श्री गोपालजी मिश्र
प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग,
सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी

५. कार्यालय मन्त्री :—श्री रमेशचन्द्र पाण्डेय,
छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग

अधिवेशन का उद्घाटन दिनाङ्क २५.२.७९ को विश्वविद्यालय के मुख्यभवन में हुआ तथा इसके पदाधिकारियों, सदस्यों एवं उपस्थित श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए स्वागताध्यक्ष प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने कहा :—

सकल श्रेय की मूलस्रोत भगवती सुरभारती की समान समाराधना से प्रसाधित इस सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राङ्गण में आज आप महानुभावों के पदार्पण से हम अत्यन्त उपकृत तथा हर्षित हैं।

आज से १८८ वर्ष पूर्व सन् १७९१ में श्री जोनाथन डंकन ने इस पवित्र काशी नगरी में बनारस पाठशाला या हिन्दू कालेज की स्थापना की थी। कालान्तर में यही संस्था बनारस कालेज, संस्कृत कालेज, बनारस तथा वाराणसेय राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के नाम से विख्यात हुई। हिन्दुओं को अनुकूल करने के लिए तथा न्यायालयों में न्यायाधीशों को हिन्दू विधि पर यथावसर परामर्श देने के लक्ष्य से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस संस्था की स्थापना की थी। सन् १८४४ में प्रो० जे० म्योर इस संस्था के सर्वप्रथम प्रधानाचार्य नियुक्त किये गये। सन् १८८० में सर्वप्रथम इस महाविद्यालय में परीक्षा प्रणाली प्रचलित की गयी। इसके उपरान्त शीघ्र ही अनेक विद्यालय इसकी परीक्षाओं के लिए इससे सम्बद्ध होने लगे। प्रधानाचार्य डाक्टर आर्थर वेनिस के कार्यकाल में पाण्डुलिपियों के विशाल संग्रह को संरक्षित रखने के लिए यहाँ सरस्वतीभवन पुस्तकालय के भवन का निर्माण किया गया। स्पष्ट है कि सन् १९१८ से ही यह संस्था पठन-पाठन, पाठ्यक्रम निर्धारण, परीक्षा-सञ्चालन तथा उपाधि वितरण इत्यादि कार्यों से एक विश्वविद्यालय का कार्य सम्पन्न कर रही थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त उत्तरप्रदेश शासन ने संस्कृत शिक्षा में सुधार लाने तथा उसका स्तर ऊँचा उठाने के उद्देश्य से इसे एक वैधानिक विश्वविद्यालय का रूप देने का निर्णय लिया। फलतः इस पवित्र काशी नगरी के महामनीषी नागरिक डा० सम्पूर्णानन्द के मुख्यमन्त्रित्व काल में शासन का यह शिवसङ्कल्प इस विश्वविद्यालय के रूप में २२.३.५८ को साकार हुआ तथा वाराणसेय राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्राङ्गण में दर्शन, विज्ञान, साहित्य के परिनिष्ठित मनीषी डा० सम्पूर्णानन्द ने इस विश्वविख्यात विश्वविद्यालय का उद्घाटन किया।

प्रतिभा के धनी, प्रशासनकुशल और उत्तरप्रदेश के मुख्यसचिव डाक्टर आदित्यनाथ झा के कन्धों पर इस नवीन संस्था के कुलपतित्व का भार रखा गया। इस विश्वविद्यालय की विशिष्टता के विषय में अनेक प्रश्न किये जाते हैं। लोग यह पूछते हैं कि जब हमारे देश में अनेक विश्वविद्यालय कार्य कर रहे हैं, तो एक संस्कृत विश्वविद्यालय की क्या आवश्यकता है? इसके विशिष्ट क्रियाकलाप क्या होंगे? इस सन्दर्भ में यह बता देना समुचित जान पड़ता है कि अन्य विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य पद्धति से अँग्रेजी या आधुनिक भारतीय भाषाओं में पठन-पाठन, शोधकार्य, ग्रन्थों की रचना तथा प्रकाशन के कार्य होते हैं। इस समस्त कार्य व्यापार में मानव की भौतिक दृष्टि को ही शक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत यह विश्वविद्यालय विश्व के प्राचीनतम सुविस्तृत विपुल साहित्य के द्वारा संस्कृत माध्यम से मानव जगत् को एक सर्वथा नवीन जीवन दर्शन देने को कृतसङ्कल्प है। प्राचीन विद्यापीठों तथा अर्वाचीन विश्वविद्यालयों के गुणों को ग्रहण करके यह विश्वविद्यालय प्राचीन तथा अर्वाचीन पद्धतियों के बीच सुन्दर समन्वय करने की चेष्टा कर रहा है। समस्त वैदिक, बौद्ध तथा जैन दर्शनों के सम्यक् परिशीलन तथा चिन्तन के साथ-साथ वर्तमान समय की विभिन्न विख्यात विचारधाराओं के मन्थन से तथा भारतीय संस्कृति के आलोडन द्वारा प्राप्त सारभूत तत्त्वों के आधार पर यह विश्वविद्यालय एक अनुपम विश्व संस्कृति की परिकल्पना में आगे बढ़ रहा है। हमारी यह भी इच्छा है कि गुरु-शिष्य के सनातन घनिष्ठ सम्बन्ध का संरक्षण करते हुए हमारी यह संस्था सच्चरित्र, विनयशील तथा अनुशासित एवं तेजस्वी नागरिकों का निर्माण करे।

इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सरस्वतीभवन पुस्तकालय में संस्कृत वाङ्मय के सुदुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों की एक महान् राशि संगृहीत तथा सुरक्षित है। संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध बनाने के लक्ष्य से तथा अनेक विद्याओं को प्रकाश में लाने के लोकोपकार के मन्तव्य से इस पाण्डुलिपि सामग्री के वैज्ञानिक सम्पादन तथा प्रकाशन के कार्यक्रम का भी हमारे यहाँ प्रभाग है। वेद, उपनिषद्, पुराण तथा देश के विभिन्न भागों में विरचित साहित्य के शिक्षाप्रद प्रसङ्गों को लोकहित में सरल संस्कृत में उपस्थापित करने तथा विदेशों में आविर्भूत तथा विकसित आधुनिक विद्याओं को संस्कृत के माध्यम से पण्डितों के समक्ष प्रस्तुत करने की हमारी योजना का भी श्रीगणेश हो चुका है। इस प्रकार भारतीय तथा विदेशी विचारों को सङ्कलित करते हुए ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा समालोचनात्मक पद्धति से इन सङ्कलनों के सम्पादन तथा प्रकाशन को भी हम चेष्टा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विदेशों में स्थित संस्कृत के ग्रन्थों के जो उन देशों की लिपि में हैं, देवनागरी संस्करणों के प्रकाशन की भी हम योजना तैयार कर रहे हैं।

प्रथमा से आचार्य पर्यन्त मान्यता प्राप्त देश के सहस्राधिक संस्कृत विद्यालय इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं। हमें इस बात का गर्व है कि हमारे प्रदेश में परम्परागत संस्कृत विद्यालयों की संख्या देश में सबसे अधिक है, तथा यहाँ का शासन भी संस्कृत

शिक्षा के विभिन्न पहलुओं की समस्याओं पर दत्तचित्त है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जिन देशी राज्यों एवं जमींदारियों से ये विद्यालय परिपोषित थे, उनके समाप्त हो जाने से इन संस्थाओं के भरणपोषण पर घातक प्रभाव पड़ा है। इनमें से अनेक के नाम न्यास, प्राभूत तथा समर्पित निधियाँ स्थापित हैं। खेद है कि इन प्राभूतों के सञ्चालक दाता की इच्छा के विरुद्ध संस्कृत के निमित्त समर्पित निधि का उपयोग अंग्रेजी शिक्षा में कर रहे हैं। मेरे विचार से सरकार का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपनी प्रक्रिया से ऐसे अपराधी प्राभूतों का सर्वेक्षण कराने तथा संस्कृत के लिये उस धन के पुनर्विनियोग की वैधानिक व्यवस्था करे। कुछ विद्यालयों में आज भी निःशुल्क आवास तथा भोजन की व्यवस्था है। हमारे विश्वविद्यालय में भी छात्रों के लिए निःशुल्क आवास, बिजली तथा परिचारकों का प्राविधान किया गया है।

अतीत काल से वाराणसी शास्त्रीय पाण्डित्य के साथ-साथ वाणिज्य एवं व्यापार का भी केन्द्र रहा है। बौद्ध साहित्य ने सोलह जनपदों में वाराणसी की भी गणना की है। वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, दर्शन ग्रन्थ, हरिवंश, वायु, मत्स्य, भागवत, स्कन्दादि पुराण इत्यादि संस्कृत वाङ्मय का कोई भी ऐसा भाग नहीं है, जहाँ काशी की महिमा का वर्णन आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक भाषा में न किया गया हो। भारतीय तथा अन्ताराष्ट्रीय वाणिज्य एवं व्यापार के क्षेत्र में यह धार्मिक, ऐतिहासिक आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक नगरी विश्व का नेतृत्व करती थी। बड़े-बड़े जहाजों पर सवार होकर यहाँ के व्यापारी वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य तथा हाथी दाँत की वस्तुओं को लेकर विदेशों की यात्रा किया करते थे। बनारसी वस्त्रों की चर्चा पतञ्जलि के महाभाष्य में भी की गयी है। भगवान् विश्वेश्वर के त्रिशूल पर स्थित इस विलक्षण नगरी के नरेशों ने शास्त्र, धर्मज्ञ विद्वानों तथा संस्कृत-संस्कृति के संरक्षण की दिशा में जिस भूमिका का निर्वाह किया है, वह संसार के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है।

यहाँ के विभिन्न तीर्थस्थल केवल हमारे देश के ही विपुल जन समुदाय को नहीं, बल्कि समस्त विश्व को मानव धर्म के गूढ़ तत्त्वों का उपदेश दे रहे हैं तथा जनजीवन को पवित्र एवं निर्मल बनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

"तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने। दशाश्वमेधं लोकार्कः केशवो बिन्दुमाधवः॥ पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका।" मत्स्यपुराण (१८५.६८-६९) के अनुसार ये पञ्चतीर्थ भगवान् विश्वेश्वर के आनन्द कानन थे। सनातन महत्त्व के इन स्थलों के माध्यम से हमारी काशी पुरी आज भी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाशस्तम्भ बनी हुई है। प्रमुख तीर्थों के अतिरिक्त भी वाराणसी में अनेक छोटे-बड़े तीर्थ विद्यमान हैं, जिनसे हमें सांस्कृतिक प्रेरणा प्राप्त होती है।

यही नहीं, पाण्डित्य, शास्त्रचिन्तन एवं शास्त्ररचना के क्षेत्र में भी कुल्लूकभट्ट, सन्त ज्ञानेश्वर, जिनप्रभसूरि, स्वामी अखण्डानन्द, नृसिंहाचार्य, मकरन्द, नरहरि, विशारद भट्टाचार्य, प्रगल्भाचार्य, विश्वनाथ सिद्धान्त पञ्चानन, भट्टोजि दीक्षित, मधुसूदन सरस्वती, पण्डितराज जगन्नाथ, शिक्षाशास्त्र के विख्यात विद्वान् वरदराज, ढुण्ढिराज तथा पण्डित दामोदर (सन् ११५०), नागोजी भट्ट, म० म० गङ्गाधर शास्त्री, म० म० बापूदेव शास्त्री, म० म० कैलाशचन्द्र शिरोमणि, म० म० दामोदर शास्त्री भारद्वाज, म० म० शिवकुमार शास्त्री, म० म० सुधाकर द्विवेदी और म० म० रामकृष्ण शास्त्री इत्यादि संस्कृत के कर्णधारों ने काशी पुरी में ही अपनी सरस्वती साधना से हमारे वाङ्मय को समृद्ध बनाया, अध्यात्म-मार्ग का प्रदर्शन किया तथा भारतीय संस्कृति का भार वहन किया। इन्होंने अपने महत्तम व्यक्तित्व एवं शास्त्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रौढ़ एवं मौलिक चिन्तन से विश्व के विपश्चिद् वर्ग को भारत की ओर तथा विशेषतः काशी की ओर आकृष्ट किया, हमारे देश के विद्वत् समाज को सुसंघटित किया, हिन्दू समाज का सञ्चालन किया, धार्मिक कर्तव्यों का निर्णय किया तथा धर्म एवं परापर ज्ञान क्षेत्र में काशी का झंडा ऊँचा उठाया।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भी इस नगरी तथा हमारे संस्कृत वाङ्मय की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जिसे जिस किसी शास्त्र का कुछ भी ज्ञान न हो, वही उस शास्त्र के लिये बालक माना जाता था। कार्यवय सीमा निर्धारित नहीं थी। गरीबी तथा निरक्षरता व्यक्ति के विकास तथा देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के महान् शत्रु हैं। शिक्षा विद्यालयों तक ही सीमित नहीं है। जीवन की क्रियाओं, प्रक्रियाओं तथा परिस्थितियों तक शिक्षा का क्षेत्र व्याप्त है। सीखना, सक्रिय होना तथा तदनुसार जीवन को ढालना, ये सभी एक दूसरे के अभिन्न अङ्ग हैं। मानव विकास के लिये जिन-जिन साधनों का हम प्रयोग करते हैं, उनका महत्त्व साध्यों से कम नहीं है। साक्षरता तथा सक्रियता से समाज के दीन सदस्यों का उद्धार किया जा सकता है। विभिन्न कला-कौशलों के द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग को ऊँचा उठाया जा सकता है। आजकल के प्रौढ़ शिक्षा अभियान के यही मूल विचार हैं। आधुनिक प्रौढ़ शिक्षा के कर्णधार इस चेष्टा में लगे हैं कि किन उपायों से देश का पिछड़ा वर्ग साक्षर बने तथा अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाये। इस दिशा में सम्बद्ध

जनसमुदाय को कैसे प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया जाय ? इस प्रश्न तथा इस समस्या को हल करने में हमारे शिक्षाविशेषज्ञ एवं समाजसेवी नेता दत्तचित्त हैं। तटस्थ को, समाज के अन्तिम छोर पर खड़े व्यक्ति को, केन्द्र में लाने का महात्मा गांधी ने जो प्रशस्त मार्ग प्रदर्शित किया, वही इस अभियान के मूल में है। इस सन्दर्भ में संक्षेपतः हमें यही कहना है कि हमारे गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, काव्य, नाटक, कथा साहित्य, जैन तथा बौद्ध ग्रन्थ प्रौढ़ शिक्षा के इन तत्त्वों के सिद्धान्तों तथा उनके व्यावहारिक स्वरूपों के प्रयोग से भरपूर हैं। खेद है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली चरित्रनिर्माण को अपना लक्ष्य नहीं बना रही है। उसके शिक्षाक्रम में जीवन की समस्याओं को हल करने के व्यावहारिक साधनों का समावेश नहीं किया जा रहा है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि प्रचलित प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी आधुनिक कल्पनाओं एवं विचारों को हमारे अतीत की समान परिकल्पनाओं से यदि जोड़ दिया जाय, तो वर्तमान प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम और भी अधिक सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बन सकेगा, क्योंकि वर्तमान अतीत का नैरन्तर्य मात्र हुआ करता है। इस सिद्धान्त के विपरीत आचरण से हमारा कर्मोद्योग अधूरा ही बना रहेगा। संस्कृत वाङ्मय ने प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में जिस भूमिका का निर्वाह किया है, उसका अनुसन्धान अब तक नहीं हो पाया है। आप जैसे निष्णात एवं मर्मज्ञ शिक्षाविदों का कर्तव्य है कि वे इस क्षेत्र में आगे बढ़ें। संस्कृत वाङ्मय की प्राचीनतम पाण्डुलिपियों तथा संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न ग्रन्थों के आधुनिकतम समालोचनात्मक, तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक संस्करणों से समृद्ध हमारा सरस्वतीभवन आपकी सेवा के लिए सन्नद्ध है।

मेरा विश्वास है कि आप जैसे शिक्षापारदर्शी विद्वान् इस प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन में विचार मन्थन द्वारा नये नये तत्त्वों एवं परिकल्पनाओं का आविष्कार करेंगे, जिनसे इस अभियान की सार्थकता तथा सफलता सिद्ध होगी और आप इस विश्वविद्यालय को भी इस क्षेत्र में, जिस अभियान का श्रीगणेश करने का निश्चय हम कर चुके हैं, कोई नयी दिशा देने में समर्थ होंगे।

इन शब्दों के साथ मैं अपनी तथा विश्वविद्यालय परिवार की ओर से आप महानुभावों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। ऐसे विराट् आयोजनों में त्रुटियाँ स्वाभाविक होती हैं। आप कोमल हृदय के उदारचेता महानुभाव हैं और शिक्षा जगत् की सेवा के लिये समर्पित हैं। मेरा विश्वास है कि स्वागत सम्बन्धी हमारी त्रुटियों पर आप लेशमात्र भी ध्यान न देंगे—

यस्याभिलाषमात्रेण जायते जगदद्भुतम्।
उन्नयेत् संस्कृति सम्यक् सोऽव्ययः काशिकापतिः॥

सम्मेलन के इस अधिवेशन का उद्घाटन शिक्षा, अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण की राष्ट्रीय समिति के निदेशक डा० एस० के० मित्र ने किया एवं अध्यक्षता डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी ने की।

डा० मित्र ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा, कि इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो० सतीशचन्द्र करने वाले थे, किन्तु अब यह गुरुतर भार अध्यक्ष द्वारा मुझे दिया गया है। सम्प्रति इस देश में शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर विभिन्न समस्याएं विद्यमान हैं। प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर संविधान के निदेशक सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को पूर्ण करने की दिशा में हम काफी पीछे हैं, क्योंकि इसके द्वारा १४ वर्ष तक के प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा का प्राविधान किया गया है। यद्यपि इस दिशा में प्रयत्न हुए हैं, किन्तु उनके द्वारा वाञ्छित परिणामों की प्राप्ति नहीं हो सकी है। कुछ अंश तक स्कूल तथा कालेज तो स्थापित हो गये हैं, किन्तु अध्यापन सम्बन्धी उपकरण तथा उपयुक्त योग्यता के अध्यापकों की यहाँ कमी है। ये कमियाँ शिक्षक प्रशिक्षक संघ ऐसे संगठनों के प्रयत्नों द्वारा ही दूर की जा सकती है।

प्रौढ़ शिक्षा योजना कार्यक्रम को इस दृष्टि से प्रारम्भ किया गया है कि ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें पूर्व में स्कूल में अध्ययन करने की सुविधा नहीं प्राप्त हुई है, शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ प्राप्त हों। ऐसे कार्य शिक्षा प्रदान करने वाले स्तरों में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने में सक्षम होंगे। इस सन्दर्भ में अध्यापकों का विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है, क्योंकि यहाँ अध्यापन कक्षाओं में सामान्य रूप से अपनायी जाने वाली विधियाँ सक्षम नहीं होंगी और शिक्षक प्रशिक्षक संघ को इस उत्तरदायित्व को वहन करना होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि संघ ने इस हेतु एक कार्यक्रम तैयार किया है और उसमें विशेषज्ञों तथा शिक्षण के कार्यक्रम में रत सङ्गठनों को सहायता प्रदान की है। हमें यह भी देखना है कि सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त ऐसे कार्यक्रम किस प्रकार से प्रारम्भिक शिक्षा को वास्तविक दृष्टि से प्रभावित कर सकते हैं। हमें बालिकाओं तथा समाज के असमुन्नत वर्ग की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देना है और ऐसे लोगों की अभिवृद्धि करनी है। माध्यमिक शिक्षा स्तर पर प्रत्येक वर्ष ५०-६० % नवयुवक तथा नवयुवतियाँ असफल घोषित होते हैं। बाद में इसके कारण अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न होती हैं, अतः यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसका कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली ही प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त समाज के गरीब तबके के लोग आर्थिक कठिनाइयों के कारण इससे वञ्चित रह जाते हैं। इस

दृष्टि से माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वालों को ऐसी शिक्षा देना समीचीन है, जिससे आगे चलकर जीविका के क्षेत्र में वे आत्म-निर्भर हो सकें।

समाज में सम्प्रति अमीर तथा गरीब एवं नागरिक तथा ग्रामीण के बीच असमानता की दूरी बढ़ती चली जा रही है और यह दुर्भाग्यपूर्ण है। आर्थिक विकास में प्रगति होने पर भी इस दूरी को शिक्षा के समन्वयात्मक दृष्टिकोण से ही दूर किया जा सकता है। इसके लिए यह समीचीन है कि योग्यता का अन्वेषण राष्ट्रीय दृष्टिकोण से करके शिक्षा के क्षेत्र में इसे प्रोत्साहित किया जाय। यद्यपि वैज्ञानिक शिक्षा को भी हमें प्रोत्साहित करना है, किन्तु इसे भी आध्यात्मिक बिन्दुओं से समन्वयात्मक बनाना होगा।

बहुत से लोग कहते हैं कि शिक्षा का स्तर दिनों-दिन गिरता जा रहा है। शिक्षण प्रयत्नों में शिक्षक की विशेष भूमिका होती है और जब वह समर्पित उद्देश्यवाला हो, तभी इस दिशा में सुधार लाया जा सकता है। इसलिये शिक्षकों को अपने को वेतनभोगी कर्मचारी मात्र न मानते हुए शिक्षा के लिए अपना समर्पण करना होगा।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली भी इस गिरते हुए स्तर के लिये उत्तरदायी है। यह बराबर पतनोन्मुख है, साथ ही इससे छात्रों की पूर्ण योग्यताओं का परीक्षण सम्भव नहीं है। इसके दृष्टिकोण से शिक्षा के संगठित होने के कारण अध्ययन तथा अध्यापन का सम्प्रति विशेष महत्त्व नहीं रह गया है और शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा न होकर परीक्षा मात्र हो गया है। अतः हमें इसे बदलना है। समाज में अध्ययन तथा अध्यापन की समीचीन सुविधाएँ उपलब्ध होने पर ही शिक्षा के स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर परीक्षोत्तीर्ण छात्रों की संख्या इतनी विपुल हो गयी है कि प्रत्येक छात्र को नौकरी नहीं दी जा सकती, अतः इस स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना परमावश्यक है। यह कार्य भी सरल नहीं है, क्योंकि इसके लिये योग्य शिक्षक, उपकरण, स्थान तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करना होगा। इस प्रकार यह कार्य अत्यन्त व्ययसाध्य है। इसके लिये पर्याप्त वित्तीय सहायता का प्रबन्ध करना होगा। तभी इस दिशा में सफलता मिल सकेगी। साथ ही इस सन्दर्भ में नागरिक तथा ग्रामीण आवश्यकताओं की ओर भी दृष्टि रखनी होगी और इसके लिए कृषि-उद्योग की एक ठोस आधारशिला स्थापित करनी होगी। इस दृष्टि से प्रत्येक दिशा में उत्साहवर्धक प्रगति की प्राप्ति हेतु सम्पूर्ण शिक्षा को नियोजित करने की आवश्यकता है।

उच्च शिक्षा स्तर पर विश्वविद्यालयों में व्याप्त अशान्तिमय वातावरण विचारणीय है, क्योंकि इसके परिणाम दूरगामी हैं तथा इसे समाप्त करने हेतु तत्काल प्रयत्न होने चाहिये। ऐसे कार्यों में नवयुवकों की शक्ति लगी रहने पर किसी भी दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर निर्माण कार्य असम्भव सा है। यदि इसके कारणों पर विचार करें तो इसमें उपकरणहीन, निम्नस्तरीय तथा विद्यार्थियों की अधिक संख्यावाले डिग्री कालेज ही कारणभूत हैं और ये शिक्षा के उच्च स्तर को यथावत् रखने में सहायक नहीं सिद्ध हो सकते। साथ ही इस स्तर पर शिक्षा का पाठ्यक्रम भी बहुत पुराना हो गया है और इसके बदलने की जो प्रक्रिया है, वह जटिल, यान्त्रिक एवं बहुत अधिक समय लेने वाली है। इसी के अन्तर्गत शिक्षा के भाषा माध्यम की भी समस्या है। क्षेत्रीय भाषाओं में विभिन्न विषयों के उच्चस्तरीय पाठ्य-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। अँगरेजी भाषा में आधुनिकतम ज्ञान को प्रसारित करने वाली पुस्तकें तो हैं, किन्तु समस्या यह है कि क्या माध्यम के रूप में इसे रखा जा सकता है। साथ ही उच्च-शिक्षा का समन्वय स्कूल स्तर की शिक्षा तथा समाज की आवश्यकताओं से नहीं स्थापित हो पाया है।

असन्तोष के इस वातावरण में तथा शिक्षा के दिशा-निर्धारण के प्रयत्नों के अविद्यमान होने से यह समीचीन ही है कि शिक्षक प्रशिक्षक संघ भी इन्हीं कमियों तथा दुर्बलताओं की ओर इंगित करे। पाठ्यक्रम के समयातीत होने पर भी इसके बदलने की प्रक्रिया की कठिनाइयों के अतिरिक्त शिक्षकों का इसके प्रति विरोध व्यक्त करना भी एक कारण है। साथ ही शिक्षक प्रशिक्षक भी अपने को समाज से अलग रखते हुए इस दिशा में एकाकी अनुभव करता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन सभी मुद्दों पर खुलकर विचार हो और आशान्वित होकर हम इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हों।

यह उचित ही है कि शिक्षकों की आर्थिक दशा में सुधार हो तथा उनकी सेवा-शर्तों को समयानुकूल बनाया जाय, किन्तु उसके साथ ही यह भी परमावश्यक है कि शिक्षकों का नैतिक स्तर अत्यन्त समुन्नत हो और वे सेवा-भावना तथा आत्म-समर्पण के साथ अपने कार्य को सम्पन्न करें।

डा० मित्र ने आगे कहा—हमें प्रसन्नता है कि शिक्षक प्रशिक्षक संघ का यह अधिवेशन प्रौढ़ शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने जा रहा है। प्रौढ़ शिक्षा वर्तमान समाज की महत्त्वपूर्ण समस्या है तथा शिक्षक प्रशिक्षक इस राष्ट्रीय प्रयत्न में अपना अमूल्य योगदान प्रयोग, अनुसन्धान एवं मूल्याङ्कन के रूप में दे सकते हैं और अप्रशिक्षित अध्यापकों तथा नवयुवकों को इस कार्यक्रम को सम्पन्न करन हेतु प्रशिक्षित कर सकते हैं। इस प्रकार

उनका योगदान इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ के इस चतुर्दिवसीय अधिवेशन में प्रौढ़ शिक्षा की मूलभूत समस्याओं पर विचार-विमर्श होगा और इसके निष्कर्ष कार्यक्रम के क्रियान्वयन को उचित दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होंगे।

अन्त में अधिवेशन की मन्त्री डा० कुमारी सरोजिनी वार्ष्णेय ने आगत प्रतिनिधियों, स्वागताध्यक्ष प्रो० शुक्ल, अध्यक्ष डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी, उद्घाटनकर्ता डा० मित्र एवं अन्य विद्वानों तथा श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद प्रदान किया।

डा० एस० के० मित्र द्वारा प्रदत्त मुख्य भाषण

दिनाङ्क २५-२-७९ को डा० मित्र का मुख्य भाषण भी हुआ, जिसमें आपने कहा :—

अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ को शिक्षा-क्षेत्र के विद्वानों का ध्यान शिक्षक प्रशिक्षण की ओर आकृष्ट करने में श्रेय प्राप्त है। इधर शासन ने प्रारम्भिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा को जो प्राथमिकता प्रदान की है, वह शिक्षा के क्षेत्र में प्रसन्नता का विषय है और इस सन्दर्भ में विचार करने के कारण इस अधिवेशन का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इन दोनों को महत्त्व प्रदान करने में शासन का उद्देश्य यह है कि इस देश का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा से लाभान्वित हो सके जो अभी तक नहीं सम्पन्न हो सका है। यह स्पष्ट ही है कि केवल संस्थाओं द्वारा इस कार्य को सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसे सम्पादित करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा शिक्षा-क्षेत्र के सभी प्रकार के अध्यापकों का सहयोग अपेक्षित है। हमारे देश के सम्पूर्ण अध्यापकों की संख्या लगभग तीस लाख है। यदि ये सभी प्रौढ़-शिक्षा के इस कार्यक्रम को पूर्ण करने का सङ्कल्प ले लें, तो प्रारम्भिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को निश्चित रूप से आगामी १० वर्षों में पूर्ण किया जा सकता है। अतः यह समीचीन ही है कि शिक्षक प्रशिक्षक संघ ने इस समस्या पर विचार करने का निश्चय किया है।

शिक्षक-प्रशिक्षण

शिक्षक प्रशिक्षण किस प्रकार से सम्पन्न हो, इस प्रश्न पर अनेक संस्थाओं, माध्यमों तथा विगत शिक्षा आयोग द्वारा विचार प्रस्तुत हुए हैं। फलस्वरूप इसे दिशा प्रदान करने हेतु कुछ वर्ष पूर्व एक राष्ट्रीय कौंसिल की स्थापना भी हुई और इसने अल्प समय में ही इस दिशा में अपना कार्य प्रारम्भ किया। इसका लक्ष्य था, इसमें सुधार लाना। अतः देश की अनेक संस्थाओं में वर्तमान पाठ्यक्रमों का विश्लेषण करते हुए इसने संशोधन प्रस्तावित किये और सम्बद्ध संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास इसे प्रेषित किया। यद्यपि यह कार्य समयापेक्षित है, फिर भी प्रस्तावित परिवर्तनों को लाने के लिये क्या कार्यक्रम अपनाये जाँय, इस प्रश्न पर ऐसे अधिवेशनों में विचार-विमर्श होना परमावश्यक है।

देश के स्वाधीनता संग्राम के साथ ही शिक्षा सुधारों की ओर भी राष्ट्रीय नेताओं की दृष्टि रही तथा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने बेसिक शिक्षा की जो प्रस्तावना की थी, उसमें भारतीय समाज को अपने स्वरूपानुसार प्रशिक्षित करने की भावना सन्निहित थी। इसके द्वारा शिक्षा को समाज के अत्यन्त सन्निकट लाने के प्रयास हुए और भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन ने इसे समीचीन रूप प्रतिष्ठित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों के अनुरूप शिक्षा में सुधार लाने की चेष्टाएँ भी हुईं; किन्तु यह खेद का विषय है कि वे पुष्पित तथा पल्लवित न हो सकीं तथा यह योजना स्थगित हो गयी। सम्प्रति राष्ट्रीय नेताओं की पुरा कल्पनाओं एवं आदर्शों के अनुरूप शिक्षा को नवीन दिशा प्रदान करने के प्रयत्न हो रहे हैं। अतः इस सन्दर्भ में अध्यापकों का क्या योगदान होगा, इस प्रश्न पर इस अधिवेशन में विचार होना न्यायसंगत है।

ग्रामीण समाज पर अध्यापकों का पर्याप्त प्रभाव है। इस कारणवश सरकार राष्ट्रीय कार्यक्रमों को पूर्ण करने में उनकी सहायता की अपेक्षा रखती है और मेरी स्पष्ट धारणा है कि प्रौढ़ शिक्षा जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रम में उनकी सहायता अवश्य प्राप्त होनी चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा तथा साक्षरता

विगत गाँधी जयन्ती (२ अक्टूबर, १९७८) से प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को प्रारम्भ किया गया है। इसमें शिक्षा पर विशेष बल प्रदान करते हुए साक्षरता को मात्र इसके अङ्ग के रूप में रखा गया है। ऐसा इसलिये किया गया है कि लिखना तथा पढ़ना शिक्षा के साधन मात्र हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा अनेक स्तरों पर मानव के व्यक्तित्व का विकास सम्पन्न हो। इसमें उसके मस्तिष्क, बुद्धि, शक्तियों, इच्छाओं तथा चरित्र का विकास भी सम्मिलित है। शिक्षकों को समाज में इस परमोद्देश्य की पूर्ति करनी है और उनका यही कार्य उन्हें अन्य लोगों से वैशिष्ट्य प्रदान करता है। इस प्रकार मानव विकास का शिक्षक से सीधा सम्बन्ध है और इसी कारणवश अतीत काल से ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा रही है। अतः यह स्पष्ट ही है कि हम शिक्षक इस उत्तरदायित्व से अपने को दूर नहीं रख सकते।

इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि वर्तमान सन्दर्भ में अध्यापकों के लिये इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन है। मैं मानता हूँ कि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियाँ सर्वथा इसके अनुकूल नहीं हैं, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम इस आदर्श का परित्याग करके अध्यापन-कार्य को सामान्य कार्यालयीय कार्य के समान मानने लगें। इसी दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को साक्षरताप्रधान की अपेक्षा शिक्षा-प्रधान रखा गया है और इस कार्यक्रम को हमें इसी भावना से अपनाना है।

प्रारम्भिक शिक्षा की सार्वभौमिकता के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ शिक्षा के साथ समन्वय स्थापित करने के लिये प्रारम्भिक शिक्षा में सार्वभौमिकता का रहना परमावश्यक है। यह इस प्रकार से सम्भव है कि प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में ६-१४ वर्ष तक के ऐसे बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा को भी सम्मिलित कर लिया जाय, जो सम्प्रति इससे वञ्चित हैं। इससे अशिक्षितों की संख्या में कमी आयेगी। किन्तु इस कार्य में भी ग्राम के प्रौढ़ों की सहायता प्राप्त करनी होगी और तभी इन दोनों में सार्वभौमिकता स्थापित हो सकेगी। अतः ग्रामों में इस प्रकार की समन्वित प्रारम्भिक शिक्षा के कार्यक्रम को प्रारम्भ करने हेतु प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को अपनाना पड़ेगा। ऐसी शिक्षा से समाज की अनेक अच्छाइयाँ वृद्धि को प्राप्त होंगी। यद्यपि यह एक कठिन कार्य है, किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि साक्षरता केवल इसका अङ्ग मात्र है।

प्रौढ़ शिक्षा हेतु प्रेरित करने की आवश्यकता

प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग इस कार्यक्रम के प्रति तभी आकृष्ट होंगे, जब उनमें यह आशा अंकुरित की जाय कि इससे उनमें जीवन के प्रति सन्तोष में अभिवृद्धि होगी, साथ ही यह अनुभूति हो कि इस शिक्षा द्वारा उनके व्यक्तित्व से सम्बद्ध शक्तियों में विकास हो रहा है। यदि ऐसी स्थिति नहीं प्रस्तुत की जा सकी तो इस कार्यक्रम का सफल होना कठिन होगा। यह हर्ष का विषय है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापक इस प्रकार को प्रेरणाओं से अभिज्ञ हैं; उदाहरणार्थ—स्वास्थ्य, सफाई, भोजन, रोजगार, आत्मिक विकास आदि के प्रति ग्रामीणों की विशेष रुचि होती है और प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में यदि इनका सन्निवेश हो तो इससे वे इसके प्रति आकृष्ट होंगे। इन सब पर विचार करते हुए इस मुद्दे पर भी सोचना आवश्यक हो जाता है कि प्रौढ़ शिक्षा की इन जिम्मेदारियों को लेने हेतु क्या अध्यापक प्रस्तुत हैं? मेरी स्पष्ट धारणा है कि अध्यापकों का बहुसंख्यक वर्ग इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिये उद्यत होगा तथा शिक्षक-प्रशिक्षण से सम्बद्ध अध्यापक इस दिशा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकेंगे।

शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम

देश के शिक्षक-प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम को स्पष्ट करते हुए डा० मित्र ने कहा कि विभिन्न संस्थाओं में स्तरानुसार कई प्रकार के पाठ्यक्रम सम्प्रति विद्यमान हैं, जिनमें विभिन्न विषय सन्निहित हैं। इस सन्दर्भ में मुख्य रूप से हमें इस पर बल देने की आवश्यकता है कि इसमें गहराई के साथ-साथ इसके विस्तार पर भी ध्यान रहे और प्रशिक्षण के विषय कार्यानुरूप हों। यह कार्यक्रम ऐसा हो, जिसमें दृष्टिकोण तथा मूल्यों के विकास पर भी ध्यान दिया गया हो। अतः इस दिशा में अभीष्ट सिद्धि हेतु इस कार्यक्रम के वातावरण में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम अभी तक मुख्य रूप से परम्परागत तथा परीक्षोन्मुख है और इसका कार्यान्वयन एक प्रकार से यान्त्रिक है। कुछ प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा इसमें सुधार लाने की दिशा में अच्छे प्रयत्न हो रहे हैं, किन्तु ये अपवाद-स्वरूप ही हैं। ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी दृष्टि रखना है कि इस कार्यक्रम के सुधार अथवा संशोधन में जल्दबाजी अथवा अतिशयता न हो तथा यह चयनात्मक रूप में विकसित हो। इस दिशा में आपने अनेक बिन्दुओं की ओर इङ्गित किया, जिसमें से मुख्य निम्नांकित थे :—

(१) सभी संस्थाओं में प्रशिक्षण कार्यक्रम में परिवर्तन लाने की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में स्थित किसी प्रशिक्षण कालेज में इसे प्रारम्भ करना।

(२) मानवीय तथा भौतिक दोनों प्रकार के स्रोतों से इस दिशा में सहायता लेना, उदाहरणार्थ—स्वास्थ्य, सिंचाई, बिजली, उद्योग, रेडियो, दूरदर्शन आदि।

(३) माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में सामाजिक कार्यों को मुख्य अङ्ग बनाना।

(४) इस कार्यक्रम में सुधार लाने वाले संस्थानों द्वारा कुल आदर्श प्राइमरी, पूर्व माध्यमिक तथा माध्यमिक स्कूलों का अपनाया जाना, तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम का भी इनके द्वारा क्रियान्वयन होना। साथ ही नियमित रूप से ये विश्वविद्यालय, कालेज तथा स्कूल के अध्यापकों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करेंगे।

(५) परीक्षा की वर्तमान प्रणाली के स्थान पर विभिन्न इकाइयों तथा समाज द्वारा इनका मूल्यांकन होना। उपाधि-पत्र इन्हें

तभी प्राप्त होंगे जब प्रशिक्षार्थी सभी इकाईओं में पूर्णता प्राप्त करेंगे।

(६) यहाँ पर आकर्षक तथा मूल्योन्मुख कार्यक्रम सम्पन्न किये जाँय और इनमें स्थानीय निकायों के लोग, सामाजिक कार्यकर्ता एवं अध्यापक सक्रिय रूप से भाग लें।

आज का मुख्य सामाजिक प्रश्न गुणवत्ता का है और मुख्य रूप से इसमें मानवीय तत्त्व ही आते हैं। अतः अब समाज तथा अध्यापक साथ-साथ सामाजिक उत्थान के कार्यों को सम्पन्न करेंगे और इस हेतु अपने को समर्पित कर देंगे, तभी शिक्षा के सुधारों का प्रतिफल लाभदायक रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होगा।

प्रौढ़ शिक्षा में शिक्षक व्यक्तिगत तथा सामूहिक, इन दोनों रूपों से अपना योगदान दे सकता है। हमारी दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा मात्र कार्यक्रम न होकर एक प्रकार का आन्दोलन है। किसी भी आन्दोलन में लोक का सम्मिलित होना परमावश्यक है। किन्तु इस देश की नौकरशाही इस विशेष दृष्टिकोण को नहीं समझ पाती और इस कारणवश इस दिशा में प्रगति मन्द हो जाती है। हमें इस पर विशेष ध्यान देना होगा, क्योंकि प्रौढ़ शिक्षा जागरण तथा क्रिया इन दोनों का सम्मिलित स्वरूप है और इस दृष्टि से इस कार्यक्रम को पूर्ण करने में स्वयंसेवी संस्थाएँ अधिक अच्छा योगदान कर सकती हैं।

शिक्षक प्रशिक्षकों को राष्ट्रीय धारा के मुख्य विकास में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को पूर्ण करने का ऐतिहासिक सुयोग प्राप्त हुआ है। इसे पूर्ण करने हेतु अपनी परम्परागत दृष्टियों का परित्याग करके वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन लाने पर विचार करने का अब समय प्रस्तुत हो गया है। यह कार्य अध्यापकों के क्रान्तिकारी उत्साह तथा भावुकता से ही पूर्ण हो सकेगा। अब शिक्षक प्रशिक्षक संघ को इस चुनौती को स्वीकार करते हुए अपने उद्देश्यों की पूर्ति करनी हैं।

प्रौढ़ शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा की सार्वभौमिकता का एक अङ्ग है और पूर्ण शिक्षा से यह जुड़ी हुई है। शिक्षण को आनन्दानुभूति और स्वयं को सुधारना—ये दोनों इसके प्रधानभूत उद्देश्य होने चाहिये। इस प्रकार सार्वजनिक शिक्षा हेतु समाज में समर्पित जीवनवाले व्यक्तियों की आवश्यकता है।

डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी द्वारा प्रदत्त अध्यक्षीय भाषण

अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० तिवारी ने वाराणसी नगरी को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्र एवं विभिन्न संस्कृतियों का सङ्गमस्थल बताते हुए कहा कि यह गौरव का विषय है कि यह अधिवेशन प्राच्य विद्या के अध्ययन में सम्मान प्राप्त अक्षुण्ण परम्परा को सञ्चारित रखने वाले संस्कृत विश्वविद्यालय ऐसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र में सम्पन्न हो रहा है। एतदर्थ हम कुलपति आचार्य बदरीनाथ शुक्ल के अत्यन्त आभारी हैं। श्री शुक्ल अपनी विद्या एवं प्रकाण्ड प्राचीन पाण्डित्य के कारण निखिल देश में विश्रुत हैं और उन्हीं के औदार्य तथा सहानुभूति से यह अधिवेशन यहाँ सम्पन्न हो रहा है। इसी सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक डा० एस० के० मित्र और शिक्षा मन्त्रालय के संयुक्त सचिव श्री अनिल बोरडिया तथा अन्य आगत विद्वानों के प्रति भी उन्होंने कृतज्ञता व्यक्त की, जिनके कारण यह आयोजन सफल हो सका है।

शिक्षक प्रशिक्षक संघ के अधिवेशनों पर प्रकाश डालते हुए डा० तिवारी ने कहा कि इसमें प्रत्येक वर्ष विचार-विमर्श हेतु जिन विषयों का चयन किया जाता है, वे उस वर्ष की ज्वलन्त समस्या रहते हैं। गत वर्ष अमृतसर के अधिवेशन में हमने 'सम्पूर्ण क्रान्ति एवं शिक्षक-प्रशिक्षण' विषय पर विचार किया था और इसी क्रम में इस वर्ष 'प्रौढ़ शिक्षा एवं शिक्षक-प्रशिक्षण' विषय पर विचार करने जा रहे हैं। प्रौढ़ शिक्षा को राष्ट्रीय कार्यक्रम घोषित किया गया है। इसके पूर्व शिक्षाविषयक कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं था। जनता सरकार ने केवल इसे राष्ट्रीय कार्यक्रम ही नहीं घोषित किया है, अपितु इसके बारे में नीतिविषयक घोषणा भी की है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा भी उच्च शिक्षा पर राष्ट्रीय नीतिविषयक ढाँचा प्रसारित हुआ है और शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति की घोषणा होने वाली है। सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय यह है कि प्रधान मन्त्री ने अनेक बार यह दुहराया है कि शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपेक्षित हैं और ६ मास के अन्तर्गत ही वे सम्पन्न होंगे। ये सब तथ्य यह इंगित करते हैं कि देश का सर्वोच्च व्यक्ति भी परिवर्तन हेतु इच्छुक है और अब शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानकर इस पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विश्व के आँकड़ों को प्रस्तुत करते हुए डा० तिवारी ने कहा कि भारत के अशिक्षितों की स्थिति शिक्षा की दृष्टि से वह नहीं है, जो अफ्रीका के अशिक्षितों की है। इस स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि इस देश में हमें जिन प्रौढ़ों को शिक्षित करना है, उनकी भाषा तथा संस्कृति सशक्त है, अतः इसी दृष्टि से हमें प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम पर विचार करना चाहिये। समस्या के इस पहलू को महत्त्व प्रदान करने पर इसके सन्दर्भ में इसके लिये उत्तरदायी अधिकारियों को नीतिविषयक कार्यक्रम में परिवर्तन करने होंगे। इसी सन्दर्भ में आपने आगे बताया कि प्रौढ़ शिक्षा

कार्यक्रम के अभिलेखों के प्रकाशन के पश्चात् उन पर पुनर्विचार प्रारम्भ हो गये हैं और हमारे समक्ष 'मध्यावधि योजना' (१९७८-८३) तथा 'स्त्रियों के लिये प्रौढ़ शिक्षा' आदि की योजनाएँ प्रस्तुत हैं, जिन्हें हमें कार्यान्वित करना है।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा योजना में विश्वविद्यालय के छात्रों को आलोच्य वर्ग के रूप में रखा गया है, किन्तु मेरी दृष्टि से इसकी सफलता विश्वविद्यालय के छात्रों की सहायता पर ही निर्भर करती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि विश्वविद्यालय प्रशासन इस ओर उन्हें प्रोत्साहित करे।

शिक्षा के सन्दर्भ में विद्यमान विभिन्न दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हुए आपने १० + २ + ३ योजना के सम्बन्ध में कहा कि इसे कार्यान्वित करने हेतु आर्थिक साधन कहाँ से उपलब्ध होंगे? स्नातक स्तर पर प्रचलित उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में आपने अमेरिका तथा रूस में विद्यमान इसके पाठ्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए कहा कि + ३ योजना का स्वीकरण एवं कार्यान्वयन भारतीय परिस्थितियों में विचारणीय है।

प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न आँकड़ों को प्रस्तुत करते हुए आपने कहा कि ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में विभिन्न देशों में इसके विभिन्न स्वरूप हैं, साथ ही प्रौढ़ता का निर्धारण भी उपर्युक्त परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही होता है। भारतीय दृष्टि से प्रौढ़ वह है जो जीवन के उत्तरदायित्व को सम्भालने में समर्थ है। यह दृष्टि पर्याप्त समीचीन प्रतीत होती है। साक्षरता की अर्थव्यञ्जना पर भी विचार आवश्यक है। भारतीय जन-गणना द्वारा 'साक्षर' उसे माना गया है, जो स्पष्ट अवधानपूर्वक लिखने पढ़ने में समर्थ हो। कुछ विकसित देशों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे लोग आते हैं, जो प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

यदि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जन आन्दोलन का स्वरूप प्रदान करना है, तो इसके लिये यह परमावश्यक है कि इसके अन्तर्गत लिए जानेवाले ऐसे लोगों को जो शिक्षा से वञ्चित रह गये हों, उन्हें इस तथ्य का भान हो, इस कार्यक्रम में नेतृत्व करने वाले व्यक्ति समाज में आदृत हों, साथ ही इसका प्रबन्ध स्वयंसेवी संस्थाओं के हाथ में हो। इसके बिना इस योजना के मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति असम्भव है। इसकी नीतिविषयक घोषणा में स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयत्नों की ओर इंगित तो किया गया है, किन्तु उनको विशेष महत्त्व नहीं प्रदान किया गया है। मेरी दृष्टि से महात्मा गाँधी के प्रौढ़ शिक्षा विषयक विचार इस नीति द्वारा नहीं प्रतिपादित होते। विकेन्द्रीकरण के सन्दर्भ में भी इसमें विशेष बल नहीं प्रदान किया गया दीखता। अतः यदि जिला, ब्लाक या ग्राम स्तर के स्वयंसेवी संगठनों की दृष्टि इस समस्या की ओर नहीं गयी, तो इसे जन-आन्दोलन का स्वरूप कैसे प्रदान किया जा सकेगा?

प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम को कार्यान्वित करने वाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यदि हम विचार करें, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसका शिक्षक-प्रशिक्षण से गहरा सम्बन्ध है। एक ओर तो देश में मात्र ६०% साक्षरता है, तो दूसरी ओर प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या देश में अधिक है और उन्हें अध्यापन-कार्य नहीं मिल पाता। इससे यह पता चलता है कि कहीं पर गड़बड़ी है। यद्यपि कोठारी आयोग ने इस ओर इंगित किया है कि विश्वविद्यालय जीवन की मुख्य धारा से शिक्षक-प्रशिक्षण अलग सा हो गया है और स्कूल तथा समाज से भी वह अलग होता जा रहा है। इस त्रुटि को दूर करने के लिये अभी तक कुछ किया नहीं गया है। इस दृष्टि से हमें शिक्षक-प्रशिक्षण पर विचार करना है, क्योंकि यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्कूलों तथा समाज की आवश्यकताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत मेरे विचार से प्रौढ़ शिक्षा को भी लाना होगा, तथा इसमें प्रशिक्षण में रत अभ्यर्थी छात्रों को लगाना होगा। इस दृष्टि से इसके पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार आवश्यक हो गया है। इन सब दृष्टियों से इस अधिवेशन में विचार होना आवश्यक है।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की चुनौती को स्वीकार करते हुए हमें इसे शासन परिचालित कार्यक्रम नहीं, अपितु जन-आन्दोलन का स्वरूप प्रदान करना है, जिससे यह अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सके।

इसके पश्चात् यह अधिवेशन २६ से २८ फरवरी, १९७९ तक चला और इसमें शिक्षक-प्रशिक्षण तथा प्रौढ़ शिक्षा आदि से सम्बद्ध विषयों पर विचार विमर्श हुए।

४ मार्च, १९७९

(घ) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो० सतीशचन्द्र का विश्वविद्यालय परिवार को उद्‌बोधन

दिनांक ४.३.७९ को वाराणसी के बाबतपुर हवाई अड्डे पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो० सतीशचन्द्र का स्वागत विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, पुस्तकाध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी, ज्योतिष विभाग के प्राध्यापक डा० कृष्णचन्द्र द्विवेदी एवं विज्ञान विभाग के अध्यापक श्री विश्वनाथ शुक्ल ने किया।
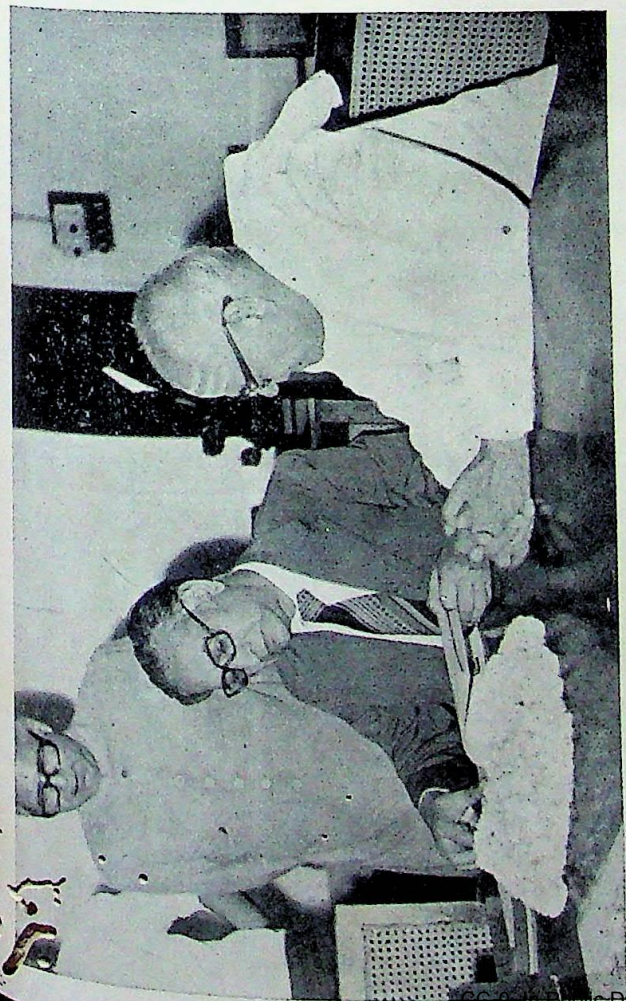
प्रो० सतीशचन्द्र, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय 'सरस्वती भवन' में
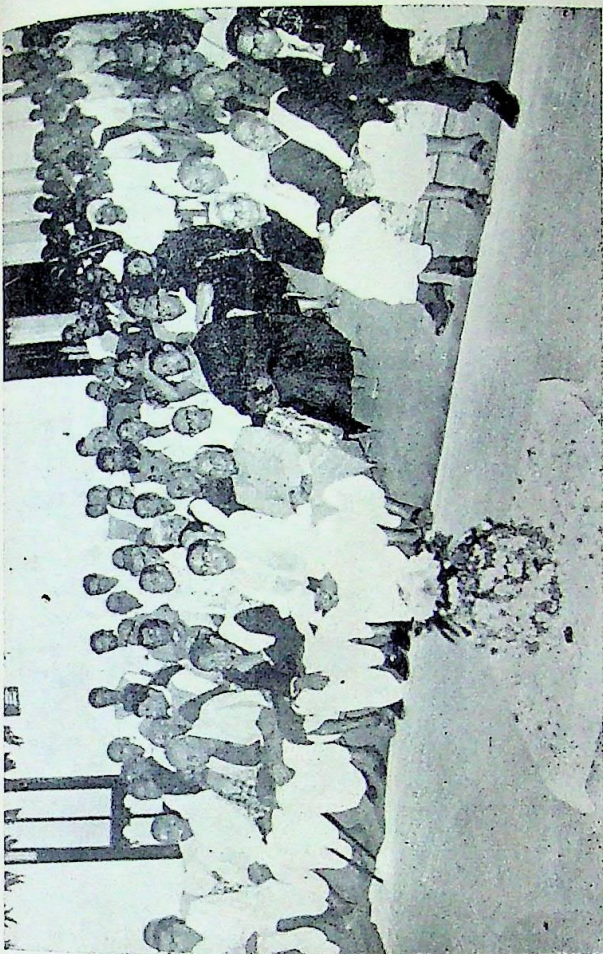
प्रो० सतीशचन्द्र के आगमन के अवसर पर मुख्य भवन में उपस्थित विद्वत्समूह
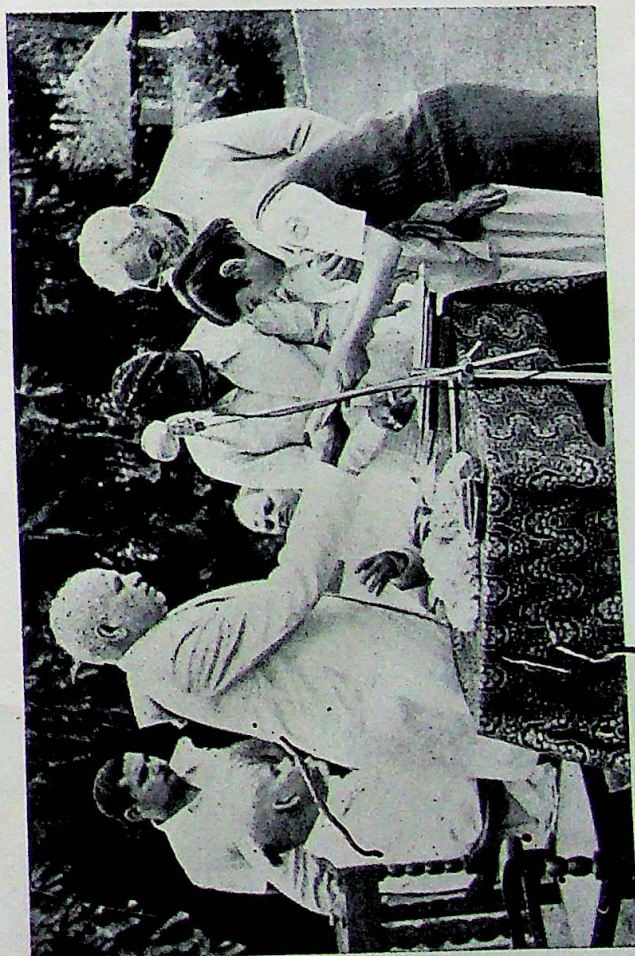
सूर्य नमस्कार और योगासन प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण करते हुए कुलपति श्री शुक्ल

सितारवादक श्री शिवनाथ मिश्र, जिन्होंने पश्चिम जर्मनी में रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया.

रामार्चा करते हुए कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल एवं श्रीमती शुक्ल
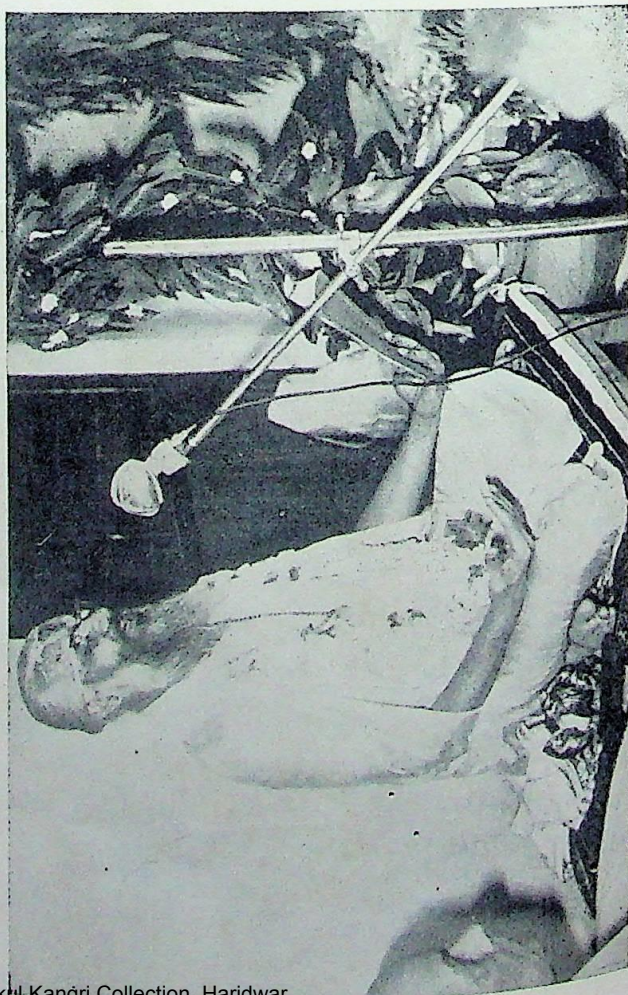
रामार्चा में रामपंचायतन की झाँकी

रामार्चा के अवसर पर प्रवचन करते हुए रामवल्लभा कुंज, जानकीघाट, अयोध्या के महन्त श्री हरिनामदास जी वेदान्ती
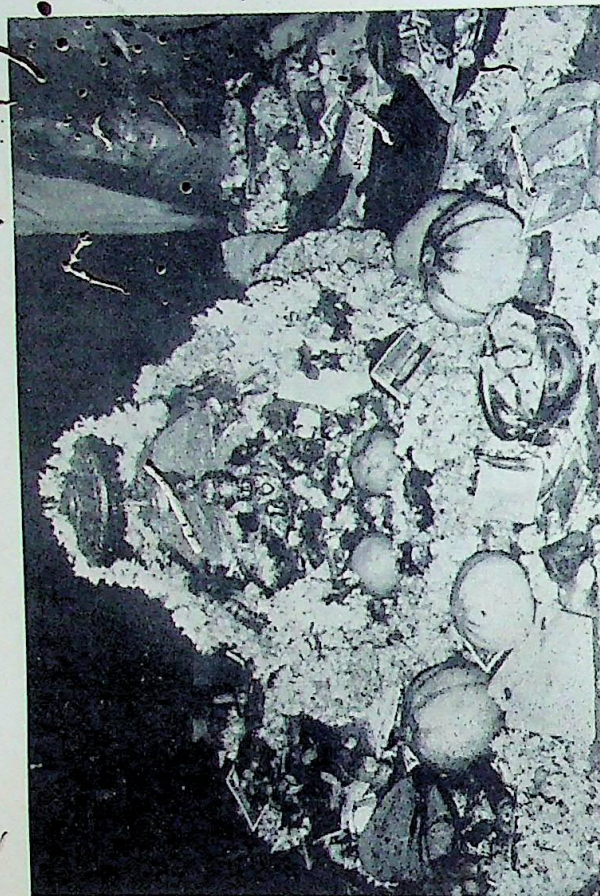
देववाणी परिषद्, दिल्ली के द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए कुलपति श्री बदरीनाथ शुक्ल

विश्वविद्यालय प्रांगण में आप ३ बजे अपराह्न में पधारे। सर्वप्रथम आपने विश्वविद्यालय के संग्रहालय का अवलोकन किया और उसके कार्यों की प्रशंसा करते हुए कई सुझाव दिये और उसके विकास के लिए कामना प्रकट की। तत्पश्चात् आप सरस्वतीभवन पुस्तकालय में गये और वहाँ ११वीं शताब्दी की 'भागवत' की दुर्लभ पाण्डुलिपि, संवत् १३६७ में लिखा गया 'श्रुतिविकास' नामक ऋग्वेद का भाष्य, स्वर्णाक्षरों में लिखित एवं चित्रित 'पञ्चरत्नी गीता' की पाण्डुलिपि, 'रासपञ्चाध्यायी' एवं योगशास्त्र के ग्रन्थ की चित्रित पाण्डुलिपियाँ, बर्मा से प्राप्त लाक्षा पर विशिष्ट स्याही से लिखी गयी 'कम्मवाचा' की पाण्डुलिपि, १६२३ ई० में लन्दन से प्रकाशित शेक्सपियर के ग्रन्थों का फोलियो संस्करण, १६५० ई० में लन्दन से ही प्रकाशित फ्रेंच इंगलिश डिक्शनरी आदि दुर्लभ ग्रन्थों का आपने अवलोकन किया और पुस्तकालय द्वारा इधर प्रकाशित हो रहे हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची के मुद्रित विभिन्न खण्डों को देखकर अत्यन्त सन्तोष का अनुभव किया। आपने ग्रन्थों तथा पाण्डुलिपियों के रख-रखाव के सन्दर्भ में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों की सराहना की और आश्वासन दिया कि इस दिशा में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बराबर सहायता सुलभ होती रहेगी।

इसके अनन्तर विश्वविद्यालय के मुख्यभवन में आयोजित विश्वविद्यालय परिवार की गोष्ठी में आपने पदार्पण किया। वहाँ आपके पहुँचने पर चारों वेदों की शाखाओं एवं पालि-प्राकृत परम्परा के मंगलाचरण तथा विश्वविद्यालय के कुलगीत गान के पश्चात् भारतीय परम्परानुसार विशिष्ट अतिथि के रूप में स्वागत किया गया। विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राचार्य वेद-वेदाङ्ग संकायाध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने चन्दन और नारिकेल प्रदान द्वारा स्वागत करते हुए अध्यापकों की ओर से माल्यार्पण किया। अध्यापक संघ के अध्यक्ष डा० श्रीराम पाण्डेय, कर्मचारी-संघ के अध्यक्ष श्री बैरिस्टर तिवारी, छात्रसंघ के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ पाण्डेय तथा संस्कृताध्यापक संघ के अध्यक्ष श्री नरहरि विष्णु बैजापुरकर ने आपको ससम्मान माल्यार्पण किया।

विश्वविद्यालय में प्रो० सतीशचन्द्र के शुभागमन पर प्रसन्नता तथा कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने कहा—"आज अपने विश्वविद्यालय के प्राङ्गण में प्रो० सतीशचन्द्र का स्वागत करते हुए हमें परम हर्ष है, क्योंकि आपके आगमन से विश्वविद्यालय का कण-कण आलोकित है। इस अवसर पर हमें आपके पूज्य पिता सर सीताराम के व्यापक वैदुष्य, पौरुष एवं अदम्य साहस का अनायास ही स्मरण हो रहा है, क्योंकि उन्हीं के कारण संस्कृत के परम्परागत पठन-पाठन की केन्द्रभूत संस्कृत पाठशालाएँ एवं संस्कृत कालेज की रक्षा हो सकी थी। आप उन्हींके सुपुत्र हैं और इस प्रकार आपके व्यक्तित्व में परिवार का संस्कार उजागर है। संस्कृत जगत् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के रूप में आपको पाकर कृतकृत्य है।"

कुलपति ने प्रो० सतीशचन्द्र के संस्कृत प्रेम और संस्कृत ज्ञान की चर्चा करते हुए सभा को सूचित किया कि बी० ए० में इन्होंने एक विषय संस्कृत ले रखा था और इनका संस्कृत बोध पर्याप्त पुष्ट है, जिसे इन्होंने मङ्गलाचरण के कार्यक्रम के प्रस्तुत होने पर संस्कृत माध्यम से मुझसे यह पूछकर कि पौराणिक तथा सांगीतिक मंगलाचरण में क्या अन्तर है, प्रमाणित किया है। संस्कृत माध्यम से प्रस्तुत किया गया उनका यह प्रश्न ही उनकी संस्कृत निष्ठा को प्रकट करने में उल्लेखनीय साक्ष्य है।

कुलपति ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त विभिन्न अनुदानों के सन्दर्भ में कहा कि इस विश्वविद्यालय को अनुदानों की स्वीकृति कुछ विलम्ब से प्राप्त हुई है, फिर भी इस दिशा में बड़ी तत्परता से हम लोगों ने यथाशक्ति उनके विनियोग के सन्दर्भ में कार्य किया है। अध्यापकों की विभिन्न श्रेणियों के प्राप्त पदों पर अधिकतर नियुक्तियाँ की जा चुकी हैं और ग्रीक तथा प्राचीन फारसी आदि विषयों के जो कुछ पद अभी रिक्त हैं, उनकी रिक्तता का कारण विश्वविद्यालय की असावधानी नहीं है, अपितु इन विषयों में देश में विद्वानों की कमी है, फिर भी उनकी खोज की जा रही है और आशा है कि इन पदों पर भी शीघ्र नियुक्तियाँ हो जायँगी। हमने प्रो० सतीशचन्द्र से इन विषयों के विद्वानों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से जानकारी प्राप्त की है और उन्होंने इस कार्य में भी हमारी सहायता की है।

कुलपति ने बताया कि हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियों के पाँच भाग मुद्रितप्राय हैं और शेष पाँच भागों का मुद्रण कार्य भी प्रगति पर है। दुर्लभ एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य को भी विश्वविद्यालय बड़ी तत्परता और तेजी से सम्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है। इसकी स्वीकृति विलम्ब से प्राप्त होने के कारण इसमें जितनी शीघ्रता वाञ्छनीय थी, उतनी हम नहीं कर कर पाये हैं। पर हम यथासम्भव शीघ्र इस कार्य को भी पूर्ण करने में लगे हैं।

परम्परागत संस्कृत शिक्षा में संलग्न पाठशालाओं के सम्बन्ध में कुलपति श्री शुक्ल ने कहा कि यह बहुत ही दुःख का विषय है कि अभी तक हमारे प्रथम श्रेणी के संस्कृत महाविद्यालयों के अध्यापक वर्ग का डिग्री कालेज का वेतनमान नहीं प्राप्त हो सका है। भारतीय शिक्षा के इतिहास की दीपशिखा को निरन्तर

प्रज्वलित रखने वाली ये पाठशालाएँ आधुनिक प्रजातन्त्र के युग में सम्मानता के व्यवहार से वंचित रखी जाँय, यह कथमपि समीचीन नहीं माना जा सकता। यदि यह कहा जाय कि समस्त पाठशालाओं को एक साथ डिग्री कालेज का वेतनमान देने में आर्थिक कठिनाई का० प्रश्न उपस्थित होता है, तो इसके सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि इस कार्य को एक साथ न कर क्रमशः किया जाय। हम संस्कृत के लोग विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या शासन के समक्ष कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न करना चाहते, पर बहुत दिनों तक अपनी उपेक्षा को मूक होकर देखते रहना भी हमें सह्य नहीं प्रतीत होता। हमने प्रो० साहब को सीधे एक पत्र लिखकर अनुरोध किया है कि इस कार्य को तत्काल हाथ में लिया जाय और इसे क्रमशः पूरा किया जाय। हमने अपने पत्र में प्रदेश के प्राचीन, प्रतिष्ठित एवं साधन-सम्पन्न छह संस्कृत महाविद्यालयों को प्राथमिकता देने का अनुरोध किया है। हमारा विश्वास है कि प्रो० सतीशचन्द्र इस यात्रा से लौटने के बाद शीघ्र की इस विषय पर ध्यान देंगे।

कुलपति ने कहा कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परम्परागत ज्ञान को आलोकित करने के लिये यह परमावश्यक है कि परम्परागत संस्कृत शिक्षा में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का समीचीन समावेश किया जाय। इसके लिए पाठशालाओं में विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास आदि विषयों के अध्यापन का समीचीन प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए वहाँ पर अध्यापक पदों के सर्जन की आवश्यकता है और यह कार्य आयोग की सहायता से ही सम्भव हो सकता है।

विश्वविद्यालय की अन्य आवश्यकताओं की ओर इंगित करते हुए श्री शुक्ल ने कहा कि यहाँ पर एक प्रेक्षागृह के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता है, जहाँ पर गीतगोविन्द आदि का संगीत-नाट्य आदि पद्धतियों से प्रस्तुतीकरण सम्पन्न किया जा सके। साथ ही संस्कृत के नाटकों को भरत की नाट्य परम्परा के अनुसार श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके। विश्वविद्यालय ने अपनी स्थापना के प्रारम्भकाल में ही अपने सीमित साधनों द्वारा एक रङ्गमञ्च की स्थापना की थी, किन्तु समाज में संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान को प्रतिष्ठित करने हेतु यह आवश्यक है कि इसके लिये एक प्रेक्षागृह यहाँ निर्मित हो। प्रोफेसर साहब की विद्या-क्षेत्र के समान ही सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्याप्त रुचि है। अतः हमें पूरी आशा है कि प्रेक्षागृह के निर्माण की हमारी आकांक्षा आपकी कृपा से शीघ्र पूर्ण होगी।

अभी आपने संग्रहालय तथा पुस्तकालय का अवलोकन किया है। हमारे विश्वविख्यात पुस्तकालय में अन्ताराष्ट्रीय लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं देश-विदेश के अनुसन्धाता अध्ययन हेतु आते हैं। इस सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि पुस्तकालय को अधिक समय के लिये खोला जाय। एतदर्थ हमें आयोग से कुछ नये पद प्राप्त हों, साथ ही पुस्तकालय के कर्मचारियों को आयोग द्वारा स्वीकृत वेतनमान प्राप्त हो। यह भी आवश्यक है कि पुस्तकालय के पास ही बाहरी पाठकों के ठहरने के लिये एक अतिथि भवन भी हो। इस आवश्यकता की ओर भी हम प्रोफेसर साहब का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

हमारे पुस्तकालय में सहस्रों बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। उनकी सुरक्षा के लिए यह परमावश्यक है कि पुस्तकालय को वातानुकूलित किया जाय। इसके लिए भी हमें आप की सहायता तत्काल अपेक्षित है।

परम्परागत संस्कृत शिक्षा भारतीय संस्कृति का प्राण है और इस सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि आयोग के सदस्यों में एक व्यक्ति परम्परागत संस्कृत शिक्षा में निष्णात पण्डित हो तथा आयोग द्वारा विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुदान की स्वीकृति हेतु भेजी जाने वाली समिति में भी आवश्यकतानुसार परम्परागत पाण्डित्य का एक सदस्य हो। हम इस ओर आपका ध्यान इसलिए आकर्षित करने में किसी भी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं कर रहे हैं, क्योंकि आप इसके महत्त्व एवं आवश्यकता से सुपरिचित हैं।

संस्कृत शिक्षा को अनुप्राणित करने में यह विश्वविद्यालय अन्यतम है और इसी दृष्टि से आयोग को इस विश्वविद्यालय के शिक्षणेतर कर्मचारियों के वेतनमान आदि के संशोधन में भी पर्याप्त सहायता करनी चाहिए।

वाराणसी विद्वत्परिषद् तथा विश्वविद्यालय के अध्यापकों की ओर से सम्मानित प्राध्यापक प० निरीक्षणपति मिश्र ने अभिनन्दन-पत्र और डा० श्रीराम पाण्डेय, आचार्य एवं अध्यक्ष, न्याय-वैशेषिक विभाग ने प्रशंसा पत्र समर्पित किया।

कुलपति के अनुरोध पर प्रो० सतीशचन्द्र ने इधर विश्वविद्यालय से प्रकाशित नवीन प्रकाशनों का विमोचन किया।

प्रो० सतीशचन्द्र ने अपने भाषण में कहा कि यहाँ आकर मैं अत्यन्त पुलकित तथा आत्मविभोर हूँ। परम्परागत पाण्डित्य के क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय की ख्याति पूरे विश्व में है और इसकी तुलना अन्य किसी संस्था से नहीं की जा सकती। यद्यपि संस्कृत मेरे अध्ययन का विषय नहीं है, तथापि संस्कृत के प्रति प्रेम और निष्ठा मुझे पूज्य पिताजी से विरासत के रूप में प्राप्त हुई है और इतिहास का अध्येता होने से मेरा यह निश्चित मत है कि संस्कृत

भाषा ही भारतवर्ष की सम्पूर्ण सांस्कृतिक धरोहर की आधार है और उसके 'अथ' से अब तक के समग्र स्वरूप को स्पष्ट करने में सक्षम है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन एवं विकास के प्रश्न पर अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न क्रमों तथा स्वरूपों में कार्य सम्पन्न हो रहे हैं, जो इस देश तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु पूरे विश्व भर में उनका फैलाव है। विदेश के अनेक विद्वान् संस्कृत वाङ्मय की विभिन्न शाखाओं पर अपने-अपने दृष्टिकोण से कार्य कर रहे हैं।

प्रो० सतीशचन्द्र ने कहा कि वर्तमान युग में तुलनात्मक अध्ययन का प्रत्येक क्षेत्र में प्रचार-प्रसार है। इस दृष्टि से हमें भी संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन की ओर अपने को प्रवृत्त करना है। यदि हम ऐसा न करेंगे तो सम्भव है कि इस दिशा में हम पीछे हो जायँ, जो संस्कृत की मूलभूमि भारत के लिए अच्छी बात न होगी। यह विश्वविद्यालय संस्कृत की प्राचीन पद्धति को सुरक्षित रखने में अग्रणी है, किन्तु सुरक्षा के साथ-साथ इसके अध्ययन में हमें नये जीवन का संचार करना भी आवश्यक है। इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में संस्कृत के साथ-साथ ग्रीक, प्राचीन फारसी, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि भाषाओं के अध्ययन पर भी बल देना चाहिए। इन सभी को साथ लेकर चलने से ही हमारा अध्ययन पूर्ण हो सकेगा। पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास को शृङ्खलाएँ हैं, अतः इनके सुचारु अध्ययन के लिए बीच की इन कड़ियों की रक्षा करना आवश्यक है। प्राचीन अध्ययन को वैज्ञानिक तथा साम्प्रतिक बनाने हेतु अर्वाचीन वैज्ञानिक पद्धति का सम्बल प्राप्त करना परमावश्यक है। हमारी यह कामना है कि प्राचीन वैदुष्य से मण्डित हमारे परम्परागत विद्वान् आधुनिक दृष्टि से भी विद्या के क्षेत्र में आगे रहें; केवल इसी दृष्टि से अर्वाचीन पद्धति की ओर भी मैं इंगित कर रहा हूँ। इसके लिए हमें कुछ विशेष व्यवस्था भी करनी होगी और यह कार्य शिक्षा विभाग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से ही सम्भव होगा।

संस्कृत शिक्षा एवं संस्कृत के विकास हेतु केन्द्रीय शिक्षा विभाग द्वारा भी एक स्वतन्त्र योजना कार्यान्वित हो रही है, अतः इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध समस्याओं पर विचार करने और उनके समाधानार्थ अपेक्षित सहायता करने के विचार के समय यह प्रश्न सामने आता है कि यह केन्द्रीय शिक्षा विभाग का क्षेत्र है अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का? मेरी दृष्टि से संस्कृत भाषा तथा परम्परागत विद्या के संरक्षण तथा परिवर्द्धन हेतु दोनों को सम्मिलित प्रयास करना चाहिए।

कुलपति जी ने संस्कृत महाविद्यालयों को डिग्री कालेज का स्तर प्रदान करने का जो प्रस्ताव रखा है और आर्थिक कठिनाइयों में उनके लिए जिस क्रम का प्रतिपादन किया है, वह अत्यन्त समीचीन ज्ञात होता है। मेरे विचार से इस कार्य में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यथासम्भव अवश्य सहायता करेगा।

मुझे भी ज्ञात है कि इस विश्वविद्यालय को कुछ विलम्ब से धनराशि की स्वीकृति मिली है, अतः मैं समझता हूँ कि विकास योजना को कार्यान्वित करने के सन्दर्भ में ३१ मार्च, १९७९ की तिथि कोई लक्ष्मण रेखा न होगी। कुलपति जी ने इस संस्था के विकास के लिये जो अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं, उनके सम्बन्ध में आश्वासन देने में मुझे प्रसन्नता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उन पर अवश्य विचार करेगा और यथासम्भव उन प्रस्तावों को पूर्ण करने की भी चेष्टा करेगा।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की मूलभूत संस्था संस्कृत कालेज की विद्या के क्षेत्र में दीर्घकालीन अक्षुण्ण परम्परा रही है। उसके भवन, भूमि एवं विद्वान् सभी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, जो विरासत के रूप में इस विश्वविद्यालय को प्राप्त है। यह विश्वविद्यालय उस पूरी विरासत को बड़ी सावधानी से सँजोये है, इसे देखकर मुझे प्रसन्नता है।

इस संस्था के द्वारा संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन का जो कार्य सम्पादित हो रहा है, उसे तथा यहाँ के अन्य सम्पूर्ण वातावरण को देखकर मैं अत्यन्त प्रफुल्लित एवं प्रसन्न हूँ। यह संस्था अपने विकास मार्ग पर सर्वदा अग्रसर होती रहे, यह मेरी कामना है।

अन्त में कुलपति ने प्रो० सतीशचन्द्र के प्रति कृतज्ञता एवं धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा कि २४ मार्च, १९७९ को हमने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, महामना पं० मदनमोहन मालवीय तथा डा० सम्पूर्णानन्द के तैल चित्रों के अनावरण हेतु विश्वविद्यालय में एक आयोजन रखा था और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रो० सतीशचन्द्र जी से अभ्यर्थना की थी और आपने इसे स्वीकार भी किया था। यह कार्य हमारे प्रतिकुलाधिपति माननीय डा० विभूतिनारायण सिंह की अध्यक्षता में सम्पन्न होने वाला था, किन्तु अचानक कुछ आवश्यक कार्य के उपस्थित होने से आप इस समारोह में न आ सके। इस आयोजन में आपके न आ सकने से जो म्लानता थी, वह आज विश्वविद्यालय में आपके पधारने तथा संस्कृत विद्या के विकास हेतु सहायता रूपी सम्बल की ओर किये गये आपके इंगित से दूर हो गयी। आपके इस अनुग्रह के लिये विश्वविद्यालय परिवार हृदय से आपका अत्यन्त कृतज्ञ है और विश्वविद्यालय के छात्रों, अध्यापकों, अधिकारियों तथा कर्मचारियों

की ओर से आपको धन्यवाद प्रदान करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आपके इस शुभागमन के अवसर पर अन्य संस्थाओं के जिन विद्वानों ने इस समारोह में सम्मिलित होकर हमारा उत्साह वर्द्धन किया है, उनके प्रति भी हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इसके पश्चात् कुलपति ने राष्ट्रगीत के अनन्तर इस समारोह की समाप्ति की घोषणा की।

विश्वविद्यालय की ओर से विशिष्ट अतिथि प्रो० सतीशचन्द्र के सम्मान में कुलपति-निवास पर एक प्रतिगोष्ठी भी आयोजित की गयी थी, जिसमें काशी के सम्मानित पत्रकार, अन्य संस्थाओं के आमन्त्रित विद्वान्, विश्वविद्यालय के समस्त अध्यापक, अधिकारी, छात्रसंघ तथा कर्मचारीसंघ के पदाधिकारियों ने भाग लिया।

६-८ मार्च, १९७९

(ङ) योगासन में पुरस्कृत विजेताओं का स्वागत

विगत ६-८ मार्च को उत्तर प्रदेशीय स्तर पर संस्कृत विश्वविद्यालय में सूर्य-नमस्कार और योगासन प्रतियोगिता आयोजित की गयी थी।

योग शिक्षालय के कनिष्ठ वर्ग के प्रतियोगियों का प्रथम पुरस्कार दो सौ रुपये श्री मलयदत्त को तथा तृतीय पुरस्कार ५०) का श्री गणेश सोनकर को मिला। विश्वविद्यालय परिवार पुरस्कृत श्री दत्त और श्री सोनकर की इस सफलता पर उनको बधाई देता देता है और उनकी भावी उन्नति की कामना करता है। आशा है भारतीय-विद्या योगासन पद्धति को ये देश और विदेश में विकसित करेंगे।

११ मार्च, १९७९

(च) हास्य-विनोद गोष्ठी

सार्वभौम-संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी द्वारा ११ मार्च, १९७९ को सायं सात बजे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य प० बदरीनाथ शुक्ल की अध्यक्षता में कुलपति-आवास पर एक हास्य-विनोद गोष्ठी का आयोजन किया गया। होली के अवसर पर संस्कृत पण्डितों, विद्वानों एवं संस्कृतानुरागियों के लिये परिष्कृत हास्य और व्यङ्ग्य के माध्यम से स्वस्थ मर्यादित मनोरञ्जन की परम्परा को प्रतिष्ठित करना उक्त गोष्ठी का उद्देश्य रहा है। सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय द्वारा विगत कई वर्षों से यह गोष्ठी आयोजित की जा रही है। काशी के मूर्धन्य संस्कृत विद्वानों ने इसमें भाग लेकर संस्कृत जगत् के लिये उच्च स्तरीय हास्य-विनोद की प्रथा को पुनः उज्जीवित करने का प्रयास किया है। होली के अवसर पर हँसी-मजाक की जैसी भोंड़ी, गन्दी और गलत परम्परा काशी में और अन्यत्र पूर्वी उत्तरप्रदेश के नगरों ग्रामों में चल पड़ी है, वह सर्वथा अवांछनीय एवं भारतीय परम्परा के प्रतिकूल है। इसके परिमार्जन के लिये संस्कृतानुरागियों द्वारा इस गोष्ठी का आयोजन किया गया।

हिन्दी एवं संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी, आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं अन्य काशीस्थ विद्वज्जन इस गोष्ठी में सम्मिलित होकर इसका गौरव बढ़ाते रहे हैं। किन्तु इस वर्ष आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अस्वस्थ होने के कारण, एवं श्री प० सीताराम चतुर्वेदी अन्य कार्य में व्यस्त होने के कारण इस गोष्ठी में भाग न ले सके। प० वासुदेव द्विवेदी (सार्व० सं० प्रचार कार्यालय) ने गोष्ठी का सञ्चालन और संयोजन किया। प्रारम्भ में श्री वासुदेव द्विवेदी ने संस्कृत साहित्य में हास्योपयोगी साहित्य की न्यूनता पर प्रकाश डाला और होली की प्रचलित दूषित परम्परा पर खेद व्यक्त किया। साथ ही विद्वानों से आग्रह किया कि संस्कृत साहित्य में नवीन दृष्टि से उद्देश्यपूर्ण हास्यरसप्रधान साहित्य का सृजन किया जाय और अनेक शास्त्रों, काव्य ग्रन्थों से हास्य-सामग्री का अन्वेषण करके उसे समाज में प्रचारित किया जाय। उन्होंने कुलपति आचार्य प० बदरीनाथ शुक्ल से निवेदन किया कि यह कार्य संस्कृत विश्वविद्यालय की देख-रेख में होना चाहिये।

गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए श्री कुलपति महोदय ने अनेक शास्त्रों, काव्यों एवं पुराणों इत्यादि संस्कृत-साहित्य के विशालतम भाण्डागार में यत्र-तत्र परिकीर्ण हास्यविनोदपूर्ण उक्तियों का चयन करने के लिये संस्कृत के पण्डितों, विद्वानों एवं छात्रों को प्रोत्साहन दिया। आपने हास्य-व्यङ्ग्य सम्भरित शास्त्रों में उल्लिखित अनेक व्यङ्ग्योक्तियों की चर्चा करते हुए कई श्लोकों को सुनाकर और उनकी अद्भुत विद्वत्तापूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करके उपस्थित लोगों को आह्लादित किया और कहा कि संस्कृत के विशाल साहित्य में उच्चस्तर की हास्य-व्यङ्ग्योक्तियों की कमी नहीं है। आवश्यकता है उन उक्तियों का सञ्चयन कर पुनः प्रकाश में लाने की। अन्त में उन्होंने महाकवि जयदेव द्वारा प्रणीत गीतगोविन्द के, जो संस्कृत-साहित्य का उत्कृष्ट गीतकाव्य है, मञ्चोपस्थापन के माध्यम से उसके महत्त्व को प्रतिष्ठित करके उसके द्वारा सामाजिक-उच्च-स्तरीय मनोरञ्जन एवं परिष्कार के लिये एक समिति बनाने का प्रस्ताव रखा। इसका संयोजक श्री वासुदेव द्विवेदी को बनाकर आपने यह सुझाव दिया कि इस समिति में काशी के संस्कृत साहित्यकारों

और विद्वानों को सदस्य बनाकर वे इस कार्य को करें। इसके लिये जो सहायता और सहयोग अपेक्षित होगा, उसे देने का वचन देकर कुलपति महोदय ने अपना मधुर विनोदपूर्ण भाषण समाप्त किया। पालि विभागाध्यक्ष श्री प० जगन्नाथ उपाध्याय, पुस्तकाध्यक्ष श्री प० लक्ष्मीनारायण तिवारी, कुलसचिव श्री प० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, वित्त अधिकारी श्री रामकृपालु मिश्र, श्री विश्वनाथ शुक्ल इत्यादि संस्कृतानुरागी महानुभावों ने वक्ता और श्रोता के रूप में इस गोष्ठी में भाग लेकर आनन्दानुभूति तथा गोष्ठी के आनन्द संवर्धन में भर-पूर सहयोग दिया।

गोष्ठी में जिन कवियों ने भाग लिया उनमें श्री प० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, श्री कपिलदेव पाण्डेय, श्री गोविन्द पाण्डेय, श्री शिवजी उपाध्याय, श्री श्रीपतिराम त्रिपाठी, श्री त्रिवेणीप्रसाद शुक्ल इत्यादि विद्वान् भी उल्लेखनीय हैं। कुछ छात्रों ने भी मनोविनोद के लिये कविताओं का पाठ किया। गोष्ठी के आदि और अन्त में श्री रमाकान्त के संगीत द्वारा संस्कृत के गीतों की प्रस्तुति वातावरण को सरस बनाने में सहायक सिद्ध हुई। अन्त में श्री वासुदेव द्विवेदी ने धन्यवाद प्रदान कर आगत लोगों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किया।

अभिनय-समिति

दि० ११-३-७९ को कुलपति के निवास पर आयोजित विद्वानों की हास्य-विनोद गोष्ठी के अवसर पर महाकवि जयदेव प्रणीत 'गीतगोविन्द' के अनेक प्रसंगों पर रसमय चर्चा भी हुई। 'गीतगोविन्द' के अनेक पदों से फूटकर बहने वाली राधा-कृष्ण की भक्ति धारा में विद्वान् विभोर हो उठे। फलतः उपस्थित विद्वानों ने सर्वसम्मति से कुलपति जी से अनुरोध किया कि 'गीतगोविन्द' की मधुमय कविताओं के आधार पर एक नृत्य-गीतात्मक रूपक की रचना की जाय। इसके माध्यम से गीतगोविन्द के काव्य-रस से पूरे देश के सहृदय जनों को आप्लावित किया जाय और एक अभिनय मण्डल की स्थापना करके उसे इतना सुशिक्षित बनाया जाय, जिससे 'गीतगोविन्द' की रसधारा को विदेशों में भी प्रवाहित किया जा सके। इस विचार के कार्यान्वयन के लिये 'गीतगोविन्द-अभिनय समिति' का संघटन करने का निश्चय किया गया और इसके निम्नांकित सदस्यों का चयन किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि यथासम्भव अविलम्ब सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त कर कार्यारम्भ किया जाय—

१. श्रीमती कपिला वात्स्यायन (संरक्षक)
२. श्री बदरीनाथ शुक्ल (अध्यक्ष)
३. डॉ० प्रेमलता शर्मा (उपाध्यक्ष)
४. डा० कैलासपति त्रिपाठी (मन्त्री)
५. श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते
६. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
७. श्री विभूतिभूषण भट्टाचार्य
८. डा० ब्रजलाल वर्मा (स० लो० आ०)
९. डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी
१०. श्री वासुदेव द्विवेदी
११. श्री ब्रजमोहन दीक्षित
१२ डा० कमलेशदत्त त्रिपाठी
१३ डा० कपिलदेव पाण्डेय
१४. श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी
१५ श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
१६ श्री शिवजी उपाध्याय

संयोजक मण्डल

१. डा० कमलेशदत्त त्रिपाठी
२. श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
३. श्री शिवजी उपाध्याय

२० मार्च से १६ मई, १९७९

(छ) संगीत अध्यापक श्री शिवनाथ मिश्र का विदेशों में कार्यक्रम

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के संगीत विभाग में सितार के अध्यापक श्री शिवनाथ मिश्र विगत २० मार्च, १९७९ को पश्चिम जर्मनी में विशेष आमन्त्रण पर रवाना हुए थे। वर्तमान काल में पश्चिमी राष्ट्रों में भारतीय संगीत की लोकप्रियता के बढ़ते चरणों से वहाँ के लोगों में भारतीय संगीत के योग्य कलाकारों को ही आमन्त्रित किया जाता है। श्री शिवनाथ मिश्र के सितारवादन से प्रभावित होकर वहाँ के प्रबुद्ध नागरिकों ने अपने विगत दिनों के वाराणसी के प्रवासकाल में उन्हें उनके देश में कार्यक्रम प्रस्तुत करने हेतु यात्रा का निमन्त्रण दिया था। उन्होंने अपनी ओर से सारी व्यवस्था कराकर बड़े ही स्नेह व सम्मान के साथ श्री मिश्र को पश्चिम जर्मनी की यात्रा पर बुलाया। श्री मिश्र ने उनके स्नेह निमन्त्रण को स्वीकार कर विगत २० मार्च को पश्चिमी जर्मनी की यात्रा पर वाराणसी से प्रस्थान किया।

८

यह बड़े ही गौरव की बात है कि पश्चिमी जर्मनी तथा अन्य विदेशी राष्ट्रों में जहाँ-जहाँ श्री मिश्र ने अपने सुमधुर सितार का कार्यक्रम प्रस्तुत किया, वहाँ के लब्धप्रतिष्ठ समाचारपत्रों में उनके द्वारा प्रस्तुत सितारवादन के कार्यक्रम की जो प्रशंसा प्रकाशित हुई है, उससे स्पष्ट है कि आपने न केवल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के संगीत विभाग का पश्चिमी राष्ट्रों में नाम उजागर किया है, बल्कि सांस्कृतिक नगरी वाराणसी का नाम भी संगीत के क्षेत्र में गौरवान्वित करने का श्रेय प्राप्त किया है। आपने अपनी सितारवादन कला से पश्चिमी जर्मनी, पूर्व जर्मनी, इटली, रोम, फ्लोरेंस तथा आस्ट्रिया में कार्यक्रम प्रस्तुत कर वहाँ के श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। वहाँ के श्रोतावर्ग ने आपकी सितारवादन कला से प्रभावित होकर आपको पुनः उनके देश की यात्रा करने व कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया।

आप उपर्युक्त देशों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करने के उपरान्त लन्दन की यात्रा करते हुए दिनांक १६ मई, १९७९ को वाराणसी वापस आ गये। आपके साथ तबला संगति हेतु वाराणसी के ही युवा तबलावादक श्री प्रकाश महाराज गये थे। आप लोगों की विदेश यात्रा की वापसी पर वाराणसी के प्रबुद्ध नागरिकों व अनेक संगीतज्ञों ने आपका हार्दिक स्वागत कर सफल कार्यक्रम की प्रस्तुति के लिए आपको बधाई दी।

२१ मार्च, १९७९

(ज) साधु देवनारायण संस्कृत महाविद्यालय, पूसा, जौनपुर में नवनिर्मित शिक्षा भवन का उद्घाटन

२१ मार्च, १९७९ को साधु देवनारायण संस्कृत महाविद्यालय पूसा, जौनपुर में नवनिर्मित शिक्षाभवन का उद्घाटन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के आचार्य डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, उत्तरप्रदेश संस्कृताध्यापक समिति के अध्यक्ष श्री चन्द्रदेवमणि त्रिपाठी तथा वाराणसी एवं जौनपुर जनपद के अन्य प्रतिष्ठित विद्वान् उपस्थित थे।

प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् संस्कृताध्यापक समिति के अध्यक्ष श्री त्रिपाठी ने कुलपति तथा उपस्थित विद्वानों का स्वागत किया, विश्वविद्यालय में प्रशान्त शैक्षणिक वातावरण के निर्माण एवं उसके फलस्वरूप प्रदेश के संस्कृत महाविद्यालयों पर पड़ने वाले वांछनीय प्रभाव का उल्लेख किया और एतदर्थ कुलपति के एवं उनके सहयोगी विश्वविद्यालय परिवार के सदस्यों को अभिनन्दित किया। श्री त्रिपाठी ने कहा कि संस्कृत वाङ्मय में निहित ज्ञान-विज्ञान का समुचित लाभ संस्कृत की परम्परागत शिक्षा पद्धति से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए संस्कृत विश्वविद्यालय तथा प्रदेश की संस्कृत पाठशालाएँ प्रयत्नशील हैं। यह महाविद्यालय भी उसी दिशा में सचेष्ट और जागरूक है। इसके लिए यहाँ के अधिकारी एवं अध्यापक धन्यवाद के पात्र हैं।

आचार्य श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, प० श्री शशिधर शर्मा आदि विद्वानों ने भी संस्कृत वाङ्मय की महत्ता और संस्कृत की परम्परागत शिक्षा की उपयोगिता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये।

कुलपति प्रो० शुक्ल ने उद्घाटन भाषण में संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना और उसके संचालन में अपने सर्वस्व का समर्पण करने के लिए साधु देवनारायण को धन्यवाद दिया। प्रो० शुक्ल ने संस्कृत शिक्षा के गुणों का वर्णन करते हुए बताया कि भारत में विदेशी शासन की स्थापना के पूर्व यहाँ मुख्य रूप से संस्कृत भाषा के माध्यम से राष्ट्र के सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होते थे। संस्कृत सम्पूर्ण देश की सम्पर्क भाषा तथा राजकाज की भाषा थी। संस्कृत के विद्वान् विद्या के क्षेत्र में कार्य करते हुए प्रशासन के महत्त्वपूर्ण कार्यों में भी योगदान करते थे।

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

मनु का यह कथन वैदेशिक शासन के पूर्व अक्षरशः सत्य था। अतः ऐसा कोई कारण नहीं है कि यदि आज भी देश में संस्कृत शिक्षा को उचित स्थान दिया जाय, तो मनु का उक्त कथन आज के युग में भी संस्कृत विद्वानों द्वारा सत्यापित न हो सके। यह अत्यन्त खेद और दुर्भाग्य की बात है कि देश में ३० वर्षों से अपना शासन होने पर भी संस्कृत शिक्षा की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। संस्थाओं में जब कभी किसी नेता को आमन्त्रित किया जाता है, तो उनके मुख से संस्कृत की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनी जाती है और उस समय संस्कृत शिक्षा को अभिवृद्धि प्राप्त कराने में भी उनकी अभिरुचि प्रकट होती है, किन्तु वास्तव में उनके अनुसार संस्कृत विद्या के प्रोत्साहन के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हो पाता। फिर भी शासन द्वारा संस्कृत की अभिवृद्धि हेतु प्राप्त सहायता के लिए उसे धन्यवाद देने में हमें प्रसन्नता है, जो संस्कृत पाठशालाओं को अब तक प्राप्त हुई है। प्रो० शुक्ल ने संस्कृत के विद्वानों और संस्कृत के प्रेमियों को

आमन्त्रित करते हुए प्रभावशाली शब्दों द्वारा अनुरोध किया कि उन्हें संस्कृत शिक्षा को समुन्नत करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए और इसके लिए जो त्याग और सेवा अपेक्षित हो, उसके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। साथ ही अपने-अपने क्षेत्रों से सम्बद्ध संसद् सदस्यों और विधायकों से सम्पर्क स्थापित कर संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में शासन की दृष्टि आकृष्ट करने के लिए अनुरोध करना चाहिए।

अन्त में विद्यालय के प्रांगण में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ, जो जनता के लिए अत्यन्त रोचक और जनमानस में राष्ट्रीय भावना का प्रेरक था।

दि० २२ मार्च, १९७९

(झ) लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण के लिये स्वास्थ्य कामना

लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण के अत्यधिक अस्वस्थ होने पर विश्वविद्यालय में उनके स्वास्थ्य के लिये एक प्रार्थना सभा की गई। दि० २२ मार्च, ७९ की उक्त सभा में निम्नांकित प्रस्ताव पारित किया गया—

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के अधिकारियों, अध्यापकों, छात्रों एवं कर्मचारियों की एक सभा आज अपराह्ण १ बजे विश्वविद्यालय के बौद्धकक्ष हाल में प्रो० बदरीनाथ शुक्ल, कुलपति की अध्यक्षता में हुई, जिसमें लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण के दीर्घ जीवन के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई। आरम्भ में कुलपति महोदय ने विषय पर प्रकाश डालते हुए श्री नारायण के गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने और इससे राष्ट्रव्याप्त चिन्ता का उल्लेख किया। आपने कहा कि आपात काल में बहुत सी विभूतियों ने अनेक कष्टों को सहन कर देश और राष्ट्र को उचित मार्ग निर्देशन देने में योगदान दिया है, जिनमें श्री नारायण का प्रमुख स्थान है। आज हमें उनके निर्देशन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। ईश्वर हमारी सहायता करे और हम सब मिलकर उनके दीर्घजीवी होने की कामना करें।

इसके अनन्तर उनके दीर्घजीवी होने के लिये वैदिक मन्त्रोच्चार, पालि भाषा की प्रार्थना, प्राकृत में श्री अमृतलाल जैन द्वारा प्रार्थना एवं पौराणिक पाठ किये गये। पौराणिक पाठ में देवी भगवती की स्तुति—'रोगानशेषानपहन्ति तुष्टा''''श्रयतां प्रयान्ति' की १०१ बार सामूहिक प्रार्थना की गई और भगवती से प्रार्थना की गई कि वह इनको शीघ्र स्वस्थ करें, जिससे देश का उचित मार्ग निर्देशन हो सके।

इसी क्रम में कुलपति जी ने श्री नारायण के व्यक्तिगत सहायक डॉ० अब्राहम के नाम एक पत्र भी भेजा, जो निम्नांकित है—

"लोकनायक के बिगड़ते स्वास्थ्य का समाचार सुनकर व्यक्तिगत रूप से मैं और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का पूरा परिवार अत्यन्त चिन्तित हैं। ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता है, अतः लोकनायक के शीघ्र स्वास्थ्यलाभ और उनके दीर्घायुष्य के लिये हमने उन्हीं की सामूहिक प्रार्थना का निश्चय किया है। तदनुसार आज दिनांक २२ मार्च, ७९ को १ बजे समस्त अध्यापकों, छात्रों, कर्मचारियों और अधिकारियों ने मिलकर वैदिक, पालि एवं प्राकृत भाषाओं के रोगनिवारक एवं आयुवर्धक सूक्तों का और दुर्गासप्तशती के मन्त्रों का संस्कृत में सामूहिक पारायण किया। इस अवसर पर यह भी निश्चय किया कि जब तक लोकनायक के स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार नहीं हो जाता, तब तक प्रतिदिन प्रत्येक कक्षा में छात्र और अध्यापक मिलकर कार्यारम्भ से पूर्व सामूहिक प्रार्थना करते रहें। कृपया इस समाचार से लोकनायक को अवगत करा दें। आशा है, इससे उन्हें आध्यात्मिक बल मिलेगा।"

२३ मार्च, १९७९

(ञ) भारतीय नव वर्ष

हमारे जीवन का पश्चिमीकरण इस सीमा तक हुआ है कि पश्चिमी संस्कृति को भी हमने अपने जीवन में आरोपित कर लिया है और भ्रमवश उसे अपनी ही संस्कृति मानकर चल रहे हैं। भारत में मनाये जाने वाले नव वर्ष के संबन्ध में यही स्थिति दिखाई देती है। यह नव वर्ष भारत में प्रति वर्ष एक जनवरी को मनाया जाता है जो पश्चिमी मान्यता का अनुकरण है। भारतीय नव वर्ष वस्तुतः एक चैत्र को मनाया जाना चाहिए, क्योंकि इसी दिन से विक्रम संवत् के अनुसार भारतीय नव वर्ष आरम्भ होता है।

इस परम्परा का श्रीगणेश इस वर्ष किया आचार्य बदरीनाथ शुक्ल ने। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में आपने कुलसचिव प० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी के साथ एक संयुक्त नव वर्ष शुभकामना पत्र प्रसारित किया। इस शुभकामना पत्र में प्राप्तिकर्ता महानुभावों के लिए मांगलिक आकांक्षा व्यक्त की गई थी। पत्र का प्रारूप इस प्रकार है—

वैक्रम नव वर्ष
राष्ट्र और आपके लिए
प्रेय और श्रेय का
नित-नूतन मङ्गलमय स्रोत बने।

नूतनो वैक्रमो वर्षः प्रत्यहं नवमङ्गलैः।
प्रेयसे श्रेयसे च स्याद् राष्ट्रस्य भवतस्तथा ॥

❀ ❀ ❀

विश्वविद्यालयस्यास्य मम चैव मनोरथः।
भूयादनाविलं पूर्णः कृपया परमेशितुः ॥

विश्वम्भरनाथत्रिपाठी — कुलसचिवः

बदरीनाथशुक्लः — कुलपतिः

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१००२

प्रस्तुत नववर्ष-शुभकामना पत्र देश के गण्यमान्य महानुभावों को प्रेषित किया गया। भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति ने पत्र पाकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और अपने २७ मार्च ७९, संख्या २७ एम ७९ पत्र के द्वारा शुभकामना के लिए कुलपति को धन्यवाद प्रदान किया।

शुभकामना पत्र पाकर प्रदेश के राज्यपाल श्री गणपतिराव देवजी तपासे ने अपने २६ मार्च, ७९ के पत्र में धन्यवाद देते हुए नववर्ष को राष्ट्रीय आदर्शों की पूर्ति के लिए नये क्षितिज उन्मुक्त करने में सहायक होने की कामना की।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रतिकुलाधिपति श्री विभूतिनारायणसिंह देवशर्मा ने नववर्ष की बधाई पाकर हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की और संस्कृत में उत्तर देकर बधाई संदेश का स्वागत किया।

इसी प्रकार सिक्किम के राज्यपाल श्री ब० ब० लाल ने शुभकामना पत्र पाकर आभार व्यक्त किया और स्वयं भी नव वर्ष की बधाई प्रेषित की। पत्र का उत्तर उन्होंने अंग्रेजी में दिया, जिसके लिए खेद भी व्यक्त किया।

पंजाब के राज्यपाल श्री जयसुखलाल हाथी ने भी शुभकामना संदेश पाकर प्रसन्नता व्यक्त की और स्वयं भी शुभकामना प्रेषित की। इसी प्रकार गुजरात की राज्यपाल श्रीमती शारदा मुखर्जी ने भी विक्रम संवत् के अनुसार नव वर्ष की शुभकामना पाकर प्रसन्नता का अनुभव किया और अपने २ अप्रैल, ७९ के पत्र में शुभकामना भी प्रेषित की। तमिलनाडु के राज्यपाल श्री प्रभुदास पटवारी ने भी नव वर्ष की शुभकामना का स्वागत किया।

वस्तुतः नये वर्ष की इस शुभकामना का सर्वत्र स्वागत हुआ। केन्द्रीय निर्माण, आवास पूर्ति और पुनर्वास मन्त्री श्री सिकन्दर बख्त ने संवत् २०३६ की नव वर्ष शुभकामना को स्वीकार करते हुए स्वयं शुभकामना प्रेषित की। केन्द्रीय विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्री श्री शान्तिभूषण ने भी शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद देते हुए मंगल कामना भेजी। केन्द्रीय मन्त्रियों में विदेश मन्त्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी और सूचना तथा प्रसारण मन्त्री श्री लालकृष्ण अडवानी भी इस शुभकामना संदेश को पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भी नव वर्ष की शुभकामना भेजी। कृषि तथा सिंचाई मन्त्री श्री सुरजीत सिंह बरनाला तथा पर्यटन तथा नागरविमानन मन्त्री श्री पुरुषोत्तम कौशिक ने भी नव वर्ष की शुभकामना सहृदयता पूर्वक स्वीकार की।

देश के गण्यमान्य महानुभावों में प्रस्तुत नव वर्ष की शुभकामना को गुजरात के मुख्यमन्त्री श्री बाबू भाई पटेल ने स्वीकार करते हुए नये वर्ष को प्रगतिमय और आरोग्यप्रद होने की आकांक्षा प्रगट की। हिमाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री शान्ताकुमार और राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री भैरोंसिंह शेखावत भी शुभकामना की नई परम्परा से आह्लादित हुए। उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने भी नववर्ष की नई परम्परा को सहृदयता पूर्वक स्वीकार किया। उत्तरप्रदेश के सांस्कृतिक कार्य और खेल-कूद मन्त्री श्री हरिकिशन श्रीवास्तव, कारागार मन्त्री श्री बेनीप्रसाद वर्मा, परिवहन मन्त्री श्री सत्यप्रकाश मालवीय और शिक्षामन्त्री श्री कैलाशनाथ सिंह ने नव वर्ष की इस परम्परा का स्वागत किया, शुभ कामना पाकर प्रसन्नता सूचित की और स्वयं भी इस परम्परा के स्वर में स्वर मिलाकर बधाई सन्देश भेजा।

नये वर्ष की शुभकामना का पत्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति डा० हरिनारायण के पास भी भेजा गया। उन्होंने पत्र पाकर धन्यवाद दिया और अपनी मंगल कामना प्रेषित की।

अवधेशप्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवाँ के कुलपति श्री नारायण सिंह ने वैक्रम नव वर्ष के शुभागमन पर शुभकामना पत्र पाकर अनुग्रह व्यक्त किया और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय परिवार के लिए सफलता तथा समृद्धि की कामना की।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति श्री प्रयागदास हजेला भी इस नई परम्परा से प्रसन्न हुए और विश्वविद्यालय परिवार तथा कुलपति के लिए शुभकामना प्रेषित की। कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति डा० रत्नशंकर मिश्र ने भी नववर्षीय बधाई स्वीकार कर शुभकामना व्यक्त की।

विधानसभा के सदस्य श्री राजमंगल पाण्डेय ने भी नव वर्ष की बधाई आदरपूर्वक स्वीकार की तथा गाँधी नगर, जम्मू से श्री परशुराम शास्त्री ने नव वर्ष की शुभकामना के लिए संस्कृत

काव्य में अपनी कृतज्ञता प्रगट की। लखनऊ क्षेत्र की संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षक श्री गंगाराम पाण्डेय शुभकामना पत्र पाकर विशेष रूप से विनीत हुए।

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के निदेशक डा० विद्यानिवास मिश्र को भी कुलपति जी ने नव वर्ष पर शुभ-कामना प्रेषित की। डा० विद्यानिवास मिश्र नई परम्परा के श्रीगणेश पर आनन्दित हुए और शुभकामना स्वीकार करते हुए आपने अपने पत्र में लिखा—

लभतां वृद्धि भवतां सुरवाक्सेवापरायणं पीठम्।
ऋतुगुणगगनदृगङ्को वर्षो हर्षप्रदो वोऽस्तु॥

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और समीक्षक आचार्य विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र ने इस भारतीय परम्परा का बड़ा स्वागत किया और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के विकास तथा समृद्धि की कामना की।

अन्य महानुभावों में शिपिंग कारपोरेशन आफ इंडिया के चेयरमैन डा० रघुनाथ सिंह, आ० रा० चन्द्रावती श्यामा महा-विद्यालय, वाराणसी के प्रधानाचार्य श्री नरेश झा तथा श्री दै० सं० आ० सं० महाविद्यालय, शाहजहाँपुर के श्री कुन्दन मिश्र ने भी नव वर्ष की नई परम्परा की सराहना की, बधाई स्वीकार की और इसी नव वर्ष की स्वयं भी मंगल कामना की। श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी के प्रधानाचार्य महोदय ने भी इस अवसर पर हर्ष प्रगट करते हुए नूतन वर्ष का स्वागत किया।

इस प्रकार देश के सभी क्षेत्रों में भारतीय नव वर्ष की नवीन परम्परा को पूर्ण समर्थन और स्वीकृति मिली तथा सभी ने इसको अपना नव वर्ष मानकर शुभ कामना संदेश भेजा। अब यह परम्परा प्रति वर्ष इसी रूप में चलती रहेगी और भविष्य में भारत में वैक्रम नव वर्ष को ही शुभकामनाओं के आदान-प्रदान का प्रतीक माना जायगा तथा देश में एक नये चरण का आरम्भ होगा।

३० मार्च, १९७९

(ट) भारतीय संगीतशास्त्र में मौलिकता

दिनांक ३०-३-७९ को अपराह्ण ३ बजे बौद्ध कक्ष हाल में संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ एवं ख्यातिप्राप्त विद्वान् ठाकुर जयदेव सिंह जी का भाषण हुआ। उक्त सभा में भाषण के लिये भारतीय संगीत का विकास विषय निर्धारित था। ठाकुर साहब ने देश में संगीत के प्रति बहुत दिनों पूर्व आये अनुराग में कमी की ओर ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि यह अत्यन्त गूढ़ विषय है। इसलिए इसके सार को समझना नितान्त आवश्यक है। आपने संगीत में स्वर तथा ध्वनि के ऊपर प्रकाश डाला। आपने कहा कि स्वर को समझने के पहले ध्वनि को समझना आवश्यक है। ध्वनि के तीन प्रमुख अंग हैं—१. उत्पादक द्रव्य, २. माध्यम और ३. ग्राह्य। ध्वनियाँ भी कई प्रकार की हैं—संगीतमय और साधारण। बिना स्पन्दन के ध्वनि नहीं होती। जो प्रिय नहीं मालूम होता उसे ध्वनि नहीं कहते। संगीतमय ध्वनि ही ध्वनिविशेष है। प्रिय ध्वनि को नाद कहते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार ध्वनि के प्रिय होने के भौतिक कारण हैं। ध्वनि के साथ कम्पन, स्पन्दन एवं आन्दोलन रहता है। ध्वनि वही प्रिय होती है जो नियमित होती है। निरन्तर और नियमित रूप से कम्पन को ही नाद कहते हैं। यह प्रभु की देन है। हमारे पूर्वजों ने वीणा तथा तन्त्री दोनों को ही देवालयों में मनोरंजन का साधन बनाया। आपने कहा कि स्वर के साथ उपस्वर भी महत्त्वपूर्ण हैं, जिससे सभी प्राणियों की अथवा वाद्य मन्त्रों की पहचान की जाती है। यह गुणभेद के आधार पर पहचानी जाती है। तारतम्य, तीव्रता और गुणविलक्षणता इसके मूल में हैं। मानव कण्ठ भी एक यन्त्र के रूप में है। वीणा में झंकार अधिक होती है। झंकारपूर्ण स्वर मधुर होता है। वंशी में उपस्वर कम और शुद्ध स्वर अधिक होते हैं, जिससे इसको प्रिय माना गया है। प्रो० रामप्रसाद त्रिपाठी ने इस सभा की अध्यक्षता की और व्याकरण विषय में स्वर आदि का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध बताया।

९ अप्रैल, १९७९

(ठ) पूज्य स्वामी करपात्री जी कृत 'वेदार्थपारिजात' ग्रन्थ का प्रकाशनोद्घाटन

वेद अखिल विश्व की महान् निधि हैं और अनन्त काल से ये भारतीय मानस में परम पवित्र अपौरुषेय शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्हें श्रुति भी कहा जाता है और इसका अभिप्राय यह है कि अक्षुण्ण परम्परा के रूप में गुरुमुख से उच्चरित वेदराशि को शिष्य उसी रूप में ग्रहण करता आ रहा है और कालान्तर में वह शिष्य भी गुरु के रूप में अपने शिष्य को उसी रूप में उस ज्ञान-राशि को संक्रान्त करता रहा है। इस प्रकार वेदाध्ययन की परम्परा बिना किसी व्यवधान के निरन्तर चली आ रही है और इस रूप में अविच्छिन्न रूप से चलते रहने पर भी इसके कर्ता की स्मृति किसी को नहीं है। अतः इसका कोई कर्ता नहीं है, यह अपौरुषेय है।

प्राचीन काल से ही वेदों के प्रति आक्षेप किये जाते रहे हैं और आज भी देश-विदेश में इस पवित्र वाङ्मय के प्रति अनेक आक्षेप तथा शङ्काएं उठायी जाती हैं। इस वेदराशि में समस्त वेद-शाखाओं की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदें समाविष्ट हैं। इस प्रकार यह ज्ञानराशि भारतीय उद्घोषणा का पवित्र प्रतीक है। यद्यपि वेदों से ही समस्त परम्परागत ज्ञान-विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है, तथापि कुछ लोग इस समग्र वेदराशि को प्रमाण नहीं मानते तथा कुछ लोग कालक्रम से इसके विकास की बात उठाकर मनमाने ढंग से इसका अर्थ करना चाहते हैं। वेदार्थ ज्ञान की एक सुनिश्चित तथा सम्पुष्ट भारतीय परम्परा विद्यमान है, किन्तु ऐसे लोग इसे स्वीकार नहीं करते। इस विषम परिस्थिति में श्रद्धालु जनों के भी शङ्कालु बन जाने की आशंका हो गयी है।

भारतीय मान्यता के अनुसार अत्याचारों के अधिक बढ़ जाने पर भगवान् स्वयं अवतार लेते हैं, किन्तु बीच-बीच में तात्कालिक अव्यवस्थाओं को दूर करने के लिये सन्त महात्माओं के रूप में वे अवतीर्ण होते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में वेद, वेदार्थ एवं भारतीय परम्परा के प्रति श्रद्धालु जनों को शंकालु बनाने के लिये जो अन्यथा विचार प्रस्तुत किये गये हैं, उनके परिहार तथा सत्य स्थिति की स्थापना हेतु हमारे बीच अनन्त श्रीविभूषित परिव्राजक सम्राट् श्री हरिहरानन्द सरस्वती (स्वामी करपात्रीजी महाराज) अवतरित हुए हैं और श्रद्धालु आस्तिक जनों के कल्याणार्थ वे वेद के नूतन भाष्य की रचना में संलग्न हैं। यजुर्वेद का भाष्य पूर्ण हो चुका है और इसके प्रारम्भ में प्राचीन आचार्यों के भाष्यों की भाँति एक विस्तृत भूमिका भी दी गयी है। मूल ग्रन्थ संस्कृत की परिनिष्ठित शैली में प्रस्तुत है और साथ में प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। यह एक प्रकार से वेदों का अभिनव भाष्य है, जिसमें अब तक के सभी पौर्वात्य एवं पाश्चात्य आक्षेपों का समीचीन तार्किक उत्तर प्रस्तुत किया गया है तथा प्रबल प्रमाणों एवं तर्कों के आधार पर ऐसे सभी मतवादों का खण्डन करके आर्ष मत की स्थापना की गयी है।

इस महत्त्वपूर्ण एवं अभिनव वेदभाष्य के प्रथम खण्ड के प्रकाशनोद्घाटन का आयोजन श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान की ओर से विश्वविद्यालय प्राङ्गण में बौद्ध कक्ष के समक्ष स्थित उन्मुक्त स्थल में सायं ७ बजे देदीप्यमान विद्युन्माला से परिवेष्टित परिसर में किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने की तथा इस गौरवमय ग्रन्थ का प्रकाशनोद्घाटन प्रतिकुलाधिपति महाराज डा० विभूतिनारायणसिंह शर्मदेव के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

प्रारम्भ में वेद-पूजन का कार्यक्रम श्री हनुमान प्रसाद धानुका द्वारा सम्पन्न किया गया और इस पूजन में चारों वेदों से एक-एक मन्त्र उच्चरित हुआ। शाखा-स्वाध्याय के लिये आमन्त्रित वैदिक विद्वानों का पूजन माल्यार्पण तथा चन्दन-तिलक द्वारा श्री हनुमान प्रसाद धानुका ने किया। तत्पश्चात् वैदिक विद्वानों द्वारा शाखा-स्वाध्याय निम्न क्रम से प्रस्तुत हुआ :—

(क) ऋग्वेद, (ख) कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय शाखा), (ग) शुक्ल यजुर्वेद, (घ) सामवेद, (ङ) अथर्ववेद।

निम्नाङ्कित वैदिक विद्वानों ने उपर्युक्त क्रमानुसार इसमें भाग लिया :—

(क) ऋग्वेद

१. डॉ० श्रीकृष्ण वामन देव, २. प० अनन्तराम भट्ट पुणताम्बेकर, ३. प० बालम्भट्ट पञ्चगावकर, ४. प० नारायण दीक्षित जोशी।

(ख) कृष्ण यजुर्वेद

१. प० गणेश भट्ट बापट, २. प० कृष्णमूर्ति घनपाठी, ३. प० रामशेष घनपाठी, ४. प० बालसुब्रह्मण्य घनपाठी।

(ग) शुक्ल यजुर्वेद

१. प० राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय, २. प० मङ्गलदत्त पाण्डेय, ३. प० विश्वनाथ पाण्डेय, ४. प० विद्याधर पाण्डेय, ५ प० लक्ष्मीकान्त दीक्षित, ६. प० मणिराम औढेकर, ७.प० विनायक बादल, ८. प० गजानन गोडशे, ९. प० हीरालाल औदीच्य, १०. प० लक्ष्मीकान्त पुराणिक, ११. प० बालाजी पेंठकर।

(घ) सामवेद

१. प० देवकृष्ण त्रिपाठी २. प० शिवराम सामवेदी, ३. प० शिवदत्त त्रिपाठी, ४. प० कृष्णमूर्ति श्रौती।

(ङ) अथर्ववेद

१. प० नारायण रामचन्द्र रटाटे, २. डॉ मनोहरलाल द्विवेदी।

ऋग्वेद के शाखा स्वाध्याय में सर्वप्रथम 'आतू न इन्द्र' इस सूक्त का संहिता एवं पदपाठ के क्रम से स्वाध्याय हुआ। यह ऐन्द्र सूक्त है और इसमें देवराज इन्द्र की स्तुति की गई है। इसके पश्चात् ऐतरेय ब्राह्मण का स्वाध्याय हुआ और 'सहस्राक्षरा वाक्' मन्त्र के निरुक्त का गायन किया गया और अन्त में 'दीर्घतमा....' मन्त्र का घनपाठ प्रस्तुत हुआ। इस मन्त्र में चतुर्थाश्रम की प्रशंसा की गयी है।

कृष्ण यजुर्वेद के शाखा स्वाध्याय के अन्तर्गत 'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति' इस अनुवाक का पाठ किया गया। तत्पश्चात् 'सद्यो यज्वानो....' इस अग्नि अनुवाक का पद एवं क्रम

पाठ हुआ। इनमें से प्रथम अनुवाक भारतीय संस्कृति में अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसके द्वारा दीक्षान्त में गुरु द्वारा अन्तेवासियों को अनुशासन प्रदान किया जाता है। अग्नि-स्तवन से संबद्ध द्वितीय अनुवाक द्वारा तीनों लोकों के तीनों रूपों से अग्नि का व्याख्यान किया गया है। इसी क्रम में तैत्तिरीय ब्राह्मण से प्रजापति देवता के शंसनात्मक विधिप्रेरक भाग का सभी ने सामूहिक रूप से पाठ किया। द्वितीयावर्तन में उसी मन्त्र का घनपाठ अनुष्ठित हुआ और इसमें रूप होम अर्थात् सृष्टि के आकारों को स्थिर रखने के लिए 'रूपाणि जुहोति' इस मन्त्र का जो विधान किया गया है, उसका घनपाठ प्रस्तुत हुआ।

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में 'प्रघासेना हवामहे....' इस मन्त्र का स्वाध्याय हुआ। यह मन्त्र चातुर्मास्य यज्ञ के करम्भ होम प्रकरण का है तथा इसमें यजमान के घर के प्रत्येक व्यक्ति की संख्या के अनुसार बनायी गयी पृथक् पृथक् हवि का हवन किया जाता है। इसके पश्चात् इसी शाखा में 'इदं विष्णुः प्रचक्रमे' मन्त्र का घनपाठ प्रस्तुत हुआ। इसमें यज्ञात्मक विष्णु के तीनों लोकों में व्याप्त होने का वर्णन इन्हें तीन डग से मापने के रूपक के रूप में किया गया है।

शुक्ल यजुर्वेद की ही काण्व शाखा की सरस्वती की स्तुति के मन्त्र का संहिता पाठ भी प्रस्तुत हुआ। इस मन्त्र में वाणी की पवित्रता, गाम्भीर्य तथा व्यापकता का वर्णन प्राप्त होता है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के 'सदसि पतिमद्भुतम्....' मन्त्र का शिखापाठ हुआ। इसमें मेधा की प्राप्ति हेतु प्रार्थना प्रस्तुत है। तत्पश्चात् शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा के ब्रह्म एवं क्षत्र तत्त्वपरक प्रार्थना मन्त्रों का संहिता पाठ तथा घनपाठ हुआ। इनमें बुद्धितत्त्व और बलतत्त्व की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की गयी है तथा इनमें इनकी महत्ता का भी वर्णन विद्यमान है।

सामवेद के अन्तर्गत कौथुमी शाखा के 'उच्चा ते जातमन्धसः' मन्त्र का स्वाध्याय प्रस्तुत हुआ। इसमें यह वर्णित है कि जो लोग सत्कार्य करनेवाले हैं, उन्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है और उनकी लौकिक स्थिति भी उत्तम होती है। अन्त में इसी के अन्तर्गत ताण्ड्य ब्राह्मण का भी स्वाध्याय हुआ।

अथर्ववेद के स्वाध्याय में 'शास इत्था महाँ अस्य' इस सूक्त का पाठ लोकशान्त्यर्थ तथा कल्याणार्थ सम्पन्न हुआ और 'अनुसूर्यमुदयतां....' सूक्त का भी पाठ प्रस्तुत हुआ। प्राचीन परम्परा के अनुसार इस सूक्त के पाठ का विधान हृदयरोग निवारणार्थ किया गया है।

शाखा स्वाध्याय का यह क्रम चल ही रहा था कि इसी बीच समारोह में पूज्य स्वामी जी का पदार्पण हुआ। यद्यपि वे काफी अस्वस्थ थे तथा चिकित्सकीय दृष्टि से उनका बाहर जाना वर्जित था, फिर भी अत्यन्त कृपापूर्वक वे इस समारोह में आये और इससे समारोह का वैशिष्ट्य और बढ़ गया।

पूज्य स्वामी जी का सम्मान चन्दन तथा माल्यार्पण द्वारा सम्पन्न होने पर सभाध्यक्ष प्रो० बदरीनाथ शुक्ल के आवाहन पर प० श्री पट्टाभिराम शास्त्री ने श्रीचरण, विश्वनाथ जी के प्रतिनिधिभूत महाराज, विद्वज्जन तथा छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो पूज्यचरणों को न जानता हो। विगत ४० वर्षों से पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य हमें प्राप्त रहा है। सदा ही अनेक शाखा सम्मेलनों को प्रवर्तित कराते हुए विप्रतिपत्तियों का उत्तर तत्काल प्रस्तुत करने के लिये वे प्रोत्साहित करते रहे हैं। उनके भाषण तथा व्याख्यान से वेद तथा दर्शन सम्बन्धी विषयों के अध्येता विशेष प्रकार से लाभान्वित होते हैं। आर्यसमाज द्वारा वेद सम्बन्धी नये आक्षेपों का परम्परागत दृष्टि से सम्यक् रीति से परिहार हेतु एवं पाश्चात्य दृष्टि से संक्रान्त आक्षेपों के प्रत्युत्तर के लिए वेदों के नूतन भाष्य की रचना करने के लिए उनकी आज्ञा हुई थी। इस दिशा में हम लोगों द्वारा विशेष प्रयत्न न होने पर इस कार्य को पूर्ण करने हेतु उनकी लेखनी स्वयं उठ गयी और इधर शुक्ल यजुर्वेद के ४० अध्यायों का उनके द्वारा भाष्य प्रस्तुत हुआ है। इसमें प्राचीन, आर्यसमाज द्वारा संक्रान्त एवं पाश्चात्य आक्षेपों का अनुवाद देते हुए तार्किक आलोचना के द्वारा सनातन धारा की दृष्टि से उत्तर प्रस्तुत करने का यथेष्ट प्रयत्न किया गया है। पूज्य स्वामी जी की यह धारणा है कि मान को ही आधेय मानकर मेय की सिद्धि होती है और ऐसा नहीं हो सकता कि प्रतिपक्षी कभी किसी प्रमाण का आश्रय ले और कभी दूसरे प्रमाण का। इसी दृष्टि से इस भाष्य के प्रारम्भ में प्रामाण्यवाद पर विशेष चर्चा की गयी है। इससे इस दिशा में प्रत्येक जिज्ञासु अपने चिन्तन हेतु सामग्री प्राप्त कर सकता है।

इसी सन्दर्भ में आपने आगे कहा कि इस भाष्य में पूज्यचरणों द्वारा प्रवर्तित व्याख्या शैली प्राचीन आचार्यों का स्मरण दिलाती है और बौद्धों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए आप साक्षात् भट्टपाद प्रतीत होते हैं तथा सभी प्राचीन आक्षेपों का प्रत्युत्तर पूज्य स्वामी जी ने विषवैद्य शैली से प्रस्तुत किया है। वेदविषयक प्राचीन आक्षेपों पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाद की प्राचीन परम्परासम्मत तर्कसरणी में उनका उत्तर देना सम्भव है, क्योंकि ये प्राचीन विरोधी सम्प्रदाय मर्यादित हैं, किन्तु इधर एक शताब्दी में जिस मत का प्रादुर्भाव हुआ है उसमें वेद के कुछ भाग को प्रामाणिक और कुछ को अप्रामाणिक माना

जाता है। अतः ऐसे मतवादियों से संवाद में कठिनाई होती है, किन्तु पूज्यचरणों द्वारा उनके भी आक्षेपों का परिहार युक्ति एवं प्रबल तर्कों के आधार पर किया गया है और यह भाष्य प्रत्येक दृष्टि से अभिनव है। इन विशेषताओं के आधार पर मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि इसे विश्वविद्यालय के संबद्ध पाठ्यक्रमों में समाविष्ट किया जाना चाहिए, जिससे वेद के बारे में जो अनेक भ्रामक आधुनिक प्रचार हैं, वे निराकृत हो सकें।

इस सन्दर्भ में ग्रन्थ के प्रकाशक श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान का परिचय देते हुए आपने कहा कि एक अत्यन्त समृद्ध परिवार में जन्म लेकर भी धानुका जी ने सुदुर्लभ भगवद्भाव से अनुप्राणित होकर वृन्दावन वास का वरण किया और पूज्य स्वामी जी की आज्ञानुसार वृन्दावन की रमणरेती में धर्मसंघ शिक्षामण्डल द्वारा संचालित धर्मसंघ विद्यालय की स्थापना की, साथ ही इसी के सन्निकट दण्डी संन्यासी आश्रम का भी निर्माण कराया। इन्हीं के अनुपम प्रयास से फतेहपुर (राजस्थान) में अखिल भारतीय धर्मसंघ का द्वितीय महाधिवेशन विस्तृत रूप से सम्पन्न हुआ। श्री धानुका जी के हृदय में पूज्य स्वामी जी महाराज के चरणों में जीवन पर्यन्त अतुलनीय श्रद्धाभाव बना रहा और इस काशी नगरी के प्रति भी अगाध श्रद्धा प्रतिष्ठित रही। फलस्वरूप उन्होंने काशी क्षेत्र में वृन्दावन बिहारी भवन नामक अतिथिशाला का निर्माण कराया। शास्त्र विधि द्वारा निर्दिष्ट कर्मानुष्ठान में वे जीवन पर्यन्त लगे रहे। यह हर्ष का विषय है कि उनका परिवार उन्हीं आदर्शों का अनुगामी है और स्वामी जी की अपूर्व कृति 'वेदार्थपारिजात' का प्रकाशन उन्हीं के नाम से संस्थापित श्री राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थान द्वारा हुआ है।

सभाध्यक्ष कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल द्वारा महाराज श्री काशीनरेश से इस ग्रन्थ के प्रकाशनोद्घाटन की अभ्यर्थना होने पर श्री विभूतिनारायण सिंह ने कहा कि पूज्य स्वामी जी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न करके सम्पूर्ण भारतीय परम्परा की मर्यादा की रक्षा की है। आपके सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, क्योंकि आप स्वयंसिद्ध हैं और इस ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत आपकी वाणी को हमारे द्वारा प्रकाशनोद्घाटन की कोई आवश्यकता नहीं दृष्टिगोचर होती। यदि हम परम्परा पर दृष्टिपात करें तो आचार्य सायण के पश्चात् इस दिशा में किसी का भी ऐसा साहस नहीं हुआ है और निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि पूज्यचरण वेदों तथा भारतीय परम्परा की रक्षा हेतु अवतरित हुए हैं। वेद सम्बन्धी प्राचीन आक्षेप तो समाप्तप्राय हैं, किन्तु इधर विदेशियों तथा उनके क्रम में स्थित लोगों द्वारा आधुनिक युग में जो आक्षेप प्रस्तुत किये गये हैं, वे प्रकारान्तर से नयी भारतीय पीढ़ी में वेदों एवं परम्परा के प्रति अश्रद्धा एवं संशयभाव उत्पन्न करने की चेष्टामात्र हैं और हमें दृढ़ विश्वास है कि आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' की भाँति ही इस ग्रन्थ द्वारा इन सब संशयों का तिरोधान होगा। इस विश्वविद्यालय से संबद्ध पाठ्यक्रमों में इस ग्रन्थ को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में श्री पट्टाभिराम शास्त्री के समीचीन प्रस्ताव के सन्दर्भ में मेरा यह विचार है कि पठन-पाठन में इसके सारांश मात्र को न सम्मिलित करके सम्पूर्ण ग्रन्थ को ही सम्मिलित करना अधिक उपयुक्त होगा। सौभाग्य से हमें ऐसे कुलपति प्राप्त हुए हैं जो इस कार्य को सम्पन्न कर सकते हैं।

अभी कुछ ही दिन पूर्व विश्वविद्यालय के स्थापनोत्सव के अवसर पर इस संस्था तथा विश्व के कल्याणार्थ शतचण्डी पाठ का आयोजन किया गया था। आज इसी क्रम में इस ग्रन्थरत्न का प्रकाशनोद्घाटन सम्पन्न हो रहा है और मेरा दृढ़ विश्वास है कि वेद सम्बन्धी भ्रामक प्रचारों को इससे दूर किया जा सकेगा।

वेद की परम्परा की रक्षा के सन्दर्भ में प्रतिकुलाधिपति ने यह भी कहा कि विश्वविद्यालय के वेद विभाग में वेदों को कण्ठस्थ एवं उनका सस्वर पाठ प्रस्तुत करने में सक्षम लोगों को भी प्राध्यापक, उपाचार्य एवं प्राचार्य पद प्राप्त होने चाहिए। इससे श्रुति परम्परा की रक्षा हो सकेगी।

आपने यह भी व्यक्त किया कि जिस प्रकार भगवान् शिव पञ्चमुख हैं, उसी प्रकार काशी नगरी में पाँच विश्वविद्यालय होने चाहिए और उनमें से एक विश्वविद्यालय आध्यात्मिक चिन्तनपरक हो, तथा इसके लिये पूज्य स्वामी जी ऐसी विभूतियों का मार्गदर्शन लेने की आवश्यकता है। इधर पूज्य स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता और इस कारणवश मेरा यह निवेदन है कि अब वे काशी से बाहर न जाया करें और उनका भ्रमण यहाँ के पञ्चक्रोशी क्षेत्र में ही सम्पन्न हो। इससे यति धर्म का पालन भी हो जायेगा, साथ ही आपके सान्निध्य में तीन-तीन मास के वैदिक तथा पौराणिक सत्र आयोजित हो सकेंगे। इससे परम्परागत अध्येताओं को विद्या के क्षेत्र में पर्याप्त लाभ की प्राप्ति होगी और इस काशी नगरी से पुनः ज्ञान का आलोक सभी दिशाओं में प्रवहमान होगा।

प्रकाशनोद्घाटन के पश्चात् इस ग्रन्थरत्न को पूज्य स्वामी जी को समर्पित करना है। पर यह तो उन्हीं का है और इस प्रकार इसे उन्हें देने का विशेष अर्थ नहीं है, फिर भी 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्प्यते' के अनुसार इसे उन्हें समर्पित करके मैं एक भक्त के कार्य का ही संपादन करूँगा, यह कहते हुए महाराज

काशीनरेश ने 'वेदार्थपारिजात' नामक इस ग्रन्थ का औपचारिक प्रकाशनोद्‌घाटन करके पूज्य श्रीचरणों में इसे समर्पित किया।

अस्वस्थ होते हुए भी पूज्य स्वामी जी ने इस अवसर पर अपना संक्षिप्त प्रवचन देते हुए कहा कि श्रुति परम्परा की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। वेद अनादि हैं तथा परम्परया इनका स्वरूप निश्चित है। इस निश्चय को कोई अपनी परिकल्पना द्वारा परिवर्तित नहीं कर सकता। इसके अनुसार हमें मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों को वेद स्वीकार करना होगा, इसमें अन्यथा दृष्टि का कोई स्थान नहीं है।

अपने इस नूतन भाष्य के सम्बन्ध में आपने संक्षेप में बताया कि इसमें वेदार्थ को प्रस्तुत करने में आचार्य सायण तथा महीधर का उपबृंहण किया गया है। वेद के मर्म को सम्यक् रीति से जानने के लिए यह आवश्यक है कि विद्या के वास्तविक स्वरूप से हम भली-भाँति परिचित हों। इस सन्दर्भ में परा तथा अपरा विद्याओं का रहस्योद्‌घाटन करते हुए आपने कहा कि 'परा' से परब्रह्म का प्रतिपादन होता है।

श्रुति के सम्बन्ध में आपने तत्प्रधान एवं अतत्प्रधान वचनों की चर्चा करते हुए कहा कि तत्प्रधान वचन अतत्प्रधान वचन से बलवान् होते हैं। तत्प्रधान वचन वे हैं जिनका कर्मकाण्ड में विनियोग होता है और अतत्प्रधान वे हैं जो इस प्रकार से विनियुक्त नहीं हैं। लिङ्ग के बल से भी श्रुति की कल्पना होती है और इस दृष्टि से श्रुति परम्परा का पूर्ण अवलम्बन लेकर ही हमें इनके अध्ययन तथा अर्थ करने के कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये।

सभाध्यक्ष कुलपति प्रो० बदरीनाथ शुक्ल ने विश्वविद्यालय परिवार की ओर से सभी का स्वागत करते हुए श्री धानुका जी के त्यागमय एवं समर्पित जीवन की सराहना की। श्री शुक्ल ने कहा कि वेदों के प्रतिपाद्य के बारे में प्रारम्भ से ही विद्वानों में मतभेद रहा है। कुछ लोगों ने धर्म को सम्पूर्ण वेदों का प्रतिपाद्य माना है और कुछ लोगों ने ब्रह्म या ईश्वर को वेद-प्रतिपाद्य कहा है। सुप्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि में "कृत्स्न एव हि वेदोऽयं परमेश्वरगोचरः" कहकर परमेश्वर को सर्ववेदप्रतिपाद्य कहा है। भगवद्‌गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" कहकर अपने कृष्ण स्वरूप को ही समस्त वेदों में वेद्य बताया है। इस प्रकार जब आरम्भ काल से ही वेदों के प्रतिपाद्य विषय में वैमत्य है, तो पाश्चात्य विद्वानों ने तथा कतिपय भारतीय अर्वाचीन मनीषियों ने इतिहास एवं भूगोल आदि को वेद का प्रतिपाद्य कहा है एवं स्वर्गीय श्री मधुसूदन ओझा ने विज्ञान को तथा स्वर्गीय श्री शङ्कराचार्य भारतीकृष्ण तीर्थ ने गणित आदि को वेदों का विषय माना है तो इससे हमें कोई अमर्ष नहीं होना चाहिये, अपितु 'वेत्ति सर्वं येन स वेदः' वेद शब्द की इस व्युत्पत्ति से समस्त ज्ञातव्य विषय को वेद का प्रतिपाद्य मानकर वेद को सभी ज्ञान-विज्ञान का असीम कोष मानने में ही वेद का गौरव है।

यह कहते हुए दुःख होता है कि भारत के सर्वस्व इन वेदों के अध्ययनाध्यापन की दिशा में भारत को, विशेषकर अपने बिगड़े हुए स्वरूप को सुधारने, सँवारने और नवनिर्माण में लगे भारत को जितना ध्यान देना चाहिये था, नहीं दिया जा रहा है। आज की बात तो अलग रही, आज से बहुत पूर्व ही वेदों के अध्ययनाध्यापन में ह्रास होने लगा था। आचार्य उदयन ने न्यायकुसुमाञ्जलि के गद्य में "पूर्वं सहस्रशाखो वेदोऽध्यगायि, ततः षडङ्ग एकः, इदानीं क्वचिदेका शाखा" (अर्थात् पहले सहस्रशाखा सहित वेदों का अध्ययन होता था; बाद में छः अङ्गों सहित एक वेद का अध्ययन होने लगा और इस समय (नवीं शताब्दी में) किसी एक शाखा का कहीं-कहीं अध्ययन हो रहा है) कहकर इसी ओर इङ्गित किया था। कितनी खेदजनक स्थिति है कि जहाँ मनु ने यह कहा था :—

> योऽनधीत्य द्विजो वेदान् अन्यत्र कुरुते श्रमम्।
> स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(अर्थात् जो द्विज—भौतिक एवं शैक्षिक दो जन्म पाने वाला व्यक्ति, घर में माता-पिता से तथा गुरुकुल में आचार्य से वेदों का अध्ययन न कर अन्य विषयों का अध्ययन करता है, उसे शूद्र—अपठित व्यक्ति—के समान सभी द्विज कर्मों—शैक्षिक कार्यों—से बहिष्कृत कर देना चाहिये।); वहाँ स्थिति यह है कि आज वेदाध्ययन को घोर उपेक्षा हो रही है। वेद का अध्ययन न कर अन्य विषयों का अध्ययन करने वाले व्यक्ति ही द्विजाग्रगण्य—शिक्षितों में अग्र गण्य—माने जा रहे हैं और उन्हीं के हाथों में सम्पूर्ण शिक्षा का उत्तरदायित्व है।

ऐसे विषम समय में पूज्य स्वामी जी ने वेदों के नूतन भाष्य की रचना का सङ्कल्प लेकर वेदाध्ययन की ओर भारतीय जनता को आकृष्ट करने का जो उपक्रम किया है, उसके लिये वे हमारे अनन्त अभिनन्दन और अभिवादन के पात्र हैं। पूज्य स्वामी जी के भी इस संकल्प का अपना इतिहास है। इस सन्दर्भ में अनेक वर्ष पूर्व ही उनके निर्देशन में सभा आयोजित हुई थी और वहाँ हमने प्रस्ताव रखा था कि वेद के सम्बन्ध में आक्षेप प्रस्तुत करने वाले अन्य मतवादियों तथा पाश्चात्य परम्परा से अनुप्राणित लोगों को विचार हेतु बुलाया जाय और उनके तर्कों को सुनकर परम्परा की दृष्टि से उनके उत्तर प्रस्तुत किये जाँय। इसे कार्यान्वित करने के लिये ऐसे महानुभावों को आमन्त्रित भी किया गया, किन्तु

९

उनमें से अधिकांश उपस्थित ही नहीं हुए और जो कुछ आये भी, वैचारिक दृष्टि से उसका कोई अर्थ नहीं रहा और बात वहीं की वहीं रह गयी। अतः विद्या, तप, सहिष्णुता तथा क्षमता के स्वरूप पूज्य श्रीचरण ने इस कार्य को स्वयं सम्पन्न करने का निश्चय किया। फलस्वरूप यह भाष्य आपके समक्ष प्रकट है।

आज उद्घाटित होने वाले इस ग्रन्थरत्न को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में समाविष्ट करने की जो चर्चा हमारे प्रतिकुलाधिपति महोदय तथा श्री पट्टाभिराम शास्त्री ने की है, उस विषय में पाठ्यक्रम समिति का ध्यान आकृष्ट किया जायेगा। हमारी व्यक्तिगत आकांक्षा है कि स्वामी जी के इस नूतन ग्रन्थ का देश में अत्यन्त व्यापक रूप से पठन-पाठन हो, जिससे देश में वेदों का जनमानस में प्रचार-प्रसार हो सके।

श्री शुक्ल ने आगे कहा कि पूज्य स्वामी जी के प्रति देश के आस्तिक धनवान् तथा संस्कृत के विद्वान् उनकी विद्वत्ता, तप और त्याग का गीत गाते हैं और उनकी प्रशंसा में उदात्त वाक्यों का प्रयोग कर अपनी वाणी पवित्र करते हैं। निश्चय ही इससे स्वामी जी के प्रति धनिकों और विद्वानों की असीम आस्था की अभिव्यक्ति होती है। किन्तु मेरे विचार से पूज्य स्वामी जी के प्रति वास्तविक आस्था की अभिव्यक्ति उनके अभिनन्दन, अभिवादन और गुणगान से नहीं हो सकती। वास्तविक अभिव्यक्ति तो उनके सङ्कल्प की पूर्ति में सक्रिय सहयोग देने से ही हो सकती है। विद्वानों का कार्य यह होना चाहिये कि वे एक समिति का गठन कर यह सङ्कल्प लें कि स्वामी जी ने जितने भाग पर वेद का भाष्य कर दिया है, उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वेदों पर स्वामी जी के विचारों के परिप्रेक्ष्य में भाष्य की रचना करें और उसे स्वामी जी के जीवन काल में ही पूर्ण कर उन्हें अर्पित करें। इसी प्रकार वेद और स्वामी जी के प्रति श्रद्धालु धनिकों का कर्तव्य है कि वे इस बात की प्रतिज्ञा करें कि भाष्य-निर्माण में कृतप्रतिज्ञ विद्वद्वर्ग को अपेक्षित आर्थिक सहयोग दें तथा जितनी रचना होती चले उसका समय से प्रकाशन कराते रहें। हमारे विचार से वेदों तथा स्वामी जी के प्रति यथार्थ श्रद्धा यही हो सकती है।

जैसा महाराज काशीनरेश ने कहा है, मेरा भी पूज्य चरणों से अनुरोध है कि वर्तमान अस्वस्थता की स्थिति में वे काशी से बाहर न जाँय। इसके लिए उन्हें सम्भूय प्रतिज्ञा करनी होगी और अपने मार्गनिर्देशन में हम काशी के विद्वानों को ऐसे कार्यों में संलग्न तथा प्रेरित करना होगा। डा० सम्पूर्णानन्द जी की भी यही दृष्टि थी और उपर्युक्त रीति से हम इन उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगे।

इसी सन्दर्भ में आगत विद्वन्मण्डली एवं अतिथियों के सम्मुख विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'विश्व-विद्यालय वार्ता' के सम्बन्ध में आपने कहा कि भारतीय परम्परा के वास्तविक रूप को समाज में प्रतिष्ठित करना ही इसका प्रमुख लक्ष्य है, साथ ही इससे विश्वविद्यालय की गतिविधियों का भी परिचय प्राप्त होता है। हमें इसके प्रकाशन में आप सभी के सहयोग की अपेक्षा है। जिससे यह अपने सङ्कल्पों की पूर्ति में अग्रसर हो सके।

महाराज काशीनरेश के प्रति आभार व्यक्त करते हुए आपने कहा कि आपने अपने राजकुमार और राजकुमारी को भारतीय परम्परा के अध्ययन में विनियुक्त किया है, इस आदर्श से हमें प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। कोचीन राज्य के बाद यह दूसरा राज्य है, जहाँ का पूरा परिवार इस ओर समर्पित है। अन्त में आपने सभी उपस्थित लोगों के प्रति धन्यवाद व्यक्त किया।

'आज' के प्रधान सम्पादक श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि वेदों की रक्षा के सम्बन्ध में हमें विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे ईश्वर के समान नित्य और स्वयं सुरक्षित हैं।

२६ अप्रैल, १६७६

(ण) कुलपति आवास में रामार्चा

अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल पक्ष), दि० २९ अप्रैल, सन् १९७९ को कुलपति आवास में वैष्णव धर्म में प्रसिद्ध रामार्चा पूजन एवं प्रवचन का आयोजन कुलपति की ओर से किया गया। राम भारतीय संस्कृति में आदर्श मर्यादापुरुष माने गये हैं। उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष का अनुकरण मानव जाति की उन्नति में निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा। अध्यापक, छात्र और कर्मचारी सभी के लिये उनकी विनय, गुरुभक्ति, मातृपितृभक्ति, भ्रातृप्रेम और साधारण जनों को भी सन्तुष्ट रखने की प्रवृत्ति अनुकरणीय है। उनके जीवन का आदर्श विश्वविद्यालय में अनुकृत और परिगृहीत हो, जिससे इस विश्वविद्यालय के परिवार के माध्यम से देश में विनय, नैतिकता आदि सद्गुणों की पुनः प्रतिष्ठा हो सके, इस उद्देश्य से यह आयोजन किया गया था। इसमें विश्वविद्यालय परिवार के प्रायः सभी सदस्य तथा नगर के प्रतिष्ठित नागरिक सम्मिलित हुए थे। भगवान् सीताराम और उनके परिकरों की पूजा पद्धति बड़ी आकर्षक रही। आचार्य श्री हरिराम दास जी वेदान्ती का प्रवचन विद्वत्तापूर्ण तथा प्रेरणादायक था। आयोजन में राम का जीवन साकार हो उठा। इस अवसर पर लोगों को आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति हुई।

'विश्वविद्यालय वार्ता' के लिए आर्थिक सहयोग देनेवाले महानुभाव

१. स्वामी शान्तानन्दजी, टीकरमाफी आश्रम, प्रतापगढ़ ५०१)
२. श्री रामलखन पाण्डेय, प्रधानाचार्य, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर । १०१)
३. श्री उमाशंकर मिश्र, निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद । १०१)
४. श्रीमती मूर्तिमती देवी, घनघटा, कोहरा, बस्ती । १०१)
५. श्री रामअवतार मिश्र, सहायक निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, वाराणसी । १०१)
६. प० जगन्नाथ उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०१)
७. श्रीमती बिन्दुमती त्रिपाठी, द्वारा श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०५)
८. प० सिद्धिनाथ त्रिपाठी, वैद्यजी, लालडिग्गी, मिर्जापुर । १०१)
९. डा० आद्याप्रसाद मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०१)
१०. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय, धर्मशास्त्रविभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०१)
११. कु० रामेश्वरी मालवीय, प्रधानाचार्या, लक्ष्मी महिला विद्यापीठ, लखनऊ । ११३)
१२. श्रीमती शोभा द्विवेदी, द्वारा डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०१)
१३. प० चन्द्रदेव त्रिपाठी, प्रधानाचार्य, श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय, सुजानगंज, जौनपुर । ११३)
१४. श्री अशोककुमार सिंह, सहदेव संस्कृत महाविद्यालय, महाराजगंज, गाजीपुर । ११३)
१५. डॉ० परमेश्वरदत्त मिश्र, रुधौली, रुद्रपुर, बस्ती । १०१)
१६. डॉ० कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । ११५)
१७. डॉ० व्रजलाल वर्मा, सदस्य, लोकसेवा आयोग, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद । १०१)
१८. प्रधानाचार्य, मुमुक्षुभवन वेदवेदांग विद्यालय, अस्सी, वाराणसी । ११३)
१९. प० सूर्यनारायण चतुर्वेदी, प्रधानाचार्य, श्रीमान् स्वामी राघवेन्द्रानन्द शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी । ११३)
२०. श्री अभिरामदास वेदान्ताचार्य, श्री महर्षि गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम, तिरनार रोड, जूनागढ़, (गुजरात) । १०१)
२१. प्रधानाचार्य, श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, श्री वैष्णवाश्रम, दारागंज, प्रयाग । १०१)
२२. श्री रामभरोसे लाल, व्यवस्थापक, कल्याण संस्कृत महाविद्यालय, दफथरा, हरलाल, बदायूँ । ११५)
२३. श्री देवव्रत आर्य, प्रधानाचार्य, वैदिक विद्यापीठ, वेदामऊ, बदायूँ । ११५)
२४. स्वामी किशोरदास, साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी । १०१)
२५. श्री युधिष्ठिर जी, विभागाध्यक्ष, साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी । १०१)
२६. श्री सर्वेश्वर राजहंस, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०१)
२७ श्री ज्वालाप्रसाद गौड़, प्रधानाचार्य, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, अपारनाथ मठ, वाराणसी । ११३)
२८. श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी । ५०१)
२९. अध्यापक वृन्द, श्री विश्वनाथ गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी । १०१)
३०. डॉ० विष्णु शर्मा, ७२ बी० (एम० आई० जी०) राजोरी गार्डन, नई दिल्ली–२७ । ११७)
३१. श्री साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी । ५०१)
३२. प० देवस्वरूप मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी । १०५)
३३. श्री सूर्यनारायण उपाध्याय, अध्यक्ष, जिला कांग्रेस कमेटी (आई०), जौनपुर । १०१)

३४. श्री निरीक्षणपति मिश्र, अस्सी, भदैनी, वाराणसी । १०१)

३५. श्रीमती सौ० शारदा देवी, द्वारा प० पट्टाभिराम शास्त्री, हनुमानघाट, वाराणसी । ११३)

३६. श्री वेणीमाधव मिश्र, श्री मायानन्दगिरि संस्कृत महाविद्यालय, पाटम्बरीमठ, लक्ष्मणपुरा, वाराणसी । १०१)

३७. प्रधानाचार्य, श्रीगौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय, सिंगठी, पो० सोनारी, जिला सुलतानपुर । ११३)

३८. श्री रामबोध शुक्ल, विश्वेश्वर संस्कृत विद्यालय, बरापुर, मीरगंज, जौनपुर । १०१)

३९. श्री संकठाप्रसाद उपाध्याय, सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय, रासमण्डल, जौनपुर । ११३)

४०. श्री कपिलदेव मिश्र, प्रधानाचार्य, भारती संस्कृत महाविद्यालय, खेतासराय, जौनपुर । ११३)

४१. श्री शान्तिलाल जैन, श्री मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली–७ । ५११३)

४२. श्रीमती शान्तिलाल जैन, श्री मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली–७ । ५११३)

४३. श्री मोहनदास, चौखम्भा विश्वभारती, चौक, वाराणसी । १०१)

४४. श्री हरिमोहनदास टण्डन, प्रबन्धक, श्री शिवशर्मा संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, प्रयाग । ११३)

४५. श्री जयश्याम ब्रह्मचारी, प्रधानाचार्य, श्री शिवशर्मा संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, प्रयाग । ११३)

४६. श्री हरिशंकर ओझा ११३)

४७. श्री लल्लूजी मुकुन्दीलाल एण्ड सन्स, जंगमबाड़ी, वाराणसी । १०१३)

४८. आचार्य राजेन्द्रप्रसाद जी महाराज, स्वामी नारायण मन्दिर, बढ़वाण सिटी, गुजरात—३६३००३ । ११५)

४९. श्री रमाकान्त शुक्ल, प्रधानाचार्य, श्री हुब्बलाल संस्कृत महाविद्यालय, भरवारी, प्रयाग । ११३)

५०. श्री शिवहर्ष गर्ग, प्रबन्धक, श्रीनारायण संस्कृत पाठशाला, टेवा, प्रयाग । ११३)

५१. चौखम्भा संस्कृत सिरीज आफिस, गोपाल मन्दिर, वाराणसी । १०१)

५२. प्रधानाचार्य, श्री रंगलक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन, मथुरा । ११३)

५३. प्रधानाचार्य, साधु श्री देवनारायण संस्कृत महाविद्यालय, मु० पो० कूसा, जि० जौनपुर । ५०१)

५४. श्री रामनारायणाचार्य, प्रधानाचार्य वैकुण्ठनाथ पवहारि संस्कृत विद्यालय, देवरिया । १०१)

५५. प्रधानाचार्य, श्री नन्दलाल बाजोरिया संस्कृत महाविद्यालय, अस्सी, वाराणसी । ११३)

शोक सभाएँ

संस्कृत जगत् के यशस्वी विद्वान् डॉ० वी० राघवन्, डॉ० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी तथा प० श्री भूधर द्विवेदी तथा विश्वविद्यालय के कर्मचारी श्री महेशप्रसाद श्रीवास्तव, आशुलिपिक कुलसचिव; श्री तपेश्वर राम, परिचारक एव श्री पुन्नन माली के दिवंगत होने पर विश्वविद्यालय में शोक सभाएँ आयोजित हुईं और विश्वविद्यालय परिवार ने अपनी संवेदना प्रगट करते हुए उनके सम्बन्ध में निम्नाङ्कित शोक प्रस्ताव पारित किए—

डॉ० वी० राघवन्

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संस्कृत वाङ्मय के वयोवृद्ध विद्वान् डॉ० वी० राघवन् का आकस्मिक निधन ६ अप्रैल, १९७९ को ७१ वर्ष की आयु में हो गया।

मद्रास विश्वविद्यालय का संस्कृत विभागाध्यक्ष पद डॉ० वी० राघवन् के द्वारा सुदीर्घ काल तक सुशोभित रहा। उन्होंने जीवन पर्यन्त संस्कृत वाङ्मय की निष्ठापूर्वक अप्रतिम सेवा की। आपने संस्कृत साहित्य से सम्बद्ध अनेक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की, अनेक ग्रन्थों का वैज्ञानिक सम्पादन किया और अनेक ग्रन्थों का संस्कृतानुवाद करके अपनी प्रतिभा को प्रकाशित किया। आप साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'संस्कृत प्रतिभा' के सम्पादक थे। डा० आफ्रेक्ट द्वारा सम्पादित विश्वप्रसिद्ध कैटलौगौरस केटलौगौरम के परिवर्द्धित संस्करण को प्रकाशित करने का आपने श्रीगणेश किया था। डॉ० राघवन् देश-विदेश के विभिन्न शैक्षिक आयोजनों में अपने विचारों को प्रगट करते रहे, व्याख्यान देते रहे तथा संस्कृत की अनेक जटिल समस्याओं के समाधान को उपस्थित करके संस्कृत शिक्षा के विकास, प्रचार एवं प्रसार के लिए बहुमूल्य सेवा करते रहे हैं। संस्कृत शिक्षा की उन्नति के लिए, संस्कृत वाङ्मय के बहुमुखी विकास के लिए भारत सरकार, राज्य सरकार, विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा अन्य विविध उच्च शिक्षा संस्थानों के द्वारा प्रस्तुत की गई योजनाओं के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण उद्‌बोधन एवं मार्गदर्शन करके उनको सम्पन्न बनाने में स्तुत्य श्रेय प्राप्त किया है। डॉ० राघवन् ने संस्कृत शिक्षाक्षेत्र में पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया था, जिसके कारण वे संस्कृत का इतना बड़ा उपकार कर सके। डॉ० राघवन् भारतवर्ष के सफल वक्ता, सुप्रसिद्ध लेखक और संस्कृत वाङ्मय के यशस्वी अध्यापक थे। आपके द्वारा की गई संस्कृत की उत्कृष्ट सेवाओं को देखते हुए भारत सरकार ने आपको पद्मभूषण अलंकरण प्रदान कर सम्मानित उपाधि से भी विभूषित किया था। संस्कृत की बहुमूल्य सेवाओं को दृष्टिगत रखते हुए इस विश्वविद्यालय ने भी वाचस्पति की सम्मानित उपाधि से आपको समलंकृत किया था। प्राच्य-प्रतीच्य उभय विद्यानिष्णात डॉ० वी० राघवन् का सम्मान संपूर्ण विश्व में था। आप विश्व संस्कृत सम्मेलनों के अध्यक्ष चुने जाते रहे हैं। उनके इस आकस्मिक निधन से संस्कृत जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है। संस्कृत जगत् को अभी उनसे अनेक आशाएँ थी। विश्वविद्यालय परिवार उनके इस आकस्मिक निधन से गहरी शून्यता का अनुभव करता है और इस महाविपत्ति में उनके कुटुम्ब का सहभागी है। यह सभा भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वह डॉ० राघवन् के परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने का धैर्य प्रदान करे और दिवंगत आत्मा को शान्ति दे।

डॉ० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

संस्कृत जगत् के वयोवृद्ध एवं व्याकरण तथा वेद आदि शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी का आकस्मिक निधन ८० वर्ष की अवस्था में हो गया। श्री चतुर्वेदी जी की प्राचीन परम्परागत शिक्षा धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय, इलाहाबाद तथा आधुनिक शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग में हुई थी। आप इस विश्वविद्यालय की कार्य परिषद् के माननीय सदस्य रहे तथा इस विश्वविद्यालय से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। विश्वविद्यालय ने २१ वें दीक्षान्त समारोह में आपको वाचस्पति की मानद उपाधि से सम्मानित किया था। आपने चिरकाल तक नागपुर महाविद्यालय के प्रधानाचार्य तथा केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के संस्कृत विभाग के संचालक का कार्य बड़ी ही कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया। रायपुर संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद को भी आपने सुशोभित किया था। प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत के आचार्य पद को सुशोभित करते हुए आप आजीवन पठन-पाठन में रत रहे। आपने वैदिक वाङ्मय एवं व्याकरण सम्बन्धी अनेक पुस्तकें लिखी। भारतीय संस्कृति की रक्षा में आप सदैव सचेष्ट रहे और सुरभारती की सेवा कर आपने देश के गौरव को बढ़ाया। माँ सरस्वती के वरदपुत्र प० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी 'यथा नाम तथा गुण' के मूर्त रूप थे। उनके निधन पर विश्वविद्यालय परिवार की यह शोक सभा भूतभावन भगवान् श्री

विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि उन्हें अपना सायुज्य प्रदान करें तथा उनके शोकसन्तप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री भूधर द्विवेदी

संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी के विद्वान् श्री भूधर द्विवेदी का निधन ५४ वर्ष की अवस्था में हो गया। श्री भूधर द्विवेदी ने उत्तरप्रदेश शिक्षा सेवा के विभिन्न पदों पर रह कर शिक्षा जगत् को अपने अनेक अवदानों से अनुप्राणित किया था। साथ ही संस्कृत के उपशिक्षा निदेशक के रूप में उन्होंने संस्कृत-जगत् के अभ्युदय के लिए निरन्तर कार्य किया था। सम्प्रति आप झाँसी में थे। संस्कृत के प्रति आपकी आस्था सराहनीय थी। आपने संस्कृत में अभिरुचि के साथ विद्वत्ता प्राप्त करने के साथ-साथ हिन्दी व अंग्रेजी में भी ज्ञानार्जन किया था। आप तीनों भाषाओं के विद्वान् थे। आपके निधन पर विश्वविद्यालय परिवार की यह शोक सभा भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि आपको अपना सायुज्य प्रदान करते हुए उनके शोकसंतप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री महेशप्रसाद श्रीवास्तव

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलसचिव के आशुलिपिक श्री महेशप्रसाद श्रीवास्तव का दि० २१-३-७९ को अपराह्न ३ बजे सर सुन्दरलाल अस्पताल में हृदयगति अवरुद्ध हो जाने से आकस्मिक निधन हो गया। श्री श्रीवास्तव विश्वविद्यालयीय सेवा में दि० १५-५-५९ से कार्यरत थे तथा अपने कार्य में दक्ष थे, जिससे उनके अधिकारी उनसे प्रभावित थे। वे कर्तव्यनिष्ठ, नियमित, सरल, व्यवहारकुशल, प्रसन्नचित्त एवं सात्विक पुरुष थे, जिससे उनके सहयोगी भी उन्हें समादर की दृष्टि से देखा करते थे। वे अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं। उनके इस आकस्मिक निधन से विश्वविद्यालय परिवार शोकमग्न है। यह सभा भूतभावन भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके शोकसंतप्त परिवार को इस महान् शोक को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री तपेश्वर राम

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में कार्यरत श्री तपेश्वर राम परिचारक का निधन दि० १३ मार्च, १९७९ को प्रातः ४ बजे हो गया। श्री तपेश्वर राम विश्वविद्यालयीय सेवा में मार्च, सन् ६० में आये और अत्यन्त लगन, उत्साह, तत्परता एवं सेवाभाव से विश्वविद्यालय को सेवा करते रहे। उनके निधन से विश्वविद्यालय परिवार शोकमग्न है। यह सभा भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ से प्रार्थना करती है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोकसंतप्त परिवार को इस महान् शोक को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री पुन्नन माली

श्री पुन्नन माली का निधन दि० ७ मार्च, ७९ को हो गया। श्री पुन्नन इस विश्वविद्यालय के उद्यान विभाग के कर्मठ कार्यकर्ता थे। वे दि० १८-५-५३ से राजकीय सेवा में प्रविष्ट हुए और उन्होंने जीवन पर्यन्त इस संस्था में माली पद के कार्यों का सम्पादन पूर्ण दायित्व एवं निष्ठा के साथ किया। वे नम्र एवं कर्तव्यनिष्ठ कर्मचारी थे। विश्वविद्यालय परिवार इस शोक-सभा द्वारा भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ से दिवंगत आत्मा को पूर्ण शान्ति तथा सद्गति प्रदान करने हेतु तथा उनके शोक संतप्त परिवार को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करने हेतु हार्दिक प्रार्थना करता है।